विद्यापति-पदावली

[प्रथम भाग]

(नेपाल में प्राप्त विद्यापति के पदों का संग्रह)

प्रकाशक

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

विद्यापति-पदावली

[प्रथम भाग]

(नेपाल में प्राप्त विद्यापति के पदों का संग्रह)

प्रकाशक

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकाशक

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-६

विक्रमाब्द २०१८; शकाब्द १८८३; खृष्टाब्द १९६१

मूल्य : सजिल्द ७·५०

मुद्रक

ज्ञानपीठ प्राइवेट लि०

पटना-४

वक्तव्य

एक लम्बी प्रतीक्षा के अनन्तर इस ग्रंथ को हिन्दी-संसार के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें आन्तरिक हर्ष हो रहा है। यह निर्विवाद सत्य है कि उत्तर भारत में महाकवि विद्यापति की कोमलकान्त पदावली को जो लोकप्रियता प्राप्त है, वह तुलसी के मानस के अतिरिक्त और किसी साहित्य को प्राप्त नहीं। ऐसी लोकप्रिय पदावली के अनेक संस्करण, विभिन्न स्थानों से, प्रकाशित हुए हैं। किन्तु, एक प्रामाणिक संस्करण की आवश्यकता बहुत दिनों से अनुभव की जा रही थी। उसी आवश्यकता की पूर्त्ति की दिशा में परिषद् का यह प्रथम चरण है।

कुछ वर्ष पहले बिहार-सरकार ने महाकवि विद्यापति के स्मृति-रक्षार्थ, उनकी समस्त कृतियों के संकलन, सम्पादन और प्रकाशन का भार परिषद् पर न्यस्त किया। तदनुसार, परिषद् ने उक्त कार्य की पूर्त्ति के लिए एक समिति गठित की, जिसके अध्यक्ष डॉक्टर अमरनाथ झा मनोनीत हुए। किन्तु, उनकी अध्यक्षता में उक्त समिति की एक ही बैठक होने पाई थी कि अचानक उनका देहावसान हो गया। उक्त स्थान पर कुमार श्रीगङ्गानन्द सिंह का निर्वाचन हुआ। उक्त समिति के दस सदस्य चुने गये—डॉ० सुधाकर झा शास्त्री, डॉ० तारापद चौधुरी, डॉ० विमानविहारी मजूमदार, श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर', श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, श्रीनरेन्द्रनाथ दास, डॉ० कालीकिंकर दत्त, श्रीजयदेव मिश्र, श्रीलक्ष्मीपति सिंह तथा परिषद्-संचालक आचार्य शिवपूजन सहाय।

आरंभिक वर्षों में परिषद् के क्षेत्र-पदाधिकारी पं० शशिनाथ झा ने मिथिला के विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर सामग्री-संकलन का कार्य बड़े उत्साह और तत्परता के साथ सम्पन्न किया। दूसरी ओर इसी विभाग के उत्साही कार्यकर्त्ता श्रीबजरंग वर्मा, एम्० ए० ने विभिन्न पुस्तकालयों में जाकर विद्यापति-सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री का चयन कर एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। तदनन्तर, वे दोनों शांति-निकेतन (बोलपुर) और कलकत्ता की यात्रा कर अनेक दुष्प्राप्य सामग्री को एकत्र कर लाये। इस तरह सामग्री-संकलन हो जाने के बाद ही क्षेत्र-पदाधिकारी पं० शशिनाथ झा ने विद्यापति-पदावली के सम्पादन का श्रीगणेश किया।

विभाग-द्वारा सम्पादित सामग्री के निरीक्षण-परीक्षण के लिए एक सम्पादक-मण्डल का गठन किया गया, जिसके सदस्य हुए—डॉ० तारापद चौधुरी, पं० विष्णुलाल शास्त्री, डॉ० सुधाकर झा शास्त्री तथा श्रीलक्ष्मीपति सिंह। और, उक्त 'मण्डल' के सहायतार्थ विभागीय क्षेत्र-पदाधिकारी पं० शशिनाथ झा और परिषद् के अनुसंधायक श्रीबजरंग वर्मा नियत हुए। किंतु, कुछ दिनों के बाद ही श्रीवर्मा के स्थान पर स्थायी रूप से विद्यापति-विभाग के सहायक श्रीदिनेश्वर लाल 'आनन्द' ने इस कार्य में अपना हाथ बटाया और सहयोगी के रूप में इनकी सेवा प्रस्तुत खण्ड तक अनवरत सुलभ रही। सम्पादक-मण्डल के सदस्यों में पं० विष्णुलाल शास्त्री मिथिलाक्षर पढ़ने में कुशल थे, जिनसे पदावली की मैथिली पाण्डु-

लिपियों को ठीक-ठीक पढ़ने में बड़ी सहायता मिली। किन्तु, उनका भी आकस्मिक देहावसान हो गया और उसके बाद ही डॉ० तारापद चौधुरी भी इस संसार में न रहे। उनकी सेवाएँ जहाँ तक प्राप्त हो सकीं; सदा अविस्मरणीय रहेंगी। उन दोनों के स्थान पर काशीप्रसाद जायसवाल-शोध-प्रतिष्ठान के, प्राचीन पाण्डुलिपियों के पाठोद्धारक ज्यौतिषाचार्य पं० बलदेव मिश्र तथा पटना राजकीय संस्कृत-महाविद्यालय के प्राचार्य पं० जटाशंकर झा मनोनीत किये गये। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सम्पादक-मण्डल ने बड़ी निष्ठा और लगन के साथ प्रस्तुत विद्यापति-पदावली के प्रथम खण्ड का सम्पादन-कार्य सम्पन्न किया। हाँ, उस कार्य की सम्पन्नता में विभागीय क्षेत्र-पदाधिकारी पं० शशिनाथ झा और उनके सहयोगी श्रीदिनेश्वर लाल 'आनन्द' की सेवाएँ बड़ी प्रशंसनीय रहीं। हम सम्पादक-मण्डल के प्रत्येक सदस्य के प्रति आभार स्वीकार करते हैं। विभागीय दोनों कार्यकर्त्ताओं की निष्ठा और अध्यवसाय का ही फल विद्यापति-पदावली का प्रथम खण्ड आपके हाथों में है। प्रथम खण्ड में नेपाल-पदावली का सम्पादन ही प्रस्तुत किया गया है, जो सम्पूर्ण विद्यापति-पदावली का एक खण्ड है। विद्यापति की समग्र पदावली का प्रकाशन तीन खण्डों में सम्पन्न हो सकेगा, ऐसी आशा है। इस प्रथम खण्ड का सम्पादन-कार्य सन् १९५९ ई० में आरंभ हुआ था और उसकी समाप्ति हुई सन् १९६१ ई० में। यहाँ हमें यह स्वीकार करने में बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि इस पावन अनुष्ठान में इतने महानुभावों का सक्रिय सहयोग न मिला होता, तो शायद हम इस रूप में इस खण्ड को प्रकाशित करने में समर्थ न होते।

हम भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री आचार्य श्रीबदरीनाथ वर्मा, भूतपूर्व शिक्षा-सचिव श्रीजगदीशचन्द्र माथुर, आइ०सी०एस्० तथा परिषद् के आद्य संचालक आचार्य श्रीशिवपूजन सहाय के प्रति अत्यंत अनुगृहीत हैं, जिन्होंने विद्यापति-पदावली के प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इस खण्ड में विभाग की ओर से सुचिन्तित भूमिका दी गई है, जिसमें विद्यापति की जीवनी तथा उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त विद्यापति-स्मारक-समिति के अध्यक्ष तथा बिहार-राज्य के भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री कुमार श्रीगङ्गानन्द सिंह ने पुस्तक के प्रारंभ में 'आमुख' लिखने की कृपा की है। उसी से प्रस्तुत ग्रंथ की उपादेयता का आभास मिलेगा। हम उनके प्रति तथा समिति के सभी सदस्यों के प्रति अतिशय कृतज्ञ हैं। महाकवि के वंशज श्रीविजयनाथ ठाकुर, श्रीअक्षधर ठाकुर, श्रीशशिधर ठाकुर आदि तथा ओइनवारवंशीय श्रीहर्षण ठाकुर के वंशज श्रीदोलधरनारायण सिंह (शिव बाबू) का हम विशेष रूप से धन्यवाद-ज्ञापन करते हैं, जिन्होंने आवश्यक जानकारी देकर हमारी सहायता की है।

परिषद् के अन्य प्रकाशनों की तरह इस ग्रंथ का सुधी पाठकों द्वारा समादर होगा, ऐसा हमें विश्वास है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
मार्गशीर्ष, शुक्ल ११, २०१८ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
संचालक

आमुख

आज से कई वर्ष पूर्व जब मैंने श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा सम्पादित 'विद्यापति-पदावली' की भूमिका लिखी थी, तभी मेरे ध्यान में यह बात आई कि महाकवि विद्यापति के पदों का एक बृहत् सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित होता, जिसमें विशुद्ध पाठ और सुबोध टीका रहती। मेरा वह सपना बहुत दिनों तक सपना ही रहा।

बिहार-सरकार ने जब विद्यापति-स्मारक-समिति की स्थापना की और मुझे उस समिति के अध्यक्ष का पद सँभालने का अवसर मिला, तब मुझे अपने उस पुराने सपने को साकार करने का शुभावसर प्राप्त हुआ। इस समिति के तत्त्वावधान में विद्यापति के सभी ग्रंथों को प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। साहित्य-संसार को विद्यापति ने पदावली के रूप में अमूल्य निधि दी है। उनकी पदावली भारत के पूर्वोत्तर भाग में एक समान लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है। किन्तु, खेद है कि अबतक उनकी पदावली का एक भी सर्वांगपूर्ण संस्करण प्रकाशित नहीं हो सका था। इसी से पहले पदावली के प्रकाशन से ही कार्यारंभ हुआ है।

महाकवि विद्यापति के उपलब्ध सम्पूर्ण पदों की संख्या हजार से भी अधिक है। सबका समावेश एक ही खण्ड में होना संभव नहीं था। कारण, विभिन्न संस्करणों में प्राप्त उनके पाठभेद, शब्दार्थ, अर्थ और शब्दों के औचित्य-अनौचित्य का दिग्दर्शन कराने के लिए सम्पादकीय अभिमत के साथ ही एक विस्तृत भूमिका देने की भी योजना बनाई गई है। इसलिए, पदावली को तीन खंडों में बाँटकर प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। प्रथम खंड में नेपाल में प्राप्त पाण्डुलिपि के पदों का समावेश किया गया है। द्वितीय खंड में रामभद्रपुर और तरौनी की पाण्डुलिपियों तथा रागतरंगिणी में प्राप्त विद्यापति के पदों का समावेश किया जायगा। तृतीय खण्ड में वैष्णव-पदावली और मिथिला के लोककण्ठ से प्राप्त पदों का समावेश होगा। तीनों खंड क्रमशः प्रकाशित होंगे। प्रस्तुत खंड 'विद्यापति-पदावली' का प्रथम खंड है। इसके पूर्व महाकवि विद्यापति की पदावली के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें अधिकांश संस्करणों का मूल स्रोत है स्वर्गीय नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा प्रकाशित संस्करण। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'विद्यापति-पदावली'-रूपी गंगा के लिए स्वर्गीय गुप्त भगीरथ-स्वरूप हैं। उनका कार्य व्यापक है। उन्होंने ही सर्वप्रथम स्वर्गीय कवीश्वर चन्दा झा के सहयोग से तरौनी-पाण्डुलिपि, नेपाल-पाण्डुलिपि और अन्यत्र प्राप्त पदों को प्रकाशित किया। उन्हीं की प्रकाशित पदावली के आधार पर पीछे अनेक विद्वानों ने विद्यापति के पदों के संग्रह प्रकाशित किये, जिनमें प्रमुख हैं श्रीव्रजनन्दन सहाय व्रजवल्लभ, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी आदि। गुप्तजी के पश्चात् रामभद्रपुर की प्राचीन पाण्डुलिपि प्राप्त हुई, जिसे स्व० पं० शिवनन्दन ठाकुर ने प्रकाशित किया।

नेपाल-पाण्डुलिपि पर जिन विद्वानों ने कार्य किया है, हम यहाँ उन्हीं का उल्लेख करेंगे। गुप्तजी के बाद नेपाल-पाण्डुलिपि का उपयोग श्रीखगेन्द्रनाथ मित्र और डॉ० श्रीविमानविहारी मजूमदार ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'विद्यापति' में किया है। किन्तु, स्वतंत्र रूप से केवल नेपाल-पाण्डुलिपि पर कार्य करनेवाले हैं डॉ० श्रीसुभद्र झा।

प्रश्न उठ सकता है कि जब इतने विद्वान् इस पाण्डुलिपि पर कार्य कर चुके हैं, तब फिर इसपर नये सिरे से कार्य करने की आवश्यकता ही क्या थी ?

भूमिका में नेपाल-पाण्डुलिपि का परिचय देते हुए कहा जा चुका है कि इसकी लिपि प्राचीन मिथिलाक्षर है। लिखावट प्रायः स्पष्ट है; किन्तु अनेक अक्षरों में आकार-साम्य के कारण पढ़ने में कठिनाई होती है। 'र'-'व', 'न'-'ल', 'तु'-'ओ' आदि अक्षर प्रायः एक ही प्रकार के हैं। अर्थ पर विचार करने के बाद ही उनका ठीक-ठीक निर्णय हो पाता है। मात्रा देने के भी कुछ खास ढंग हैं, जिनसे भ्रम होने की गुंजाइश रहती है। शब्द पृथक्-पृथक् नहीं हैं, अतः पदच्छेद करने में बड़ी कठिनाई होती है। इन कारणों से, नेपाल-पाण्डुलिपि में कितने ही ऐसे पद हैं, जो अबतक ठीक-ठीक नहीं पढ़े जा सके थे और उनका सही अर्थ भी नहीं हो सका था। प्रस्तुत संस्करण में परिश्रम-पूर्वक शुद्ध पाठ एवं समीचीन अर्थ देने का प्रयास किया गया है।

मूल नेपाल-पाण्डुलिपि का उपयोग करनेवाले प्रमुख व्यक्ति हैं—(१) स्वर्गीय नगेन्द्रनाथ गुप्त, (२) श्रीखगेन्द्रनाथ मित्र और श्रीविमानविहारी मजूमदार तथा (३) श्रीसुभद्र झा। गुप्तजी ने बहुत-से ऐसे पद छोड़ ही दिये, जिनका पढ़ना कठिन था। उन्होंने बहुतेरे शब्दों के रूप में भी मनमाना परिवर्त्तन कर दिया। श्रीमजूमदार और श्रीझा उनकी आलोचना अपनी-अपनी पुस्तकों में कर चुके हैं। अतः, हम यहाँ इन्हीं दोनों की पुस्तकों पर दृष्टिपात करेंगे।

पाठ की अशुद्धि—ऊपर कहा जा चुका है कि कई कारण हैं, जिनसे उक्त पाण्डुलिपि पढ़ने में कठिनाई होती है। श्रीमित्र और श्रीमजूमदार महाशय को जहाँ गुप्त महोदय की सहायता प्राप्त नहीं हुई, वहाँ पाठ-निर्धारण में उन्हें सफलता नहीं मिली। इसीलिए, कई पद शुद्ध रूप में पढ़े नहीं जा सके हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं —

मित्र-मजूमदार का पाठ—

हमरे वचने सखि सतत लजए
बेतहु परिहरि हुहु राति।
पढ़ल गुनल अगरि बाड़े खाए
बसब दिस होएत सुकान्ति ॥ ध्रु० ॥
अनुविध हमर उपदेस।
बिरज नामे जते दूरे सुनिञ
हठे छाड़ब से देस ॥

सारो आनि से चानके सोपलह
देखतहि अपनी आखि ।
सुधमा सुहाउहि सञो खएलक
केवल पखि आ राखि ।।
भमि भमि बिरउ सेबहि निहारए
डरे नहि करए उकासी ।
दही दूध कुसञो खएलक
गिरि दुख पलल उपासी ।।
भनइ विद्यापतीत्यादि ।

विद्यापति, पद-सं० ५६१

अर्थ के लिए उन्होंने लिख दिया है—'अर्थ प्रतीत हइल ना ।'

डॉ० सुभद्र झा ने अपनी पुस्तक 'विद्यापति-गीत-संग्रह' में इसका पाठ और अर्थ इस प्रकार दिया है--

हमरे वचने सखि सतत न जएबे
तहु परिहरिहह राति ।। १ ।।
पढ़ल गुनल सुग विराडे खाएब
सब दिस होएत अकान्ति ।। २ ।। ध्रुव ।।
अनु विवर (सखि) हमर उपदेस ।। ३ ।।
विरडा नाम जते दुषे सूनिअ
हठे छाड़ब से देस ।। ४ ।।
सारो आनि से चानके सोपलह
देषतहि अपनी आखि ।। ५ ।।
सूध मासु हाडहि सञो खएलक
केवल पखिआ राखि ।। ६ ।।
भमि-भमि विरडी सबहि निहारए
डरे नहि करे उकासी ।। ७ ।।
दही दूधहु सञो षएलक
गिरिहथ पलड उपासी ।। ८ ।।
भनइ विद्यापतीत्यादि ।

विद्यापति-गीत-संग्रह, पद-सं० ३६

अर्थ—If you follow my advice, O friend ! you will particularly avoid (going at) night. I

The parrot when well trained will be eaten away by a cat and there will be calmny in all the quarters. II

O friend, you please follow my instruction. III

Wherever you hear the painful name of the cat you will at once leave that land. IV

While you had your eyes open you surrendered to the moon your beauty. V

He ate away the flesh along with the bones, leaving only the wings. VI

The she-cat moves here and there, she looks at every body; but on account of fear she does not (even) mew. VII

(The he cat) ate away even the curd and the milk; the house-holder remained without food. VIII

परिषद् से प्रकाशित पदावली का पाठ--

हमरे वचने सखि सतत न जएबे
तहु परिहरिहह राति।
पढ़ल गुनल सुग बिराडे खाएब
सब दिस होएब अकान्ति ॥ध्रु०॥
अलुरि धरब हमर उपदेस।
बिरडा नाम जते दुरे सूनिञ
हठे छाड़ब से देस ॥
सारो आनि सेचान के सोपलह
देषितहि अपनी आखि।
सूध मासु हाडहि सञो खएलक
केवल पखिआ राखि ॥
भमि-भमि बिरडा सबहि निहारए
डरे नहि करए उकासी।
दही दूधहु सञो षएलक
गिरिहथ पळल उपासी ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

पद-सं० ३६, पृ० ५२-५३

अर्थ--हे सखी, मेरे कहने से सदा मत जाया करो। उसपर भी रात को (तो जाना) छोड़ ही दो। (अर्थात्, मेरे कहने से आना-जाना कम कर दो।)

पढ़े-लिखे सुग्गे को बिलाव खा लेगा, चारों ओर उदासी छा जायगी।

हे कर्त्तव्यज्ञान-शून्ये! (मेरे) उपदेश का पालन करो। बिलाव का नाम जितनी दूर में सुनो, हठात् उस देश को छोड़ दो।

अपनी आँखों से देखते हुए भी तुमने सारिका को लाकर बाज को सौंप दिया। (वह) शुद्ध मांस हड्डी के साथ खा गया। केवल पाँखें रख दीं। घूम-घूमकर विलाव सबको घूर रहा है। (कोई) डर के मारे खाँसता तक नहीं। दूध से दही तक वह खा गया। गृहस्थ उपासा (भूखा) रह गया।

ऊपर के तीनों पाठों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि मित्र-मजूमदार इस पद को ठीक-ठीक पढ़ ही नहीं सके। इसमें कुछ ऐसे ठेठ ग्रामीण शब्द आये हैं, जिनका प्रयोग बाहर कम होता है। अतः, वे इस पद को न पढ़ सके, न समझ सके।

डॉ० झा इस पद के पढ़ने और अर्थ करने में बहुत-कुछ सफल हैं, किन्तु कई पंक्तियाँ वे भी ठीक से न पढ़ सके हैं, न उनका अर्थ ही दे सके हैं, जैसे—'अलूरि धरब हमर उपदेस' को उन्होंने 'अनु विवर हमर उपदेस' पढ़ा है। 'अनु विवर' शब्द यहाँ उपयुक्त नहीं है। इसी प्रकार छठी पंक्ति में 'जते दुषे सूनिञ' से उपयुक्त है 'जते दुरे सूनिञ।' नवीं पंक्ति 'सारो आनि से चानके सोपलह' तथा उसका अर्थ—'तुमने अपनी सुन्दरता चन्द्रमा को सौंप दी' एकदम अनुपयुक्त है। वहाँ 'सारो' का अर्थ 'सारिका' और 'सेचान' का अर्थ 'बाज' ही उपयुक्त है।

दूसरा उदाहरण—

मित्र-मजूमदार का पाठ—

टाट टुटले आङ्गन, बेकत सबे परदा राख।
टुना चटकराज सञो बेस, न दूती अइसन भाख॥
साजनि ते जसि वचन बोध
टाकुसन कुहिअ सोझो कर सिमान झिबाङ्ग
टेना चढ़लब, केहु न देखल, आँधे पोस न आनि
आबे दिने दिने तैसन, कएलह बाघ महिषाकानि॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

विद्यापति, पद-सं० ५८८

अर्थ के संबंध में लिखा है—'अर्थ बुझा गेल ना।'

झा का पाठ—

टाट टुटले आङ्गन वेकत सबे परदा राष॥१॥
टुना चटक बाज सञो रेसल दूती अइसन भाष॥२॥ ध्रुवं॥
साजनि तेजसि वचन - रोध॥३॥
टाकु सन हिअ सोझे करसि मानसि वाङ्क विरोध॥४॥
टेना चढ़ल बकहुल देषल आँधेअ पोसल आनि॥५॥
आबे दिने दिने तैसन कएलह बाघ महिसा कानि॥६॥
भनइ विद्यापतीत्यादि।

विद्यापति-गीत-संग्रह, पद-सं० ४८

अर्थ—If the fence is damaged the yard becomes exposed (to public-view) : everybody therefore preserves the enclosing wall. I

The confidante says that the sparrow has got itself united with the kite. II

O lady, please give up your words of obstruction. III

You are making your heart completely straight like a needle and think that there is disagreement with Krishna. IV

I saw a *tena* (?) mounting a *bakahul* (?) a blind man brought and began to rear them up. V

But you have, in course of time, grown an enemy like that of a tiger and a she-buffalo. VI

परिषद् से प्रकाशित पदावली का पाठ—

टाट टुटले आङ्गन बेकत
सबे परदा राष ।
टुना चटक राज सञो बेसन
दूती अइसन भाष ॥ ध्रु० ॥
साजनि तेजसि वचन रोध ।
टाकु सन हिअ सोझो करसि
मानसि बाङ्क विरोध ॥
टेना चढल बक बहुल देखल
अँधैअ पोसल आनि ।
आबे दिने दिने तैसन कएलह
बाघ महिसा कानि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ।

पृ० ११६, पद ८५

अर्थ–टट्टर टूट जाने से आँगन व्यक्त (बेपर्द) हो जाता है। (इसलिए कोई टट्टर को टूटने नहीं देता।) सभी पर्दा रखते हैं। (अर्थात्, तुम्हें भी अपना पर्दा रखना चाहिए।)

अँगुली की हल्की चोट से जो टूट सकता है (वह कहीं) राजा से व्यसन (झगड़ा) करे ? दूती इसी तरह कहती है। (अर्थात्, तुम्हें भी झगड़ा नहीं करना चाहिए।)

हे सखी, बोलचाल बन्द करना छोड़ दो। टकुए के समान हृदय को सीधा करो। वक्रता से विरोध मानो। (अर्थात्, टेढ़ापन छोड़ दो।)

(मैं). टेना पर चढ़े हुए बहुतेरे बकों को देख चुकी हूँ। (फिर भी तुमने) अंधी मछली (अंधी मछली अर्थात्— मुग्धा नायिका) को लाकर पाल रखा है ?

(जो बचानेवाला है, उसके साथ तो तुमने) अब दिनानुदिन वैसा कर लिया है, (जैसा कि) बाघ और भैंसे का वैर हो।

विशेष—कुछ संस्करणों में ऐसा पाठ दिया गया है—'टुना चटक बाज सञो वेसन।' इसके अनुसार यह अर्थ होगा—'छोटी चिड़िया बाज से कैसे शत्रुता कर सकती है?' (शब्दार्थ—टुना-क्षुद्र। चटक विशेषतः गोरैया, सामान्यतः चिड़िया।)

तीनों पाठों की समीक्षा—

मित्र-मजूमदार ने इस पद का जो पाठ दिया है, वह स्पष्ट ही किसी काम का नहीं है। वे इस पद को न समझ सके हैं, न पढ़ सके हैं। इसलिए इसका अर्थ भी वे नहीं कर सके। इसमें उनका दोष नहीं है। इस पद में बहुत-से ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो ग्राम्य हैं, इसलिए वे उनसे अपरिचित हैं।

डॉ० झा के पाठ में प्रथम पंक्ति का पाठ और अर्थ तो समान ही है। किन्तु, दूसरी पंक्ति के पाठ और अर्थ—दोनों में मतभेद की गुंजाइश है। पूरे गीत के भाव को ध्यान में रखते हुए 'टुना चटक बाज सञो रेसल' पाठ नहीं हो सकता। 'रेसल' का अर्थ डॉ० झा ने united किया है। किन्तु, आगे की पंक्ति में ही कहा गया है कि 'तुमने बोलचाल जो बन्द कर दी है, उसे छोड़ दो—अर्थात्, विरोध छोड़ो।' अतः 'जब गौरैया बाज से मिल गई'—तब फिर विरोध छोड़ने के लिए कहा क्यों जायगा? भाव तो यह है कि किसी नायिका या उसकी अभिभाविका ने किसी शक्तिशाली नायक से विरोध कर रख है, और दूती उसे विरोध छोड़ने का उपदेश दे रही है। अतः, वहाँ 'रेसल' नहीं, 'बेसन' (शत्रुता) पाठ ही समीचीन होगा।

पाँचवीं पंक्ति में भी डॉ० झा असफल रहे हैं। उसका पाठ भी भ्रमात्मक हो गया है। 'अँधैअ' का अर्थ उन्होंने 'अंधा आदमी' (blindman) किया है; किन्तु 'अँधइ' वा 'अन्हइ' एक प्रकार की मछली होती है, जिसका आकार-प्रकार साँप की भाँति होता है, उसे आँखें नहीं होतीं। यहाँ चूँकि 'टेना' और बहुत-से 'बकों' का प्रयोग हुआ है, अतः 'अँधैअ' मछली ही है, आदमी नहीं।

अंतिम पंक्ति में 'महिषा' का अर्थ (She buffalo—भैंस) किया गया है। मैथिली में महिष (स्त्री) का पुंलिंग महिषा होता है।

एक उदाहरण और लीजिए—

मित्र-मजूमदार का पाठ—

बड़ि जुड़ि एहु तकको छाहरि ठामे ठामे रसगाम।
हमे एकसरि पिआ देसान्तर नही दुरजन नाम॥
पथिक एखाने हेरि सरम
जत बेसाहर कीछु न महघ सबे मिल एहि ठाम।
सासु नही घर पर परिजन ननद सहज भोरि।

एतकु अधिक विमुख जाएब अबे अनाइति मोरि
भने विद्यापति सुन तञे जुवति जे पुर परक आस ।

विद्यापति, पद-सं० ५८६

अर्थ—एइ खानेर छाया बड़ शीतल, स्थाने-स्थाने रससमूह आछे। आमि एकला आछि। प्रिय देशान्तरे। दुर्जनेर एखाने नामओ शोना याय ना। पथिक ! एखाने तोमार (चत्तु) लज्जा देखितेछि। एखाने बिक्रीर जिनिष किछुइ दुर्मूल्य नहे, सब जिनिष एखाने पाओया याय। घरे शाशुड़ी नाइ, परिजन या आछे तारा पर, ननदिनी स्वभावे सरला। एत अधिक सुयोग थाकिते यदि विमुख हओ तबे आमार आयत्तेर बाहिरे। युवति, तुमि विद्यापतिर कथा शोन, ये तोमार आशा परिपूर्ण करिबे।

परिषद् द्वारा प्रकाशित पदावली का पाठ—

बडि जुडि एहु तरुक छाहरि
ठामे ठामे बस गाम ।
हमे एकसरि पिआ देसान्तर
नहीं दुरजन नाम ॥ ध्रु० ॥
पथिक एथा लेहे बिसराम ।
जत बेसाहब कीछु न महघ
सबे मिल एहि ठाम ॥
सासु नही घर पर परिजन
ननद सहज भोरि ।
एतहु अधिक विमुख जाएब
अबे अनाइति मोरि ॥
भने विद्यापति सुन तञे जुवति
जे पुर परक आस ॥

पृ० ६२, पद-संख्या ४४

डॉ० झा का पाठ भी प्रायः इसी प्रकार का है, केवल निम्नलिखित पंक्तियों के पाठ और अर्थ में भिन्नता है—

बड़ि जुडि ए कुतुकक छाहरि ठामे ठामे बस गाम ॥ १ ॥
हमे एकसरि पिआ देसान्तर नही (रह) दुरजन नाम ॥ २ ॥

× × ×

सासु नही घर पर परिजन (नहि) ननद सहज भोरि ॥ ५ ॥

× × ×

भने विद्यापति सुन तञे जुवति जे पुर परक आस ॥ ७ ॥

अर्थ—The shade, [here during the] mid-day is very cool. The villages are situated scatteredly. I.

I am all alone. My husband is in a foreign land. There is no wicked person living [in this locality]. II.

The mother-in-law and the other inmates are not in the house; the sister-in-law is stupid by nature. V.

Vidyapati says:—"O you, here, the damsel who fulfils the desire of another person is in fact praiseworthy. VII.

परिषद्-पदावली का अर्थ—

इस पेड़ की छाया बड़ी शीतल है। स्थान-स्थान पर गाँव बसे हैं। मैं अकेली हूँ, स्वामी परदेश में हैं, (कहीं) दुर्जन का नाम नहीं है।

हे पथिक, यहाँ विश्राम लो। जो कुछ खरीदोगे, कुछ (भी) महँगा नहीं। सब कुछ यहाँ मिलेंगे।

घर में सास नहीं हैं, परिजन परे हैं और ननद स्वभाव से ही भोली है। इतना रहते हुए भी विमुख होकर जाओगे, तो अब मेरा वश नहीं है।

विद्यापति कहते हैं—हे युवती, सुनो, जो दूसरे की आशा पूर्ण करता है......

विशेष—पद अपूर्ण है। अंत में एक पंक्ति और अपेक्षित है।

समीक्षा—प्रथम पंक्ति में उपर्युक्त तीनों संग्रहों में तीन प्रकार के पाठ हैं। मित्र-मजमूदार ने 'एहु तककी (ए खानेर)' और डॉ० झा ने कुतुकक (mid-day=दोपहर) पाठ दिया है और परिषद्-पदावली में 'एहु तरुक (इस वृक्ष की)' पाठ है। 'तककी' का तो कोई अर्थ ही नहीं होता है। पता नहीं, कैसे उसका अर्थ—'ए खानेर (इस स्थान की)' कर लिया गया। 'ए कुतुकक (दोपहर की)' छाया से भी कोई युक्तिसंगत भाव नहीं बैठता। 'दोपहर के समय यहाँ की छाया बड़ी शीतल होती है'—यह अर्थ बड़ा अटपटा लगता है। दोपहर के समय क्या किसी एक स्थान की ही छाया शीतल रहेगी और दूसरे स्थान की नहीं? अतः, 'इस तरु की छाया बड़ी शीतल है'—यही अर्थ समीचीन प्रतीत होता है।

मित्र-मजूमदार का प्रथम पंक्ति के शेषार्द्ध का पाठ—'ठामे ठामे रसगाम (स्थान-स्थान पर रस का समूह है) भी अनुपयुक्त है। रस के स्थान पर 'बस' होना चाहिए। उनकी तीसरी पंक्ति 'पथिक एखाने हेरि सरम' भी वैसा ही अशुद्ध है और उसके अर्थ भी उसी प्रकार बे-सिर-पैर के हैं।

पाँचवीं पंक्ति में डॉ० झा ने कोष्ठक में अपनी ओर से एक 'नहीं' और बैठा दिया है, जिसकी वहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। उससे छन्द और लय—दोनों में गड़बड़ी हो जाती है।

अन्तिम पंक्ति अधूरी है। मित्र-मजूमदार ने इसका जो अर्थ दिया है 'युवती, तुम विद्यापति की कथा सुनो, जो तुम्हारी आशा परिपूर्ण करेगा'—वह अद्भुत है। उक्त पंक्ति से यह अर्थ निकलता ही नहीं। डॉ० झा ने भी इस पंक्ति के अर्थ को पूरा कर दिया है—'विद्यापति कहते हैं, ओ युवती, तुम सुनो। जो दूसरे व्यक्ति की अभिलाषा पूर्ण करता है,

सचमुच प्रशंसनीय है।' 'सचमुच प्रशंसनीय है'—यह वाक्य कहाँ से आ गया? इसका उल्लेख मूल में नहीं है। मूल में ही एक पंक्ति की छूट है। जो पंक्ति उपलब्ध है, उसका अर्थ केवल इतना होगा—'विद्यापति कहते हैं, हे युवती! तुम सुनो, जो दूसरे की अभिलाषा पूर्ण करता है...... ।'

नेपाल-पदावली के बहुत-से पद तरौनी-पदावली में भी मिलते हैं। तरौनी-पदावली अब उपलब्ध नहीं। नगेन्द्रनाथ गुप्त ने उसका जो पाठ दिया है, उसी पर अब निर्भर करना पड़ता है। जो पद नेपाल-पदावली और तरौनी-पदावली—दोनों में उपलब्ध हैं, नगेन्द्र बाबू ने उन पदों के लिए प्रायः तरौनी-पदावली का पाठ ही स्वीकार किया है। मित्र-मजूमदार ने अपनी भूमिका में नगेन्द्रनाथ गुप्त की जितनी भी आलोचना क्यों न की हो; किन्तु पाठ-निर्धारण में उन्होंने प्रायः उन्हीं का अनुसरण किया है। मुख्य पाठ में जहाँ उन्होंने नगेन्द्रनाथ गुप्त का दिया हुआ तरौनी-पदावली का पाठ रखा है, वहाँ नीचे फुटनोट में नेपाल-पदावली का पाठभेद भी दिया है। किन्तु, अधिकांश स्थलों पर वे नेपाल-पदावली के पढ़ने में असफल रहे हैं। अतः, उनके द्वारा प्रदत्त नेपाल-पदावली का पाठ भी भ्रष्ट हो गया है। दृष्टांत के रूप में कुछ पदों का उल्लेख करना अनुचित न होगा। देखिए—

मित्र-मजूमदार का पाठ—

प्रथम समागम के नहि जान।
सम कए तौलल पेम पराण॥
मधत हुन बुझलओ अपरिपाटि।
बाउल बणिक घरहि घरसाटी॥
कि पुछह आगे सखि कि कहब आन।
बुझये न पारल हरिक गेआन॥
विकलए आनब रतन अमूल।
देखितहि बलि केह बाओल मूल॥
सुलभ भेल पहु न लहए हार।
काच तुला दए गहए गमार॥
गुरुतर रजनी वासर छोटि।
पासहु दूती विषए नहि षोटि॥
कसलकसोटीकसोटि न भेल मलान।
बिनु हुतासे भेल बारह बान॥
भनइ विद्यापति थिर रहु बानि।
लाभ न घटए मूलहु होअ हानि॥

पद-सं० ३०१ (पाद-टिप्पणी)

नगेन्द्रनाथ गुप्त (तरौनी-पदावली) का पाठ—

प्रथम समागम के नहि जान। सम कए तौलल पेम परान ॥
कसल कसउटा न भेल मलान। बिनु हुतबह भेल बारह बान ॥
बिकलए गेलिहु रतन अमोल। चिन्हि कहु बनिके घटाओल मोल ॥
सुलभ भेल सखि न रहए भार। काच कनक लए गाँथि गमार ॥
भनइ विद्यापति असमय बानि। लाभ लाइ गेलाहु मुलहु भेल हानि ॥

पद-सं० १९६

परिषद्-पदावली का पाठ (नेपाल-पदावली)—

प्रथम समागम के नहि जान
सम कए तौलल पेम परान।
मधथहु न बुझल तुअ परिपाटी
बाउल बनिक घरहि घर साटी ॥ ध्रु० ॥
कि पुछह आगे सखि कि कहिबो आँन
बुझए न पारल हरिक गेआन।
बिकनए आनल रतन अमूल
देषितहि बनिके हराओल मूल ॥
सुलभ भेल पहु न लहए हार
काच तुला दए गहए गमार।
गुरुतर रजनी वासर छोटि
पासङ्ग दूती विषए नहि षोटि ॥
कसल कसौटी न भेल मलान
बिनु हुतासे भेल बारह बान ॥
भनइ विद्यापति थिर रहु बानि
लाभ न घटए मूलहु हो हानि ॥

पद-सं० २५१

मित्र-मजूमदार ने नेपाल-पदावली का पाठभेद देते हुए लिखा है—'प्रथम दुइ चरण व्यतीत आर विशेष मिल देखा जाय ना।' किन्तु, परिषद् की पदावली में उक्त पद का जो पाठ दिया गया है, उससे पता चलता है कि तरौनी-पदावली में प्राप्त दसों पंक्तियाँ यत्किंचित् पाठभेद के साथ नेपाल-पदावली में भी हैं। हाँ, छह पंक्तियाँ और हैं। मित्र-मजूमदार को यह भ्रम इसलिए हुआ कि वे उक्त पद को नेपाल-पदावली में ठीक से पढ़ नहीं सके। और देखिए—

मित्र-मजूमदार का पाठ (टिप्पणी से)--

हिमकर हेरि अवनत कर आनन
कएक कला पथ हेरि।

नयन काजर लए लिखए विधुन्तुद
कए बहु ताहेरि सेरी ॥
माधव कठिन हृदय परवासी ।
तुत्र पेयसि मोयँ देखल वराकिनी
अबहु पलटि घर जासी ॥

पद-सं० १७७ (पाद-टिप्पणी)

इसका शुद्ध पाठ इस प्रकार है—

हिमकर हेरि अवनत कर आनन
कए करुणा पथ हेरी ।
नयन काजर लए लिखए विधुन्तुद
कए रहु ताहेरि सेरी ॥ ध्रु० ॥
माधव कठिन हृदय परवासी ।
तुअ पेअसि मञे देषलि वराकी
अबहु पलटि घर जासी ॥

परिषद्-पदावली, पद-सं० १६५

नगेन्द्रनाथ गुप्त का पाठ—

माधव कठिन हृदय परवासी ।
तुअ पेयसि मोञे देखलि वराकिनि
अबहु पलटि घर जासी ॥
हिमकर हेरि अवनत कर आनन
कर करुणा पथ हेरी ।
नयन काजर लए लिखए विधुन्तुद
भए रह ताहेरि सेरी ॥

न० गु०, पद-सं० ७४८

इसी पाठ को मित्र मजूमदार ने मूल रूप में स्वीकार किया है। किन्तु, आश्चर्य की बात तो यह है कि इस रूप को सामने रखकर भी मित्र-मजूमदार महाशय नेपाल-पदावली की पाण्डुलिपि के पढ़ने में कैसे भ्रम में पड़ गये !

इस पद का पाठ डॉ० सुभद्र झा ने भी दिया है। और सब पंक्तियों के पाठ में तो अन्तर नहीं है, किन्तु दो पंक्तियों का पाठ इस प्रकार है—

दाहिन पवन बह से कैसे जुवति सह करे कवलित तसु अङ्गे ।
गेल परान आस दए राखए दसन खेलि हए भुअङ्गे ॥

झा०, पद-सं० १६३

अर्थ—The southern breeze is blowing. How will the young girl bear it ? Her limbs have been devoured by the '*kara*' [?] VII.

The life, that is already gone, she retains through the agency of hope : [it seems as if] she is playing with the teeth of a snake. VIII.

उक्त पंक्तियों में प्रथम पंक्ति का पाठ तो ठीक है, केवल अर्थ में अशुद्धि है; किन्तु दूसरी पंक्ति का ही पाठ अशुद्ध है। इसी से अर्थ में भी अशुद्धि हो गई है। शुद्ध पाठ इस प्रकार है—

दाहिन पवन बह से कैसे जुवति सह
करे कवलित तसु अङ्गे।
गेल परान आस दए राखए
दस नखे लिहए भुअङ्गे॥

परिषद्-पदावली, पद-सं० १६५

अर्थ—दक्षिण वायु बह रही है। युवती कैसे उसका सहन कर सकती है? वह वायु उसके अंग को ग्रास बना रही है।

(विरहिणी) गये हुए प्राण को आशा देकर रख रही है और दस नखों से सर्प लिखती है। (अर्थात्, सर्प दक्षिण पवन को पी लेगा, तो उसके प्राण बच जायेंगे।)

नेपाल-पदावली की पाण्डुलिपि में कुछ अक्षर ऐसे अस्पष्ट हो गये हैं, जो अबतक पढ़े नहीं जा सके थे। बहुत परिश्रम के साथ अधिकांश ऐसे स्थलों का पाठोद्धार परिषद्-पदावली में किया गया है। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित पद पर दृक्पात कीजिए—

नगेन्द्रनाथ गुप्त का पाठ—

तोहे कुल मति रति कुलमति नारि।
बाँके दरशने भुलल मुरारि॥
उचितहु बोलइते आवे अवधान।
संसय मेललहु तन्हिक परान॥
सुन्दरि कि कहब कहइते लाज।
भोर भेला से परहु सञो बाज॥
थावर जङ्गम मनहि अनुमान।
सबहिक विषय तोहर होअ भान॥

पद-सं० १०३

मित्र-मजूमदार का पाठ—

तोहे कुल मति रति कुलमति नारि।
बाङ्के दरसने भुलल मुरारि॥
उचितहु बोलइत अबे अवधान।
संसय मेलतहु तन्हिक परान॥

सुन्दरि की कहब कहइत लाज ।
भोर भेला से परहु सयँ बाज ।।
थाबर जङ्गम मनहि अनुमान ।
सबहिक विसय तोहर होअ भान ।।

पद-सं० २५७

अर्थ—तुमि कुलवती रमणी, तोमार कुलेते मति ओ अनुराग; तोमार बाँका दृष्टिते मुरारि भुलिल। उचित कथा बलितेछि, एखन मन दिया शोन, ताहार प्राण संशय हइयाछे। सुन्दरि, कि बलिब, बलिते लज्जा करे, से अपरेर सहित कथा बलितेओ विह्वल हइल। स्थावर जंगम मने अनुमान करिते सब विषयेइ तोमार भाव हय, अर्थात् याहा देखे ताहाइ मने हय येन तोमाकेइ देखितेछि।

डॉ० झा का पाठ—

तोहे कुलमति रति कुलमति नारि। बाङ्के दरसने भुलल मुरारि ।।१।।
उचितहु बोलइते अबे अवधान। संसय मेललह तन्हिक परान ।।२।।
सुन्दरि की कहब कहइते लाज। (तोर विलासे) परहु सञो बाज ।।३।।
थावर जङ्गम मन (न)हि अनुमान। सबहिक विषय तोहर होअ भान ।।४।।

पद-सं० १४२

1. These letters in the NMs. (Nepal Manuscripts are not distinct. Gupta reads as these 'भोर भेला से'।

अर्थ—O lady ! you are born in a noble family, your enjoyments, as well, are befitting such a noble family : *Murari* has got enchanted at your crooked glance. I.

I am now careful even in speaking what is proper : you have cast his life into danger. II.

O beautiful damsel, what shall I say ? I feel ashamed to say [this]: he talks [about your enjoyment] even to others. III.

His mind cannot distinguish between a movable object and an immovable one : everywhere he has the impression that you are there. IV.

परिषद्-पदावली का पाठ—

तोहे कुलमति रति कुलमति नारि
बाङ्के दरसने भुलल मुरारि ।
उचितहु बोलइते अबे अवधान
संसय मेललह तन्हिक परान ।।ध्रु०।।
सुन्दरि की कहब कहइते लाज
तोरे नामे परहु सञो बाज ।
थावर जङ्गम मनहि अनुमान
सबहिक विषय तोहर होअ भान ।।

पद-सं० १४४

विशेष—७वीं पंक्ति के मनहि में 'म' अधिक प्रतीत होता है।

अर्थ—तुम (स्वयं) कुलकामनी स्त्री हो। इसीलिए, कुलकामनी के समान तुम्हारा अनुराग है। (तुम्हारे) कुटिल कटाक्ष से कृष्ण भुला गये।

अब उचित बोलने में भी सावधान रहना पड़ता है। (कारण, तुमने) उनके प्राण को संशय में डाल दिया है।

हे सुन्दरी, क्या कहूँ? कहते लज्जा होती है। तुम्हारे नाम से ही (अर्थात्, तुम्हारा नाम लेकर ही वे) दूसरों से भी बोलते हैं।

स्थावर और जंगम का भी (उन्हें) अनुमान नहीं है। सबके विषय में तुम्हारा ही भान होता है।

सबसे पहले इसके पाठ पर विचार करें। नगेन्द्रनाथ गुप्त ने जो पाठ दिया है, मित्र-मजूमदार महोदय उससे आगे नहीं बढ़ सके; बल्कि कुछ पिछड़ ही गये। छठी पंक्ति का पाठ भ्रमात्मक है; क्योंकि वहाँ के अक्षर अस्पष्ट हैं। वहाँ गुप्तजी का पाठ है—'भोर भेला से परहु सञो बाज।' मित्र-मजूमदार महोदय ने ज्यों-का-त्यों वही पाठ रख दिया। उस पाठ के औचित्य पर विचार नहीं किया। दूसरा स्थल है ७वीं पंक्ति का—'थावर जङ्गम मनहि अनुमान'। यहाँ भी भावबोध में कठिनता होती है। किन्तु, इस स्थल को भी उन्होंने ज्यों-का-त्यों छोड़ दिया। अपनी ओर से उन्होंने चौथी पंक्ति में परिवर्त्तन किया है—'संसय मेललहु' के स्थान पर 'संसय मेलतहु' पाठ कर दिया है, जो नितान्त असंगत है। कारण, 'संसय मेललहु' का अर्थ होगा–'संशय में डाल दिया (भूतकाल) और 'संसय मेलतहु' का अर्थ होगा–'संशय में डालोगी'(भविष्यत्काल)।

अर्थ की दृष्टि से विचार करें तो और निराश होना पड़ेगा। कारण, प्रथम पंक्ति का अर्थ दिया गया है—'तुमि कुलवती रमणी, तोमार कुलेते मति ओ अनुराग।' 'रति कुलमति नारि' का अर्थ होगा— 'कुलकामिनी नारी के समान तुम्हारा अनुराग है' न कि 'तोमार कुलेते मति ओ अनुराग'।

तीसरी पंक्ति का अथ दिया गया है–'उचित कथा बलितेछि (सामान्य वर्त्तमान)' एखन मन दिया शोन।' यहाँ पाठ है 'उचितहु बोलइते अबे अवधान (मित्र-मजूमदार महोदय ने बोलइत कर दिया है), जिसका अर्थ होता है—'उचित बोलने में भी (पूर्वकालिक) अब सावधान रहना पड़ता है।'

पाँचवीं पंक्ति का अर्थ दिया गया है–'सुन्दरि, कि बलिब, बलिते लज्जा करे (मध्यम पुरुष)'। इस पंक्ति में 'कहइते' पूर्वकालिक क्रिया है, जिसका अर्थ होता है 'कहते हुए'—(उत्तम पुरुष)। 'कहइते लाज'—अर्थात्, 'कहते हुए लज्जा होती है।'

छठी पंक्ति विवादास्पद है। गुप्त और मित्र-मजूमदार ने 'भोर भेला से परहु सञो बाज' (से अपेरर सहित कथा बलितेओ विह्वल हइल) पाठ दिया है। डॉ० झा ने अनुमान से 'तोर विलासे' पाठ दिया है, He talks [about your enjoyments] even

to others; क्योंकि अक्षर अस्पष्ट हैं। गुप्त और मित्र-मजूमदार के तो पाठ और अर्थ—दोनों असम्बद्ध हैं। झाजी यथार्थ के कुछ निकट पहुँच सके हैं, किन्तु उनका पाठ भी शुद्ध नहीं है। उसका यथार्थ पाठ है—'तोरे नामे परहु सञो बाज' तुम्हारा नाम लेकर ही वे दूसरों से बोलते हैं, अर्थात् दूसरों से बोलते समय भी उन्हें तुम्हारा ही भ्रम हो जाता है।

सातवीं पंक्ति में पाण्डुलिपि का जो पाठ है, उससे सहज ही भाव स्पष्ट नहीं होता। इसीलिए झाजी ने वहाँ अपनी ओर से एक 'न' और बढ़ा दिया है—'थावर जंगम मन (न) हि अनुमान।' छन्द और लय की दृष्टि से मूल पाठ में ही एक अक्षर अधिक है और वही अर्थबोध में बाधक भो है। अतः, वहाँ एक अक्षर जोड़ने की नहीं, घटाने की आवश्यकता है। 'मनहि' में 'म' अनावश्यक है, पाठ होना चाहिए—'थावर जंगम नहि अनुमान।' इससे भाव स्पष्ट हो जाता है और छन्द तथा लय की भी त्रुटि नहीं रहती। परिषद् की पदावली में 'विशेष' के द्वारा यह उल्लेख कर दिया गया है।

पाठभेद के कारण अर्थ की कैसी दुर्गति अबतक होती रही है, उसका यत्किंचित् दिग्दर्शन हो चुका। भाषा और व्याकरण की दृष्टि से भी हम मित्र-मजूमदार महोदय के दिये हुए अर्थ पर थोड़ा विचार कर चुके हैं। उनकी पदावली में ऐसी अशुद्धियों की भरमार है। डॉ० झा की पदावली में इस प्रकार की भाषा और व्याकरण-संबंधी अशुद्धियाँ प्रायः नहीं हैं। किन्तु, विद्यापति ने बहुत-से ऐसे ठेठ शब्दों का प्रयोग किया है, ज़हाँ हठात् दृष्टि नहीं जाती। विद्यापति-पदावली के कतिपय शब्द अब अप्रचलित भी हो गये हैं। ऐसे स्थलों पर मित्र-मजूमदार ही नहीं, सुभद्र झा भी कहीं-कहीं स्खलित हो गये हैं। परिषद् की पदावली में ऐसे स्थलों पर युक्तियुक्त समीचीन अर्थ देने का प्रयास किया गया है। यथा—परिषद्-पदावली के १५ संख्यक पद में 'कारनि बैदे निरसि तेजलि' के 'कारनि' का अर्थ है रोगी (वैद्य ने रोगी को निराश होकर छोड़ दिया)। किन्तु, मित्र-मजूमदार ने 'कारनि' का अर्थ किया है—'कारण' (वैद्य कारण बुझिया निराश हइया त्याग करिल, मि० म० पद-संख्या ४१२; पृ० २७०)।

परिषद्-पदावली के १६२ संख्यक पद में 'नारङ्गि छोलङ्गि कोरि कि बेली' में मित्र-मजूमदार ने 'कोरि' का अर्थ—कुँड़ी अवस्था (बीस वर्ष तक की अवस्था) और 'बेली' का अर्थ 'समय' किया है (नारङ्गी छोलङ्गीर मत कुँड़ि अवस्थाय —मि० म० पद-सं० ४१३, पृ० २७०)।

डॉ० झा भी 'कोरि' के अर्थ में भटक गये हैं और उसे 'कोरिकि' लिखकर प्रश्न का चिह्न लगा दिया है। किन्तु, कोरी का अर्थ है-'बेर' (सं० कोली)।

इस प्रकार, अनेक स्थलों पर हुआ है। विस्तार-भय से अधिक नहीं दिया जा रहा है।

विद्यापति ने कुछ 'दृष्टिकूट' के पद भी लिखे हैं। 'दृष्टिकूट' अपनी कठिनता के लिए विख्यात है। विद्यापति के दृष्टिकूट भी अत्यन्त कठिन हैं। कहा जा चुका है कि

विद्यापति के पदों का संग्रह लोककण्ठ से ही हुआ है। जिन पदों का अर्थ बोधगम्य नहीं था, उनके पाठ भी सुरक्षित नहीं रह सके। इसी कारण विद्यापति के बहुत-से दृष्टिकूटों के अर्थ अबतक नहीं हो सके थे। अथक प्रयास के द्वारा प्रस्तुत संग्रह में उनके अर्थ दिये गये हैं। अन्य संग्रहों में भी उनके अर्थ करने का जहाँ प्रयास किया गया है, वहाँ से कुछ एक उदाहरण दे देना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा। देखिए—

परिषद्-पदावली का पाठ—

हरि रिपु रिपु प्रभु तनय से घरिनी
तुलना रूप रमनी।
विवुधासन सम वचन सोहाओन
कमला सन सम गमनी॥ ध्रु०॥
साए साए देषलि जाइते मग
जिनए आइलि जग
विवुधाधिपपुर गोरी॥
घटज असन सुत देषिअ तैसन मुख
चञ्चल नयन चकोरा।
हेरितहि सुन्दरि हरि जनि लए गेलि
हर रिपु वाहन मोरा॥
उदधि तनय सुत सिन्दुर लोटाओल
हासे देषलि रज कान्ती।
खटपद वाहन कोष बइसाओल
बिहि लिहु सिखरक पान्ती॥
रवि सुत तनय दइ गेलि सुन्दरि
विद्यापति कवि भाने।

न० गु० प्र० १३, मि० म० पद-सं० १६६,
झा पद-सं० १५३, प० पदावली पद-सं० १५५

नगेन्द्रनाथ गुप्त और मित्र-मजूमदार के पाठों में इससे कहीं-कहीं भिन्नता है। मित्र-मजूमदार महाशय ने इसके अर्थ के संबंध में लिखा है—'पदेर अर्थ उपलब्ध हय नाइ।'

झा महाशय ने इसका अर्थ इस प्रकार दिया है—

That lady is comparable to the wife of the son of the master of the enemy of *Hari*: her voice is as sweet as the food of the god, and her movement is like that of the bird whose food is lotus. I-II.

Lo! I saw the beautiful girl of the city of the lord of the gods going along the road; [it seemed as if] she had come to conquer the world. III.

Her face looked like the son of the food of the jar-born [sage] and her moving eyes were like *cakora* birds. The moment I saw the beautiful girl it seemed as if she deprived me of the vehicle of the enemy of *Hara* and carried it away. IV-V.

The beauty of her teeth, I saw, when she smiled; it seemed that they were made roll on the vermilion of the son of the son of the ocean... VI-VII.

The beautiful girl gave the son of the son of the sun and went away : *Vidyapati*, the poet says. VIII.

किन्तु, इस अर्थ से कुछ भी स्पष्ट नहीं होता। यह तो स्वयं गद्य में भी दृष्टिकूट ही है। परिषद्-पदावली में इसका अर्थ इस प्रकार है—

शब्दार्थ - हरि = कोकिल। हरि-रिपु = काक। —रिपु = उलूक। —प्रभु = लक्ष्मी। —तनय = कामदेव। विबुधासन (विबुध = देवता, असन = भोजन) = अमृत। कमलासन (कमल = एक फूल, असन = भोजन = हंस। विबुधाधिप = इन्द्र। घटज = अगस्त्य। —असन = समुद्र। —सुत = चन्द्रमा। हर रिपु = कामदेव। —वाहन = मन। उदधितनय = सीप। सुत = मौक्तिक। रज = रद = दाँत। खटपद = भ्रमर। —वाहन = कमल। रवि सुत = किरण। —सुत = ताप।

अर्थ—रतितुल्य रूपवाली (वह) रमणी (थी)। (उसका) वचन अमृत के समान सुहावना (था)। हंस के समान (उसकी) गति (थी)।

मार्ग में जाते हुए (उसको) देखा। (मालूम होता था, जैसे) संसार को जीतने के लिए स्वर्ग की अप्सरा आई हो।

चन्द्रमा के समान (उसका) मुख देखकर चकोर (के समान मेरे) नयन चंचल हो गये। देखते ही, मानों, सुन्दरी मेरे मन को हर ले गई।

हँसने के कारण (उसके) दाँतों की कान्ति देखी। (जान पड़ता था, जैसे) मोती सिन्दूर में लोट रहा हो (अथवा) विधाता ने कमल-कोष में पद्मराग मणि की पंक्ति लिखकर बैठा दी हो।

कवि विद्यापति कहते हैं कि सुन्दरी ताप देकर चली गई।

नेपाल-पदावली में प्राप्त सभी दृष्टिकूटों के अर्थ करने का प्रयास परिषद्-पदावली में किया गया है। किन्तु, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यही उनका वास्तविक अर्थ है। संभव है, शुद्ध पाठ के अभाव में अर्थ में त्रुटि रही हो। उसका निराकरण शुद्ध पाठ प्राप्त होने पर ही हो सकेगा।

छन्द-लय—

विद्यापति के सभी पद रागों में बद्ध हैं। नेपाल-पदावली में जितने पद प्राप्त हुए हैं, कुछ को छोड़कर प्रायः सबके ऊपर रागों के नाम दिये हुए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि इन पदों का संकलन गाने के उद्देश्य से ही किया गया था।

गेय पदों में छन्द और मात्रा का विचार प्रायः वैसी सतकता से नहीं होता, जैसी सतर्कता से कवित्त, सवैया आदि में होता है। यही कारण है कि मात्रा के ऊपर ध्यान देने से बड़े-बड़े गायकों—जैसे स्वामी हरिदास, तानसेन आदि—द्वारा रचे गये पदों में भी मात्रा-संबंधी दोष पाये जाते हैं। सूर के पदों में भी यह दोष अनेक स्थलों पर मिलता है। किन्तु, मात्रा की यह त्रुटि लय के द्वारा पूरी हो जाती है। इसीलिए, पदों में लय पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। लय की ओर ध्यान रखने से मात्रा और छन्द की भी अधिक गड़बड़ी नहीं हो पाती।

विद्यापति के पदों में भी छन्द और मात्रा का निर्देशक एकमात्र लय ही है। उसपर ध्यान नहीं देने से भ्रम में पड़ जाने की संभावना बहुत अधिक है। इस संस्करण में इस संबंध में पूर्ण ध्यान देने की चेष्टा की गई है।

नेपाल-पदावली का नमूना अलग दिया गया है। उसमें शब्दों को अलग करके नहीं लिखा गया है। कहीं-कहीं चरणों को भी अलग नहीं किया गया है। इसलिए, अर्थ पर ध्यान रखकर ही पदच्छेद करना पड़ता है। किन्तु, ऐसे स्थलों पर चरणों के विच्छेद के लिए लय और तुक ही मार्ग-निर्देशक हैं। इनपर ध्यान नहीं रखने से भारी भ्रम होने की संभावना रहती है। इसी भ्रम में पहले के कई सम्पादक पड़ चुके हैं। उदाहरण-स्वरूप परिषद्-पदावली के १८५ संख्यक पद को लें। उसका पाठ मित्र-मजूमदार ने इस प्रकार दिया है—

हाथिक दसन, पुरुष वचन, कठिने बाहर होए।
ओ नहि लुकए, वचन चुकए, कते करओ कोए॥
साजनि अपद गौरव गेल।
पुरुब करमे, दिवस दुखने, सबे विपरित भेल॥
जानल सुनल ओ नहि कुजन तेह मेलाओलरीति
हसु तारापति॥
तारापति रिपु खंडन कामिनि लुहवर वदन सुशोभहे
राजमराल ललितगति सुन्दर से देखि मुनिजन मोहे॥
पियतम समन्दु सजनी।
सारङ्ग रङ्ग वदन ततेह रिपु अति सुख ततेह महघि रजनी॥
दितिसुत रतिसुत अतिबड़ दारुण तातह वेदन होइ।
परक पीड़ाए जे जन पारिअ तेसन न देखिअ कोइ॥
भणइ विद्यापतीत्यादि॥

इस पद पर ध्यान देने से पता चलता है कि प्रथम पाँच पंक्तियों के छन्द और लय एक प्रकार के हैं तथा शेष पंक्तियों के दूसरे प्रकार के। प्रथम पाँच पंक्तियों के भाव से शेष

अन्तिम पंक्तियों के भाव एकदम भिन्न हैं। मित्र-मजूमदार के पाठ में और भी अनेक अशुद्धियाँ हैं, किन्तु यह अशुद्धि तो सबसे भयानक है। इससे अर्थ भी भ्रमात्मक हो गया है।

डॉ० सुभद्र झा ने इस पद का पाठ देते समय भाव और छन्द का ध्यान रखा है। इसीलिए, उन्होंने दो पदों को एक समझने की भूल नहीं की है। उन्होंने प्रथम पाँच पंक्तियों को अलग पद मानकर उन्हें अधूरे पदों की श्रेणी में रखा है और शेष पंक्तियों को अलग पद माना है। उन्होंने पद का आरम्भ इस प्रकार किया है —

हसु तारापति रिपु खण्डन कामिनि
गृहवर वदन सुशोभे।
बाज मराल ललित गति सुन्दर
से देखि मुनि जन मोहे॥ ध्रु०॥

पद-सं० १८३

किन्तु, उनके पाठ में भी भ्रम रह ही गया है। कारण, 'हसु' का इस पद से कोई संबंध नहीं है। यह तो पूर्वलिखित खंडित पद का अंश है। इस 'हसु' ने प्रथम पंक्ति के लय और छन्द —दोनों को नष्ट कर दिया है।

इसी भ्रान्ति के कारण अर्थ में भी गड़बड़ी हो गई है। मित्र-मजूमदार ने ६ठी, ७वीं और ८वीं पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार दिया है—

"ताहार सुन्दर मुख मदनकेओ पराजित करे एवं कामिनीकुलके लुब्ध करे। ताहार राजहंसतुल्य ललित सुन्दर गति मुनिजनेरओ मोह घटाय।" यह अर्थ उन पंक्तियों से निकलता ही नहीं। यह बे-सिर-पैर का अर्थ है। संदर्भ पर ध्यान देने से पता चलता है कि 'ताहार' का प्रयोग मित्र-मजूमदार महाशय ने नायक के लिए किया है। किन्तु, यह एकदम अनुपयुक्त है। इन पंक्तियों में नायिका की सुन्दरता का वर्णन है, न कि नायक की। 'नायक' की ललित गति की उपमा क्या कहीं राजहंस की गति से दी जा सकती है और उसपर मुनिजन भी मोहित हो सकते हैं?

डॉ० झा ने इन पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार दिया है—

The face of the girl is as beautiful as the residence of the wife of the killer of the enemy of the smiling lord of the stars. I.

While walking in an artistic fashion like a goose she is uttering [a few sweet words]; noticing this even hermits get attracted [towards her]. II.

इसमें भी प्रथम पंक्ति का अर्थ 'हसु' को ले आने के कारण भ्रमात्मक हो गया है। 'हसु तारापति' का अर्थ 'smiling lord of the stars' करना पड़ा है, जो न उपयुक्त है और न आवश्यक ही।

अतः 'तारापति' से ही पद का आरम्भ है—

तारापति रिपु खंडन कामिनि गृहवर वदन सुसोभे।
राजमराल ललित गति सुन्दर से देखि मुनिजन मोहे ॥

परिषद्-पदावली, पद-सं० १८५

शब्दार्थ—तारापति = चन्द्रमा। — रिपु = राहु। -खंडन = विष्णु। -कामिनी = लक्ष्मी। —गृहवर = कमल।

अर्थ—कमल के समान मुख सोह रहा है (और) राजहंस के समान सुन्दर गति है, जिसे देखकर मुनिजन मोहित हो रहे हैं।

इसी प्रकार परिषद्-पदावली के २२० संख्यक पद में डॉ० झा ने दो पंक्तियों का पाठ इस प्रकार दिया है—

सुन्दरि तोके बोलओ पुनु-पुनु बेरा एक परिहासे॥
मने खे ओल ओ बोल बोलह जनू॥

इसे इस प्रकार होना चाहिए—

सुन्दरि तोके बोलओ पुनु पुनु।
बेरा एक परिहासे मने खेँ ओल ओ बोल बोलह जनु॥

इस प्रकार, अन्य स्थलों पर भी हुआ है। उदाहरण के लिए कुछ ही स्थलों का निर्देश किया गया है। अस्तु।

अन्त में एक बात और हम निवेदन कर देना चाहते हैं कि इस ग्रंथ में उन्हीं महानुभावों की आलोचना हुई है, जिनके प्रति हमारे हृदय में आदर का भाव है। कारण, उन्हीं के ग्रंथों को आधार मानकर हमने यह कार्य किया है, इसलिए हम उनके आभारी हैं। त्रुटि होना सबसे संभव है। इस ग्रंथ में भी त्रुटियाँ हुई होंगी। इस संबंध में जो महानुभाव हमें समीचीन सुझाव या संशोधन निर्देशित करने की कृपा करेंगे, हम उनके आभारी होंगे और यथासंभव उनपर विचार कर उनका समावेश अगले संस्करण में करेंगे।

भूमिका के संबंध में भी एक निवेदन है। इस बृहदाकार ग्रंथ की भूमिका भी बृहदाकार ही होगी। अतः, इस खंड की भूमिका में हम केवल इतिहास-अंश का ही समावेश कर सके हैं। अन्य विषयों का समावेश अगले खंडों में किया जा सकेगा।

इस खंड की सम्पादित सामग्री के निरीक्षण-परीक्षण के लिए विद्यापति-स्मारक समिति की ओर से एक सम्पादक-मण्डल मनोनीत किया गया था। उसके चार सदस्य थे—(१) स्व० तारापद चौधुरी, संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् थे; (२) स्व० पं० विष्णुलाल शास्त्री, मैथिली लिपि के सुविख्यात विशेषज्ञ थे; (३) डॉ० सुधाकर झा शास्त्री, मैथिली एवं हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् हैं और (४) बाबू लक्ष्मीपति सिंह मैथिली के मर्मज्ञ हैं। दुर्भाग्यवश डॉ० तारापद चौधुरी और पं० विष्णुलाल शास्त्री का असामयिक देहावसान प्रस्तुत खंड के प्रकाशन से पूर्व ही

हो गया। उनके स्थान पर क्रमशः संस्कृत के विशिष्ट विद्वान् पं० जटाशंकर झा और मिथिलाक्षर के विशेषज्ञ पं० बलदेव मिश्र मनोनीत हुए। विद्यापति-स्मारक समिति द्वारा प्रस्तुत सामग्री का निरीक्षण-परीक्षण इन्होंने जिस मनोयोग एवं परिश्रम से किया है, उसके लिए हम इन्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं।

साथ ही, इस संस्करण को यथासम्भव सुन्दर बनाने में विद्यापति-स्मारक-समिति के क्षेत्र-पदाधिकारी पं० श्रीशशिनाथझाजी का परिश्रम सर्वथा प्रशंसनीय है। इनके हार्दिक सहयोग के कारण ही इस ग्रंथ का सम्पादन और प्रकाशन संभव हुआ। ये संस्कृत, हिन्दी और मैथिली के गंभीर विद्वान् हैं और सबसे अधिक ये मर्मज्ञ और कर्मठ हैं। इनके सहयोगी श्रीदिनेश्वर लाल 'आनन्द' और श्रीबजरंग वर्मा, एम्० ए० का कार्य भी श्लाघनीय है। इन्होंने विद्यापति का अनुशीलन बड़ी तत्परता से किया है। शुभमस्तु।

श्रीनगर (पूर्णिया)
२२।१२।६१

श्रीगङ्गानन्द सिंह

भूमिका

महाकवि विद्यापति

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥

निरवधि संसार में सावधि कुछ भी नहीं। 'अणोरणीयान् महतो महीयान्'—यह उपनिषद्वाक्य प्रत्येक विषय में भासमान प्रतीत होता है। हाँ, उसकी प्रत्यभिज्ञा के लिए पर्यवेक्षण-चातुर्य की आवश्यकता है। यही बात कवि और कलाकार के विषय में भी अक्षरशः चरितार्थ है। क्या कवि, क्या कलाकार—एक-से-एक बढ़कर—न जाने, कितने हो गये, कितने हैं, कितने होंगे;—कौन कह सकता है ? वैदिक कवि की चर्चा छोड़ दीजिए, उनका तो ठीक से पता भी नहीं; किन्तु लौकिक कवि ही, वाल्मीकि से लेकर आज तक, कितने हो गये;—कोई नहीं कह सकता। अधिकांश तो परिस्थितिवश अरण्य-कुसुम के समान एकान्त में ही विकसित हो, शून्य में सौरभ बिखेरकर, चले गये। कितने तो 'स्वान्तः सुखाय' ही रचना करके, रचना के साथ ही, सदा के लिए अनन्त की गोद में सो गये, जिनका आज पता भी नहीं। हाँ, जिनके भाग्य अच्छे थे, या यों कहें कि हमारे भाग्य से जिन्हें सदाश्रय मिला हुआ था, अवश्य ही उनके साहित्यारविन्द का मकरन्द आज भी दिग्दिगन्त को सुरभित कर रहा है।

महाकवि विद्यापति ऐसे ही भाग्यशाली कवियों में एक थे। उन्हें प्रकृति-नटी की रंगस्थली मिथिला-सी जन्मभूमि तथा सद्गुण-रत्नाकर महाराज शिवसिंह के समान आश्रयदाता मिले हुए थे। तभी तो उनकी कविता-कामिनी ने अपनी वीणा की झंकार से दिल्ली के तुगलक-राजघराने से लेकर वंग के चैतन्य-महाप्रभु तक के हृदय को झंकृत एवं मंत्र-मुग्ध-सा कर दिया। दूसरों की क्या बात, स्वयं विद्यापति भी अपनी कविता से मुग्ध होकर कह बैठे हैं—'ई निच्चअ नाअर-मन मोहइ !'

महाकवि विद्यापति संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके बनाये अनेक ग्रन्थ-रत्न संस्कृत में आज भी प्रकाशित तथा अप्रकाशित रूप में पाये जाते हैं। परन्तु, उन्हें इतने से ही संतोष न हुआ। उनकी वाग्मती सरस्वती गंगाजमुनी के रूप में निर्बाध बहने को उतावली हो उठी। इसका प्रमुख कारण यह था कि उनके वंश को राज्याश्रय का सौभाग्य बहुत पहले से ही प्राप्त था। अतः, नाना-देशवासी गुणियों, कलाकारों और विद्वानों का साहचर्य उन्हें सहज ही प्राप्त था। नाना-भाषा-भाषियों के इस साहचर्य से कवि को अनेक भाषाओं का पाण्डित्य स्वतः सिद्ध था। पुरातन कवियों में विद्यापति को छोड़कर दूसरा कोई भी कवि दृष्टिगत नहीं होता, जिसकी कविता

विविध भाषाओं में पाई जाती हो। इतर संस्कृतज्ञ विद्वानों की तरह देशी भाषाओं को अनादर की दृष्टि से देखने का अभ्यास उनके वंश में न था। विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर[१] एवं उनके पुत्र हरपति[२] और पुत्रवधू चन्द्रकला[३] ने भी 'देसिल बयना' में रचना करके कविता-कामिनी का शृङ्गार किया है। और, महाकवि विद्यापति ने तो देशी भाषा की मधुरिमा पर संस्कृत की गरिमा को भी निछावर कर दिया था। अतः, समकालीन विद्वानों के कुटिल आक्षेप के निक्षेप से झुँझलाकर उन्होंने कह ही तो दिया—'देसिल बअना सबजन मिट्ठा।'

विद्यापति की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने राजनीति, धर्मशास्त्र, दायभाग, यात्रा-वृत्तान्त आदि अनेक विषयों पर ग्रन्थ-रचना की। जिस प्रकार उनके पद आज भी जन-मन को आप्यायित कर रहे हैं, उसी प्रकार उनके ग्रन्थ भी विद्वानों को सन्तुष्ट कर रहे हैं। विद्यापति का संस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली—तीनों भाषाओं पर समान अधिकार था। अतएव निर्बाध रूप से उन्होंने तीनों भाषाओं में रचनाएँ की हैं। उनके पद इतने कोमल-कान्त एवं भावप्रवण हैं कि केवल मैथिली-भाषी ही नहीं, वंग-भाषी भी उन्हें अपने साहित्य की अतुलनीय निधि समझते हैं।

विद्यापति का वंश-परिचय

मध्ययुग के कितने ही कवियों और विद्वानों ने अपने ग्रन्थ के आरंभ या अन्त में अपने वंश का परिचय दिया है। मिथिला के भी कई विद्वानों ने अपने ग्रन्थ में ऐसा किया है। परन्तु, विद्यापति ने अपने किसी ग्रन्थ में या किसी पद में अपने वंश के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है, इसीलिए विद्यापति के बारे में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ फैल गईं। विहार, बंगाल, असम, उड़ीसा एवं नेपाल में उनके पद इतने लोकप्रिय हुए कि वहाँवालों के वे अपने हो गये। बंगाल में तो चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुयायी वैष्णवों ने विद्यापति के पदों को इस तरह अपनाया कि वहाँ के परवर्त्ती कितने ही कवियों ने उनकी भाषा-शैली की नकल की और हजारों पद लिख डाले। धीरे-धीरे ऐसा भी समय आया कि बंगालियों ने उन्हें बिलकुल अपना लिया—आत्मसात् कर लिया। इसीलिए, जॉन बीम्स ने १८७३ ई० की 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' में लिखा कि विद्यापति का असली नाम वसन्त राय और उनके पिता का नाम भवानन्द राय था। वे जाति के ब्राह्मण थे। उनका निवास-स्थान जसोहर जिले का 'बालासोर' गाँव था।

सर्वप्रथम राजकृष्ण मुखोपाध्याय ने १८७५ ई० के 'वंगदर्शन' में जॉन बीम्स के उपर्युक्त कथन का खण्डन करते हुए सप्रमाण लिखा कि विद्यापति बंगाली नहीं, मैथिल थे और मिथिला के महाराज शिवसिंह के दरबार में रहते थे। राजकृष्ण मुखोपाध्याय के

१. त्रैमासिक 'साहित्य', अक्टूबर, १९५७, पृ० ४५।
२. विद्यापति ठाकुर, पृ० ६६-६७।
३. रागतरंगिणी, पृ० ५२।

लेख को पढ़कर जॉन बीम्स ने भी अपनी गलती महसूस की। प्रायः इसीलिए, उन्होंने १८७५ ई० के अक्टूबर महीने की 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' में उपर्युक्त लेख का सारांश प्रकाशित किया। किन्तु, इतना होने पर भी बंगालियों ने तबतक विद्यापति का मैथिल होना स्वीकार नहीं किया, जबतक कि १८८१ ई० में सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने, जो कि उस समय दरभंगा जिले के मधुबनी सबडिवीजन के मैजिस्ट्रेट थे, मैथिल ब्राह्मणों के पञ्जीप्रबन्ध का अनुसन्धान करके अपने 'मैथिली क्रिष्टोमेथी' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में विद्यापति के प्राक्तन सात पुरुषों के और अधस्तन बारह पुरुषों के नाम प्रकाशित नहीं किये। सम्प्रति विद्यापति के अधस्तन चौदहवें और पन्द्रहवें पुरुष वर्त्तमान हैं। मैथिल-पञ्जीप्रबन्ध के अनुसार विद्यापति का वंशवृक्ष सह-संलग्न है, जिसमें व्यवहृत आस्पदों से पता चलता है कि विद्यापति के पूर्वपुरुष महाविद्वान् थे। उन्होंने राजकीय उच्च पदों को सुशोभित किया था। कर्मादित्य ठाकुर का आस्पद 'त्रिपाठी' था। इसीसे ज्ञात होता है कि वे तीनों वेद के ज्ञाता थे।

स्वर्गीय चन्दा झा (चन्द्र कवि) ने 'पुरुष-परीक्षा' की भूमिका में और नगेन्द्रनाथ गुप्त ने 'विद्यापति-पदावली' की भूमिका में किसी मंत्री कर्मादित्य को देवादित्य का पिता कहा है, जिसके लिए उन्होंने 'हावीडीह' (दरभंगा) में प्रतिष्ठित 'हैहट्ट देवी' के मन्दिर के शिलालेख को प्रमाण-स्वरूप उद्धृत किया है।[१] स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने इसी का समर्थन किया है।[२] महामहोपाध्याय डॉ० उमेश मिश्र ने भी इसी आधार पर कर्मादित्य को कर्णाट-वंश के प्रथम महाराज नान्यदेव का मंत्री कहा है।[३] किन्तु, यह युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। कारण, उस शिलालेख से ही ज्ञात होता है कि २१३ ल० सं०, अर्थात् १३२२ ई० में हैहट्ट देवी की प्रतिष्ठा हुई थी। महाराज नान्यदेव का राज्य-काल १०८९ ई० से ११२४ तक था।[४] इसलिए, यह कथमपि संभव नहीं है कि नान्यदेव के मंत्री ने नान्यदेव से २०० वर्ष बाद हैहट्टदेवी की स्थापना की हो। महामहोपाध्याय परमेश्वर झा ने लिखा है, महाराज रामसिंह की पत्नी सौभाग्य देवी की आज्ञा से मंत्री कर्मादित्य ने हैहट्ट देवी की स्थापना की थी।[५] किन्तु यह भी संदेहास्पद ही है। कारण, रामसिंह का राज्यकाल ११६१ ई० से १२८२ ई० तक था,[६] इसलिए रामसिंह की मृत्यु के ४० वर्ष बाद, जबकि उनके पौत्र हरिसिंहदेव मिथिला के राज-सिंहासन पर आसीन थे और कर्मादित्य के पुत्र तथा पौत्र—देवादित्य एवं वीरेश्वर—भी दिवंगत हो

---

१. अब्दे नेत्रशशाङ्कपक्षगदिते श्रीलक्ष्मणक्ष्मापतेर्मासि श्रावणसंज्ञके मुनितिथौ स्वात्यां गुरौ शोभने। हावीपट्टनसंज्ञके सुविदिते हैहट्टदेवीशिवा कर्मादित्यसुमन्त्रिणेह विहिता सौभाग्यदेव्याज्ञया॥

२. महाकवि विद्यापति, पृ० १२-१३।

३. विद्यापति ठाकुर, पृ० ९-१०।

४. मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० ९७।

५. वही, पृ० ११८।

६. वही, पृ० ११६-११८।

चुके थे, तब रामसिंह की पत्नी की आज्ञा से कर्मादित्य का हैहट्ट देवी की प्रतिष्ठा करना असंभव है। महामहोपाध्याय मुकुन्द झा बख्शी ने भी हैहट्ट देवी के प्रतिष्ठाता कर्मादित्य का उल्लेख देवादित्य का पिता कहकर किया है;[१] किन्तु वह भी उपर्युक्त तर्क के निकष पर कसने से खरा नहीं उतरता। डॉ० जयकान्त मिश्र ने भी लिखा है कि कर्मादित्य ने राजा हरिसिंहदेव के राज्य-काल में (१३३२ ई० में) हैहट्टदेवी की प्रतिष्ठा की थी।[२] किन्तु यह भी समीचीन नहीं है। कारण, मुहम्मद तुगलक ने १३२६ ई० में मिथिला पर अधिकार किया था और हरिसिंहदेव ने गिरि-गह्वर की शरण ली थी,—यह प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथ्य है।[३] मिश्रजी ने भी अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर' के अन्त में स्वीकार किया है कि 'हरिसिंहदेव का राज्य-काल १२९६ ई० से १३२३-२४ ई० तक था।' अतः, हैहट्टदेवी के प्रतिष्ठाता कर्मादित्य देवादित्य के पिता कर्मादित्य से भिन्न व्यक्ति थे और विद्यापति के पूर्वज त्रिपाठी कर्मादित्य मंत्री नहीं थे।

महामहोपाध्याय परमेश्वर झा ने लिखा है कि नान्य राजा के सान्धिविग्रहिक मंत्री हरादित्य ठाकुर (बिशैवार-मूलक) मैथिल ब्राह्मण थे। उनके बाद कर्मादित्य ठाकुर (देवादित्य के पुत्र) मंत्री हुए। प्रमाणस्वरूप उन्होंने 'गंगाभक्तितरंगिणी' का प्रारंभिक श्लोक उद्धृत किया है।[४] किन्तु उस श्लोक में गणपति ने अपने को 'धीरेश्वर का पुत्र' कहा है। बिशैवार-मूलक धीरेश्वर के पुत्र गणपति नहीं, जयदत्त थे। गणपति जयदत्त के पुत्र और धीरेश्वर के पौत्र थे,[५] अतः परमेश्वर झा द्वारा प्रमाणस्वरूप उद्धृत 'गंगाभक्तितरंगिणी' के श्लोक से ही उनका कथन खण्डित हो जाता है। किञ्च, नान्यदेव के मंत्री ठक्कुर श्रीधर थे। श्रीधर ने अन्धराठाढ़ी (दरभंगा) में श्रीधर (विष्णु) की प्रतिष्ठा की थी, जिसके पाद-पीठ में उट्टङ्कित शिलालेख से यह प्रमाणित हो जाता है कि नान्यदेव के मंत्री क्षत्रियवंशावतंस श्रीधर थे, न कि कर्मादित्य ठाकुर।[६]

---

१. मिथिलाभाषामय इतिहास, पादटिप्पणी, पृ० ४६०।

२. हिस्ट्री ऑफ् मैथिली लिटरेचर, भाग १, पृ० १३५-३६।

३. वस्वब्धिबाहुशशिसम्मितशाकवर्षे पौषस्य शुक्लदशमीक्षिति (रवि)सूनुवारे।
त्यक्त्वा स्वपट्टनपुरीं हरिसिंहदेवो दुर्दैवदेशितपथो गिरिमाविवेश॥
—पञ्जी-प्रबन्ध (मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १४३)।

४. सद्विद्याकुलयोर्विशेषमखिलं विज्ञाय नान्यो ददौ
वृत्तिं यस्य पितामहाय मिथिलाभूमण्डलाखण्डलः।
श्रीधीरेश्वरसूनुरन्वहमसावभ्यस्य भाट्टं मतं
गङ्गाभक्तितरङ्गिणीं गणपतिर्ब्रूते सताम्प्रीतये॥
—मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १०२।

५. देखिए—विद्यापति का वंशवृक्ष।

६. ॐ श्रीमान्नान्यपतिर्जेता गुणरत्नमहार्णवः।
यत्कीर्त्या जनितं विश्वं द्वितीयक्षीरसागरः॥

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि देवादित्य ठाकुर ही सर्वप्रथम कर्णाट-साम्राज्य के 'सान्धिविग्रहिक' पद पर प्रतिष्ठित हुए। 'पञ्जी-प्रवन्ध' में उनके नाम के साथ ही सर्वप्रथम 'सान्धिविग्रहिक' उपाधि का उल्लेख हुआ है। देवादित्य के पुत्र वीरेश्वर, पौत्र चण्डेश्वर तथा गणेश्वर के पुत्र गोविन्ददत्त—सबने अपने को 'देवादित्यकुलोद्भवः' कहकर ही गौरवान्वित किया है। किसी ने कर्मादित्य का उल्लेख नहीं किया है। देवादित्य के मंत्रिपद पर प्रतिष्ठित होने से उक्त वंश का राजनीतिक सम्मान बहुत बढ़ गया। इसीलिए उनके वंशजों ने अपने को 'देवादित्य का वंशधर' कहने में सम्मान का बोध किया।

देवादित्य के पुत्र पार्णागारिक वीरेश्वर-कृत छन्दोग-पद्धति,[1] देवादित्य के तृतीय पुत्र महामहत्तक गणेश्वर की आज्ञा से प्रतिहस्त भवशर्मा द्वारा लिखित 'सुगतिसोपान',[2]

मन्त्रिणा तस्य नान्यस्य क्षत्रवंशाब्जभानुना।
देवोयं कारितः श्रीमान् श्रीधरः श्रीधरेण च॥
यस्यायम्—वाल्मीकेर्विजयिप्रबन्धजलधौ व्यासस्य चालङ्कृते
वाणाद्यैरनवद्यगद्यचतुरैरन्यैश्च विस्तारिते।
अस्माकं क्व पुनर्गिरामवसरः को वा करोत्यादरं-
यद्वा बालवचोप्य ... ...॥

—के० पी० जायसवाल, जर्नल ऑफ् दि विहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भाग ९, पृ० ३०३-४, १९२३ ई०।

१. देवादित्यकुले जातः ख्यातस्त्रैलोक्यसंसदि।
पद्धतिं विदधे श्रीमान् धीमान् वीरेश्वरः स्वयम्॥

——मैनुस्क्रिप्ट इन मिथिला, भाग १, पृ० १२२।

२. अभूद्देवादित्यः सचिवतिलको मैथिलपते-
र्निजप्रज्ञाज्योतिर्दलितरिपुचक्रान्धतमसः।
समन्तादश्रान्तोल्लसितसुहृदर्कोपलमणौ
समुद्भूते यस्मिन् द्विजकुलसरोजैर्विकसितम्॥
अस्मान् महादानतडागयागभूदानदेवालयपूतविश्वः।
वीरेश्वरोऽजायत मन्त्रिराजः क्ष्मापालचूडामणिचुम्बिताङ्घ्रिः॥
लसन्महीपालकिरीटरत्नरोचिश्छटारञ्जितपादपद्मः।
अस्यानुजन्मा गुणगौरवेण गणेश्वरो मन्त्रिमणिश्चकास्ति॥
संशोषयन्ननिशमौर्वनिभप्रतापै-
र्गौडावनीपरिवृढं सुरतानसिन्धुम्।
धर्मावलम्बनकरः करुणार्द्रचेता-
यस्तीरभुक्तिमतुलामतुलम्प्रशास्ति॥
श्रीमानेष महामहत्तकमहाराजाधिराजो महा-
सामन्ताधिपतिर्विकस्वरयशःपुष्पस्य जन्मद्रुमः।
चक्रे मैथिलनाथभूमिपतिभिः सप्ताङ्गराज्यस्थितिं
प्रौढानेकवशंवदैकहृदयो दोःस्तम्भसम्भावितः॥

—मैनुस्क्रिप्ट इन मिथिला, भाग-१, पृ०-५०५-६।

गणेश्वर के पुत्र रामदत्त-कृत 'वाजसनेयिसंस्कारपद्धति'[1], गणेश्वर के द्वितीय पुत्र गोविन्ददत्त-कृत 'गोविन्दमानसोल्लास'[2] और देवादित्य के पौत्र—वीरेश्वर के पुत्र—सप्तरत्नाकरकार महामहत्तक मंत्रिवर चण्डेश्वर-कृत 'कृत्यचिन्तामणि'[3] और

---

१. सन्धिविग्रहमन्त्रीन्द्रदेवादित्यतनूद्भवः ।
भूमिपालशिरोरत्नरञ्जिताङ्घ्रिसरोरुहः ॥
सान्धिविग्रहिकश्रीमद्वीरेश्वरसहोदरः ।
महामहत्तकः श्रीमान् विराजति गणेश्वरः ॥
श्रीमता रामदत्तेन मन्त्रिणा तस्य सूनुना ।
पद्धतिः क्रियते रम्या धर्म्या वाजसनेयिनाम् ॥

—मैनुस्क्रिप्ट इन मिथिला, भाग १, पृ० ३५५ ।

२. एतस्मिन्नवनीतले नृपशिरःश्रेणीमणीमञ्जरी-
मञ्जुज्योतिरसीमरञ्जितपदः कर्णाटवंशाङ्कुरः ।
जागर्त्ति प्रतिपक्षपद्मलक्ष्मशामप्राप्तसन्तापदो-
राजा श्रीहरिसिंह एष सकलक्षोणीभुजामग्रणीः ॥
एतन्मन्त्री निखिलनृपतिश्रेणिभिर्वन्दनीयो-
देवादित्यः सकलमहिमस्थानमासीदसीमः ।
यस्योदञ्चद्विकचितदलस्रग्विचित्रैर्यशोभि-
र्धम्मिल्लेषु त्रिदशयुवतेः कापि लक्ष्मीर्वितेने ।
अस्यात्मजो जयति निर्मलकीर्त्तिपूर-
दूरप्रसारितचकोरमदप्रसादः ।
श्रीमान् गणेश्वर इति क्षितिपालमौलि-
रत्नांशुमञ्जरितपादसरोरुहश्रीः ॥
ज्येष्ठे मन्त्रिशिरोमणौ विजयिनि श्रीभाजि वीरेश्वरे
निस्सीमाहितभक्तिभूपितयशोधौतत्रिलोकश्रिया ।
ब्रूमः किं रजनीकरेन्द्रहृदयाहङ्कारधिक्कारिणि
श्रीरामेऽनुजलक्ष्मणस्य चरितं लोकोत्तरं स्थापितम् ॥
श्रीमानेष महामहत्तकमहाराजाधिराजो महा-
सामन्ताधिपतिर्विकस्वरयशःपुष्पस्य जन्मद्रुमः ।
चक्रे मैथिलनाथभूमिपतिभिः सप्ताङ्गराज्यस्थितिं
प्रौढानेकवशंवदैकहृदयो दोःस्तम्भसम्भावितः ॥
तस्यात्मजेन गुणिना नयसागरेण
गोविन्ददत्तकृतिना हरिकिङ्करेण ।
येनामुना जनयता जनतानुरागं
लोकत्रयं धवलितं विमलैर्यशोभिः ॥

—मैनुस्क्रिप्ट इन मिथिला, भाग १, पृ० १०८ ।

३. आसीन्मैथिलतीरभुक्तिविषये मन्त्रप्रभावाहत-
प्रत्यर्थिक्षितिनायकान्धतमसश्चक्रद्विजानां प्रियः ।
शौर्योल्लासितमण्डलस्सुमनसामध्यंश्च पद्माश्रयो-
देवादित्य इति त्रिलोकमहितो मन्त्रीन्द्रचूडामणिः ॥

'कृत्यरत्नाकर'[१] में देवादित्य, वीरेश्वर एवं गणेश्वर की बहुत प्रशंसा की गई है। देवादित्य को उपर्युक्त ग्रन्थों में 'मन्त्रीन्द्रचूडामणि' और 'मन्त्रिरत्नाकर' कहा गया है। किन्तु वे कर्णाट-वंश के किस राजा के समय मंत्रिपद पर प्रतिष्ठित हुए, इसका उल्लेख नहीं है। 'गोविन्दमानसोल्लास' के अनुसार वे महाराज हरिसिंहदेव के मंत्री थे। उनके पुत्र

स्रष्टाऽसौ राजलक्ष्म्यास्सचिवकुलगुरुस्तेजसा विश्वसाक्षी
क्षीणानाथानुकम्पापरवशहृदयो जङ्गमः पारिजातः।
क्ष्म्यत्सेनापतीनामपथगतिमतां बुद्धिसिन्धोरगस्त्यो-
हम्वीरध्वान्तभानुर्निखिलनिजगुणैस्तोषयामास विश्वम्॥
फूत्कारोपहता फणीन्द्रशिरसि क्रोडानने दंष्ट्रया
बिद्धा कूर्मकठोरपृष्ठकषणैः पीडामुपेता चिरम्।
कार्णाटाधिपमन्त्रिणि प्रविलसत्कीर्तिप्रताने महा-
दानौघव्यसने नयैकसुहृदि क्षोणी सुखं वर्त्तते॥
—मिथिलाभाषामय इतिहास, पृ० ४८७-८८।

१. अस्ति श्रीहरिसिंहदेवनृपतिर्निश्शेषविद्वेषिणां
निर्माथी मिथिलाम्प्रशासदखिलां कर्णाटदेशोद्भवः।
आशाः सिञ्चति यो यशोभिरमलैः पीयूषधारोद्भवै-
र्देवः शारदशर्वरीपतिरिवाशेषप्रियम्भावुकः॥
अस्मिन् दिग्विजयोद्यते बलभरात् कुब्जीभवद्भिः फणै-
रन्योन्यं निविडं मिलद्भिरभितः शेषः सहस्रेण सः।
गच्छत्यम्बुजबान्धवे दिनपतौ प्रत्यक् पयोधेरधः
सद्यः सङ्कुचदब्जकोरकवपुः साद्दश्यमालम्बते॥
मा मा खेदं भजध्वं जलधिमुपगते बान्धवे पङ्कजाना-
मन्तः पञ्चेषुरोषव्यसनभयजुषश्चक्रवाका वराकाः।
श्रीमत्कर्णाटभूमीपतिमुकुटमणिः प्रीणयन्नद्य लोका-
नेष प्रौढप्रतापद्युमणिरुदयिनीं सम्पदं सन्तनोति॥
एतस्याद्भुतसन्धिविग्रहधुरां पात्रं पवित्रीकृत-
क्ष्मालोकः शरदिन्दुसुन्दरयशस्सन्दोहगङ्गाम्बुधिः।
आसीन्मन्त्रमयद्युतिप्रतिहतामित्रान्धकारोदयो-
देवादित्य इति प्रसन्नहृदयो देवद्रुमो जङ्गमः॥
महादानैस्तैस्तैर्विभवमहितैर्नन्दितमभूत्
कुलं भूदेवानां बहुविधमखैस्तैर्मखभुजाम्।
तडागैरावासैः कमलमधुपानोन्मदनदद्-
द्विरेफश्रेणीनामुपकृतमनेन क्षितितलम्॥
गुणाम्भोधेरस्मादजनि रजनीजानिरुदधे-
रिवाम्भोजाद्देवो द्रुहिण इव मन्त्रीशतिलकः।
नवं पीयूषांशोरमृतमिव शक्तिप्रणयिनो-
नयादर्थः श्लाघ्यादिव जगति वीरेश्वर इति॥

वीरेश्वर और वीरेश्वर के पुत्र चण्डेश्वर भी हरिसिंहदेव के मंत्री थे। ऐसी अवस्था में पितामह से लेकर पौत्र तक एक समय में ही मंत्रिपद पर नियुक्त हुए होंगे, यह संभव नहीं। अतः, निश्चित है कि देवादित्य हरिसिंहदेव से पूर्व ही मंत्रिपद पर आये होंगे। म० म० परमेश्वर झा का यह कथन युक्तिसंगत है कि देवादित्य महाराज रामसिंह के सान्धिविग्रहिक मंत्री थे।[१] डॉ० उपेन्द्र ठाकुर ने लिखा है कि संभवतः कर्मादित्य ठाकुर रामसिंहदेव के सान्धिविग्रहिक मंत्री थे।[२] इस तथ्य के प्रमाणस्वरूप उन्होंने चण्डेश्वर-कृत कृत्यचिन्तामणि एवं पंजीप्रबन्ध के उद्धरण[३] प्रस्तुत किये हैं। किन्तु उन्हीं उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें देवादित्य ठाकुर लिखना चाहिए, नकि कर्मादित्य ठाकुर। अतः, देवादित्य ठाकुर ही सर्वप्रथम मंत्रिपद पर महाराज रामसिंहदेव के काल में आसीन हुए। अवश्य ही वे महाराज हरिसिंहदेव के समय तक जीवित थे और वृद्धावस्था में भी मंत्रिपद पर वर्त्तमान थे।

महामहत्तक चण्डेश्वर ठाकुर ने अपने कृत्यचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में देवादित्य के लिए 'हम्वीरध्वान्तभानुः' विरुद का प्रयोग किया है।[४] यह विरुद अबतक विवाद का विषय है।

लक्ष्मीभाजो द्विजेन्द्रानकृत कृतमतिर्यो महादानदानैः
प्रादत्तोच्चैस्तु रामप्रभृतिपुरवरं शासनं श्रोत्रियेभ्यः।
वापीञ्चक्रे ब्धिवन्धुं दहिभतनगरे निर्जितारातिदुर्गः
प्रासादस्तेन तुङ्गो व्यरचि सुकृतिना शुद्धसोपानमार्गः॥
यः सन्धिविग्रहविधौ विविधानुभावः
शौर्योदयेन मिथिलाधिपराज्यभारम्।
निर्मत्सरं सुनयसञ्चितकोषजातं
सप्ताङ्गसङ्घटनसम्भृतमेव चक्रे॥
प्रज्ञावतां सदसि संसदि वाक्पटूनां
राज्ञां सभासु परिषत्स्वपि मन्त्रभाजाम्।
चित्तेऽर्थिनाञ्च कवितास्वपि सत्कवीनां
वीरेश्वरः स्फुरति विश्वविलासिकीर्त्तिः॥
श्रीमानमुष्य तनयो नयचक्रचारु-
राचारवन्द्यनवकल्पतरुप्ररोहः ।
सत्सन्धिविग्रहधुरीणपदावलम्ब-
श्चण्डेश्वरो विजयते सचिवावतंसः॥
× × ×
एष मैथिलमहीभुजा भुजद्वन्द्ववारितसमस्तवैरिणा ।
श्रीविधायिनि कुलक्रमागते सन्धिविग्रहपदे नियोजितः॥
—मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १२२-२५।

१. मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० ११६।
२. हिस्ट्री ऑफ मिथिला, पृ० २७०।
३. देखिये पृ० ६, पादटिप्पणी ३ तथा पृ० १०, पादटिप्पणी ७।
४. देखिये पृ० ६, पादटिप्पणी ३।

हम्वीरदेव (हम्मीर) रणथम्भौर के राजा थे। अलाउद्दीन खिलजी ने १२६६ ई० में उनके विरुद्ध चढ़ाई की। सन् १३०० ई० में वह युद्ध समाप्त हुआ, जिसमें हम्वीरदेव मारे गये।[१] उस समय महाराज हरिसिंहदेव मिथिला के राजा थे। म० म० परमेश्वर झा ने लिखा है कि महाराज शक्रसिंहदेव (शक्तिसिंह) ने रणथम्भौर की लड़ाई में हम्वीरदेव के विरुद्ध अलाउद्दीन की सहायता की थी। उक्त युद्ध में शक्रसिंह के साथ मंत्रिवर देवादित्य तथा वीरेश्वर भी गये थे और देवादित्य की सहायता से प्रसन्न होकर अलाउद्दीन ने उन्हें 'मंत्रिरत्नाकर' की उपाधि दी थी।[२] किन्तु झाजी ने शक्रसिंहदेव की मृत्यु १२६५ ई० में स्वीकार की है और उसी वर्ष महाराज हरिसिंहदेव का राज्यारोहण भी स्वीकार किया है।[३] अतः, उन्हीं के ऐतिहासिक विवेचन से उनका यह कथन खंडित हो जाता है कि शक्रसिंह ने रणथम्भौर के युद्ध में अलाउद्दीन की सहायता की थी। डॉ० उपेन्द्र ठाकुर और डॉ० आर० सी० मजूमदार भी इसी उलझन में पड़कर यथार्थ निष्कर्ष पर पहुँचने में असफल रहे हैं। डॉ० ठाकुर ने 'हम्वीरध्वान्तभानुः' को शक्रसिंह का विरुद मान लिया है और उनके राज्य-काल को १३०३ ई० तक खींच लाने का प्रयास किया है।[४] किन्तु, तथ्य तो यह है कि 'हम्वीरध्वान्तभानुः' विरुद का प्रयोग देवादित्य के लिए हुआ है, शक्रसिंह के लिए नहीं।[५] डॉ० आर० सी० मजूमदार ने भी इस तथ्य पर विचार किया है। उन्होंने शक्रसिंह का शासन-काल १२८० ई० के पहले ही स्वीकार किया है। उनका विश्वास है कि हरिसिंहदेव १२८० ई० या उसके पहले ही राजगद्दी पर बैठे। और, इस आधार पर उन्होंने इस तथ्य को बिलकुल अप्रामाणिक ही मान लिया। उनका कथन है कि ये सभी जनश्रुतियाँ तथ्यहीन हैं।[६] किन्तु, इस तथ्य को असत्य कहकर हटा देने से एक महान् ऐतिहासिक सत्य का अपलाप हो जायगा। देवादित्य के पौत्र मंत्रिवर चण्डेश्वर ने इस सम्बन्ध में जो लिखा है, उसपर अविश्वास नहीं किया जा सकता। कवीश्वर चंदा झा ने भी देवादित्य और वीरेश्वर द्वारा रणथम्भौर के युद्ध में भाग लेने तथा अलाउद्दीन द्वारा देवादित्य को 'मन्त्रिरत्नाकर' की उपाधि दिये जाने का उल्लेख किया है।[७]

'गोविन्दमानसोल्लास' के प्रारंभिक श्लोकों से ज्ञात होता है कि देवादित्य महाराज हरिसिंहदेव के राज्यकाल में जीवित थे। डॉ० आर० सी० मजूमदार ने भी उन्हें महाराज हरिसिंहदेव का मंत्री स्वीकार किया है।[८] जिस समय रणथम्भौर का

---

१. दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल, भाग ६, पृ० ३६८।
२. मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० ११६।
३. वही, पृ० १२१।
४. हिस्ट्री ऑफ् मिथिला, पृ० २७५।
५. देखिए पृ० ६, पादटिप्पणी ३।
६. दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ् इंडियन पीपुल, भाग ६, पृ० ३६८।
७. पुरुषपरीक्षा, मिथिलाभाषानुवाद (चंदा झा), पृ० ५४।
८. दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ् इंडियन पीपुल, भाग ६, पृ० ३६७।

युद्ध हुआ था, उस समय शक्रसिंह नहीं, हरिसिंहदेव राजा थे; किन्तु राज्य-कार्य का भार उनके मंत्रियों पर ही था। मिथिला में प्रचलित 'पञ्जीप्रबन्ध'[1] के अनुसार कवीश्वर चन्दा झा[2] एवं म० म० परमेश्वर झा[3] ने लिखा है कि महाराज हरिसिंहदेव का जन्म १२९४ ई० में हुआ तथा राज्यारोहण के समय वे अबोध बालक थे।[4] डॉ० उपेन्द्र ठाकुर ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि राज्यारोहण के समय महाराज हरिसिंहदेव अल्पवयस्क थे और उनकी नाबालिगी में मंत्रियों (देवादित्य, वीरेश्वर आदि) ने ही राज्य-कार्य का भार ७-८ वर्षों तक सँभाला।[5] इसी काल में रणथम्भौर का युद्ध हुआ था। अतः, निश्चित है कि देवादित्य और वीरेश्वर ने इस युद्ध में अलाउद्दीन खिलजी की सहायता की थी और इसी उपलक्ष्य में देवादित्य को 'मन्त्रिरत्नाकर' की उपाधि मिली थी। अतएव, चण्डेश्वर ने देवादित्य को 'हम्बीरध्वान्त-भानुः' कहा है। किन्तु, उक्त घटना के कुछ दिनों के बाद ही देवादित्य की मृत्यु हो गई। इसका पता चण्डेश्वर-कृत 'कृत्यरत्नाकर' से लगता है, जहाँ उन्होंने देवादित्य के लिए 'आसीत्' लिखकर भूतकाल और वीरेश्वर के लिए 'स्फुरति' लिखकर वर्त्तमान काल का प्रयोग किया है।[6]

देवादित्य के सात पुत्र थे[7], जिनके आस्पद क्रमशः (१) पार्णागारिक, (२) महावार्त्तिक-नैबन्धिक, (३) महासामन्ताधिपति, (४) भाण्डागारिक, (५) स्थानान्तरिक, (६) मुद्राहस्तक और (७) राजवल्लभ थे। इन आस्पदों का यथार्थ ज्ञान विद्यापति-कृत 'लिखनावली'[8]

---

१. शाके श्रीहरिसिंहदेवनृपतेर्भूपार्क (१२१६) तुल्ये जनि-
स्तस्माद्दन्तमितेब्दके द्विजगणैः पञ्जीप्रबन्धः कृतः।...
—मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १३६।

२. पुरुषपरीक्षा, मिथिलाभाषानुवाद, पादटिप्पणी, पृ० ६७।

३. मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १३४।

४. 'दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ् इंडियन पीपुल' ने हरिसिंह का राज्यारम्भ १२८० में (भाग ६, पृ० ३९८) तथा प्रो० राधाकृष्ण चौधरी ने १२८५ ई० में माना है। (हिस्ट्री ऑफ् बिहार, पृ० १२७)।

५. हिस्ट्री ऑफ् मिथिला, पृ० २८०।

६. देखिए पृ० ७, पादटिप्पणी १।

७. गढ़विसपी-सं० बीजी-विष्णु शर्मा, विष्णुशर्मसुतो हरादित्यः, हरादित्यसुतः कर्मादित्यः, कर्मादित्यसुतौ सान्धिविग्रहिकदेवादित्य-राजवल्लभभवादित्यौ, देवादित्यसुताः पार्णागारिक वीरेश्वर—वार्त्तिकनैबन्धिक धीरेश्वर—महासामन्ताधिपति गणेश्वर—भाण्डागारिक जटेश्वर—स्थानान्तरिक हरदत्त—मुद्राहस्तक लक्ष्मीदत्त—राजवल्लभ शुभदत्ता भिन्नमातृकाः।
—पञ्जीप्रबन्ध।

८. स्वस्ति। पर्णशालातः सप्रक्रियमहापार्णागारिकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः स्वस्रागारिक-श्रीअमुकान् संवादयन्ति।—लिखनावली, पृ० ४१।
स्वस्ति। राजधानीतः सप्रक्रियमहावार्त्तिकनैबन्धिकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः वार्त्तिक-श्रीअमुकं संवादयन्ति।—वही, पृ० ४३।

बिसइबार-वंश *

- विष्णु ठाकुर
  - हरादित्य ठाकुर
    - त्रिपाठी कर्मादित्य ठाकुर
      - सान्धिविग्रहिक मन्त्रिरत्नाकर देवादित्य, प्रसिद्ध शिवादित्य ठाकुर
        - सान्धिविग्रहिक, महावार्त्तिक-नैबन्धिक महामहत्तक, म० म० वीरेश्वर ठाकुर
          - सान्धिविग्रहिक, महावार्त्तिक-नैबन्धिक सप्तरत्नाकरकार, महामहत्तक, म० म० चण्डेश्वर ठाकुर (पत्नी–महामहोपाध्याया लखिमा ठाकुराइन)
        - महावार्त्तिक-नैबन्धिक धीरेश्वर ठाकुर
          - जयदत्त ठाकुर
            - गौरीपति, प्रसिद्ध गोपाल ठाकुर
            - गणपति ठाकुर
              - अभिनवजयदेव, महाराजपण्डित बिस्पी-ग्रामोपार्जक म० म० विद्यापति ठाकुर (मातामह–बुधबाल-महिषी-सं० श्रीकर झा, श्वशुर–सकरिवार-सप्ता-सं० हरिवंश झा)
                - वाचस्पति ठाकुर
                - हरपति ठाकुर
                  - रतिधर, प्रसिद्ध नोने ठाकुर
                    - रघुनाथ ठाकुर
                      - विश्वनाथ ठाकुर
                        - पीताम्बर ठाकुर
                          - अच्युत ठाकुर
                            - लक्ष्मण ठाकुर
                            - देवनाथ ठाकुर
                          - नारायण ठाकुर
                            - दिनमणि ठाकुर
                              - तुला ठाकुर
                                - एकनाथ ठाकुर
                                  - भैया ठाकुर
                                    - बाबूलाल ठाकुर
                                      - लक्ष्मीनाथ ठाकुर
                                        - श्रीनाथ ठाकुर
                                        - बबुअन ठाकुर
                                        - बलदेव ठाकुर
                                        - यदुनाथ ठाकुर
                                    - प्यारेलाल ठाकुर
                                    - दुलार ठाकुर
                                      - अपूछ ठाकुर
                                      - मोहन ठाकुर
                                    - ननू ठाकुर
                                      - बनमाली ठाकुर
                                      - विश्वेश्वर ठाकुर
                                        - श्रीरामेश्वर ठाकुर
                                        - श्रीराजेश्वर ठाकुर
                                      - महेश्वर ठाकुर
                                        - धनेश्वर ठाकुर
                                    - फणिलाल ठाकुर
                                      - मनोहर ठाकुर
                                      - बदरीनाथ ठाकुर
                                        - विन्ध्यनाथ ठा०
                                        - श्रीविजयनाथ ठा०
                                        - श्रीदिव्यनाथ ठा०
                                      - श्रीधर, प्रसिद्ध दुखन ठाकुर
                                        - श्रीअक्षधर ठा०
                                        - श्रीशशिधर ठा०
                                        - श्रीतेजधर ठा०
                                        - श्रीराजधर ठा०
                                        - श्रीनागेन्द्र ठा०
                                        - श्रीउपेन्द्र ठा०
                                        - श्रीसुरेन्द्र ठा०
                                        - महीन्द्र ठा०
                                        - श्रीभूपेन्द्र ठा०
                                  - चेतनाथ ठाकुर
                                - जीवनाथ, प्रसिद्ध नाथे ठाकुर
                          - मोहन ठाकुर
                            - भिखारी ठाकुर
                            - चतुर ठाकुर
                - नरपति ठाकुर
          - कीर्त्तिदत्त ठाकुर
          - रामदत्त ठाकुर
        - महासामन्ताधिपति महामहत्तक गणेश्वर ठाकुर
        - भाण्डागारिक जटेश्वर ठाकुर
        - स्थानान्तरिक हरदत्त ठाकुर
        - मुद्राहस्तक लक्ष्मीदत्त ठाकुर
        - राजवल्लभ शुभदत्त ठाकुर
      - राजवल्लभ वादित्यभ ठाकुर

* महाकवि विद्यापति के वंशज श्रीअक्षधर ठाकुर और श्रीविजयनाथ ठाकुर से प्राप्त । (जिनके नाम के साथ 'श्री' का प्रयोग है, वे अभी जीवित हैं ।)

से होता है। इन आस्पदों से यह भी ज्ञात होता है कि ये सातों भाई उच्च राजकीय पदों पर आसीन थे। डॉ० विमानविहारी मजूमदार ने लिखा है कि 'देवादित्य के सात पुत्रों में केवल विद्यापति के प्रपितामह धीरेश्वर विशुद्ध पंडित थे। उनका आस्पद था—वार्त्तिक-नैबन्धिक, जिसका विवेचन किसी भी ग्रन्थ में नहीं पाया जाता।.......... विद्यापति के प्रपितामह धीरेश्वर पण्डित होते हुए भी उच्च राजपद के अधिकारी नहीं थे।'[1] किन्तु उपर्युक्त विवेचन से ही उनका कथन निर्मूल हो जाता है।

देवादित्य के बाद वीरेश्वर बड़े प्रतापी मंत्री हुए। उन्होंने ही मिथिला में 'सप्ताङ्ग-राज्यस्थितिः' की स्थापना की। डॉ० उपेन्द्र ठाकुर ने लिखा है कि शक्रसिंह के समय में संभवतः चण्डेश्वर महथा ने सप्तश्रेष्ठों की सभा बनाई।[2] किन्तु, स्वयं चण्डेश्वर ठाकुर ने अपने पिता वीरेश्वर को यह श्रेय दिया है।[3] गणेश्वर के द्वितीय पुत्र गोविन्ददत्त ने भी 'गोविन्दमानसोल्लास' में अपना परिचय देते हुए वीरेश्वर को ही 'सप्ताङ्गराज्यस्थितिः' का कर्त्ता कहा है।[4] इसके साथ ही पञ्जीप्रबन्ध से यह भी पता चलता है कि देवादित्य के सातों पुत्र (वीरेश्वर सातों भाई) एक-एक श्रेष्ठ राजकीय पद पर आसीन थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वीरेश्वर ने ही 'सप्ताङ्गराज्यस्थितिः' की सृष्टि की और स्वयं सातों भाई एक-एक श्रेष्ठ पद पर आरूढ हो गये। वीरेश्वर सभी भाइयों में श्रेष्ठ थे, अतः उनकी मर्यादा भी सर्वाधिक सम्मानपूर्ण थी। इसीलिए, गोविन्ददत्त ने उन्हें 'महामहत्तक-महाराजाधिराजो महासामन्ताधिपतिः' कहा है। इससे प्रमाणित होता है कि महाराज हरिसिंहदेव की शैशवावस्था में लोग वीरेश्वर को महाराजाधिराज तक कहने लगे थे। संलग्न वंशवृक्ष के अनुसार सर्वप्रथम देवादित्य ही 'सान्धिविग्रहिक' के पद पर आसीन हुए थे[5]। उनकी मृत्यु के बाद वीरेश्वर और उनके बाद चण्डेश्वर क्रमशः उक्त पद पर आये। इसी से चण्डेश्वर ने कृत्यरत्नाकर में अपने को 'कुलक्रमागते सन्धिविग्रहपदे नियोजितः' लिखा है। गणेश्वर के आदेश से प्रतिहस्त भवशर्मा द्वारा रचित 'सुगतिसोपान' के प्रारम्भिक श्लोकों

स्वस्ति। श्रीकरणात् समस्तप्रक्रियाविराजमानमहासामन्ताधिपतिमहामहत्तकठक्कुर-श्रीअमुकमहाशयाः साधुलोकान् वाणिज्योपजीविनः सर्वान् संवादयन्ति।—वही, पृ० २९।

स्वस्ति। कोपागारात् सप्रक्रियमहाभाण्डागारिकठक्कुरश्रीअमुकेश्वर महाशयाः मुद्राहस्तक-श्रीअमुकान् संवादयन्ति।—वही, पृ० ४६।

स्वस्ति। श्रीकरणात् सप्रक्रियमहासान्धिविग्रहिकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः स्थाना-न्तरिकश्रीअमुकान् समादिशन्ति।—वही, पृ० २९।

१. मित्र-मजूमदार, विद्यापति-पदावली की भूमिका, पृ० ७।
२. हिस्ट्री ऑफ् मिथिला, पृ० २७७।
३. देखिए पृ० ६, पादटिप्पणी ३।
४. देखिए पृ० ६, पादटिप्पणी २।
५. देखिए विद्यापति का वंशवृक्ष।

से यह भी पता चलता है कि उसके निर्माण के समय वीरेश्वर की मृत्यु हो चुकी थी। इसी से उनके लिए लेखक ने 'अजायत' लिखकर भूतकाल का प्रयोग किया है।[१]

'सुगतिसोपान' के प्रारंभिक श्लोकों से यह भी पता चलता है कि गणेश्वर भी महाराज हरिसिंहदेव के मंत्री थे।[२] विद्यापति ने भी 'पुरुषपरीक्षा' में सुबुद्धि-कथा के प्रसङ्ग में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।[३] इस उज्ज्वल वंश में एक-से-एक बढ़कर विद्वान्, लेखक, राजनीतिज्ञ और महामहत्तक ने जन्म ग्रहण किया था। यह वंश मिथिला में बहुत पहले से ही समादृत रहा है। कर्णाट-वंशी राजाओं के समय से प्रारंभ करके ओइनवारवंशी राजाओं के समय तक सर्वदा इस वंश का संबन्ध राज-परिवार से रहा। इसी अवदात वंश में मैथिल कविकोकिल विद्यापति ने जन्म ग्रहण किया था।

विद्यापति की जन्मभूमि

महाकवि विद्यापति का जन्म दरभंगा जिले के वेनीपट्टी थाने के अन्तर्गत 'बिसफी'-नामक गाँव में हुआ था। दरभंगा से जो रेलगाड़ी उत्तर-पश्चिम की ओर जाती है, उसी में तीसरा स्टेशन कमतौल है। कमतौल से ढाई कोस पर ईशान कोण में यह गाँव है। यह गाँव बहुत बड़ा है—कोसों दूर में फैला हुआ है। मिथिला में आज भी एक कहावत प्रचलित है—'बीसा सए हर बिसफी बहए, तइओ बिसफी पड़ले रहए।' अर्थात्, बीस सौ हल बिसफी में वहते हैं, फिर भी बिसफी गाँव पड़ा रह जाता है। बिसफी की चतुर्दिक् सीमा के सम्बन्ध में वहाँ के बड़े-बूढ़ों का कथन है—'दह दच्छिन, पैन पच्छिम, पूब सिलोखरि, उत्तर रतनजोइ।'[४] यह गाँव लगभग चार कोस में फैला हुआ है। इसमें कई टोले हैं। जिस टोले में विद्यापति ने जन्म ग्रहण किया था, उसे 'गढ़ बिसफी' कहते हैं। संभव है, पहले वहाँ किसी राजा का गढ़ रहा हो। वहीं विद्यापति के बीजी पुरुष विष्णुशर्मा का निवास था। उनके समय से विद्यापति के बहुत बाद तक विद्यापति के वंशजों का निवासस्थान बिसफी ही रहा। आज भी गाँव के आग्नेय कोण में विद्यापति की जन्मभूमि का टीला वर्त्तमान है। टीले से पश्चिम एक छोटा-सा तालाव जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान है। टीले से तालाव तक सुरंग है। कहते हैं, विद्यापति के घर की स्त्रियाँ उसी सुरंग होकर तालाव में स्नान करने को जाया करती थीं। टीले से पूर्व में, उत्तर से दक्षिण की ओर बहती हुई कमला नदी की पुरानी धारा है। टीले के ऊपर यत्र-तत्र पुरानी ईंटें दृष्टिगत होती हैं।

---

१. देखिए पृ० ५ की पादटिप्पणी २।

२. देखिए, पृ० ५, पादटिप्पणी २।

३. आसीन्मिथिलायां कर्णाटकुलसम्भवो हरिसिंहदेवो नाम राजा। तस्य सांख्यसिद्धान्तपारगामी दण्डनीतिकुशलो गणेश्वरनामधेयो मन्त्री बभूव।—पुरुष-परीक्षा।

४. दह = ह्रद। पैन = नाला। सिलोखरि = एक तालाब। रतनजोइ = एक नदी।

आज से लगभग सौ वर्ष पहले एकनाथ ठाकुर, जो विद्यापति की दसवीं पीढ़ी में थे, बिसफी से सौराठ आये। सौराठ एकनाथ ठाकुर का ननिहाल था। उनके मामा धारे झा एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे अपने बहनोई तुला ठाकुर के दिवंगत होने पर भागिनेय एकनाथ ठाकुर को, जिनकी अवस्था उस समय आठ-दस वर्ष से अधिक नहीं थी, अपने घर ले आये। तब से विद्यापति के वंशज सौराठ में ही हैं।

विद्यापति के समय से ही बिसफी अकर —ब्रह्मोत्तर के रूप में उनके वंशजों के हाथ में था। सन् १८५० ई० की बात है। उस समय विद्यापति के वंश में भैया ठाकुर थे। भैया ठाकुर एकनाथ ठाकुर के पुत्र थे। उनका, सौराठ गाँव के राम झा और लक्ष्मण झा से, जो दोनों सहोदर भाई थे, मतभेद था। राम झा और लक्ष्मण झा ने अँगरेजी सरकार की अदालत में आवेदन किया कि विद्यापति ठाकुर सिद्ध पुरुष थे। जमीन-जायदाद से उन्हें प्रयोजन नहीं था। भैया ठाकुर बिना सम्बन्ध-सरोकार के सन्तान बनकर उनकी जायदाद—बिसफी—का उपभोग कर रहे हैं।

अदालत से भैया ठाकुर की तलब हुई। उन्होंने उत्तर में महाराज शिवसिंह का दिया ताम्रपत्र और अपनी वंशावली दिखलाई। पंजीकारों ने भी पंजी-प्रबन्ध लेकर साक्ष्य दिया। जज ने सब-कुछ देख-सुनकर भैया ठाकुर के पुत्रों के नाम से बिसफी का बन्दोबस्त कर दिया।

जिस समय की यह घटना है, उस समय विद्याकर मिश्र अदालत में पण्डित के पद पर थे। हिन्दू-दायभाग का विवेचन-विश्लेषण करके जज को समझाना उनका काम था। उन्होंने उपर्युक्त ताम्रपत्र का अनुवाद करके जज को समझाया कि महाराज शिवसिंह ने 'ब्रह्मोत्तर' के रूप में यह गाँव विद्यापति को दिया था। इसलिए यह गाँव 'अकर' है। इसका कर नहीं लगना चाहिए। किञ्च, ताम्रपत्र में शपथ दी हुई है कि इस गाँव से कर वसूल करनेवाले हिन्दू राजाओं को गोमांस खाने का और तुर्क राजाओं को सूअर के मांस खाने का फल होगा। अतः, इस गाँव का बन्दोबस्त करना उचित नहीं।

किन्तु, जज अँगरेज था। उसने कहा—ताम्रपत्र की शपथ हमपर नहीं लगती। हम अँगरेज हैं। गाय और सूअर—दोनों हमारे भक्ष्य हैं। किञ्च, यह ताम्रपत्र महाराज शिवसिंह का दिया हुआ है—बादशाह का दिया हुआ नहीं है। बादशाह का दिया रहता, तो फिर बन्दोबस्त नहीं होता। माण्डलिक राजे स्वयं अकर नहीं होते। इसलिए उनका दिया हुआ गाँव भी अकर नहीं हो सकता।

भैया ठाकुर के पाँच पुत्र थे। उन्होंने बिसफी गाँव को आपस में बाँट लिया। किन्तु प्रश्न रह गया कि महाराज शिवसिंह का दिया हुआ ताम्रपत्र किसके पास रहे? सब-के-सब उसे अपने पास रखना चाहते थे। अन्ततः, वहताम्रपत्र पिण्डारुछ (दरभंगा) के शिवलाल चौधरी के जिम्मे रख दिया गया। शिवलाल चौधरी भैया ठाकुर के भागिनेय थे। आज भी वह ताम्रपत्र शिवलाल चौधरी के वंशजों के घर में वर्त्तमान है।

बिसफी गाँव को पाँच हिस्सों में बाँट लेने के बाद भी भैया ठाकुर के पाँचों पुत्रों में मेल नहीं हुआ। आपस में वे बराबर लड़ते-झगड़ते रहे—मुकदमेबाजी होती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि सब-के-सब ऋणग्रस्त हो गये। अन्ततः, उनके पुत्रों ने महाकवि विद्यापति की जन्मभूमि बिसफी को बेच डाला।

विद्यापति का जीवनकाल

विद्यापति ने अपने सम्पर्क में आये हुए राजाओं और राजपुरुषों के लिए बहुत-कुछ लिखकर भी अपने लिए कुछ नहीं लिखा। एक विद्यापति के लिए ही ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह एक प्रकार से भारतीय परम्परा ही रही है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि ने भी बहुत-कुछ लिखकर अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। वस्तुतः, महापुरुषों के लिए इसकी आवश्यकता भी नहीं होती। वे सार्वभौम होते हैं। उनकी वाणी सबके लिए होती है। वे किसी देश या काल के दायरे में बँध नहीं सकते—बँधना नहीं चाहते। यही बात विद्यापति के लिए भी चरितार्थ होती है। फिर भी, मिथिला के लोक-कण्ठ में ऐसी बहुतेरी किंवदन्तियाँ हैं और विद्यापति तथा दूसरे विद्वानों के लिखे ग्रन्थों में ऐसे बहुत-से विवरण हैं, जिन्हें एक सूत्र में पिरोकर विद्यापति का ऐतिह्य प्रस्तुत किया जा सकता है।

ओइनवार-साम्राज्य के प्रारंभिक दिनों से ही विद्यापति के पूर्वजों का उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। कहते हैं, विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर राय गणेश्वर के सभा-पण्डित थे। उन्होंने कपिलेश्वर[1] महादेव की बड़ी आराधना की। प्रसन्न होकर शिव ने पुत्ररत्न होने का वरदान दिया। समय पाकर गणपति ठाकुर ने विद्यापति-सा पुत्ररत्न लाभ किया।

किस ईसवी-सन् की किस तारीख में विद्यापति ने जन्म लेकर मिथिला को ही नहीं, सम्पूर्ण भारत को गौरवान्वित किया, इसका कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं। किन्तु देवसिंह की मृत्यु और शिवसिंह के सिंहासनाधिरोहण के सम्बन्ध में विद्यापति का ही एक प्रसिद्ध पद है,[2] जिससे पता चलता है कि लक्ष्मण-संवत् २९३, शाके १३२४, अर्थात् १४०२ ई० में देवसिंह की मृत्यु हुई और शिवसिंह गद्दी पर बैठे। मिथिला में प्रवाद है कि शिवसिंह उस समय ५० वर्ष के थे और विद्यापति उनसे दो वर्ष बड़े थे, अर्थात् विद्यापति की अवस्था उस समय ५२ वर्ष की थी। यही एक आधार है, जिससे कवि का जन्म १३५० ई० में होना निश्चित होता है।

---

१. मधुबनी (दरभंगा) से ढाई कोस पश्चिम कपिलेश्वर महादेव का स्थान है।

२. अनल रन्ध्र कर लक्खण णरवइ
सक समुद्द कर अगिनि ससी।
चैत कारि छठि जेठा मिलिओ
वार बेहप्पइ जाउ लसी॥

श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त ने विद्यापति के पद में उल्लिखित लक्ष्मणाब्द और शकाब्द को एकत्र समन्वित किये विना ही लिखा कि 'ल० सं० २९३ अथवा १४१२ ई० में शिवसिंह गद्दी पर बैठे।'[१] महामहोपाध्याय उमेश मिश्र ने भी लिखा कि 'विद्यापति का जन्म २४१ ल० सं (१३६० ई०) के लगभग तथा मृत्यु ३२७ ल० सं० (१४४६ ई०) के बाद हुई, यह माना जा सकता है।'[२] यदि मिश्रजी का ध्यान विद्यापति के उपर्युक्त पद पर जाता, तो प्रायः वे इस प्रकार नहीं लिखते।

वस्तुस्थिति तो यह है कि कई विद्वान् लक्ष्मणाब्द का प्रारंभ ११०९ ई० से और कई विद्वान् १११९ ई० से मानते हैं। यह एक ऐसा विवाद है, जिसका समाधान आजतक

देवसिंह जं पुहमी छड्डइ
अद्धासन सुरराअ सरू।
दुहु सुरताण निन्दैँ अब सोअउ
तपनहीण जग तिमिर भरू॥
देखहु ओ पृथिमी के राजा
पौरुस माँझ पुरण वलिओ।
सत बलै गङ्गा मिलित कलेवर
देवसिंह सुरपुर चलिओ॥
एक दिस जवन सकल दल चलिओ
एक दिस सओ जमराज चरू।
दुहुए दलटि मनोरथ पूरओ
गरुअ दाप सिवसिंह करू॥
सुरतरु कुसुम घालि दिस पूरओ
दुन्दुहि सुन्दर साद धरू।
वीरछत्र देखन को कारन
सुरगन सोभैँ गगन भरू॥
आरम्भीअ अन्तेष्टि महामख
राजसुअ अश्वमेध जहाँ।
पण्डित घर आचार वखानिअ
याचक काँ घर दान कहाँ॥
विज्जावइ कइवर एहु गावए
मानव-मन आनन्द भओ।
सिंहासन सिवसिंह वइट्ठो
उच्छवै बैरस विसरि गओ॥

—'पुरुष-परीक्षा' का चन्द्र कवि-कृत मैथिली अनुवाद, पृ० २५५।

१. श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त, 'विद्यापति-पदावली', भूमिका, पृ० २।
२. म० म० उमेश मिश्र, विद्यापति ठाकुर, पृ० ४८।

नहीं हो सका है। किन्तु, विद्यापति ने उपर्युक्त पद में लक्ष्मणाब्द २९३ को शकाब्द १३२४ के साथ एक सूत्र में पिरोकर अपने समय के लिए इस विवाद का अन्त कर दिया है। अतः, विद्यापति साहित्य में उल्लिखित ल० सं० को शक-संवत् के साथ मिलाकर गणना करने से उसका प्रारंभ ११०९ ई० से होता है, न कि १११९ ई० से।

लक्ष्मणाब्द के इसी मतद्वैध को लक्ष्य करके श्रीव्रजनन्दन सहाय 'व्रजवल्लभ' ने बहुत ही समीचीन लिखा है कि 'लक्ष्मणाब्द का आरंभ कब हुआ, इसमें मतभेद है; किन्तु विद्यापति की कविता से ही यह प्रमाणित होता है कि शकाब्द और लक्ष्मणाब्द में १०३१ वर्षों का अन्तर है। शकाब्द तो अब भी प्रचलित है और किसी भी पञ्चांग के देखने से यह निश्चित होगा कि ईसवी-सन् और शकाब्द में ७८ वर्ष का अन्तर होता है। अतएव विद्यापति का जन्म सन् १३५० ई० में होना निश्चित किया जा सकता है।'[1] श्रीरामवृक्ष वेनीपुरी ने भी विद्यापति के उपर्युक्त पद की ओर इङ्गित करते हुए लिखा है कि 'बिसफी गाँव २९३ लक्ष्मणाब्द में विद्यापति को दिया गया था। उस समय उनकी अवस्था लगभग ५२ वर्ष की रही होगी। अतः, उनका जन्म २४१ लक्ष्मणाब्द में या संवत् १४०७ विक्रमीय (=सन् १३५० ई०) में होना संभव है।'[2] अस्तु।

ओइनवार-साम्राज्य के राय भोगीश्वर से लेकर महाराज भैरवसिंह के समय-पर्यन्त जितने राजे और राजकुमार हुए, प्रायः सबके साथ विद्यापति का थोड़ा-बहुत सम्बन्ध अवश्य रहा। किन्तु, उनमें कीर्त्तिसिंह और शिवसिंह के साथ कवि का घनिष्ठ सम्बन्ध था। कारण, वे दोनों कवि के समवयस्क थे। कवि ने 'कीर्त्तिलता' का निर्माण कर कीर्त्तिसिंह को अमर कर दिया। शिवसिंह की आज्ञा से कवि ने तीन पुस्तकें—'पुरुष-परीक्षा', 'गोरक्ष-विजय' और 'कीर्त्ति-पताका'—लिखीं। इतना ही नहीं, विद्यापति के सैकड़ों पदों में शिवसिंह का नाम है, जो उनके घनिष्ठ सम्बन्ध का परिचायक है। किन्तु, दुर्भाग्यवश कीर्त्तिसिंह अल्पायु हुए। प्रायः इसीलिए विद्यापति के किसी पद में उनका नाम नहीं मिलता। कीर्त्तिसिंह की मृत्यु के बाद तो विद्यापति की सम्पूर्ण साधना—सम्पूर्ण कवित्व—के आश्रय एकमात्र शिवसिंह रहे। इसीलिए, विद्यापति के पदों में सबसे अधिक बार शिवसिंह का नाम आता है। मिथिला की राजपञ्जी से पता चलता है कि शिवसिंह का राज्यकाल केवल साढ़े तीन वर्ष अथवा तीन वर्ष नौ महीने था। मिथिला में परम्परानुमोदित प्रवाद भी ऐसा ही है। और, उस अल्पावधि में ही विद्यापति ने उतने बहुसंख्यक पद नहीं रचे होंगे, जिनमें शिवसिंह का नाम है। इसलिए, निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रारंभ से ही विद्यापति और शिवसिंह का निकट-सम्बन्ध था। इसीलिए, सिंहासनाधिरूढ होने के बाद ही महाराज शिवसिंह ने विद्यापति को, उनकी जन्मभूमि 'बिसफी' का दान कर दिया। लक्ष्मण-संवत् २९३, शक-संवत् १३२४ अर्थात् १४०२ ई० की चैत्र-कृष्ण-षष्ठी,

---

१. मैथिल-कोकिल विद्यापति, द्वितीय संस्करण, भूमिका, पृ० २४।

२. श्रीरामवृक्ष वेनीपुरी, विद्यापति-पदावली, भूमिका, पृ० ९।

बृहस्पतिवार को देवसिंह की मृत्यु हुई और उसी वर्ष श्रावण-शुक्ल-सप्तमी बृहस्पतिवार को शिवसिंह ने विद्यापति को ग्रामदान किया। बहुत संभव है, सिंहासनाधिरोहण के अवसर पर ही शिवसिंह ने ग्रामदान किया हो। कारण, देवसिंह की मृत्यु के बाद, उनके श्राद्ध सम्पन्न होने पर भी, महीनों तक ब्राह्मण-भोजन हुआ होगा। विद्यापति ने भी लिखा है कि शिवसिंह ने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ की तरह देवसिंह के अन्त्येष्टि-महामख का आरंभ किया। आज भी मिथिला में किसी धनी-मानी व्यक्ति के माँ-बाप की मृत्यु के बाद महीनों तक ब्राह्मण-भोजन का ताँता लगा रहता है, जिसे 'जयवारी' कहते हैं। फिर, देवसिंह के समान प्रतिष्ठित महाराज की मृत्यु के बाद बृहद् ब्रह्मभोज का नहीं होना असंभव प्रतीत होता है। अतः, पितृ-श्राद्ध के बाद, 'जयवारी' आदि से निवृत्त होने पर, श्रावण-शुक्ल-सप्तमी, बृहस्पतिवार को सिंहासनाधिरोहण के समय में महाराज शिवसिंह ने विद्यापति को बिसफी का दान किया होगा। मिथिला में श्रावण-शुक्ल-सप्तमी का बहुत महत्त्व है। जरहटिया (दरभंगा) गाँव की पुष्करिणी की अश्म-यष्टि (जाठि) में उट्टङ्कित श्लोक से ज्ञात होता है कि कर्णाट-साम्राज्य के संस्थापक महाराज नान्यदेव ने भी श्रावण-शुक्ल-सप्तमी को ही वास्तु-विधान किया था।[1]

महाराज शिवसिंह के एक मंत्री का नाम 'अच्युत' था। वे बहुत बड़े विद्वान्, साहित्यिक और उदार थे। उन्होंने 'काव्य-प्रकाश' की टीका लिखी है। उनके पुत्र रत्नपाणि ने भी काव्य-प्रकाश की 'काव्य-प्रकाश-दर्पण' नामक टीका की रचना की है। रत्नपाणि के पुत्र रवि ने भी 'काव्य-प्रकाश' की 'मधुमती' नाम की टीका लिखी है।[2] इस प्रकार अच्युत की वंश-परम्परा ही साहित्यिक रही। मधुमती टीका के प्रारंभ में मंगलाचरण के बाद रवि ने अपना परिचय देते हुए अपने पितामह अच्युत को महाराज शिवसिंह का मंत्री कहा है।[3]

---

१. नन्देन्दुबिन्दुपृथिवीमितशाकवर्षे
सच्छ्रावणे शुभदलेऽम्बुजिनीशतिथ्याम्।
स्वातीशनैश्चरदिने गजवैरिलग्ने
श्रीमान्यदेवनृपतिर्विदधेऽथ वास्तुम्॥
—म० म० मुकुन्द झा बखशी, मिथिला-भाषामय इतिहास, पृ० ४६२।

२. अच्युतेन कृता टीका मिथिलेशस्य मन्त्रिणा।
तथा तदात्मजेनापि सुधिया रत्नपाणिना॥
भट्टाचार्येण रचिता काव्यदर्पणसंज्ञिका।
तत्पुत्रेणापि रविणा कृता मधुमती तथा॥
—भट्टवामनाचार्य, बालबोधिनी (काव्य-प्रकाश की टीका), ग्रन्थकार-प्रशस्ति, पृ० १५।

३. शिवसिंहान्मिथिलेशादवाप यो मन्त्रितां विबुधः।
तस्याच्युतस्य सूनुर्बभूव भुवि रत्नपाणिरयम्॥
तर्कः कवितया सार्धं विवेकश्च सह श्रिया।
मिथो विरोधमुत्सृज्य यत्रैकाश्रयताङ्गतौ॥

डॉ० ग्रियर्सन ने जब विद्यापति-विषयक अनुसन्धान प्रारंभ किया, तब उनके सामने भी उपर्युक्त ताम्रपत्र का तिथि-व्यतिक्रम प्रश्न बनकर खड़ा हो गया। बहुत परिश्रम के बाद ग्रियर्सन साहब को मिथिला के किसी प्राचीन पण्डित-घराने से जो उक्त ताम्रपत्र की प्रतिलिपि प्राप्त हुई, उसमें शकाब्द, विक्रमाब्द या फसली सन् का उल्लेख नहीं था—केवल ल० सं० था।[1] इस समय भी अनुसंधान में जो उपर्युक्त ताम्रपत्र की प्रतिलिपि प्राप्त हुई है,[2] उसमें भी केवल ल० सं० ही है। फिर, प्रश्न रह जाता है कि उपर्युक्त ताम्रपत्र में चार प्रकार की तिथियाँ कैसे समाविष्ट हुईं ? किञ्च, उन तिथियों में इतना वैषम्य है कि ताम्रपत्र की प्रामाणिकता ही सन्देहास्पद हो जाती है।

किन्तु, इस प्रश्न का बहुत ही समीचीन उत्तर डॉ० हरप्रसाद शास्त्री और डॉ० दिनेशचन्द्र सेन ने दिया है। अतः, अपनी ओर से कुछ नहीं लिखकर उसी को यहाँ अविकल उद्धृत कर दिया जाता है—

"ताम्रशासन जाली है; किन्तु इस प्रकार विचार करने पर वह जाली नहीं मालूम पड़ता है। अकबर के समय में सारे राज्य का सर्वे हुआ था। राजा टोडरमल उसके अनुष्ठाता थे। विद्यापति के वंशजों ने जिस ताम्रशासन के बल से बिसफी गाँव पर अधिकार जमाया था, वह खो गया था। उनके पास एक नकल थी। उसी के आधार पर यह नई ताम्र-लिपि तैयार की गई। यही कारण है कि अकबर के द्वारा प्रचारित सन् इसमें पाया जाता है। बिसफी गाँव पर उन्होंने अधिकार पाया था—यह उनके पदों से भी ज्ञात होता है। केवल राजकर्मचारिगण से स्वीकृति प्राप्त करने के लिए ही यह नया ताम्रशासन तैयार कराया गया।"[3] अस्तु।

किसी के दिन सदा एक समान नहीं रहते। जो आज हँसता है, वही कल रोता है। प्रकृति का यही नियम है। फिर, विद्यापति ही इस नियम के अपवाद कैसे होते ? उनके जीवन में भी ऐसा समय आ ही गया। पूरब से गौड़ और पच्छिम से जौनपुर के नवाब बार-बार मिथिला पर आक्रमण कर रहे थे। जब से जौनपुर स्वतंत्र हुआ, तभी से दिल्ली के साथ मिथिला का सम्बन्ध टूट गया था, इसलिए अब मिथिला का रक्षक दूसरा कोई नहीं था, जो समय पड़ने पर सहायता करने के लिए दौड़ आता। अब सारा उत्तरदायित्व ओइनवार-वंशीय राजाओं के ऊपर ही था। वे बंगाल या जौनपुर के नवाब के अधीन होकर रहना पसं नहीं करते थे। प्रारंभिक दिनों से ही ओइनवारवंशीय राजे दिल्ली-साम्राज्य के अन्दर रह चुके थे। वे अब भी अपने को दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत ही मानते थे। जब जौनपुर स्वतंत्र हुआ और पूर्वी भारत का सम्बन्ध दिल्ली से टूट गया, तब ओइनवारवंश के राजाओं ने भी अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। किन्तु उनके ऊपर दोनों ओर से—पूरब और पच्छिम से—बराबर आक्रमण होने लगे। जिस समय देवसिंह की मृत्यु हुई और शिवसिंह गद्दी पर

१. इण्डियन एण्टिक्वेरी, १८८५ ई०।
२. पं० धरानाथ झा, लगमा, (दरभंगा) से।
३. महाकवि विद्यापति, पादटिप्पणी, पृ०-७।

बैठे, उस समय भी मिथिला पर दोनों सुलतान--बंगाल और जौनपुर के सुलतान--चढ़ आये थे। इसका वर्णन विद्यापति ने भी अपने एक पद में किया है, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। यह भी पहले कहा जा चुका है कि शाके १३२४, अर्थात् १४०२, ई० के चैत्र-कृष्ण-षष्ठी बृहस्पतिवार को देवसिंह की मृत्यु हुई और उसी वर्ष श्रावण-शुक्ल-सप्तमी बृहस्पतिवार को महाराज शिवसिंह ने विद्यापति को 'बिसफी' ग्राम का दान किया। बहुत संभव है कि उसी दिन शिवसिंह गद्दी पर बैठे हों,--इसका भी विवेचन हो चुका है। इसीलिए, मिथिला की किसी राजपञ्जी में शिवसिंह का राज्यकाल साढ़े तीन वर्ष और किसी में तीन वर्ष नौ महीने मिलता है। देवसिंह के मृत्यु-दिवस से गणना करने पर शिवसिंह का राज्यकाल तीन वर्ष नौ महीने का होता है और सिंहासनारोहण के दिन से गणना करने पर उनका राज्य-काल साढ़े तीन वर्ष का होता है। सो, देवसिंह की मृत्यु के तीन वर्ष नौ महीने के बाद—१४०६ ई० के अन्त में–मिथिला पर फिर चढ़ाई हुई। यह चढ़ाई किस ओर से हुई–बंगाल से या जौनपुर से--इसका कहीं उल्लेख नहीं है। फिर भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जौनपुर की ओर से ही यह चढ़ाई हुई थी। कारण, १३८८ ई० में फिरोजशाह तुगलक की मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी आपस में लड़-झगड़कर निर्बल हो गये। दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। १३९४ ई० में जब फिरोजशाह के पुत्र सुलतान महम्मदशाह की मृत्यु हुई, तब उसका एक पुत्र केवल ४६ दिन राज्य करके मर गया। उसका दूसरा पुत्र महमूद 'नासिरुद्दीन महमूद' की उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठा; किन्तु अमीर-उमरा के साथ उसकी पटरी नहीं बैठी। उन्होंने फिरोजशाह के पौत्र नसरत खाँ को 'सुलतान नसीरुद्दीन नसरत शाह' के नाम से सुलतान घोषित कर दिया। इस प्रकार दिल्ली-सलतनत दो भागों में बँट गई।

'तारीख-ए-मुबारकशाही' में लिखा है कि नसरत खाँ ने दोआब के मध्य के भू-भाग पर—साँभर, पानीपत, रोहतक आदि पर—अधिकार कर लिया। महमूद के अधिकार में केवल दिल्ली के आस-पास का भू-भाग रहा। जौनपुर के ख्वाजा जहाँ ने अवसर से लाभ उठाकर इसी समय अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। गुजरात, मालवा और खान-देश भी दिल्ली-सलतनत से बाहर हो गये। ऐसी ही डँवाडोल परिस्थिति में, १३९८ ई० में समरकन्द से बाज की तरह झपट्टा मारता हुआ तैमूरलङ्ग दिल्ली पर चढ़ आया। महमूद में तैमूरलङ्ग से लोहा लेने की शक्ति नहीं थी। जो थोड़ी-बहुत शक्ति थी, वह भी इस आक्रमण से नष्ट हो गई।[१]

१३९९ ई० के मार्च महीने में तैमूरलङ्ग समरकन्द को वापस लौट गया, तो महमूद की जान में जान आई। किन्तु, वह जबतक सँभले सँभले, तबतक उसका छोटा भाई नसरत खाँ दोआब से चलकर दिल्ली पर आ धमका। महमूद उसे रोक नहीं सका। अब दिल्ली पर

१. तारीख-ए-मुबारकशाही, जे० बी० ओ० आर० एस०, १९२७ ई०, पृ० २६२।

नसरत खाँ का अधिकार हो गया। पर, उसका अधिकार भी स्थायी नहीं हुआ। कुछ ही महीनों के अन्दर महमूद के सेनापति इकबाल ने उसे पराजित कर दिया।

इस समय की राजनीतिक अवस्था का वर्णन करते हुए 'तारीख-ए-मुबारकशाही' के रचयिता ने लिखा है कि गुजरात और उसके आस-पास के प्रदेश जाफर खाँ अजीमुल मुल्क के अधिकार में; मुलतान, दीपालपुर और सिन्ध के कुछ भाग मसनद अली खिजर खाँ के अधिकार में; महोवा और कालपी महमूद खाँ के अधिकार में; कन्नौज, अयोध्या, दालमऊ, सन्दीला, बहराइच, बिहार और जौनपुर ख्वाजा जहाँ के अधिकार में; धार दिलावरखाँ के अधिकार में; समाना खलिर खाँ के अधिकार में तथा बियाना शम्सखाँ वहादी के अधिकार में था। देश में राजनीतिक एकता नहीं थी। चलचित्र की भाँति सुलतान और अमीर-उमरा का भाग्य-परिवर्त्तन होता था। आज जो राजा था, कल वही राह का भिखारी बन जाता था।

'तारीख-ए-मुबारकशाही' में लिखा है कि तैमूरलङ्ग के आक्रमण के पहले ही जौनपुर के प्रथम सुलतान ख्वाजा जहाँ ने तिरहुत पर अधिकार कर लिया था।[1] इब्राहिम शाह १४०१ ई० में जौनपुर की गद्दी पर बैठा। इसी समय दिल्ली के सुलतान महमूद और उसके सेनापति इकबाल ने कन्नौज पर आक्रमण किया। इब्राहिम एक बड़ी फौज के साथ उससे जा भिड़ा। जब दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं, तब सुलतान महमूद, जो एक प्रकार से अपने सेनापति इकबाल के घेरे में था, मुक्ति पाने के लिए, शिकार खेलने के बहाने इकवाल को छोड़कर इब्राहिम शाह के पास जा पहुँचा। किन्तु, इब्राहिम शाह, को उसपर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए इब्राहिम शाह ने उसका स्वागत नहीं किया। महमूद लाचार होकर कन्नौज को लौट गया।[2] फिरिश्ता में यह भी लिखा है कि इब्राहिम शाह १४०५ ई० से १४१६ ई० तक दिल्ली-सलतनत के साथ लड़ाई में उलझा रहा।[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि १३९८-९९ ई० के वाद—अर्थात्, तैमूर-लङ्ग के आक्रमण के वाद—पूर्वी भारत का सम्बन्ध दिल्ली-सलतनत से टूट गया। १४०१ ई० में, जबकि इब्राहिम शाह गद्दी पर बैठा, जौनपुर मिथिला पर अपना अधिकार मानता था। किन्तु, वह ऐसा समय था कि सभी शूर-सामन्त अपने को स्वतंत्र मानते थे। फिर, ओइन-वार-वंश के राजे, जो कि अपने बल-विक्रम के लिए विख्यात थे, किसी की अधीनता क्यों स्वीकार करते? इसीलिए उनपर दोनों ओर से—बंगाल और जौनपुर से—आक्रमण होता था। जबतक फीरोजशाह दिल्ली की गद्दी पर था, तबतक जौनपुर स्वतंत्र नहीं था। इसलिए जौनपुर की ओर से मिथिला पर आक्रमण नहीं होता था। फीरोजशाह की मृत्यु के बाद, देवसिंह के अन्तिम दिनों में, दोनों ओर से आक्रमण हुआ था। किन्तु 'तारीख-ए-

१. तारीख-ए-मुबारकशाही, इलियट, भाग ४, पृ० २९।
२. जर्नल—बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, १९२७, पृ० २६६।
३. ब्रीज—फिरिश्ता, भाग ४, परिच्छेद ७।

मुबारकशाही' का लेखक बिहार को जौनपुर के अधिकार में कहता है। इसलिए, निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जब से जौनपुर स्वतंत्र हुआ, तब से जौनपुर की ओर से ही मिथिला पर आक्रमण होता था। बंगाल के नवाब जौनपुर की सहायता करने के लिए ही आते थे। अतः, देवसिंह के अन्तिम दिनों का आक्रमण और शिवसिंह के समय का आक्रमण, जिसमें वे अन्तर्हित हुए, जौनपुर से ही हुए थे।

कहते हैं, महाराज शिवसिंह के ऊपर जो अन्तिम आक्रमण हुआ, जिसमें वे अन्तर्हित हुए, उसका आँखों-देखा वर्णन जौनपुर-निवासी फकीर 'तकी' ने अपनी 'नेहरा-जङ्ग' नामक पुस्तक में किया है। उसमें तकी ने लिखा है कि उस युद्ध में जौनपुर की ओर से सेनापति होकर हाजी 'गयास बेग' आया था। यह पुस्तक इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित है।

प्रकृतमनुसरामः। महाराज शिवसिंह के अन्तर्हित होने के बाद ओइनवार-साम्राज्य का सितारा कुछ दिनों के लिए डूब गया। शिवसिंह को इस बार के युद्ध में अपनी विजय की आशा नहीं थी। इसलिए, उन्होंने अपने जीवन-काल में ही अपने परिवार को विद्यापति की संरक्षकता में नेपाल-तराई-स्थित सप्तरी के राजा पुरादित्य 'गिरिनारायण' के पास रजाबनौली को भेज दिया था। पुरादित्य 'गिरिनारायण' महाराज शिवसिंह के अन्तरंग मित्र थे। शिवसिंह की ओर से उन्होंने शिवसिंह के चचेरे भाई राय अर्जुन को युद्ध में मारा था। इस दुर्दिन में भी वे पीछे नहीं रहे। शिवसिंह के परिवार को अपने यहाँ आश्रय देकर उन्होंने मित्रता का मूल्य चुकाया।

किन्तु कहाँ महाराज शिवसिंह और कहाँ राजा पुरादित्य? दोनों में कुछ तुलना ही नहीं थी। पर उपाय ही क्या था? शिवसिंह के परिवार के साथ विद्यापति को भी बरसों उनके आश्रय में जीवन बिताना पड़ा। यहीं विद्यापति ने पुरादित्य की आज्ञा से 'लिखनावली' की रचना की[1]। यहीं उन्होंने 'श्रीमद्भागवत' की प्रतिलिपि की।[2] विद्यापति के एक पद से, जो प्रायः इसी समय का है, पता चलता है कि उनके लिए यह समय बड़ा दुःखदायी था।[3]

---

१. सर्वादित्यतनूजस्य द्रोणवारमहीपतेः
गिरिनारायणस्याज्ञां पुरादित्यस्य पालयन्।
अल्पश्रुतोपदेशाय कौतुकाय बहुश्रुताम्
विद्यापतिस्सतां प्रीत्यै करोति लिखनावलीम्॥

—लिखनावली, श्लोक १–२

२. ल० सं० २९९ श्रावण शुदि १५ कुजे रजाबनौलीग्रामे विद्यापतेर्लिपिरियमिति।
—मिथिला-तत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १८६३ (पृ० ८९ में)।

३. कुसुम रचल सेज मलअज पङ्क
पेअसि सुमुखि-समाजे।
कत मधुमास विलासे गमाओल
आबे कहितहुँ पए लाजे॥ ध्रु०॥

राजा पुरादित्य के आश्रय में विद्यापति कबतक रहे,—इसका कहीं लिखित प्रमाण नहीं है। 'लिखनावली' के कतिपय पत्रों में ल० सं० २९९ है। इससे अनुमान किया जाता है कि 'लिखनावली' का लिपिकाल वही है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत की प्रतिलिपि के अन्त में विद्यापति ने ल० सं० ३०९ को उसका लिपिकाल लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि 'लिखनावली' १४०८ ई० में लिखी गई और श्रीमद्भागवत की प्रतिलिपि १४१८ ई० में की गई। महाराज शिवसिंह १४०६ ई० में अन्तर्हित हुए थे और उसी समय से विद्यापति राजा पुरादित्य के आश्रय में थे—यह पहले कहा जा चुका है। इस प्रकार १४०६ ई० से १४१८ ई० तक, अर्थात् बारह वर्षों तक विद्यापति राजा पुरादित्य 'गिरिनारायण' के यहाँ रजावनौली में अवश्य थे।

श्रीविमानविहारी मजूमदार ने लिखा है कि 'शिवसिंह के राज्यकाल की एकमात्र निस्सन्दिग्ध तारीख २९१ ल० सं० अथवा १४१० ई० है।'[१] प्रमाणस्वरूप उन्होंने काव्य-प्रकाश-विवेक' की एक प्राचीन प्रतिलिपि के दसवें उल्लास के अन्त में उल्लिखित 'लिपि-काल' को उपस्थित किया है।[२] किन्तु, मजूमदार महोदय का उपर्युक्त तर्क युक्ति-संगत नहीं है। कारण, विद्यापति ने २९३ लक्ष्मणाब्द और १३२४ शकाब्द में देवसिंह के स्वर्गारोहण तथा शिवसिंह के सिंहासनाधिरोहण का स्पष्ट निर्देश किया है। इसलिए, ल० सं० २९१

सखि हे, दिन जनु काहु अवगाहे।
सुरतरु तर सुखे जनम गमाओल
धुथुरा तर निरवाहे॥
दखिन पवन सउरभ उपभोगल
पिउल अमिअ-रस-सारे।
कोकिल-कलरव उपवन पूरल
तन्हि कत कएल विकारे॥
पातहि सओ फुल भमर अगोरल
तरुतर लेलन्हि वासे।
से फुल काटि कीट उपभोगल
भमरा भेल उदासे॥
भनइ विद्यापति कलिजुग-परिनति
चिन्ता जनु कर कोई।
अपन करम अपने पए भुञ्जिअ
जओ जनमान्तर होई॥
—नेपाल और तरौनी की पदावली से।

१. मित्र-मजूमदार, विद्यापति-पदावली की भूमिका, पादटिप्पणी, पृ० ४१

२. "इति तर्काचार्य्यठक्कुरश्रीधरविरचिते काव्यप्रकाशविवेके दशम उल्लासः॥ समस्तविरुदावली-विराजमानमहाराजाधिराजश्रीमच्छिवसिंहदेवसम्भुज्यमानतीरभुक्तौ श्रीगजरथपुरनगरे सुप्रतिष्ठसदुपाध्याय-ठक्कुरश्रीविद्यापतीनामाज्ञया खौआलसं० श्रीदेवशर्म-बलियासस० श्रीप्रभाकराभ्यां लिखितैषा हस्ताभ्याम्। ल० सं २९१ कार्त्तिक वदि १०॥"—जर्नल ऑफ् एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, पृ० ३९३।

महाराज शिवसिंह का राज्यकाल नहीं, यौवराज्य-काल था। किन्तु उस समय भी वे महाराज कहलाते थे। इसलिए, देवसिंह के जीवनकाल में ही विद्यापति ने 'पुरुष-परीक्षा' में उन्हें 'क्षितिपाल' कहा है। उपर्युक्त 'काव्यप्रकाश-विवेक' के लिपिकाल से इतना अवश्य पता चलता है कि शिवसिंह उस समय भी केवल महाराज कहलाते ही नहीं थे, शासनसूत्र भी उन्हीं के हाथों में था।

श्रीविमानविहारी मजूमदार ने उपर्युक्त लिपिकाल के ल० सं० २९१ को १४१० ई० माना है; किन्तु यह भी सर्वथा असंगत है। कारण, ल० सं० के समय-निर्धारण में मत-भेद रहने पर भी विद्यापति ने देवसिंह के स्वर्गारोहण और शिवसिंह के सिंहासनाधिरोहण-विषयक अपने पद में ल० सं० २९३ को शक-संवत् १३२४ के साथ एक सूत्र में पिरोकर अपने समय के लिए ल० सं० का विवाद खत्म कर दिया है। अतः, ल० सं० २९१ शक-संवत् १३२२ में अर्थात् ई० सन् १४०० में हुआ। इसलिए, मजूमदार महोदय का उपर्युक्त कथन भी अत्यन्त भ्रामक है।

बारह वर्षों का यह समय—१४०६ ई० से १४१८ ई० तक का समय—मिथिला के लिए बहुत बुरा था। शिवसिंह के अन्तर्हित होने के बाद भी मिथिला पर किसी दूसरे का अधिकार नहीं हुआ। जौनपुर की फौज लूट-मारकर वापस चली गई। महारानी लखिमा देवी ही पति के नाम पर बारह वर्षों तक मिथिला का शासन करती रहीं।[1] किन्तु मिथिला से बाहर—नेपाल की तराई में—बैठकर सुचारु रूप से मिथिला का शासन हो नहीं सकता था। फिर, मिथिला तो इस युद्ध के बाद सब तरह से जौनपुर-साम्राज्य का अङ्ग हो चुका था। उसी के भय से लखिमा मिथिला से बाहर बैठी थीं। भले ही मिथिला की प्रजा अब भी लखिमा को ही रानी समझती थी; पर शासन-यन्त्र सुचारु रूप से चल नहीं रहा था। एक प्रकार से अराजकता-सी फैल गई थी।

संयोग से इसी समय वैद्यनाथ बैजल-नामक[2] सूबेदार जौनपुर की ओर से पटना आये। वे जाति के चौहान राजपूत थे—सहृदय और विद्वान् थे। समूचे प्रान्त की बागडोर अब उन्हीं के हाथ में थी। यहाँ की हिन्दू प्रजा ने एक हिन्दू को प्रान्त का अधिपति पाकर चैन की साँस ली। ओइनवार-साम्राज्य के लिए भी यह अच्छा अवसर था। अतः

१. म० म० मुकुन्दझा बख्शी, मिथिला-भाषामय इतिहास, पृ० ५२६।

२. विधिहरिहरगुरुभक्तः सर्वलोकानुरक्त-
स्त्रिभुवनगतकीर्त्तिः कान्तिकन्दर्पमूर्त्तिः।
रणरिपुगणकालो बैजलः क्षोणिपालो-
जयति जगति दाता सर्वकर्मविधाता॥ १॥
चन्द्रावतीवदनचन्द्रचकोरविक्रमा-
दित्यभूपतनयो नयतन्त्रवेत्ता।
चौहानवंशतिलकः पटनाधिनाथो-
राजा परं जयति बैजलदेवनामा॥ २॥

—प्रबोधचन्द्रिका, पं० ऋद्धिनाथ झा (उजान, दरभंगा) के घर में सुरक्षित।

मंत्रिवर अमृतकर के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल मिथिला से पटना आया और वैद्यनाथ बैजल से पुनः राज्य वापस करने की प्रार्थना की। बैजलदेव भी यही चाहते थे। प्रान्त की अराजकता इसी से दूर होती, तो फिर वे क्यों बाधक होते ?

इस प्रतिनिधिमंडल में विद्यापति भी एक थे। उन्होंने अपनी कविता से वैद्यनाथ बैजल को सन्तुष्ट किया था। उस समय का एक पद 'नेपाल-पदावली' में है, जिसके अन्त में विद्यापति चन्दल देवी के पति वैद्यनाथ के चरण की शरण चाहते हैं—

चरित चातर चिते बेआकुल
मोर मोर अनुबन्धे।
पूत कलत्त सहोदर बन्धव
सेख दसा सब धन्धे ना ॥
ए हर! गोसाञि !! नाह !!!
मो जनु देह उपेखी।
जम अगाँ मुँह उतर डर छाडत
जबे बुझाओत लेखी ॥
अपथ पथ चरन चलाओल
भर्गति मति न देला।
परधन-धनि मानस लाओल
मिथ्या जनम दुर गेला ॥
कपट (नरि) पलु कलेवर
गीडल मदन गोहे।
भल मन्द हमे किछु न गूनल
समय बहल मोहे ॥
कएल मञे उचित भेल अनुचित
आबे मन पचतावे।
आबे कि करब सिर पए धूनब
गेल दिना नहि आबे ॥
भनइ विद्यापति सुनह महेसर
तइलोक आन न देवा।
चन्दल देविपति बैद्यनाथ गति
चरन सरन मोहि देवा ॥

डॉ० सुभद्र झा ने लिखा है कि यह वैद्यनाथ शिव हैं।[1] किन्तु उनका यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। कारण, शिव चन्दल देवी के पति नहीं, पार्वती के पति हैं। यहाँ 'चन्दल'

१. विद्यापति-गीतसंग्रह, भूमिका, पृ० १९३।

चन्द्रावती का अपभ्रंश है और प्रायः किसी कोश में पार्वती का पर्याय 'चन्द्रावती' नहीं है। डॉ० झा का इस ओर ध्यान नहीं गया। इसीलिए, उन्होंने इस पद के वैद्यनाथ का 'शिव' अर्थ कर लिया। किञ्च, 'नेपाल पदावली' के एक दूसरे पद में विद्यापति ने बैजलदेव को, जो कि वैद्यनाथ का आस्पद था, चन्दल देवी का पति कहा है—

आजे अकामिक आएल भेषधारी।
भीखि भुगुति लए चललि कुमारी॥ ध्रु०॥
भिखिआ न लेइ बढ़ाबए रिसी।
वदन निहारए बिहुँसी-हँसी॥
एठमा सखि-सङ्गे निकहि अछली।
ओहि जोगिआ देखि मुरुछि पड़ली॥
दुर कर गुनपन अरे भेषधारी।
काँ डिठिअओलए राजकुमारी॥
केओ बोल देखए देहे जनु काहू।
केओ बोल ओझा जानि (न)चाहू॥
केओ बोल जोगिअहि देहे दहु जानी।
हुनिकिओ भए बरु जिबओ भवानी॥
भनइ विद्यापति अभिमत सेवा।
चन्दल देवि-पति बैजल देवा॥

प्रकृतिमनुसरामः। अबतक महाराज शिवसिंह के अन्तर्हित हुए बारह वर्ष हो चुके थे। इसलिए, महारानी लखिमा ने शास्त्रविधि से कुश का पुतला बनाकर शिवसिंह की चिता रचाई और स्वयं उसके साथ सती हो गईं।[1] महाकवि विद्यापति के जीवन का यह सबसे दुःखद समय था। जिनकी छत्रच्छाया में वे फूले-फले, अपनी आँखों के सामने उनकी चिता जलते देखकर कवि का हृदय आहत हो गया। किन्तु, विधि का विधान दुर्लंघ्य है। उसमें किसी का वश नहीं चलता।

अब महाराज पद्मसिंह मिथिला के सिंहासन पर बैठे। ये शिवसिंह के छोटे भाई थे। रजाबनौली से आकर इन्होंने नेपाल-तराई के किनारे में—मिथिला के उत्तरी भाग में—राजधानी बसाई। कारण, एक तो गजरथपुर उजाड़ हो गया था और दूसरा, वह मिथिला के मध्य में था। आक्रमण होने पर अपनी रक्षा के लिए वहाँ से भागकर तराई के जंगलों में पहुँचना कठिन था। इसलिए, महाराज पद्मसिंह ने तराई के किनारे अपनी राजधानी बसाई, जिसे आजकल 'पद्मा' कहते हैं। आज भी वहाँ पद्मसिंह की राजधानी का ध्वंसावशेष वर्त्तमान है।

पद्मसिंह का राज्यकाल केवल एक वर्ष है। भ्रातृवियोग से संतप्त होने के कारण वे अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे। उनके बाद उनकी धर्मपत्नी विश्वासदेवी मिथिला

---

१. म० म० मुकुन्द झा बख्शी, मिथिलाभाषामय इतिहास, पृ० ५३०।

के राजसिंहासन पर बैठीं। महारानी विश्वासदेवी बड़ी धर्मपरायणा थीं। प्रजा के ऊपर उनका अपार स्नेह था। उनके समय में मिथिला की बड़ी उन्नति हुई। विद्यापति ने उनके आदेश से 'शैवसर्वस्व-सार' और 'गङ्गा-वाक्यावली'-नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें उन्होंने विश्वासदेवी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। 'विद्यापति के ग्रन्थ'-शीर्षक निवन्ध में इसका विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जायगा।

विश्वासदेवी का राज्यकाल वारह वर्षों तक रहा। इनके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए, इन्होंने महाराज पद्मसिंह के चचेरे भाई नरसिंह 'दर्पनारायण' को अपना दत्तक पुत्र बनाया। महाराज नरसिंह 'दर्पनारायण' महाराज भवसिंह के पौत्र एवं महाराज देवसिंह के छोटे भाई हरिसिंह के पुत्र थे। हरिसिंह राजा नहीं, राजोपजीव्य थे। इसीलिए विद्यापति ने भी उन्हें 'राजा' या 'महाराज' नहीं कहा है। मिसरू मिश्र ने 'विवादचन्द्र' के प्रारंभ में उन्हें स्पष्ट शब्दों में 'राजोपजीव्य' कहा है।[1]

महाराज नरसिंह 'दर्पनारायण' की आज्ञा से विद्यापति ने 'विभागसार'-नामक ग्रन्थ लिखा, जिसका विस्तृत विवरण 'विद्यापति के ग्रन्थ'-शीर्षक निवन्ध में आगे किया जायगा।

प्रसंगवश महाराज नरसिंह के विषय में और भी लिखा जाता है। महाराज नरसिंह-देव बड़े पराक्रमी थे। उनमें राजोचित सभी गुण वर्त्तमान थे। महामहोपाध्याय रुचिपति उपाध्याय ने मुरारि-कृत 'अनर्घराघव'-नामक नाटक की टीका के प्रारंभ में महाराज भैरवसिंह की प्रशंसा करते हुए उनके पिता महाराज नरसिंह 'दर्पनारायण' की भी बड़ी प्रशंसा की है।[2]

महाराज नरसिंहदेव ने सहरसा जिले के 'कणदाहा'–नामक ग्राम में 'भवादित्य' नाम से सूर्य की प्रतिष्ठा की थी। उसके पादपीठ में निम्नलिखित शिलालेख है—

पृथ्वीपतिर्द्विजवरो भव(सिंह आ)सी-
दाशीविषेन्द्रवपुरुज्ज्वलकीर्तिराशिः।

---

१. अभूदभूतप्रतिमल्लगन्धो—
राजा भवेशः किल सार्वभौमः।
अत्याजयद्यो वहुभर्त्तृकत्व-
दोषं भुवोऽपि प्रमुख्यधामा ॥ १ ॥
तस्मात्तनूजोऽजनि सूनुसारो-
धीमानुमासूनुसमानसारः।
राजोपजीव्यो हरिसिंहनामा
ततो नृपो दर्पनरायणोऽभूत् ॥ २ ॥
—मिथिलाभाषामय इतिहास, पृ० ५२९।

२. अभूदभूतप्रतिपक्षभीतिः
सदा समासादितभूरिनीतिः।
चिरङ्कृतार्थीकृतभूमिदेवः
स्फुरत्प्रतापो नरसिंहदेवः ॥ १ ॥
—मिथिलाभाषामय इतिहास, पृ० ५३२।

तस्यात्मजः सकलकृत्यविचारधीरो–
वीरो (ब)भूव वि(दितो ह)रसिंहदेवः ॥ १ ॥
(दोः)स्तम्भद्वयनिर्जिताहितनृपश्रेणीकिरीटोपल–
ज्योत्स्नावर्धितपादपल्लवनखश्रेणीमयूखावलिः ।
दाता तत्तनयोद्‌धृशास्त्रविधिना भूमण्डलं पालयन्
धीरः श्रीनरसिंहभूपतिलकः कान्तोऽधुना राजते ॥ २ ॥
निदेशतोस्यायतनं रवेरिदमचीकरत् ।
बिल्वपञ्चकुलोद्भूतः श्रीमद्वंशधरः कृती ॥ ३ ॥
ज्येष्ठे मासि शकाब्दे शराश्वमदनाङ्किते स्य गिरा ।
बुधपाटकीयचन्द्रः कृतवानेतानि पद्यानि ॥[1]

'अङ्कस्य वामा गतिः' के अनुसार उपर्युक्त शिलालेख के 'शराश्वमदनाङ्किते' का अर्थ हुआ—(शर = ५, अश्व = ७, मदन = १३) १३७५ शकाब्द या १४५३ ई० । किन्तु, काशीप्रसाद जायसवाल का कहना है कि 'सेतुदर्पणी' की एक प्राचीन पाण्डुलिपि में ल० सं० ३२१ में नरसिंह 'दर्पनारायण' के पुत्र धीरसिंह को मिथिला का राजा कहा गया है।[2] किञ्च, महाभारत, कर्णपर्व की एक प्राचीन पाण्डुलिपि में ल० सं० ३२७ में हृदयनारायण को मिथिला का राजा कहा गया है।[3] इस प्रकार, ल० सं० ३२१ अर्थात् १४४० ई० तथा ल० सं० ३२७ अर्थात् १४४७ ई० में धीरसिंह हृदयनारायण का राज्य था। अतः, उपर्युक्त शिलालेख में उल्लिखित १३७५ शकाब्द, अर्थात् १४५३ ई० में महाराज नरसिंह का राज्यकाल नहीं हो सकता। इसलिए, उसे १३५७ शकाब्द, अर्थात् १४३५ ई० होना चाहिए। किन्तु 'अङ्कस्य वामा गतिः' का उल्लंघन करके महाराज नरसिंहदेव 'दर्पनारायण' के काल-निर्धारण की आवश्यकता नहीं। कारण, प्रारंभ से ही ओइनवार-साम्राज्य में यह परिपाटी थी कि बुढ़ापे में पिता अपने पुत्र के हाथों में राज्य सौंप देता था। इसीलिए, विद्यापति ने 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' में नरसिंह का उल्लेख वर्त्तमान-कालिक 'अस्ति' शब्द से करके भी उनके पुत्रों को 'नृपति' कहा है और 'पुरुष-

१. काशीप्रसाद जायसवाल, जर्नल ऑफ् दी बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, खण्ड २०, भाग १, पृ० १५-१६, १९३४ ई०।

२. "परमभट्टारकेत्यादिमहाराजाधिराजश्रीमल्लक्ष्मणसेनदेवीयैकविंशत्यधिकशतत्रयतमाब्दे कार्त्तिकामावस्यायां शनौ समस्तप्रक्रियाविराजमानरिपुराजकंसनारायणशिवभक्तिपरायणमहाराजाधिराजश्रीश्रीमद्धीरसिंहसम्भुज्यमानायां तीरभुक्तौ अलापुरतप्पाप्रतिबद्धसुन्दरीग्रामवसता सदुपाध्यायश्रीसुधाकराणामात्मजेन छात्रश्रीरत्नेश्वरेण स्वार्थम्परार्थञ्च लिखितमिदं सेतुदर्पणीपुस्तकमिति।"

—श्रीविमानविहारी मजूमदार, विद्यापति-पदावली, भूमिका, पृ० ४६।

३. "शुभमस्तु ल० सं० ३२७ भाद्रशुदि १० रवौ महाराजाधिराजश्रीमद्धृदयनारायणराज्ये हाटीतप्पासंल········पुरे श्रीकृष्णपतिना लिखितमिदं कर्णपर्व्वम् ॥ * ॥ ओं नमः शिवाय ॥ ओं नमो नारायणाय ॥"—काशीप्रसाद जायसवाल, जर्नल ऑफ दी बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, खण्ड २०, भाग १, पृ० ४७-४८, १९२४ ई०।

परीक्षा' में शिवसिंह को भी पिता के जीवन-काल में ही 'क्षितिपति' तथा 'नृपति' कहा है। अतः, धीरसिंह के राज्यकाल में उनके पिता महाराज नरसिंह का जीवित रहना और उनके द्वारा सूर्य का स्थापित होना कतई असंभव नहीं।

एक बात और। काशीप्रसाद जायसवाल ने उपर्युक्त ल० सं० ३२१ में १४४० ई० और ल० सं ३२७ में १४४७ ई० का होना निश्चित किया है, जो भ्रान्तिपूर्ण है। कारण, विद्यापति ने 'अनल रन्ध्र कर लक्खण नरबए, सक समुद्द कर अगिनि ससी' लिखकर अपने समय के लिए लक्ष्मण-संवत् का विवाद खत्म कर दिया है। इसलिए शक-संवत् के साथ मिलाकर गणना करने से ल० सं० ३२१ में १४३० ई०, और ल० सं० ३२७ में १४३७ ई० का होना निश्चित होता है। अस्तु।

महाराज भैरवसिंह 'हरिनारायण' की आज्ञा से विद्यापति ने 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' की रचना की। इस ग्रन्थ में विद्यापति ने धीरसिंह, भैरवसिंह और चन्द्रसिंह 'रूपनारायण' का नामोल्लेख किया है। अबतक महाराज नरसिंह भी जीवित थे। कारण, विद्यापति ने उनका उल्लेख भी वर्त्तमानकालिक 'अस्ति' से किया है। इसमें महाराज भैरवसिंह के दोनों छोटे भाइयों का--रणसिंह और धुराइ का--नामोल्लेख नहीं है। संभव है, इस समय तक वे नाबालिग रहे हों अथवा उनका जन्म ही नहीं हुआ हो।

महाराज नरसिंह की मृत्यु के वाद उनकी पत्नी महारानी धीरमति की आज्ञा से विद्यापति ने 'दानवाक्यावली' की रचना की। महाराज नरसिंह के दो रानियाँ थीं--धीरमति देवी और हीरा देवी। हृदयनारायण धीरसिंह, हरिनारायण भैरवसिंह, दुर्लभनारायण रणसिंह और कुमार धुराइ महारानी धीरमति के और रूपनारायण चन्द्रसिंह महारानी हीरा देवी के पुत्र थे। महारानी धीरमति अत्यन्त उदारचरिता थीं। विद्यापति ने 'दानवाक्यावली' के प्रारंभ में उनकी बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने काशी में काशीवास करनेवालों के लिए धर्मशाला बनवाई थी, बगीचा लगवाया था, जहाँ भिक्षुओं को अन्न-दान भी मिलता था। ऐसी उदारचरिता महारानी की आज्ञा से विद्यापति का 'दानवाक्यावली' के समान दान-विषयक ग्रन्थ लिखना उपयुक्त ही है।

महाराज धीरसिंह 'हृदयनारायण', महाराज भैरवसिंह 'हरिनारायण' और राजा चन्द्रसिंह 'रूपनारायण' के बाद के राजाओं में किसी राजा या राजकुमार का नाम हम विद्यापति की कृतियों में नहीं पाते हैं। नगेन्द्रनाथ गुप्त की पदावली के एक पद (पद-संख्या ५.२३) की भणिता में कंसनारायण का नाम पाया जाता है, जो असंगत है। कारण, 'रागतरंगिणी' में उस पद के रचयिता के रूप में गोविन्ददास का नाम है।[१] किन्तु, ऐसी असंगति, केवल

---

१. अगर उगारि गारि मृगमद रस
कए अनुलेपन देह।
चललि तिमिर मिलि निमिषे अलख भेलि
काचक सनि मसि रेह॥

नगेन्द्रनाथ गुप्त ने नहीं की है, दूसरे संपादकों ने भी बहुत-कुछ भ्रमजाल फैलाया है, जिसका विचार आगे किया जायगा।

उपर्युक्त विश्लेषण से पता चलता है कि महाकवि विद्यापति का रचनाकाल राए भोगीश्वर के समय से प्रारंभ कर महाराज भैरवसिंह के राज्यकाल तक था।

महाराज धीरसिंह 'हृदयनारायण', महाराज भैरवसिंह 'हरिनारायण' और चन्द्रसिंह 'रूपनारायण' एक समय में, एक साथ ही राज्य करते थे। विद्यापति-कृत 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' के प्रारंभिक श्लोकों से (जिनका उल्लेख 'विद्यापति के ग्रंथ'-शीर्षक निबन्ध में आगे किया जायगा) ऐसा ही प्रतीत होता है। किञ्च, महामहोपाध्याय रुचि शर्मा ने 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक की टीका के प्रारंभ में स्पष्ट रूप से ऐसा ही लिखा है।[1] अतः, विद्यापति-कृत 'वर्षकृत्य' में रूपनारायण के उल्लेख रहने पर भी ('विद्यापति के ग्रन्थ'-शीर्षक निबन्ध में आगे इसका विवेचन किया जायगा) समसामयिक होने के कारण महाराज भैरवसिंह के राज्यकाल से आगे विद्यापति का जीवनकाल नहीं होता।

नगेन्द्रनाथ गुप्त को मिथिला के लोककण्ठ से एक पद प्राप्त हुआ था, जिसमें विद्यापति कहते हैं कि बत्तीस वर्षों के बाद मैंने स्वप्न में शिवसिंह को देखा है। मिथिला के लोककण्ठ में आज भी वह पद इस प्रकार बिराज रहा है कि 'नह्यमूला प्रसिध्यति' के अनुसार उसकी प्रमाणिकता पर संदेह करने की गुंजाइश नहीं। पद इस प्रकार है—

हे माधव,
हेरह हरखि धनि चान उगल जनि
महितले मेटि कलङ्क।
घर गुरुजन हेरि पलटति कत बेरि
ससिमुखि परम ससङ्क॥
तुअ गुनगन कहि आनलिअ साहि-टारि
दइए सुमुखि बिसवास।
ते परि पठाइअ जे पुनु पाबिअ
परधन बिनु परआस॥
जपल जनम सत मदन महामत
बिहि सुफलित करु आज।
दास गोविन्द भन कंसनराएन
सोरम देवि समाज॥
—रागतरंगिणी, पृ० १०१-१०२।

१. न्यायेनावति तीरभुक्तिवसुधां श्रीधीरसिंहे नृपे
श्रीमद्भैरवसिंहभूमिपतिना भ्रात्रानुजेनान्विते।
रामं लक्ष्मणवत्समाजयति यो ज्येष्ठौ च तौ भ्रातरौ
तस्य श्रीयुतचन्द्रसिंहनृपतेर्वाक्येन टीकोद्यतः॥
—मिथिलातत्त्वविमर्श, पृ० १७७।

सपन देखल हम सिवसिंह भूप
बतिस बरस पर सामर रूप।
बहुत देखल गुरुजन प्राचीन
आब भेलहुँ हम आयु - विहीन ।।
समटु - समटु निज लोचन - नीर
ककरहु काल न राखथि थीर।
विद्यापति सुगतिक प्रस्ताव
त्याग के करुना रसक स्वभाव ।।

नेपाल-दरबार-पुस्तकालय में 'ब्राह्मण-सर्वस्व' की एक प्राचीन पाण्डुलिपि है। उसके अन्त में प्रतिलिपिकार ने जो आत्मपरिचय के साथ लिपिकाल का उल्लेख किया है, उससे भी इसी की पुष्टि होती है।[१]

सर्वप्रथम डॉ॰ सुकुमार सेन ने अपनी 'विद्यापति-गोष्ठी'-नामक पुस्तक में उस उद्धरण की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। इसी आधार पर श्रीविमानविहारी मजूमदार ने लिखा कि "प्राचीन काल में केवल जीवित व्यक्ति के नाम के साथ ही 'श्री' शब्द लिखा जाता था। अतः, प्रमाणित होता है कि लक्ष्मण-संवत् ३४१, अर्थात् १४६० ई॰ में विद्यापति जीवित थे।"[२] डॉक्टर मुहम्मद शहीदुल्लाह ने भी इसी आधार पर लिखा कि "३४१ ल॰ सं॰ (१४६० खीष्टाब्द) में विद्यापति के अध्यापनाधीन छात्र श्रीरूपधर ने एक पुस्तक की नकल की थी।"[३] डॉक्टर सुभद्र झा ने भी उपर्युक्त उद्धरण को प्रामाणिक मानकर लिखा है कि "अतः हम समझते हैं कि विद्यापति संभवतः १४४८ ई॰ या १४६१ ई॰ तक जीवित थे।"[४]

ब्राह्मण-सर्वस्व के अन्त में उल्लिखित उद्धरण के आधार पर निश्चितरूप से यह प्रमाणित होता है कि महाकवि विद्यापति ल॰ सं॰ ३४१ तक जीवित थे। किन्तु यहाँ भी उपर्युक्त विद्वानों ने ल॰ सं॰ को ईसवी सन् में परिवर्त्तित करने में भूल की है। कारण, पहले कहा जा चुका है कि विद्यापति ने 'अनल रन्ध्र कर लक्खन नरवए, सक समुद्द कर अगिनि

१. ल॰ सं॰ ३४१, मुड़ियारग्रामे सुप्रसिद्धसदुपाध्यायनिजकुलकुमुदिनीचन्द्रवादिमत्तेमसिंहसच्चरित्र-पवित्रश्रीविद्यापतिमहाशयेभ्यः पठता छात्रश्रीरूपधरेण लिखितमदः पुस्तकम्।

पक्षे सितेऽसौ शशिवेदराम-
युक्ते नवम्यां नृपलक्ष्मणाब्दे।
श्रीपूर्वसोमेश्वरसद्द्विजेन
पुस्ती विशुद्धा लिखिता च भाद्रे ।।

—केटलाग ऑफ् पामलीफ मैनेस्क्रिप्ट्स इन नेपाल-दरबार, पृ॰ ४८।

२. मित्र-मजूमदार, विद्यापति-पदावली, भूमिका, पृ॰ ५६।

३. मुहम्मद शहीदुल्लाह, विद्यापति-शतक, भूमिका, पृ॰ ४।

४. सुभद्र झा, विद्यापति-गीत-संग्रह, भूमिका, पृ॰ ५०।

सी' लिखकर लक्ष्मणाब्द और शकाब्द को एक सूत्र में पिरो दिया है तथा अपने समय के लिए लक्ष्मणाब्द का विवाद समाप्त कर दिया है। किन्तु उपर्युक्त विद्वानों का ध्यान इस ओर नहीं गया। अतएव किसी ने ल० सं० ३४१ को १४६० ई० तो किसी ने १४४८ या १४६१ ई० स्वीकार किया है, जो सर्वथा असंगत है। वास्तव में विद्यापति के अनुसार शक-संवत् के साथ मिलाकर गणना करने से ल० सं० ३४१ में १४५० ई० होती है।

प्रसंगवश ब्राह्मण-सर्वस्व के उपर्युक्त उद्धरणोक्त 'मुड़ियार' ग्राम पर विचार किया जाता है। मिथिला में प्रायः उक्त नाम का कोई गाँव आज नहीं है, यदि विद्यापति के समय में उस नाम का कोई गाँव रहा भी हो तो प्रश्न उठता है कि विद्यापति अपने गाँव बिसफी को छोड़कर वृद्धावस्था में 'मुड़ियार' में रहकर क्यों पढ़ाते थे? महाराज शिवसिंह का दिया हुआ बिसफी-सा विशाल गाँव उनके अधिकार में था। ओइनवार-साम्राज्य के सिंहासन पर उस समय महाराज भैरवसिंह के समान उदार महाराज समासीन थे, जिनकी आज्ञा से विद्यापति ने 'दुर्गा-भक्ति-तरंगिणी' नामक ग्रन्थ लिखा था। उनकी छत्रच्छाया में रहते हुए विद्यापति को 'मुड़ियार' में रहकर अध्यापन-कार्य करने की आवश्यकता हुई होगी,—इसकी संभावना नहीं की जा सकती। अतः उपर्युक्त उद्धरण का 'मुड़ियार' वास्तव में 'बड़ुआर' है। बड़ुआर ग्राम में महाराज भैरवसिंह की राजधानी थी।[1] महाकवि विद्यापति अपने जीवन के अन्तिम दिनों में महाराज भैरवसिंह के आश्रय में बड़ुआर में रहकर विद्यादान करते थे। वहीं उनसे पढ़ते हुए रूपधर ने ब्राह्मण-सर्वस्व लिखा,—यही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। नेपाल दरबार की पुस्तक-सूची में, जहाँ से उपर्युक्त उद्धरण प्रस्तुत किया गया है, भ्रमवश 'बड़ुआर' को 'मुड़ियार' लिख दिया गया है। पाठोद्धार के समय ऐसी भ्रान्ति का होना असंभव नहीं है। अस्तु।

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से प्रतीत होता है कि महाराज शिवसिंह ल० सं० २९३ अर्थात् १४०२ ई० के श्रावण-शुक्ल-सप्तमी को सिंहासनासीन हुए। उस समय उनकी अवस्था पचास वर्ष की थी। विद्यापति उनसे दो वर्ष बड़े थे। इसलिए उनके सिंहासनाधिरोहण के समय विद्यापति बावन वर्ष के थे। इस प्रकार गणना करने से विद्यापति का जन्मकाल १३५० ई० होता है। महाराज शिवसिंह अपने पिता देवसिंह के मृत्यु-दिवस से तीन वर्ष, नौ महीने और सिंहासनाधिरोहण-दिवस से तीन वर्ष, छह महीने के बाद १४०६ ई० के प्रारंभ में जौनपुर के सेनापति गयासबेग के साथ युद्ध करते हुए अन्तर्हित हुए। उसके बारह वर्ष के बाद अर्थात् १४१८ ई० के प्रारंभ में महारानी लखिमा ने कुश का पुतला बनाकर महाराज शिवसिंह की चिता रचाई और स्वयं उसके साथ जलकर स्वर्ग सिधारीं। इसके बत्तीस वर्ष बाद अर्थात् १४५० ई० के प्रारंभ में कवि ने स्वप्न में महाराज शिवसिंह को देखा और उसी वर्ष कार्तिक-शुक्ल-त्रयोदशी को गंगा के पवित्र तट पर अपने नश्वर शरीर को त्यागकर वे कैलासवासी हुए। नगेन्द्रनाथ गुप्त ने मिथिला के लोककंठ से एतद्विषयक एक पद का संग्रह किया था, जो आज भी वहाँ के लोककंठ में वर्तमान है। देखिए—

---

१. म० म० मुकुन्द झा बख्शी, मिथिलाभाषामय इतिहास, पृ० ५३४।

दुल्लहि तोहर कतए छथि माए।
कहुन ओ आबथु एखन नहाए॥
वृथा बुझथु संसार - विलास।
पल - पल नाना तरहक त्रास॥
माए - बाप जञो सद्‌गति पाब।
सन्तति कँ अनुपम सुख आब॥
विद्यापतिक आयु - अवसान।
कार्त्तिक - धवल - त्रयोदशि जान॥[1]

यद्यपि 'मरणं जाह्नवीतीरे' का महत्त्व आसेतुहिमालय वर्तमान है तथापि मिथिला में जिस प्रकार इस स्मृति-वाक्य का अनुसरण किया जाता है, उस प्रकार अन्यत्र नहीं। आज भी मिथिला के वयोवृद्ध स्त्री-पुरुष सदा गंगालाभ की कामना करते हैं। पुत्र भी अपने माता-पिता को अन्त समय में प्राण-विसर्जन के लिए गंगा-तट पर ले जाना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। विद्यापति ने भी अपना अन्त समय जानकर गंगा की शरण में जाने का विचार प्रकट किया। डॉ० ग्रियर्सन को मिथिला के लोककंठ में निम्नलिखित पद प्राप्त हुआ था, जिससे पता चलता है कि अन्त समय में गंगा-तट पर प्राण-विसर्जन करने की अभिलाषा विद्यापति के मन में बहुत पहले से थी—

बड़ सुख - सार पाओल तुअ तीरे।
छाड़इते निकट नयन बह नीरे॥
कर जोड़ि बिनमञो विमल - तरङ्गे।
पुन दरसन होइह पुनमति गङ्गे॥
एक अपराध खेमब मोर जानी।
परसल माए पाए तुअ पानी॥
कि करब जप तप जोग धेआने।
जनम कृतारथ एकहि सनाने॥
भनइ विद्यापति समदञो तोही।
अन्तकाल जनु बिसरह मोही॥[2]

महाकवि के विचार प्रकट करते ही यात्रा की सारी सामग्रियाँ प्रस्तुत की गईं। बन्धु-बान्धव और प्रजावर्ग भी महाकवि के अन्तिम दर्शन के लिए आ जुटे। सभी रो रहे थे—विलख रहे थे। पर, काल के आगे किसी का वश नहीं। अन्त में बन्धु-बान्धवों से मिल-जुलकर प्रजाजनों को सान्त्वना देकर और कुलदेवी विश्वेश्वरी को प्रणाम कर विद्या-

१. विद्यापति-पदावली, नगेन्द्रनाथ गुप्त, पद-संख्या (विविध) १२।
२. ग्रियर्सन, पद-संख्या ७८, न० गु०, पद-संख्या (गंगा) १।

पति ने गा-तट की यात्रा की। उस समय का कारुणिक वर्णन विद्यापति के मुख से ही सुनिए—

जय जय अम्बा विश्वेश्वरि, किछु ने फुरए जे करि,
मोर माथे धरि दिअ हाथे।
चललहुँ सुरसरि, धन - धाम परिहरि,
तोहर अभय वर साथे॥
पुरती हमर आशा, शिव - जटाजूट - वासा,
अनुकूल देवी जत देवा।
इहो तन परित्यागी, होएब सुगति - भागी,
शिवक जनम भरि सेवा॥
परजा - रञ्जन मन, हरपति सभ खन,
हँसाए - खेलाए कर लेथि।
अतिथिक सतकार, इष्ट - पूजा - उपचार,
सुविचार धन नित देथि॥
जननि समान जान, नारीगण मन मान,
कविवर विद्यापति भाने।
जे मोर बान्धव लोक, मन ने करथु शोक,
काल - गति अछ परमाने॥[1]

इस प्रकार सबसे मिल-जुलकर महाकवि ने गंगा की यात्रा की। संभव है, बिसफी से चलकर वे तीसरे दिन मऊ-बाजितपुर (विद्यापतिनगर) पहुँचे होंगे। महाकवि ने यहाँ अपनी यात्रा रोक दी। वे पालकी (तामदान) से उतर गये। उन्होंने साथ आये परिजनों से कहा कि 'मैं तो भक्तिभाव से इतनी दूर चलकर माता (गंगा) के दर्शन के लिए आया। अब देखना चाहिए कि माता (गंगा) क्या थोड़ी दूर भी इस पुत्र को अंक में लेने के लिए नहीं आयँगी?' महाकवि की यह प्रतिज्ञा उन्हीं के मुख से सुनिए—

सुनिअ डमरु - धुनि, शिव पुनि - पुनि,
आब एत करु बिसराम।
पूजा - उपचार लिअ, सत्वर गंगा काँ दिअ,
कहि देब हमरो प्रणाम॥
करतीहि कृपा गङ्गा, सकल कलुष - भङ्गा,
आब जीव परसन भेल।
थाकि गेलि जनी - जाति, बेटा - बेटी - पोता - नाति,
कामति - कहार - सङ्ग-साथी।

१. म० म० परमेश्वर झा, मिथिलातत्त्व-विमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १८७।

मोर हेतु आउ एत, धन्यवाद लोक देत,
सभ जन हरषि नहाथी ॥
भन कवि विद्यापति, दिअ देवि दिव्य गति,
पशुपति - पुर पहुँचाए।
गौरी सङ्ग देखि शिव, कि सुख पाओत जिव,
से आब कहलो ने जाए ॥[१]

कहते हैं, महाकवि का सत्य-संकल्प सिद्ध हुआ। उसी रात गंगा की धारा वहाँ होकर बहने लगी। प्रातःकाल लोगों ने देखा तो आश्चर्यचकित होकर सभी महाकवि के पुण्य-प्रताप की प्रशंसा करने लगे। फिर तो विद्यापति प्रतिदिन गंगा के दर्शन, प्रणाम, स्नान, ध्यान आदि करते हुए समय व्यतीत करने लगे। समय बीतने लगा। आखिर कार्तिक-शुक्ल-पक्ष की त्रयोदशी तिथि आ गई। महाकवि को अपना अन्तिम समय समीप आया प्रतीत हुआ। उन्होंने अपनी पुत्री–दुल्लहि–को पुकारकर उससे उसकी माता के विषय में पूछा–उन्हें शीघ्र स्नान कर आने को कहलाया और रोते-बिसूरते हुए सन्तति-समुदाय को सान्त्वना देकर गंगा-तट पर अपने नश्वर शरीर का त्याग किया।

विद्यापतिकालीन मिथिला

शाके १२४८ अर्थात् १३२६ ई० में दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुगलक ने कर्णाट-साम्राज्य के अन्तिम शासक महाराज हरिसिंहदेव को हराकर मिथिला पर अधिकार कर लिया। हरिसिंहदेव की राजधानी 'नेहरा' में थी। यहीं से भागकर वे नेपाल गये। रास्ते में उन्होंने अपने गुरु सिद्ध कामेश्वर ठाकुर से, जो उन दिनों शुकवन (सुगौना) में तपस्या कर रहे थे, भेंट की और मिथिला का राज्य उनके चरणों में समर्पित कर दिया।

मुहम्मद तुगलक को जब ज्ञात हुआ कि हरिसिंहदेव कामेश्वर ठाकुर को मिथिला का राज्य देकर नेपाल चले गये तब उसने भी कामेश्वर ठाकुर को ही मिथिला का राजा मान लिया। उसे स्वयं तो राज्य करना नहीं था, जो आपत्ति होती। वह तो केवल 'कर' चाहता था। सो, कामेश्वर ठाकुर को राजा मानकर उसने मिथिला को 'करद' राज्य के रूप में दिल्ली-साम्राज्य में अन्तर्भुक्त कर लिया।

श्रीविमानविहारी मजूमदार ने लिखा है कि "हरिसिंहदेव चम्पारन जिले के समीपवर्त्ती नेपाल तराई में अवस्थित 'सिमरौनगढ़' से भागकर नेपाल गये और वहाँ उन्होंने कुछ दिनों तक राज्य किया। गयासुद्दीन तुगलक ने हरिसिंहदेव के गुरु वंश के कामेश्वर को सामन्त राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया। कामेश्वर ने सुगौना (मधुबनी, दरभंगा) में अपनी राजधानी स्थापित की।"[२]

---

१. म० म० परमेश्वर झा, मिथिलातत्त्व-विमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १८८।
२. मित्र-मजूमदार, 'विद्यापति-पदावली' की भूमिका, पृ० ३३।

किन्तु श्रीविमानविहारी मजूमदार के उपर्युक्त कथन में कतई तथ्य नहीं है। कारण, कर्णाट-साम्राज्य के संस्थापक नान्यदेव ने 'सिमरौनगढ़' में अपना निवासस्थान बनवाया था। उन दिनों पाल-साम्राज्य का पतन हो रहा था। इसलिए उसके पूर्व-भाग पर सेन-साम्राज्य के संस्थापक आदि शूर—विजय सेन ने और पश्चिम भाग पर कर्णाट-साम्राज्य के संस्थापक नान्यदेव ने अधिकार कर लिया। किन्तु बाद में इन दोनों में ही ठन गई। विजय-सेन के पुत्र बल्लाल सेन ने मिथिला पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में नान्यदेव हार गये और बन्दी बना लिये गये। प्रद्युम्नेश्वर (देवपाड़ा) मन्दिर के शिलालेख में उमापतिधर ने विजयसेन की प्रशस्ति में बड़े गर्व के साथ इसका उल्लेख किया है।[1]

इसके बाद नान्यदेव के द्वितीय पुत्र मल्लदेव, जो उन दिनों कन्नौज में रहते थे, पिता के बन्दी होने का समाचार पाकर मिथिला लौट आये और अपने बड़े भाई गङ्गदेव के साथ मिलकर सैन्य-संचय किया। बल्लाल सेन शंकरपुर (पूर्निया) में पड़ाव डाले बैठे थे। गङ्गदेव और मल्लदेव ने भी सिमरौनगढ़ से बढ़कर नान्यपुर (सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर) में अपना शिविर कायम किया। जिस स्थान पर उन्होंने सैन्य-संचय किया, उसे आज भी 'घोड़बाड़' कहते हैं। द्वालख (सुपौल, सहरसा) के पास दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई।[2] इस बार बल्लाल सेन के पैर उखड़ गये। उनकी सेना हार गई। नान्यदेव बन्दीगृह से मुक्त हो गये।

यही कारण था कि मिथिलाधिपति होते हुए भी नान्यदेव ने मिथिला के एक कोण में—नेपाल-तराई के सिमरौनगढ़ में—अपना निवासस्थान बनवाया। किन्तु पीछे स्थिति बदल गई। कोशी नदी, जो उन दिनों पूर्निया से पूर्व होकर बहती थी, सीमा निर्धारित हुई। विवाद खत्म हुआ। फिर तो शासन की सुविधा के लिए कर्णाटवंशीय राजाओं ने मिथिला के मध्यभाग में अवस्थित नेहरा (दरभंगा) में अपनी राजधानी बसाई। जिस स्थान पर राजधानी थी, उस स्थान को आज भी 'रजवाड़ा' कहते हैं। यहीं कर्णाट-साम्राज्य के अन्तिम महाराज हरिसिंहदेव ने 'विश्वचक्र' नाम का यज्ञ और पञ्जी-प्रबन्ध का निर्माण किया था। यहीं से भागकर वे नेपाल गये थे। पहले उन्होंने उमगाम (हरिलाखी,

---

१. त्वं नान्यवीरविजयीति गिरः कवीनां
श्रुत्वान्यथामननरूढनिगूढरोपः ।
गौडेन्द्रमद्रवदपाकृतकामरूप-
भूपं कलिङ्गमपि यस्तरसा जिगाय ॥
शूरम्मन्य इवासि नान्य ! किमिह त्वं राघव ! श्लाघसे
स्पर्द्धां वर्द्धन ! मुञ्च वीर ! विहतो नाद्यापि दर्पस्तव ।
इत्यन्योन्यमहर्निशं प्रणयिभिः कोलाहलैः क्ष्माभुजां
यत्कारागृहयामिकैर्नियमितो निद्रापनोदक्रमः ॥
—मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ १०१-१०२

२. म० म० परमेश्वर झा, मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १०१।

दरभंगा) के समीप डेरा डाला; किन्तु चार महीने के बाद वहाँ से विदा होकर गिरि-गह्वर की शरण ली। उमगाम में आज भी ग्रामदेवता के रूप में हरिसिंहदेव की पूजा होती है।[1] यदि सिमरौनगढ़ से हरिसिंहदेव नेपाल की यात्रा करते तो मार्ग में 'उमगाम' नहीं पड़ता। अतः सिमरौनगढ़ से हरिसिंह देव के भाग जाने की बात कपोल-कल्पित है।

श्रीविमानविहारी मजूमदार का यह कथन भी असंगत है कि "गयासुद्दीन तुगलक ने हरिसिंहदेव के गुरु-वंश के कामेश्वर को सामन्त राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया।" कारण, गयासुद्दीन तुगलक ने १३२४ ई० में मिथिला पर आक्रमण किया था। यदि उसी समय हरिसिंहदेव भाग जाते तो शाके १२४८ अर्थात् १३२६ ई० में हरिसिंहदेव की आज्ञा से पञ्जी-प्रबन्ध का निर्माण किस प्रकार होता? अतः वस्तुस्थिति यह है कि गयासुद्दीन तुगलक के आक्रमण से नहीं; मुहम्मद तुगलक के आक्रमण से कर्णाट-साम्राज्य का पतन हुआ।[2] गयासुद्दीन तुगलक कर्णाट-साम्राज्य से टकराया तो अवश्य; पर उसे मुँह की खानी पड़ी। उस समय मंत्रिवर गणेश्वर, चण्डेश्वर आदि मंत्रिपद पर आसीन थे। उनके आगे गयासुद्दीन तुगलक की दाल न गली। उसके वहुतेरे सैनिक हरिसिंहदेव के साथ युद्ध में खेत रहे। इसी का वर्णन कविशेखराचार्य ज्योतिरीश ने 'धूर्त्त-समागम' नाटक के प्रारंभ किया है[3]। प्रतिहस्त भव शर्मा ने भी 'गोविन्दमानसोल्लास' के प्रारंभ में मंत्रिवर गणेश्वर की प्रशंसा करते हुए गयासुद्दीन तुगलक के इसी आक्रमण की ओर संकेत किया है।[4]

श्रीविमानविहारी मजूमदार का यह कथन भी नितान्त असंगत है कि "कामेश्वर ने सुगौना (मधुबनी, दरभंगा में अपनी राजधानी स्थापित की।" कारण, जिस समय हरिसिंहदेव अपनी राजधानी—नेहरा—से भागकर नेपाल की तराई की ओर जा रहे थे, उस समय सिद्ध कामेश्वर ठाकुर सुगौना, दरभंगा में तपस्या कर रहे थे। हरिसिंहदेव ने यहीं उनके चरणों में मिथिला का राज्य समर्पित किया था। आज भी सिद्ध कामेश्वर ठाकुर का वह सिद्धपीठ यहाँ वर्त्तमान है। इसी सिद्धपीठ के कारण कामेश्वर-वंश के राजाओं का सुगौना से सदा सम्बन्ध बना रहा। किन्तु उनकी राजधानी यहाँ नहीं थी। कामेश्वर-

---

१. मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १४३।

२. वही, पूर्वार्द्ध पृ० १४३।

३. नानायोधनिरुद्धनिर्जितसुरत्राणत्रसद्वाहिनी—
नृत्यद्भीमकबन्धमेलकदलद्भूमिभ्रमद्भूधरः ।
अस्ति श्रीहरिसिंहदेवनृपतिः कर्णाटचूडामणि-
र्दृप्यत्पार्थिवसार्थमौलिमुकुटन्यस्ताङ्घ्रिपङ्केरुहः ॥
—मिथलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १३५।

४. संशोषयन्ननिशमौर्वनिभप्रतापै-
र्गौडावनीपरिवृढं सुरतानसिन्धुम्।
धर्मावलम्बनकरः करुणार्द्रचेता-
यस्तीरभुक्तिमतुलामतुलः प्रशास्ति ॥
—मैनुस्क्रिप्ट इन मिथिला, भाग १, पृ० ५०५–६।

ठाकुर ने अपनी जन्मभूमि - ओइनी में राजधानी बसाई थी। आज भी वहाँ राजधानी का ध्वंसावशेष खँडहर के रूप में वर्त्तमान है। उस समय का एक विशाल कुँआ भी वहाँ है। मिथिला का राज्य कामेश्वर ठाकुर के पुत्रों में बँट जाने पर भी उनके बड़े पुत्र राय भोगीश्वर की राजधानी अन्ततक वहीं रही। कीर्त्तिसिंह के समय में उनके भाई वीरसिंह ने वहाँ से कुछ हटकर अपना निवासस्थान बनवाया, जो आज भी 'वीरसिंहपुर' के नाम से वर्त्तमान है।

कामेश्वर ठाकुर के भाइयों में एक हर्षण ठाकुर (प्रसिद्ध—मनसुख ठाकुर) थे। राजा होने पर कामेश्वर ठाकुर ने अपने वंशपरंपरागत सिद्धपीठ की पूजा-अर्चा के लिए हर्षण ठाकुर को सुगौना गाँव दिया।[१] इसीलिए हर्षण ठाकुर ने सुगौना में अपना निवासस्थान बनवाया। आज भी हर्षण ठाकुर के वंशज वहाँ वर्त्तमान हैं।

कामेश्वर-वंश के अन्तिम महाराज लक्ष्मीनाथ 'कंसनारायण' शाके १४४६ (१५२७ ई० में) स्वर्ग सिधारे।[२] उनकी मृत्यु के बाद मिथिला में अराजकता-सी फैल गई। जहाँ-तहाँ भरजातीय क्षत्रियों ने उत्पात मचाना आरंभ किया। इस समय हर्षण ठाकुर के प्रपौत्र राजा रत्नाकर ठाकुर वर्त्तमान थे। उन्होंने अवसर से लाभ उठाकर सुगौना के आस-पास के बहुत बड़े भूभाग को अपने अधिकार में कर लिया और अपने को राजा घोषित कर दिया।[३] इसी समय से 'सुगौना'-राज्य का प्रारंभ हुआ।

जिस समय बादशाह अकबर ने महामहोपाध्याय महेश ठाकुर को मिथिला का राज्य दिया, उस समय उपयुक्त राजा रत्नाकर के प्रपौत्र राजा रामचन्द्र नाबालिग थे। इसलिए वे चुप लगा गये। किन्तु बालिग होने पर उन्होंने दिल्ली जाकर राजपण्डित कामेश्वर के वंशज होने के कारण अपने को ओइनवार-साम्राज्य का उत्तराधिकारी बतलाते हुए बादशाह से मिथिला-राज्य की याचना की। किन्तु बादशाह से उत्तर मिला कि "मिथिला-राज्य महेश ठाकुर को दे दिया गया। अब नहीं मिल सकता।" इसपर राजा रामचन्द्र ने प्रार्थना की कि "महेश ठाकुर को आबादी जमीन का अनुमति-पत्र मिला है। गैर-आबादी जमीन बची है। मुझे उसी का अनुमति-पत्र दिया जाय।" इसपर बादशाह ने गैर-आबादी जमीन का अनुमति-पत्र उन्हें दे दिया।[४] इस प्रकार आबादी जमीन के मालिक म० म० महेश ठाकुर और गैर-आबादी जमीन के मालिक राजा रामचन्द्र हो गये। अब आबादी और गैर-आबादी का झगड़ा गाँव-गाँव में आरंभ हुआ। अन्ततोगत्वा महेश ठाकुर ने 'बछौर' से लेकर

---

१. म० म० मुकुन्दझा बख्शी, मिथिलाभाषामय इतिहास, पादटिप्पणी, पृ० ५१३।

२. अङ्काब्धिवेदशशिसम्मितशाकवर्षे
भाद्रे सिते प्रतिपदि क्षितिसूनुवारे।
हाहा! निहत्य इव कंसनरायणोऽसौ
तत्याज देवसरसीनिकटे शरीरम्॥

—मिथिलाभाषामय इतिहास, पृ० ५४४।

३. वही, पादटिप्पणी, पृष्ठ ५१३।

४. म० म० परमेश्वर झा, मिथिलातत्त्वविमर्श, उत्तरार्द्ध, पृ० ८

'भाला' तक सात परगने राजा रामचन्द्र को देकर झगड़ा खत्म किया। राजा रामचन्द्र के बाद तो सुगौना राज्य की और भी समृद्धि हुई। बाद में उनके वंशज महाराज कहलाने लगे। यही सुगौना-राज्य का इतिहास है। पाठकों की जिज्ञासा-शान्ति के लिए सुगौना-राजवंश का कुलवृक्ष सह-संलग्न है।

प्रकृतिमनुसरामः। मुहम्मद तुगलक (१३२५-१३५१ ई०) के राज्यकाल के अन्तिम दिनों में राजनीतिक विशृङ्खलता के कारण भारत के पूर्वभाग में बहुत उलट-फेर हुआ। अनेक हिन्दू राजाओं और मुसलमान शासकों ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी। गौड़ के सुलतान शम्सुद्दीन इलियास शाह ने (१३४२-१३४७ ई०) स्वतंत्रता की घोषणा ही नहीं की; वरन् मिथिला को रौंदता हुआ वह नेपाल तक बढ़ आया। नेपाल से लौट कर वह उड़ीसा की चिल्का झील तक जा पहुँचा। फिर उसने गोरखपुर और चम्पारन को भी जीत लिया।[1] ओइनवार-साम्राज्य के ऊपर यही सबसे पहला आक्रमण था। इस आक्रमण से वह डगमगा उठा। मुहम्मद तुगलक के हाथों से ओइनवार-साम्राज्य की स्थापना हुई थी। इसलिए वह अपने को दिल्ली-साम्राज्य का अंग मानता था और गौड़ की अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं था। पर, इलियास शाह को मार भगाने की शक्ति भी उसमें नहीं थी। अतः मिथिला में एक प्रकार से अराजकता-सी छा गई। इसीलिए मिथिला की राजपञ्जी में इस समय को अराजकता का समय कहा गया है।

किन्तु समय ने पलटा खाया। मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद फीरोजशाह तुगलक (१३५१-१३८८ ई०) गद्दी पर बैठा तो उसने १३५४ ई० में अन्तर्वेद और अयोध्या से लेकर कोशी नदी तक के भू-भाग पर फिर अपना अधिकार जमाया।[2] इलियासशाह की सेना उसे रोक नहीं सकी। संभव है, फीरोजशाह तुगलक इलियासशाह के प्रत्याक्रमण की प्रतीक्षा में कुछ दिनों तक मिथिला में बैठा रहा। वह जहाँ पड़ाव डाले बैठा था, उसे आज भी 'पिजुरगढ़' कहते हैं, जो 'फीरोजगढ़' का बिगड़ा हुआ रूप है। यह गाँव मधुबनी (दरभंगा) सबडिवीजन में है। किञ्च, यदि फीरोजशाह आँधी की तरह लूटता-खसोटता आता और चला जाता तो राय भोगीश्वर के साथ उसकी मित्रता कैसे होती? किसी आये-गये के साथ हठात् किसी की मित्रता नहीं होती। विद्यापति ने कीर्त्तिलता में लिखा है—

तसु नन्दन भोगीसराअ वर भोग पुरन्दर।
हुअ हुआसन तेजि कन्ति कुसुमाउँह सुन्दर॥
जाचक सिद्धि केदार दान पञ्चम बलि जानल।
पिअसख भणि पिअरोजसाह सुरतान समानल॥[3]

---

१. हिस्ट्री ऑफ बंगाल, भाग २, पृष्ठ १०४-५।
२. दरभंगा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृ० १७ (१९०७ ई०)
३. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० १०।

ओइनवार-राजवंश (सुगौना शाखा)

राजपण्डित कामेश्वर-रामेश्वर-हर्षण (हरिषेण)-त्रिपुरे-तेबारी-सलखन-गौड़

शिवाइ

कुमर प्रभाकर

राजा रत्नाकर

कुमर मतिकर

राजा हरिसिंह

राजा रामचन्द्र

राजा 'प्रतापनारायण' जगदीश

महाराज कीर्त्तिनारायण

महाराज रुद्रनारायण

महाराज लक्ष्मीनारायण

राजा रूपनारायण

- राजा फतहनारायण,
  - राजा गिरिधरनारायण
    - राजा श्रीधरनारायण
      - बाबू तेजधरनारायण
- बाबू जगन्नारायण
  - बाबू दोर्दण्डनारायण
    - बाबू वैकुण्ठनारायण, प्र० कन्हैयानारायण
      - बाबू खोजेन्द्रनारायण
        - बाबू इन्द्रनारायण
          - बाबू श्रीदोलधरनारायण, बाबू श्रीशेषधरनारायण, बाबू श्रीईशधरनारायण
        - बाबू श्रीमन्तनारायण
          - बाबू श्रीटेकधरनारायण, बाबू श्रीहेमधरनारायण
        - बाबू बोधनारायण
          - बाबू श्रीबदरीनारायण, बाबू श्रीयोगधरनारायण, बाबू श्रीइन्दुधरनारायण, बाबू श्रीपद्मधरनारायण, बाबू श्रीडेगधरनारायण

विशेष—जिनके नाम के साथ 'श्री' का प्रयोग हुआ है, वे अभी जीवित हैं।

असलान के साथ युद्ध में राय गणेश्वर परास्त नहीं हुए। युद्ध में असलान का पक्ष ही दुर्बल पड़ गया। किन्तु उसने कूटनीति का सहारा लेकर छल से राय गणेश्वर का वध कर दिया है। यह घटना ल० सं० २५२ अर्थात् १३६१ ई०, चैत्र-कृष्ण-पंचमी, मंगलवार की है। विद्यापति ने कीर्त्तिलता में लिखा है—

लक्खणसेन नरेश लिहिअ जबे पक्ख पञ्च वे।
तम्महुमासहि पठम पक्ख पञ्चमी कहिअ जे॥
रज्जलुद्ध असलान बुद्धि-विक्कम-बले हारल।
पास बइसि बिसवासि राए गएनेसर मारल॥[1]

श्रीविमानविहारी मजूमदार ने 'कीर्त्तिलता' के उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर लिखा है कि "यह घटना २५२ लक्ष्मण-संवत् -चैत्र-कृष्ण-पंचमी मंगलवार अर्थात् १३७२ ई० के प्रारंभ की है।"[2] किन्तु उनका यह कथन तर्कसंगत नहीं है। कारण, उन्होंने १११९ ई० से लक्ष्मणाब्द का प्रारंभ मानकर २५२ लक्ष्मणाब्द को १३७२ ई० में परिणत किया है। किन्तु विद्यापति ने देवसिंह के स्वर्गारोहण और शिवसिंह के सिंहासनाधिरोहण-विषयक अपने पद में 'अनल रन्ध्र कर लक्खण नरबए, सक समुद्द कर अगिनि ससी' लिखकर ल० सं० २९३ को शक-संवत् १३२४ के साथ एक सूत्र में पिरोकर अपने समय के लिए ल० सं० का विवाद खत्म कर दिया है। अतः विद्यापति-साहित्य में उल्लिखित ल० सं० को शक-संवत् के साथ मिलाकर गणना करने से उसका प्रारंभ ११०९ ई० में होता है, न कि १११९ ई० में। इस प्रकार ल० सं० २५२ में १३६१ ई० होती है।

राय गणेश्वर की मृत्यु के बाद मिथिला में अराजकता छा गई। ओइनवार-साम्राज्य के तीनों अंग—भोगीश्वर, कामेश्वर और भवेश्वर के राज्य—अस्त-व्यस्त हो गये। कोई किसी का रक्षक नहीं रहा। अत्याचार और अनाचार की पराकाष्ठा हो गई। विद्यापति ने उस समय का वर्णन करते हुए लिखा है—

ठाकुर ठक भए गेल चोरें चप्परि घर लिज्झिअ।
दास गोसाञुनि गहिअ धम्म गए धन्ध निमज्जिअ॥
खले सज्जन परिभविअ कोइ नहि होइ विचारक।
जाति अजाति बिआह अधम उत्तम पतिपारक॥
अक्खर रस बुज्झनिहार नहि कइकुल भमि भिक्खारि भउ।
तिरहुत्ति तिरोहित सब्ब गुणे रा गणेस जबे सग्ग गउँ॥[3]

असलान ओइनवार-साम्राज्य को अपने अधिकार में रखते हुए पुनः प्रतिष्ठित करना चाहता था। किन्तु ओइनवारवंशीय राजे इसके लिए तैयार नहीं हुए। दिल्ली के सुलतान

१. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० १६।
२. मित्र-मजूमदार, 'विद्यापति-पदावली' की भूमिका, पृ० ३४।
३. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० १६।

मुहम्मद शाह तुगल का दिया हुआ राज्य था। इसलिए वे अपने को दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत मानते थे। इससे पहले भी जब गौड़ के सुलतान इलियास शाह ने मिथिला पर आक्रमण किया था तब दिल्ली के सुलतान फीरोज शाह तुगलक ने ही आकर कोशी नदी तक के भू-भाग का उद्धार किया था, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इसलिए इस बार भी ओइनवारवंशीय राजे दिल्ली की ओर उन्मुख हुए। जिस समय राय गणेश्वर मारे गये उस समय उनके पिता राय भोगीश्वर जीवित थे। राय भोगीश्वर की मृत्यु कब हुई —इसका कहीं उल्लेख नहीं है। किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि राय गणेश्वर की मृत्यु के बहुत बाद तक राय भोगीश्वर जीवित थे। इसीलिए विद्यापति ने कीर्त्तिसिंह की जोनापुर-यात्रा के प्रसंग में लिखा है —

पाञे चलु दुअओ कुमर।
हरि हरि सबे सुमर॥
बहुल छाड़ल पाटि पाँतरे।
वसने पाञेल आँतरे आँतरे॥
जहाँ जाइअ जेहे गाञो।
भोगाइ राजाक बड़ि नाञो॥[१]

ओइनवार-साम्राज्य के संस्थापक सिद्ध कामेश्वर ठाकुर और कीर्त्तिसिंह के पिता राय गणेश्वर का नामोल्लेख नहीं करके विद्यापति ने उपर्युक्त पद में राजा भोगीश्वर का जो नामोल्लेख किया,—इसीसे प्रमाणित होता है कि उस समय भी राय भोगीश्वर जीवित थे। यदि इनकी मृत्यु हो गई रहती तो कोई कारण नहीं था कि उन दोनों को छोड़कर विद्यापति इनका नामोल्लेख करते। इसीलिए विद्यापति के एक पद में,—जो कि 'तरौनी पदावली' में उपलब्ध है; अतः जिसकी प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता है,—राय भोगीश्वर का नाम पाया जाता है। यह पहले कहा जा चुका है कि विद्यापति का जन्म १३५० ई० में हुआ था और यह भी प्रमाणित किया जा चुका है कि असलान ने १३६१ ई० में राय गणेश्वर का बध किया था। इसीलिए यदि १३६१ ई० से पहले राय भोगीश्वर की मृत्यु हो गई रहती तो विद्यापति के पद में उनका नाम कथमपि नहीं पाया जाता। अस्तु।

यद्यपि इस राजविप्लव में सम्पूर्ण ओइनवार-साम्राज्य अस्त-व्यस्त हो गया तथापि उसके तीनों अंग परस्पर एकत्र नहीं हो सके। प्रायः तीनों ने पृथक् होकर ही अपने को मुक्त करने का प्रयत्न किया। राय भोगीश्वर उस समय अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे और वीरसिंह तथा कीर्त्तिसिंह बच्चे ही थे। इसीलिए वे तत्काल चुप लगा गये। कुसुमेश्वर या उनके पुत्र रत्नेश्वर आदि ने क्या किया,—इसका कहीं उल्लेख नहीं है। किन्तु भवेश्वर के पुत्र देवसिंह चुप लगाये बैठे नहीं रहे। वे अपने पुत्र शिवसिंह के साथ दिल्ली को चल पड़े। वहाँ पहुँचने

१. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० २४।

पर प्रायः सुलतान से उनकी भेंट नहीं हो सकी। इसीलिए कुछ दिनों के बाद उदास होकर वे नैमिषारण्य में रहने लगे। किन्तु शिवसिंह अपने प्रयास से विमुख नहीं हुए। वे उन दिनों भी सुलतान से मिलने के लिए दिल्ली के पास सोनीपत (सूनपीठ) में डेरा डाले बैठे रहे। यह पहले कहा जा चुका है कि विद्यापति का सम्बन्ध प्रारम्भ से ही ओइनवार-साम्राज्य के तीनों अंगों से था। अबतक वे भी युवावस्था में पदार्पण कर चुके थे। अतः वे भी उनकी तलाश में घूमते-फिरते नैमिषारण्य जा पहुँचे। यहीं उन्होंने देवसिंह के आदेश से 'भू-परिक्रमा' का निर्माण किया। ग्रन्थारंभ में विद्यापति लिखते हैं—

देवसिंह - निदेशाच्च नैमिषारण्यवासिनः।
शिवसिंहस्य च पितुः सूनपीठनिवासिनः॥

श्रीविमानविहारी मजूमदार ने लिखा है कि "दरभंगा-राजपुस्तकालय के अध्यक्ष पंडित रमानाथ झा से पूछने पर उन्होंने कहा—मिथिला में ऐसा प्रवाद है कि 'भू-परिक्रमा' लिखते समय विद्यापति छात्र-रूप में नैमिषारण्य में वास करते थे।[१]" किन्तु मिथिला में आज भी प्रवाद है कि विद्यापति जगद्गुरु पक्षधर मिश्र के पितृव्य महामहोपाध्याय हरिमिश्र के छात्र थे। सोचने की बात तो यह है कि जिस समय विद्यापति का आविर्भाव हुआ था, उस समय मिथिला विद्या का केन्द्र थी। दूर-दूर से छात्र यहाँ पढ़ने को आते थे। फिर विद्यापति ही क्यों अपनी जन्मभूमि मिथिला को छोड़कर पढ़ने के लिए नैमिषारण्य जाते? अतः रमानाथ झा के कथन में कतई तथ्य नहीं है।

पहले कहा जा चुका है कि जिस समय राय गणेश्वर मारे गये, उस समय उनके पुत्र वीरसिंह और कीर्त्तिसिंह छोटे थे। किन्तु जब वे युवावस्था को प्राप्त हुए तब उन्होंने पितृवैर का बदला लेने का निश्चय किया। माता, मंत्री और गुरुजनों ने बहुत समझाया कि असलान से मित्रता करके राज्य का उपभोग कीजिए; किन्तु दोनों राजकुमार अपनी आन पर अडिग रहे। जरा भी टस-से-मस नहीं हुए। उनका तो कहना था—

माता भणइ ममत्तयइ मन्ती रज्जह नीति।
मज्झु पिआरी एक्क पइ वीर पुरिस को रीति॥
मान बिहूना भोअना सत्तुक देअल राज।
सरण पइट्ठे जीअना तीनिउ काअर काज॥[२]

इस प्रकार सबको कहकर दोनों राजकुमार बादशाह के उद्देश्य से जोनापुर (दिल्ली) को विदा हुए। उस समय उनकी दशा बड़ी दयनीय थी। सब प्रकार से वे दीन बन गये थे। फिर भी पाँव-पैदल ही उन्होंने इतनी लम्बी यात्रा प्रारंभ कर दी। विद्यापति ने उस समय का बड़ा ही कारुणिक वर्णन किया है—

---

१. मित्र-मजूमदार, 'विद्यापति-पदावली' की भूमिका, पृ० ४८।
२. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० २०।

राअह नन्दन पाजे चलु अइस विधाता भोर।
ता पेक्खन्ते कमण काँ नजग न लग्गई लोर॥[1]

बहुत दिनों के बाद दोनों भाई जोनापुर पहुँचे और सारा वृत्तान्त कहकर सुलतान से मिथिला के उद्धार की प्रार्थना की। प्रार्थना सुनकर असलान के ऊपर सुलतान को बड़ा क्रोध ही आया। उसने उसी समय आज्ञा दी—

खाण उमारा सब्ब के तं खणे भउ फरमान।
अपनेहु साँठे सम्पलहु तो तिरहुत्ति पआन॥[2]

फिर क्या था? सुलतान दल-बल के साथ गंडक नदी को पारकर तिरहुत पर आ धमका। असलान तो पहले से सुलतान का रास्ता रोके गंडक के किनारे पड़ा था। इसलिए सुलतान के आते ही रायपुर (हाजीपुर, मुजफ्फरपुर) के मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ दोपहर दिन में आ डटीं—

छन्द—

पैरि तुरङ्गम गण्डक का पाणी।
पर बलभञ्जन गरुअ महमद मदगामी॥
अरु असलाने फौदे फौदे निग सेना जसत्रि।
भेरी काहल ढोल तरल रणतूरा बजिअ॥
राएपुरहि का पुब्ब खेत पहरा दुइ बेरा।
बेबि सेन संघट्ट भेल बाजल भट-भेरा॥[3]

इस बार कीर्त्तिसिंह के साथ सुलतानी सेना थी। इसलिए असलान के पैर उखड़ गये। वह युद्ध के मैदान से भाग चला—

महराअन्हि मल्लिकँ चप्पि लिऊँ।
असलान निजानहु पिट्ठि दिऊँ॥[4]

इस प्रकार सुलतान की सहायता से कीर्त्तिसिंह ने असलान को मार भगाया और मिथिला का उद्धार किया। बादशाह ने अपने हाथों कीर्त्तिसिंह का राजतिलक किया और कीर्त्तिसिंह राजा हुए—

बन्धव जन उच्छाह करु तिरहुति पाइअ रूप।
पातिसाह जस तिलक करु कित्तिसिंह भउँ भूप॥[5]

---

१. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० २२।
२. वही, पृ० ६०।
३. वही, पृ० १००-१०२।
४. वही, पृ० ११२।
५. वही, पृ० ११४।

कवीश्वर चन्दा झा[1] और डाक्टर सुभद्र झा[2] ने 'कीर्त्तिलता' में वर्णित उपयुक्त कथानक के आधार पर लिखा है कि असलान ने जब मिथिला पर अधिकार कर लिया तब कीर्त्तिसिंह सुलतान से सहायता की याचना के लिए दिल्ली गये और दिल्ली के सुलतान की सहायता से उन्होंने असलान को पराजित कर मिथिला का उद्धार किया। हमने भी ऐसा ही लिखा है। किन्तु दूसरे इतिहासकारों ने कीर्त्तिलता में प्रयुक्त 'जोनापुर' को जौनपुर और 'इब्राहिम शाह' को जौनपुर का सुप्रसिद्ध नवाब इब्राहिम शाह मानकर लिखा है कि कीर्त्तिसिंह सहायता के लिए जौनपुर गये और वहाँ के सुलतान इब्राहिम शाह की सहायता से उन्होंने मिथिला का उद्धार किया। अब विचारणीय विषय यह है कि वस्तुतः कीर्त्तिसिंह दिल्ली गये थे या जौनपुर? यह पहले कहा जा चुका है कि असलान ने ल० सं० २५२ अथवा १३६१ ई० में राय गणेश्वर का वध किया था। उस समय कीर्त्तिसिंह छोटे थे। इसलिए वे चुप लगाकर बैठ गये। किन्तु जब वे सयाने हुए, तब पितृवैर का बदला लेने के लिए वे 'जोनापुर' के सुलतान के समीप गये। अब यदि 'जोनापुर' को जौनपुर और 'इब्राहिम शाह' को जौनपुर का प्रसिद्ध नवाब इब्राहिम शाह मान लिया जाय तो सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि जौनपुर की स्थापना कब हुई और इब्राहिम शाह गद्दी पर कब बैठा?

१३८८ ई० में सुलतान फीरोजशाह की मृत्यु के बाद बंगाल को छोड़कर उत्तर भारत में सर्वत्र अशान्ति फैल गई। दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। फीरोजशाह के उत्तराधिकारी आपस में लड़-झगड़कर दुर्बल पड़ गये। १३९४ ई० में जब फीरोजशाह के पुत्र सुलतान महम्मद शाह की मृत्यु हुई, तब उसका एक पुत्र केवल ४६ दिन राज्य करके मर गया। उसका दूसरा पुत्र महमूद 'नासिरुद्दीन महमूद' की उपाधि धारण करके सुलतान बना; किन्तु अमीर-उमरा ने फतेहखाँ के पुत्र और फिरोज़शाह के पौत्र नसरत् खाँ को सुलतान घोषित कर दिया। उसका नाम पड़ा—सुलतान नासिरुद्दीन नसरत् शाह। 'तारीख-ए-मुबारकशाही' के लेखक ने लिखा है कि नसरत् खाँ ने दोआब के बीच के भू-भाग, साँभर, पानीपत, रोहतक आदि पर कब्जा कर लिया। महमूद के पास केवल दिल्ली के आस-पास का भू-भाग रहा। इसी समय अवसर से लाभ उठाकर जौनपुर के ख्वाजा जहाँ ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी।[3]

ख्वाजा जहाँ की मृत्यु के बाद १४०१ ई० में इब्राहिम शाह जौनपुर की गद्दी पर बैठा। 'तारीख-ए मुबारकशाही' से पता चलता है कि १४०१ ई० में दिल्ली के सुलतान महमूद और उसके सेनापति इकबाल ने कन्नौज पर आक्रमण कर दिया। इब्राहिमशाह एक बड़ी सेना लेकर उससे जा भिड़ा। जब दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध-क्षेत्र में आमने-सामने आ डटीं, तब सुलतान महमूद इकबाल के घेरे से अपने को मुक्त करने के लिए, शिकार

---

१. पुरुष-परीक्षा (मिथिला-भाषानुवाद), पृ० २५८।
२. विद्यापति-गीत-संग्रह, भूमिका, पृ० ४४।
३. जर्नल ऑफ बिहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पृ० २६२ (१९२७ ई०)।

के बहाने इकबाल को छोड़कर इब्राहिम शाह के पास जा पहुँचा। किन्तु इब्राहिम शाह ने उसका स्वागत नहीं किया। इसलिए वह कन्नौज को लौट गया।[१] 'फिरिश्ता' में यह भी लिखा है कि इब्राहिम शाह १४०५ ई० से १४१६ ई० पर्यन्त दिल्ली-सुलतान के साथ लड़ाई में उलझा रहा।[२]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि १३६४ ई० में जौनपुर की स्थापना हुई और १४०१ ई० में इब्राहिम शाह जौनपुर की गद्दी पर बैठा। १३६१ ई० में असलान ने राय गणेश्वर का वध किया था और उस समय कीर्त्तिसिंह और वीरसिंह छोटे थे,—यह पहले कहा जा चुका है। सो, यदि उस समय कीर्त्तिसिंह पाँच वर्ष के भी रहे होंगे तो इब्राहिम शाह के सिंहासनाधिरोहण के समय अर्थात् १४०१ ई० में उनकी आयु ४५ वर्ष की हुई। इस स्थिति में विद्यापति का यह कहना नितान्त असंगत हो जायगा कि कीर्त्तिसिंह नवयौवना पत्नी को छोड़कर 'जोनापुर' गये। विद्यापति ने लिखा है—

धनि छोड्डिअ नवजोब्बना धन छोड्डिओ बहुत्त।
पातिसाह उद्देशे चलु गअनराअ को पुत्त ॥[३]

उपर्युक्त पद से यह भी ज्ञात होता है कि राय गणेश्वर के पुत्र—कीर्त्तिसिंह बादशाह के उद्देश्य से चले थे। किन्तु जौनपुर के सुलतान क्या बादशाह कहलाते थे? सदा-सर्वदा से दिल्ली के सिंहासन पर बैठनेवाले ही बादशाह कहलाते रहे हैं। इतना ही नहीं, 'जोनापुर' का वर्णन करते हुए विद्यापति लिखते हैं—

तं खने पेक्खिअ नअर सो जोनापुर तसु नाम।
लोअन केरा बल्लहा लच्छी के बिसराम ॥

छन्द

पेक्खिअउ पट्टन चारु मेखल जजोन नीर पखारिआ।
पासान कुट्टिम भीति भीतर चूह उप्पर ढारिआ ॥[४]

'जोनापुर' की मेखला को यमुना का पानी प्रक्षालित कर रहा था; किन्तु जौनपुर के समीप गोमती बहती है, यमुना नहीं। इसलिए जोनापुर को 'जौनपुर' होने का कतई संभव नहीं। विद्यापति ने जोनापुर के दरबार का जो वर्णन किया है, उसपर भी दृष्टिपात कीजिए—

तेलंगा बंगा चोल कलिंगा राआपुत्ते मण्डीआ।
निज भासा जम्पइ साहस कम्पइ जइ सूरा जइ पण्डीआ ॥[५]

---

१. जर्नल ऑफ बिहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पृ० २६६ (१९२७ ई०)।
२. ब्रीज—फिरिश्ता, भाग ४, परिच्छेद ७।
३. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० २२।
४. वही, पृ० २६।
५. वही, पृ० ४८।

'तेलंग, वंग, चोल और कलिंग के राजपुत्रों से 'जोनापुर' का दरबार भरा था। वे अपनी भाषा बोलते थे। यद्यपि वे शूर थे, पण्डित थे तथापि भय से थर्राते थे।' सो, तेलंग, वंग, चोल और कलिंग क्या कभी जौनपुर-साम्राज्य के अन्तर्गत थे? भारतीय इतिहास के विद्वानों से यह अविदित नहीं है कि पठानों के समय में अटक से लेकर कटक तक और हिमालय से कन्याकुमारी तक का सारा भू-भाग दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया था, जो कि फीरोजशाह तुगलक के समय तक वर्त्तमान रहा। उसके बाद ब्रिटिश शासनकाल में ही फिर आसेतु-हिमाचल एक सूत्र में ग्रथित होकर दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत हुआ। अतः उपयुक्त वर्णन जौनपुर-दरबार का नहीं, दिल्ली-दरबार का है,—यह निर्विवाद कहा जा सकता है।

किञ्च, जब वीरसिंह और कीर्त्तिसिंह से बादशाह ने पूछा कि 'किसने तिरहुत पर अधिकार किया?' तब वे कहते हैं—

"...जहाँ तोहें ताहाँ असलान, पढम पेल्लिअ तुज्झु फरमान..."[1]

सो, जौनपुर के सुलतान ने ओइनवार-साम्राज्य की स्थापना नहीं की थी —फरमान नहीं दिया था। यह पहले कहा जा चुका है कि मुहम्मद तुगलक ने ओइनवार-साम्राज्य की स्थापना की थी। यह भी पहले कहा चुका है कि गौड़ के सुलतान इलियास शाह ने जब मिथिला पर आक्रमण किया था तब फीरोजशाह तुगलक ने उसे मार भगाया था। इसलिए, उन लोगों का दिया हुआ ही फरमान था, जिसे असलान ने उठाकर फेंक दिया था। यदि कीर्त्तिसिंह जौनपुर के सुलतान इब्राहिम शाह के पास गये होते तो यह कदापि नहीं कहते कि 'असलान ने तुम्हारा फरमान फेंक दिया।' कीर्त्तिसिंह के उपर्युक्त कथन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि वे जौनपुर के सुलतान इब्राहिम शाह के समीप नहीं; किन्तु दिल्ली के बादशाह सुलतान फीरोजशाह तुगलक के समीप सहायता की याचना के लिए गये थे।

सुलतान की आज्ञा से सेना तिरहुत को चली; किन्तु किसी कारणवश पूर्वाभिमुख नहीं होकर पश्चिमाभिमुख हो गई। वह वहाँ तक पहुँच गई, जहाँ सेर के भाव पानी बिकता था, सौ पान के लिए सुवर्ण-टंक देना पड़ता था और चन्दन के भाव इन्धन बिकता था। विद्यापति ने लिखा है—

सेरें कीनि पानि आनिअ पीबए खयो कापड़ें छानिअ।
पानक सए सोनाक टङ्का चान्दन मूल इन्धन बिका॥[2]

ऐसा स्थान राजस्थान और गुजरात है, जहाँ आज भी पानी, पान और इन्धन का अभाव है। इसलिए, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है सुलतान की सेना राजस्थान और

---

१. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० ५८।
२. वही, पृ० ६८।

गुजरात तक पहुँची थी। किन्तु, किसी भी इतिहासकार ने यह नहीं लिखा है कि जौनपुर की सेना कभी गुजरात या राजस्थान गई थी। इसलिए, कीर्त्तिलता में प्रयुक्त 'जोनापुर' जौनपुर नहीं, दिल्ली ही है।

विद्यापति ने दिल्ली के लिए संस्कृत में भी योगिनीपुर का प्रयोग किया है। यथा—

अस्ति कालिन्दीतीरे योगिनीपुरन्नाम नगरम्। तत्र अल्लावदीनो यवनराजो बभूव।[1]

केवल विद्यापति ने ही दिल्ली के लिए 'योगिनीपुर' का प्रयोग नहीं किया है। जिस समय की यह घटना है, उस समय, अर्थात् चौदहवीं शती में मुसलमान बादशाह के संस्कृत-शिलालेख में भी दिल्ली के लिए 'योगिनीपुर' का प्रयोग हुआ है। यथा—

अस्ति कलियुगे राजा शकेन्द्रो वसुधाधिपः।
योगिनीपुरमास्थाय यो भुङ्क्ते सकलां महीम्॥
सर्वसागरपर्यन्तां वशीचक्रे नराधिपान्।
महमूदसुरत्राणो नाम्ना शूरोऽभिनन्दतु॥[2]

केवल संस्कृत में ही नहीं, उस समय के भाषा-कवियों ने भी दिल्ली के लिए 'योगिनीपुर' का प्रयोग किया है। दिल्ली के बादशाह सिकन्दरशाह (१४६०—१५१८ ई०) के समय में कवि ईश्वरदास ने 'सत्यवती-कथा' नाम की एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने बादशाह सिकन्दरशाह की राजधानी को 'योगिनीपुर' कहा है—

भादौ मास पाष उजियारा। तिथि नौमी औ मंगलवारा॥
नषत अस्विनी मेषक चंदा। पंच जना सो सदा अनंदा॥
जोगिनिपुर दिल्ली बड़ थाना। साह सिकन्दर बड़ सुलताना॥[3]

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कीर्त्तिलता में प्रयुक्त 'जोनापुर' इसी 'योगिनीपुर' का (योगिनीपुर = जोगिनीपुर = जोगनपुर = जोअनपुर = जोनापुर) अवहट्ठ रूप है। अस्तु।

यह पहले कहा जा चुका है कि जिस प्रकार इतिहासकारों ने 'जोनापुर' को भ्रमवश 'जौनपुर' मान लिया, उसी प्रकार 'इब्राहिमशाह' या इब्राहिमशाहि' को जौनपुर का नवाब इब्राहिमशाह मान लिया। इब्राहिमशाह १४०१ ई० में सिंहासनाधिरूढ हुआ था। इसलिए, ओइनवार-साम्राज्य के तिथिक्रम को उन्होंने इस प्रकार आगे घसीट दिया कि विद्यापति-कृत शकाब्द और लक्ष्मणाब्द के समन्वय को भी वे भुला बैठे। परन्तु, वस्तुस्थिति तो यह है कि

---

१. पुरुष-परीक्षा (चन्द्रकवि-कृत मिथिलाभाषानुवाद), पृ० १२।

२. जल्लालखोजा के गोमठ (बरिहागढ़, दमोह) का शिलालेख, वि० सं० १३८५, ए० ई०, भाग ११, पृ० ४४।

३. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ७३-७४।

'कीर्त्तिलता' में प्रयुक्त 'इब्राहिमशाह' या 'इब्राहिमशाहि' शब्द व्यक्तिविशेष की संज्ञा नहीं, सम्प्रदाय-विशेष की संज्ञा है। इस्लामधर्म के अनुसार 'इब्राहिम' एक पैगम्बर हैं।[१] अतएव, इस्लामधर्मावलम्बी अपने को 'इब्राहिमशाही' कहकर गर्व का अनुभव करते हैं। इसीलिए सैयद मेहदी अली खाँ ने लिखा है—

वह खून, जो इब्राहिम की रगों का हममें था, बदला गया। वह हड्डी, जो इसमाइल के खून से बनी थी, बदल गई। वह दिल, जिसमें हाशिमी जोश था, बदल गया। गर्ज कि चमड़ा बदल गया, रंग बदल गया, सूरत बदल गई, सीरत बदल गई; दिल बदल गया, ख्याल बदल गया, यहाँ तक कि मजहब भी बदल गया। तमाम वह जोश, जो उठे थे उस रेतीले जंगल अरब से, जिसने फारस और तमाम सेंट्रल एशिया को सरसब्ज व शादाब कर दिया था, हिन्दुस्तान में आकर बे-आब्-बंगाल में डूब गया।[२]

किञ्च कीर्त्तिलता में एक स्थान पर 'इमराहिमसाह', एक स्थान पर 'इबराहिमओ' और दो स्थान पर 'इबराहिमसाह' है। यथा—

सब्बउ नारि बिअक्खनी सब्बउ सुस्थित लोक।
सिरि इमराहिमसाह गुणे नहि चिन्ता नहि शोक।।[३]
× × ×
चलिअ तकतान सुरुतान इबराहिमओ,
कुरुम भण धराण सुण रणि बल नाहि मो।[४]
× × ×
इबराहिमसाह पआन ओ पुहुबि नरेसर कमन सह।
गिरिसाअर पार उँबार नहीं रैअति भेले जीब रह।।[५]
× × ×
इबराहिमसाहं पआनओ जं जं सेना सञ्चरइ।
खग्गि खेदि खुखुन्दि धसि मारइ जीवहु जन्तु न उब्बरइ।।[६]

ऊपर जिस कीर्त्तिलता से उद्धरण दिया गया है, वह नेपाल-दरबार-पुस्तकालय में सुरक्षित कीर्त्तिलता है, जिसे सर्वप्रथम म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने वंगाक्षर में प्रकाशित किया था। पश्चात् उसी के आधार पर डॉ० बाबूराम सकसेना ने नागराक्षर में उसे प्रकाशित किया। किन्तु, अन्यत्र उपलब्ध कीर्त्तिलता के पाठ से तुलना करने पर इसमें असंख्य पाठभेद

---

१. बृहत् हिन्दी-शब्दकोश, पृ० १६८।
२. त० अ०, १२६० हि० पृ० १५३ (मुसलमान, पृ० ५८-५९ से)।
३. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० ३८।
४. वही, पृ० ६४।
५. वही, पृ० ६८।
६. वही, पृ० ९८।

और भ्रान्तियाँ पाई जाती हैं। नागरी-प्रचारिणी सभा (काशी) में सुरक्षित कीर्त्तिलता के उपर्युक्त पदों में प्रथम 'इबराहिमसाह' के स्थान में 'इबराहिमसाहि' है। डेक्कन कॉलेज (पूना) में सुरक्षित कीर्त्तिलता की प्रति में भी 'इबराहिमसाहि' ही है। दूसरे 'इबराहिमओ' के स्थान में भी डेक्कन कॉलेज (पूना) की प्रति में 'इबराहिमा' है। तीसरे 'इबराहिमसाह' के स्थान में भी डेक्कन कॉलेज, पूना की प्रति में 'इबराहिमसाहि' है। चौथे 'इबराहिमसाह' के स्थान में वहाँ की प्रति में भी 'इबराहिमसाह' ही है। एशियाटिक सोसाइटी (बम्बई) में सुरक्षित कीर्त्तिलता की खंडित प्रति में भी प्रथम 'इबराहिमसाह' के स्थान में 'इबराहिमसाहि' है। तृतीय और चतुर्थ पल्लव खंडित रहने के कारण कहा नहीं जा सकता कि आगे 'इबराहिमसाह' था अथवा 'इबराहिमसाहि'! किन्तु ऊपर के पाठभेद से ज्ञात होता है कि 'इबराहिमसाह' से 'इबराहिमसाहि' का ही आधिक्य है। अतः, निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि विशुद्ध पाठ 'इबराहिमसाहि' ही है। और, 'इबराहिमसाही' किसी व्यक्तिविशेष का नहीं, संप्रदायविशेष का ही बोधक है। इतिहास में कहीं किसी बादशाह या सुलतान का आस्पद 'शाही' नहीं मिलता। अतः, जिस प्रकार नेपाल-दरबार-पुस्तकालय की प्रति में 'खेलतु कवेः' बिगड़कर 'खेलनकवेः' हो गया और विद्यापति 'खेलन कवि' हो गये, उसी प्रकार 'इबराहिमसाहि' भ्रष्ट होकर 'इबराहिमसाह' हो गया, जिसने जौनपुर का 'इब्राहिमशाह' बनकर विद्यापतिकालीन इतिहास को कई दशाब्दी आगे घसीट दिया।

डॉ० सुभद्र झा ने 'जोनापुर' को दिल्ली का पर्याय मानकर भी 'इबराहिमसाह' के विषय में लिखा कि 'प्रायः इब्राहिमशाह वहाँ का सेनापति रहा होगा।'[1] किन्तु, उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से यह निश्चित हो गया कि कीर्त्तिलता का विशुद्ध पाठ 'इबराहिंमसाहि' है, 'इबराहिमसाह' नहीं। और, 'इब्राहिमशाही' व्यक्तिविशेष की नहीं, सम्प्रदायविशेष की संज्ञा है। अतः, डॉ० झा का उपर्युक्त कथन तथ्य से बहुत दूर है। वस्तुस्थिति तो यह है कि कीर्त्तिसिंह फीरोजशाह तुगलक से सहायता की याचना के लिए दिल्ली गये थे और उसे असलान को मार-भगाने के लिए फिर एक बार मिथिला आना पड़ा था। यह घटना प्रायः १३७२ ई० के आसपास की है। कारण असलान ने राय गणेश्वर का वध १३६१ ई० में किया था और मिथिला में प्रवाद है कि मिथिला पर उसका अधिकार बारह वर्षों तक रहा।

यह पहले कहा जा चुका है कि ओइनवार-साम्राज्य तीन भागों में बँटा था; परन्तु उसके दो भाग चिरस्थायी नहीं हुए। भोगीश्वर और कुसुमेश्वर-वंश के राज्य असलान के चंगुल से मिथिला के उद्धार होने के कुछ दिनों के बाद ही प्रायः समाप्त हो गये तथा मिथिला पर सिद्ध कामेश्वर के कनिष्ठ पुत्र भवेश्वर का अधिकार हो गया। यद्यपि मिथिला-राजपंजी के अनुसार सन् १३४२ ई० में ही देवसिंह सिंहासनाधिरूढ हुए थे[2], तथापि

---

१. विद्यापति-गीत-संग्रह, भूमिका, पृ० ४२।

२. म० म० परमेश्वर झा, मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १५४।

अबतक उनके पिता भवेश्वर अवश्य जीवित थे। कारण, मिसरू मिश्र ने 'विवादचन्द्र' के प्रारंभ में लिखा है कि राजा भवेश ने पृथ्वी का 'बहुभर्तृकत्व' दोष मिटा दिया।[१]

किन्तु, फीरोजशाह तुगलक के अन्तिम दिनों में फिर उत्तर भारत में सर्वत्र अशान्ति छा गई। एक-एक कर राजे-महाराजे और सुलतान अपने को स्वतंत्र घोषित करने लगे। मिथिला भी इस समय शान्त नहीं रह सकी। क्रान्ति की लपट यहाँ भी पहुँच चुकी थी। इसलिए, महाराज शिवसिंह ने भी कर देना बन्द कर दिया। यद्यपि इस समय देवसिंह जीवित थे, तथापि राज्यकार्य का पूरा उत्तरदायित्व शिवसिंह के हाथों में आ चुका था, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। किन्तु, शिवसिंह अधिक दिनों तक 'अकर' नहीं रह सके। कारण, १३८८ ई० में जब फीरोजशाह का पौत्र एवं फतेह खाँ का पुत्र गयासुद्दीन तुगलक (द्वितीय) गद्दी पर बैठा[२] तब उसका ध्यान पूर्व भारत पर गया और शिवसिंह की बुलाहट दिल्ली से हुई। लाचार शिवसिंह को दिल्ली जाना पड़ा। वहाँ उन्हें शाही दरबार में रहने की आज्ञा मिली। पहले यह एक नियम ही था कि सम्राट् सामन्त-राजकुमारों को अपने दरबार में रखते थे। यद्यपि वहाँ उन्हें अपने अनुरूप सारी सुविधाएँ प्राप्त रहती थीं, तथापि वे निर्बन्ध नहीं रहते थे। सम्राट् का अंकुश उनके ऊपर रहता था। सम्राट् के अधीन राजकुमारों के रहने के कारण सामन्त राजे भी टस-से-मस नहीं कर सकते थे। उन्हें सदा यह भय बना रहता था कि यदि यहाँ हमने कुछ किया, तो वहाँ सम्राट् राजकुमारों से बदला ले बैठेगा। सो, शिवसिंह भी दिल्ली-दरबार में इसी बन्धन में पड़ गये। रागतरंगिणी में एक पद है, जिससे ज्ञात होता है कि इस दिल्ली-यात्रा में महाराज शिवसिंह के साथ महाकवि विद्यापति भी गये थे। इसीलिए, उन्होंने गयासुद्दीन के दीर्घ-जीवन की कामना की है। देखिए—

उधसल केस कुसुम छिरिआएल
खण्डित दशन अधरे।
नअन देखिअ जनि अरुन कमल दल
मधुलोभेँ बैसल भमरे ॥ ध्रु० ॥

कलावति! कैतव न करह आज।
कओन नागर सङ्ग रअनि गमओलह
कह मोहि परिहरि लाज ॥
पीन पओधर नखरेख सुन्दर
करे राखह कँ गोरि।

---

१. अभूदभूतप्रतिमल्लगन्धो राजा भवेशः किलः सार्वभौमः।
अत्याजयद्यो बहुभर्तृकत्वदोषं भुवोऽपि प्रभुरुग्रधामा ॥
—मिथिलाभाषामय इतिहास, पादटिप्पणी, पृ० ५२९।

२. दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ् इण्डियन पीपुल, भाग ६, पृ० ८२०।

मेरु शिखर नव उगि गेल ससधर
गुपुति न रहलिए चोरि ॥
बेकतेओ चोरि गुपुत कर कति खन
विद्यापति कवि भान ।
महलम जुगपति चिरें जिबें जीबथु
ग्यासदीन सुरतान ॥[१]

श्रीविमानविहारी मजूमदार ने लिखा है कि 'इसका पूरा नाम गियासुद्दीन आजम शाह था। इसका पिता सिकन्दरशाह और पितामह सुप्रसिद्ध सम्सुद्दीन इलियासशाह था। इसने अपने पिता सिकन्दरशाह के विरुद्ध विद्रोह करके संभवतः ७६३ हिजरी में बंगाल के सिंहासन पर अधिकार जमाया। × × × कहा जाता है, सुप्रसिद्ध कवि हाफिज ने इसे एक कविता लिखकर पठाई थी। ऐसे सुप्रसिद्ध विद्याप्रेमी का नाम विद्यापति के पद में आना स्वाभाविक है।'[२]

किन्तु, मजूमदार महाशय के उपर्युक्त कथन में कोई तथ्य नहीं है। कारण, प्रारंभ से ही बंगाल के सुलतानों की वक्र दृष्टि मिथिला पर थी। मिथिला के ओइनवारवंशीय राजे अपने को दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत मानते थे। इसलिए वे बंगाल के सुलतानों की आँखों के काँटे बने हुए थे। सर्वप्रथम सम्सुद्दीन इलियास शाह ने मिथिला पर आक्रमण किया था, जिसका उल्लेख हो चुका है। देवसिंह की मृत्यु के समय में भी दोनों सुलतान—बंगाल और जौनपुर के सुलतान—मिथिला पर चढ़ आये थे। इसका भी उल्लेख हो चुका है। महाराज शिवसिंह ने भी बंगाल के सुलतान के विरुद्ध दिनाजपुर के राजा गणेश की सहायता की थी। महाराज शिवसिंह के बाद भी बंगाल के सुलतान के साथ मिथिला के ओइनवार-साम्राज्य का अच्छा सम्बन्ध नहीं था—बराबर चख-चख होती ही रहती थी। अतएव, विद्यापति ने 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' के प्रारम्भ में महाराज भैरवसिंह के लिए 'शौर्यावर्जित-पञ्चगौडधरणीनाथः' विशेषण का प्रयोग किया है। ऐसी परिस्थिति में ओइनवार-साम्राज्य की छत्रच्छाया में रहनेवाले महाकवि ने बंगाल के किसी सुलतान के दीर्घजीवन की कामना की होगी, यह कथमपि संभव नहीं। श्रीविमानविहारी मजूमदार का ध्यान इस तथ्य की ओर नहीं गया। इसीलिए, उन्होंने विद्यापति के उपर्युक्त पद के 'ग्यासदीन सुरतान' को बंगाल का गियासुद्दीन आजमशाह मान लिया। अस्तु।

एक-एक कर कई वर्ष बीत गये; किन्तु शिवसिंह लौटकर नहीं आये। दिल्ली दूर होने के कारण वहाँ का समाचार भी समय पर नहीं मिलता था। महाराज देवसिंह अब वृद्ध हो चुके थे, अतः उन्हें अहर्निश अपने पुत्र शिवसिंह की चिन्ता सताये रहती थी। इसलिए, उन्होंने शिवसिंह को बन्धनमुक्त करके ले आने का भार विद्यापति को सौंपा। विद्यापति भी

१. रागतरंगिणी, पृ० ५७।

२. श्रीविमानविहारी मजूमदार, विद्यापति-पदावली, भूमिका, पृ० २७।

महाराज शिवसिंह के विना उदास रहते थे, इसलिए उन्होंने फिर एक बार दिल्ली की यात्रा की। यह घटना १३९४-९५ ई० की है। अब दिल्ली की गद्दी पर गयासुद्दीन (द्वितीय) नहीं, उसका भाई नसरतशाह—नसीरुद्दीन महमूद—था। विद्यापति के साथ नसरतशाह का पूर्व-परिचय नहीं था। इसलिए, अब की बार विद्यापति ने दिल्ली-दरबार में 'दिव्य-द्रष्टा कवि', अर्थात् 'अदृष्ट वस्तु को दृष्टवत् वर्णन करनेवाला कवि' कहकर अपना परिचय दिया और महाराज देवसिंह की ओर से शिवसिंह को बन्धनमुक्त करने की प्रार्थना की। नसरतशाह को विश्वास नहीं हुआ कि कोई कवि अदृष्ट वस्तु का दृष्टवत् वर्णन कर सकता है। अतः, उसने विद्यापति को अदृष्ट सद्यःस्नाता के वर्णन करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही विद्यापति ने इस प्रकार वर्णन प्रारंभ किया[१]—

कामिनि करए सनाने।
हेरतहि हृदअ हनए पँचवाने॥
चिकुर गरए जलधरा।
जनि मुख ससि डरेँ रोअए अधारा॥
कुचजुग चारु चकेवा।
निअ कुल मिलत आनि कओने देवा॥
तेँ सङ्काञे भुजपासे।
बान्धि धरिअ उडि जाएत अकासे॥
तितल वसन तनु लागू।
मुनिहुक मानस मनमथ जागू॥
भनहि विद्यापति गावे।
गुनमति धनि पुनमत जन पावे॥[२]

विद्यापति ने सद्यःस्नाता के वर्णन में कई पद कहे; किन्तु बादशाह को 'द्रिव्यद्रष्टा कवि' होने का पूरा विश्वास नहीं हुआ। अतः, उसने महाकवि को संदूक में बन्द करके कुँए में लटका दिया और ऊपर एक सुन्दरी को आग सुलगाने के लिए कहा। सुन्दरी आग सुलगाने लगी। बादशाह ने विद्यापति से कहा कि ऊपर जो कुछ हो रहा है, उसका वर्णन कीजिए तो शिवसिंह बन्धनमुक्त हो जायेंगे। फिर क्या था, विद्यापति ने वर्णन प्रारंभ किया—

साजनि! निहुरि फुकू आगि।
तोहर कमल भ्रमर मोर देखल,
मदन उठल जागि॥
जओ तोहेँ भामिनि भवन जएबह,
अएबह कओनहुँ बेला।

१. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ् इण्डिया, खण्ड ५, भाग २, पृ० ६७।
२. रागतरङ्गिणी, पृ० ७३।

जओ ई सङ्कट सओ जी बाँचत
होएत लोचन मेला ॥

इतना सुनते ही बादशाह को विद्यापति के कथन पर विश्वास हो गया और उसने शिवसिंह के बन्धनमुक्त होने की घोषणा कर दी। घोषणा सुनकर विद्यापति बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने इस प्रकार उपर्युक्त कविता की पूर्त्ति की[१]—

भनइ विद्यापति चाहथि जे विधि,
करथि से से लीला।
राजा सिवसिंह बन्धन-मोचन,
तखन सुकवि जीला ॥[२]

प्रायः शिवसिंह को बन्धनमुक्त करने के लिए विद्यापति को दिल्ली में कुछ समय तक रहना पड़ा था। कारण, विद्यापति के कई पदों में नसरतशाह के नाम दृष्टिगत होते हैं। कहते हैं, इसी यात्राक्रम में बादशाह नसरतशाह ने विद्यापति को 'कविशेखर' की उपाधि दी थी। अतएव, कई पदों में नसरतशाह के नाम के साथ 'कविशेखर' शब्द का प्रयोग विद्यापति ने अपन लिए किया है। यथा—

आनन लोनुअ वचने बोलए हसि।
अमिअ बरिस जनि सरद पुनिम ससि ॥ ध्रु० ॥
अपरुब रूप रमनिआ,
जाइते देखलि गजराज गमनिआ ॥
काजरेँ रञ्जित धवल नअन वर,
भमर मिलल जनि अरुन कमलदल।
भान भेल मोहि माँझ खीनि धनि,
कुच सिरिफल भरेँ भाँगि जाएति जनि ॥
कविशेखर भन अपरुब रूप देखि
राय नसरद साह भजलि कमलमुखि ॥[३]

यह पद विद्यापति का है। इसलिए, लोचन ने 'रागतरङ्गिणी' में उपर्यक्त गीत के नीचे स्पष्ट शब्दों में लिखा है—'इति विद्यापतेः।'

महाकवि विद्यापति की कवित्व-शक्ति से प्रसन्न होकर बादशाह ने शिवसिंह को छोड़ दिया। वे सकुशल मिथिला आ गये। किन्तु, इसी समय १३९८ ई० में तैमूरलङ्ग का आक्रमण हुआ और तुगलक-साम्राज्य की जड़ हिल गई। एक-एक कर राजे-महाराजे और

१. म० म० डॉ० उमेश मिश्र, विद्यापति ठाकुर, पृ० २९-३२।
२. नगेन्द्रनाथ गुप्त, विद्यापति-पदावली, पृ० ४५३।
३. रागतरङ्गिणी, पृ० ४५।

सुलतान स्वतंत्र होने लगे—जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। अवसर से लाभ उठाकर ख्वाजाजहाँ ने जौनपुर में स्वतंत्र साम्राज्य की स्थापना की। इस प्रकार मिथिला और दिल्ली के बीच एक स्वतंत्र साम्राज्य की स्थापना हो जाने के कारण अब मिथिला का सम्बन्ध दिल्ली से टूट गया। बंगाल पहले से स्वतंत्र था, अब जौनपुर भी स्वतंत्र हो गया। इस प्रकार मिथिला के दोनों ओर—पूर्व और पश्चिम में—दो स्वतंत्र तुर्क-साम्राज्य स्थापित हो गये। मिथिलाधिपति अपने को दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत मानते थे। इसलिए उन दोनों की वक्र दृष्टि मिथिला पर गड़ गई। किन्तु, ओइनवार राजे अपने को उनसे हीन नहीं समझते थे और उनकी अधीनता स्वीकार नहीं करते थे। विद्यापति-कृत 'लिखनावली' में ऐसे अनेक पत्र हैं, जिनसे पता चलता है कि उस समय मिथिला पर बार-बार यवनों का आक्रमण होता था।

फीरोजशाह तुगलक की मृत्यु और तैमूरलंग के आक्रमण से जो उलट-फेर हुआ, उससे लाभ उठाकर कई छोटे-बड़े राज्यों की सृष्टि हुई, जिनका उल्लेख पहले हो चुका है। इसी समय मिथिला से अव्यवहित पूर्व दिनाजपुर में राजा गणेश की अध्यक्षता में एक हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना हुई। राजा गणेश ने अपने को गौडाधिपति घोषित कर दिया। सर यदुनाथ सरकार का कहना है कि गणेश अपनी शक्ति से 'किंग मेकर' हो उठे थे। उन्होंने 'दनुजमर्दन' की उपाधि धारण की थी।[1] 'तबाकत-ए-अकबरी'[2] और 'फिरिश्ता'[3] में लिखा है कि गणेश ने सात वर्षों तक राज्य किया था; किन्तु कब से कबतक उनका राज्य-काल था, इसका उल्लेख उनमें नहीं है। सर यदुनाथ सरकार ने तात्कालिक सिक्कों का अध्ययन करके यह प्रमाणित करने का यत्किञ्चित् प्रयास किया है कि गणेश का राज्यकाल १४१३ ई० से १४१८ ई० पर्यन्त था। इस प्रकार, यद्यपि राजा गणेश के राज्यकाल की निश्चित तिथि उपलब्ध नहीं होती, तथापि इतना निश्चित है कि वे महाराज शिवसिंह के समसामयिक थे। महाराज शिवसिंह और राजा गणेश—दोनों ब्राह्मण थे। अतः, दोनों में अनायास मित्रता भी हो गई। इसीलिए, बंगाल के तत्कालीन सुलतान गयासुद्दीन ने जब राजा गणेश पर आक्रमण किया, तब उन्होंने महाराज शिवसिंह से सहायता की याचना की। बंगाल के नवाब बहुत पहले ही दिल्ली-साम्राज्य से पृथक् होकर अपने को स्वतंत्र घोषित कर चुके थे। किन्तु, ओइनवार-साम्राज्य प्रारंभ से ही दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत था। इस प्रकार, बंगाल के नवाब के साथ शिवसिंह का सहज मतभेद था। अतएव, राजा गणेश ने जब सहायता की याचना की, तब महाराज शिवसिंह ने विना किसी हिचकिचाहट के उनकी सहायता की। इस युद्ध में महाराज शिवसिंह की सहायता से राजा गणेश विजयी हुए, जिससे महाराज शिवसिंह का

१. हिस्ट्री ऑफ् बंगाल, भाग २, पृ० ११६-१२७।
२. तबाकत-ए-अकबरी, लखनऊ-संस्करण, पृ० ५२४।
३. फिरिश्ता, खण्ड २, पृ० २९७।

चतुर्दिक् यशोविस्तार हो गया। विद्यापति ने 'पुरुष-परीक्षा' के अन्त में बड़े गर्व के साथ इसका उल्लेख किया है।[१] विद्यापति ठाकुर को दिये गये 'बिसपी' ग्राम के दानपत्र में भी उपर्युक्त विजय का गान किया गया है।[२]

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि फीरोजशाह तुगलक की मृत्यु के बाद दिल्ली-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। ख्वाजाजहाँ ने जौनपुर में एक स्वतंत्र साम्राज्य की स्थापना करके पूर्व भारत से दिल्ली का सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया। बंगाल के नवाब पहले से ही दिल्ली-साम्राज्य से अलग हो चुके थे। जब जौनपुर स्वतंत्र हुआ, तब उन दोनों में दिल्ली-साम्राज्य के विरोधी होने के कारण अनायास ऐकमत्य हो गया। अब दोनों के बीच में मिथिला का ओइनवार-साम्राज्य था। वह उन दोनों में किसी की अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं था। इसलिए, जब गणेश ने सिर उठाया, तब शिवसिंह ने उसकी सहायता की, जिसका उल्लेख हो चुका है। संभव है, गणेश के साथ मिलकर स्वतंत्र हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना करना उनका लक्ष्य रहा हो और जिसका समर्थन राजा गणेश ने भी किया हो। इसीलिए, विद्यापति के कई पदों में शिवसिंह को 'पञ्चगौडाधिप' कहा गया है। किन्तु, इसीलिए महाराज शिवसिंह उन दोनों की—बंगाल और जौनपुर के सुलतानों की—आँखों के काँटे बन गये। इनपर दोनों ओर से सम्मिलित आक्रमण होने लगा। देवसिंह की मृत्यु के समय (१४०२ ई० में) दोनों सुलतान मिथिला पर चढ़ आये थे और दोनों को महाराज शिवसिंह ने परास्त किया था। विद्यापति ने भी इसका विशद वर्णन किया है, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। किन्तु, वे सुलतान भी चुप लगाकर बैठे नहीं रहे, घात में लगे ही रहे। अन्ततोगत्वा १४०६ ई० में, गयासबेग के नेतृत्व में, जौनपुर की सेना फिर मिथिला पर चढ़ आई। इस बार का आक्रमण बड़ा भयानक था। महाराज शिवसिंह बड़े दूरदर्शी थे। इसलिए, उन्होंने अपने परिवार को विद्यापति के संरक्षण में नेपाल-तराई में स्थित रजाबनौली के राजा पुरादित्य के यहाँ भेज दिया और स्वयं स्वतंत्रता की रक्षा के लिए युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़े। यह युद्ध इतना भयानक हुआ कि दूसरों की कौन कहे,—महाराज शिवसिंह का भी क्या हुआ,—इसका भी निश्चित पता नहीं चला। गजरथपुर उजाड़ हो गया। मिथिला की पवित्र भूमि शोणित से लाल हो गई। ओइनवार-साम्राज्य का गरुडाङ्कित झंडा झुक गया। मिथिला जौनपुर-साम्राज्य के अन्तर्गत हो गई।

---

१. यो गौडेश्वरगज्जनेश्वररणक्षोणीसु लब्ध्वा यशो-
दिक्कान्ताचयकुन्तलेषु नयते कुन्दस्रजामास्पदम् ।
तस्य श्रीशिवसिंहदेवनृपतेर्विज्ञप्रियस्याज्ञया
ग्रन्थं ग्रन्थिलदण्डनीतिविषये विद्यापतिर्व्यातनोत् ॥
—पुरुष-परीक्षा ।

२. देखिए पृ० १८—
येन साहसमयेन शस्त्रिणा तुङ्गवाहवरपृष्ठवर्त्तिना ।
अश्वपत्तिवलयोर्बलञ्जितं गज्जनाधिपतिगौडभूभुजाम् ॥

विद्यापति और ओइनवार-राजवंश

कर्णाट-साम्राज्य के संस्थापक इतिहास-प्रसिद्ध महाराज नान्यदेव जिस समय मिथिला आये, उस समय यहाँ नाह झा नामक एक सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने ही भविष्य-वाणी की थी कि नान्यदेव मिथिला के महाराज होंगे। इसलिए, जब नान्यदेव मिथिला के महाराज हुए, तब उन्होंने नाह झा को राजपण्डित के पद पर प्रतिष्ठित किया और 'ओइनी' नाम का गाँव दिया। 'ओइनी'-नामक गाँव के उपार्जन करने के कारण वे 'ओयन ठाकुर' नाम से प्रसिद्ध हुए। नाह झा स्वयं 'खौआड़ए'-वंशावतंस थे और जगतपुर के निवासी थे। किन्तु, जब 'ओइनी' गाँव उन्हें मिला, तब वे जगतपुर से ओइनी में आ बसे, इसीलिए उनके वंशज 'ओइनवार' कहलाये।

नाह झा—प्रसिद्ध ओयन ठाकुर—का 'राजपण्डित'-पद कर्णाट-साम्राज्य के अन्तिम दिनों तक उनके वंशजों के हाथ में रहा। उनके पुत्र, पौत्र आदि सभी ने अपने विद्या-वैभव से 'राजपण्डित'-पद को सुशोभित किया। कर्णाट-साम्राज्य के अन्तिम दिनों में, जब नान्यदेव के अतिवृद्धप्रपौत्र महाराज हरिसिंहदेव गद्दी पर थे[1], ओयन ठाकुर के अति-वृद्धप्रपौत्र सिद्ध कामेश्वर ठाकुर 'राजपण्डित' के पद पर थे।

यह पहले कहा जा चुका है कि महाराज रामसिंहदेव के समय में विद्यापति के प्रपितामह देवादित्य मंत्रिपद पर नियुक्त हुए। उनके पुत्र, पौत्र भी अपनी योग्यता से मंत्रिपद पर बने रहे। देवादित्य के पुत्र वीरेश्वर ठाकुर कर्णाट-साम्राज्य को 'सप्ताङ्गराज्यस्थितिः' में परिणत करके स्वयं सातों भाई राज्य के सातों अङ्ग पर बैठ गये। जिस समय महाराज हरिसिंहदेव गद्दी पर थे, उस समय देवादित्य के पौत्र एवं वीरेश्वर ठाकुर के पुत्र सप्तरत्नाकरकार चण्डेश्वर ठाकुर मंत्रिपद पर आसीन थे।

संयोग से इसी समय (शाके १४८ में[2]) महाराज हरिसिंहदेव ने पञ्जी-प्रबन्ध का निर्माण करवाया, जिसमें सात गोत्र के चौंतीस ब्राह्मण—जो विद्वान् होने के साथ अपरिग्रही थे, दान-दक्षिणा नहीं लेते थे, राज-सेवा नहीं करते थे, शिलोञ्छ-वृत्ति से जिनका जीवन-यापन होता था—श्रेष्ठ निर्धारित हुए।[3] उनमें भी जो वेदज्ञ थे, वे 'श्रोत्रिय' और जो दार्शनिक थे,

---

१. शास्ता नान्यपतिर्बभूव तदनु श्रीगङ्गदेवो नृप-
स्तत्सूनुर्नरसिंहदेवनृपतिः श्रीरामसिंहस्ततः।
तत्सूनुः किल शक्रसिंहविजयी भूपालवन्द्यस्ततो-
जातः श्रीहरिसिंहदेवनृपतिः कार्णाटचूडामणिः॥
—पञ्जी-प्रबन्ध (मिथिला-तत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १४६ से)

२. शाके श्रीहरिसिंहदेवनृपतेर्भूपार्क (१२१६) तुल्ये जनि-
स्तस्माद्दन्तमितेऽब्दके द्विजगणैः पञ्जीप्रबन्धः कृतः।
—पञ्जी-प्रबन्ध (मिथिला-तत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १३६ से)

३. सप्तगोत्राश्चतुस्त्रिंशद् ब्राह्मणाः पञ्जिकोद्भवाः।
अन्ये ये नवगोत्राः स्युः शाखायान्ते प्रकीर्त्तिताः॥
—पञ्जी-प्रबन्ध (मिथिला-तत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १४० से)

वे 'योग्य' कहलाये। इसका परिणाम यह हुआ कि जो कलतक श्रेष्ठ गिने जाते थे, वे ही आज निम्न श्रेणी में परिणत कर दिये गये। जो राजसम्मानित थे, जिनके कन्धों पर मिथिला का सारा उत्तरदायित्व था, वे लोग भी अलग-अलग रहने लगे। राजपण्डित कामेश्वर तो विरक्त होकर शुकवन (सुगौना, दरभंगा) में तपस्या करने चले गये। चारों ओर उदासी—चारों ओर मन-मुटाव! जो राजसभा शूरों और सामन्तों से भरी थी, जहाँ सप्तरत्नाकरकार चण्डेश्वर के समान मंत्री और सिद्ध कामेश्वर के समान राजपण्डित थे, वहाँ अब शिलोञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणों की पूजा होने लगी।

हरिसिंहदेव के इस अदूरदर्शितापूर्ण कार्य से कर्णाट-साम्राज्य की जड़ हिल गई। जो अपने थे, सभी पराये हो गये। ऐसी ही विकट परिस्थिति में लखनौती से लौटते हुए मुहम्मद तुगलक ने शाके १२४८ में मिथिला पर चढ़ाई की। गयासुद्दीन तुगलक ने भी इससे तीन वर्ष पहले (शाके १२४५ में) मिथिला पर चढ़ाई की थी, पर उसे विजय नहीं मिली थी। वह जिस प्रकार आया, उसी प्रकार लौट गया। पर, इस बार हरिसिंहदेव निस्सहाय थे। कोई भी उनका साथ देनेवाला नहीं था। लाचार होकर उन्होंने गिरि-गह्वर की शरण ली। चलते समय मार्ग में उन्होंने राजपण्डित कामेश्वर ठाकुर से भेंट की और मिथिला का राज्य उनके चरणों पर समर्पित कर दिया।[1] इस प्रकार कर्णाट-साम्राज्य की राजलक्ष्मी विना किसी प्रयत्न के ओइनवार के घर आ गई।

ओइनवार-वंश के प्रथम राजा कामेश्वर ठाकुर हुए। म० म० मुकुन्द झा बख्शी[2], म० म० परमेश्वर झा[3] और म० म० डॉ० उमेश मिश्र[4] ने लिखा है कि 'राजपण्डित कामेश्वर ठाकुर ने राज्य ग्रहण नहीं किया। वे सिद्ध पुरुष थे।' किन्तु, उनका कथन संगत नहीं प्रतीत होता। कारण, विद्यापति ने कीर्त्तिलता में कामेश्वर को राजा कहा है। यथा—

ता कुल केरा बड्डिपन कहवा कञ्मेन उँपाए।
जज्जम्मिअ उप्पन्नमति कामेसर सन राए॥[5]

कामेश्वर ठाकुर के चार पुत्र थे—लक्ष्मीश्वर (प्रसिद्ध—लखाई), भोगीश्वर, कुसुमेश्वर और भवेश्वर। अबतक के सभी इतिहासकारों ने लिखा है कि 'कामेश्वर की मृत्यु के बाद भोगीश्वर राजा हुए और भोगीश्वर के बाद उनके पुत्र गणेश्वर राजा हुए। असलान ने जब गणेश्वर का वध किया, तब गणेश्वर के पुत्र कीर्त्तिसिंह ने इब्राहिमशाह की सहायता से असलान को परास्त किया और स्वयं मिथिला की गद्दी पर बैठे। कीर्त्तिसिंह निस्सन्तान थे, इसलिए उनकी मृत्यु के बाद उनके पितामह-भ्राता भवेश्वर (भवेश या भवसिंह) गद्दी पर बैठे।' पर ये सारी बातें युक्तियुक्त नहीं हैं। कारण, मिथिला के मध्ययुगीन

---

१. 'साहित्य', वर्ष ९, अंक ३, पृ० ४३, १९५८ ई०।
२. मिथिलाभाषामय इतिहास, पृ० ५०३।
३. मिथिला-तत्त्वविमर्श, पृ० १४७-४८।
४. विद्यापति ठाकुर, पृ० १७।
५. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सकसेना), पृ० १०।

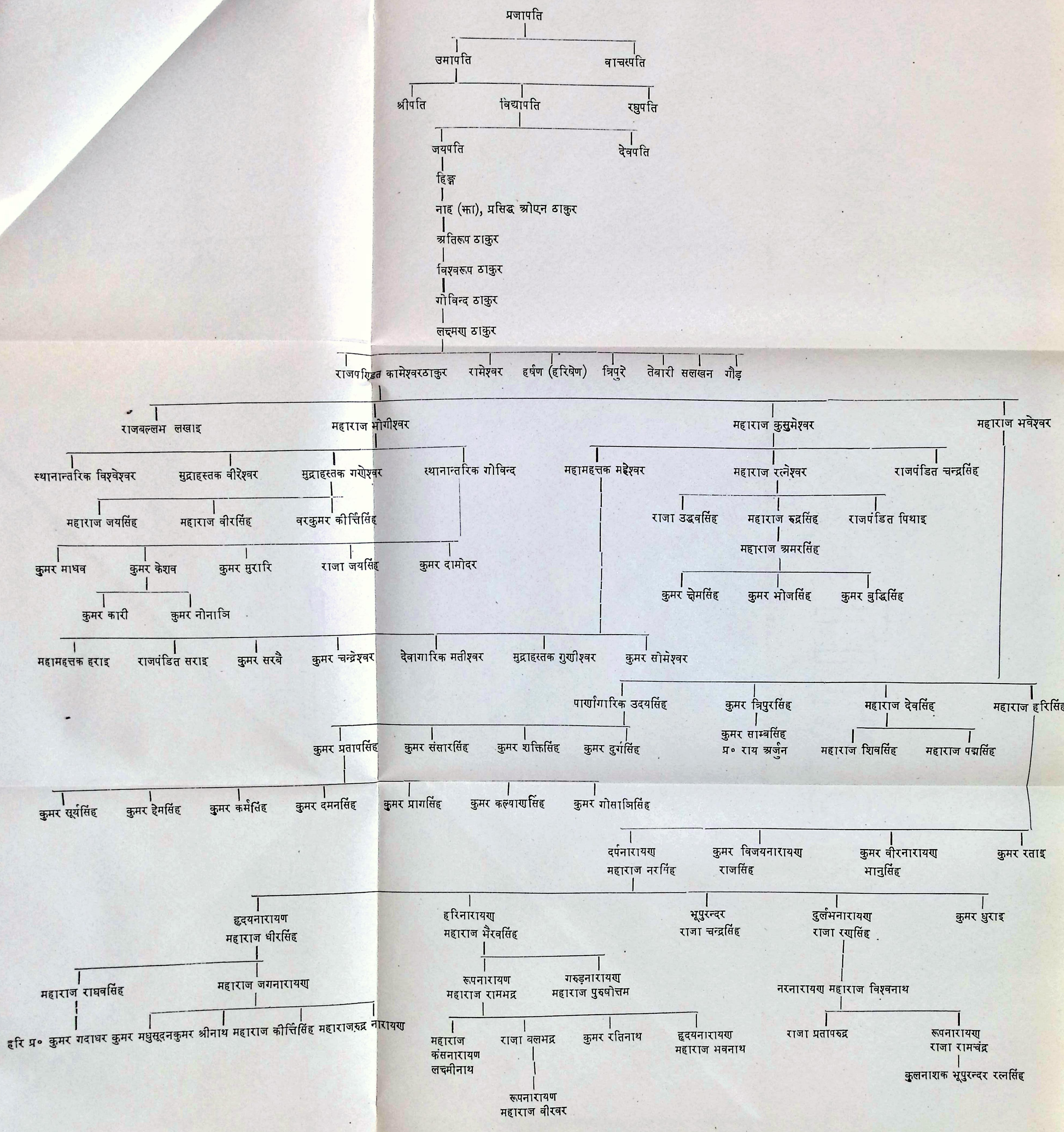
इतिहास की जानकारी के लिए सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ पञ्जी-प्रवन्ध है। मिथिला से दूर बैठकर मिथिला के इतिहास लिखनेवालों को सुनी-सुनाई बातों का ही सहारा रहता है। इसीलिए, डॉ० सुभद्र झा से पहले किसी ने भी ओइनवारों की विशुद्ध वंशावली तक नहीं दी। और, विना विशुद्ध वंशावली के किसी वंश का यथार्थ ज्ञान होना असंभव है। इतना ही नहीं, पञ्जी-प्रबन्ध की यह भी विशेषता है कि उसमें योग्यतानुसार नाम के साथ 'आस्पद' रहता है, जिससे इतिहास की बहुतेरी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। अतएव, ओइनवारवंशीय राजाओं की वंशावली सह-संलग्न है।

ओइनवारों की संलग्न वंशावली से पता चलता है कि राजपण्डित कामेश्वर ठाकुर के चार पुत्र थे। उनमें सबसे ज्येष्ठ लक्ष्मीश्वर राजवल्लभ थे, महाराज नहीं थे। संभव है, वे हरिसिंहदेव के राजवल्लभ रहे हों और राज-विप्लव में उनका अन्त हो गया हो। किन्तु उनसे छोटे तीनों भाई महाराज थे। कीर्त्तिसिंह की मृत्यु के बाद भवेश्वर गद्दी पर बैठे,— यह भी संगत नहीं जँचता। कारण, कीर्त्तिसिंह भवेश्वर के भाई के पौत्र थे। अतः, उनके भी पौत्र ही हुए। फिर, पौत्र की गद्दी पर पितामह का बैठना अयुक्त ही नहीं, हास्यास्पद भी है। यदि ऐसा मान भी लें, तो कामेश्वर को कौन-सा राज्य मिला कि वे महाराज कहलाये? पञ्जी-प्रवन्ध की प्रामाणिकता पर किसी को सन्देह होने की कतई गुंजाइश नहीं है। कारण, विद्यापति ने भोगीश्वर, कुसुमेश्वर और भवेश्वर -- तीनों के पुत्र, पौत्र आदि को अपने पदों में 'राजा' कहकर उल्लेख किया है, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा। मिथिला में यह प्रवाद भी है कि कामेश्वर ठाकुर के बाद मिथिला तीन हिस्सों में बँट गई। आरंभ में ये तीनों भाई ओइनी में हीं रहे; किन्तु बाद में उनके वंशजों ने अलग-अलग राजधानी बसाई।

महाराज भोगीश्वर के छोटे भाई महाराज कुसुमेश्वर की राजधानी कहाँ थी, इसका पता नहीं है; किन्तु सबसे छोटे भाई महाराज भवसिंह ने अपने लिए 'भवग्राम' वसाया, जिसे आजकल 'भभाम' कहते हैं। यह गाँव मधुबनी (दरभंगा) सबडिवीजन में है। यहाँ राजधानी लाने का कारण यह था कि समीप में मंत्रिवर चण्डेश्वर ठाकुर का निवास-स्थान 'हरडीह' (हरड़ी) था। चण्डेश्वर ठाकुर द्वारा स्थापित शिवलिंग 'चण्डेश्वर' आज भी यहाँ प्रतिष्ठित है। यहीं समीप में कुसुमेश्वर-वंशीय अन्तिम महाराज रुद्रसिंह का बसाया हुआ 'रुद्रपुर' भी है। महाराज भवसिंह के अन्तिम दिनों में, जबकि देवसिंह के हाथों में सम्पूर्ण ओइनवार-साम्राज्य का अधिकार आ गया, तब वे भवग्राम से हटकर दरभंगा के समीप वाग्मती नदी के किनारे अपने लिए 'देवकुली' नाम की नगरी वसाई, जिसे आजकल 'देकुली' कहते हैं। इसीके समीप में महाराज शिवसिंह का 'गजरथपुर' था, जो जौनपुर के आक्रमण के समय उजाड़ हो गया। किन्तु, बाद में वहाँ जो ग्राम बसा, उसे आजकल 'शिवसिंहपुर' कहते हैं।[1]

१. मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ० १५८।

ओइनवार-राजवंश


प्रजापति
उमापति
वाचस्पति
श्रीपति
विद्यापति
रघुपति
जयपति
देवपति
हिङ्ग
नाह (झा), प्रसिद्ध ओइन ठाकुर
अतिरूप ठाकुर
विश्वरूप ठाकुर
गोविन्द ठाकुर
लक्ष्मण ठाकुर
राजपण्डित कामेश्वरठाकुर
रामेश्वर
हर्षण (हरिषेण)
त्रिपुरे
तेवारी
सलखन
गौड़
राजवल्लभ लखाइ
महाराज भोगीश्वर
महाराज कुसुमेश्वर
महाराज भवेश्वर
स्थानान्तरिक विश्वेश्वर
मुद्राहस्तक वीरेश्वर
मुद्राहस्तक गणेश्वर
स्थानान्तरिक गोविन्द
महामहत्तक महेश्वर
महाराज रत्नेश्वर
राजपंडित चन्द्रसिंह
महाराज जयसिंह
महाराज वीरसिंह
वरकुमर कीर्त्तिसिंह
राजा उद्धवसिंह
महाराज रुद्रसिंह
राजपंडित पिथाइ
महाराज अमरसिंह
कुमर माधव
कुमर केशव
कुमर मुरारि
राजा जयसिंह
कुमर दामोदर
कुमर क्षेमसिंह
कुमर भोजसिंह
कुमर बुद्धिसिंह
कुमर कारी
कुमर नोनाञि
महामहत्तक हराइ
राजपंडित सराइ
कुमर सरबै
कुमर चन्द्रेश्वर
देवागारिक मतीश्वर
मुद्राहस्तक गुणीश्वर
कुमर सोमेश्वर
पार्णागारिक उदयसिंह
कुमर त्रिपुरसिंह
महाराज देवसिंह
महाराज हरिसिंह
कुमर प्रतापसिंह
कुमर संसारसिंह
कुमर शक्तिसिंह
कुमर दुर्गासिंह
कुमर साम्बसिंह
प्र० राय अर्जुन
महाराज शिवसिंह
महाराज पद्मसिंह
कुमर सूर्यसिंह
कुमर हेमसिंह
कुमर कर्मसिंह
कुमर दमनसिंह
कुमर प्रागसिंह
कुमर कल्याणसिंह
कुमर गोसाञिसिंह
दर्पनारायण
महाराज नरसिंह
कुमर विजयनारायण
राजसिंह
कुमर वीरनारायण
भानुसिंह
कुमर रताइ
हृदयनारायण
महाराज धीरसिंह
हरिनारायण
महाराज भैरवसिंह
भूपुरन्दर
राजा चन्द्रसिंह
दुर्लभनारायण
राजा रणसिंह
कुमर धुराइ
महाराज राघवसिंह
महाराज जगनारायण
रूपनारायण
महाराज रामभद्र
गरुड़नारायण
महाराज पुरुषोत्तम
नरनारायण महाराज विश्वनाथ
हरि प्र०
कुमर गदाधर
कुमर मधुसूदन
कुमर श्रीनाथ
महाराज कीर्त्तिसिंह
महाराजरुद्र नारायण
महाराज
कंसनारायण
लक्ष्मीनाथ
राजा वलभद्र
कुमर रतिनाथ
हृदयनारायण
महाराज भवनाथ
राजा प्रतापरुद्र
रूपनारायण
राजा रामचंद्र
कुलनाशक भूपुरन्दर रत्नसिंह
रूपनारायण
महाराज वीरवर

हरिसिंहदेव के बाद जब कामेश्वर ठाकुर राजा हुए, तब राजा तो बदल गया, पर राजतंत्र नहीं बदला। जो पार्षद हरिसिंहदेव से रुष्ट होकर दूर हो गये थे, वे सभी सिमटकर फिर ओइनवार-वंश की छत्रच्छाया में एकत्र हो गये। इसीलिए, मंत्रिवर चण्डेश्वर को हम महाराज भवेश्वर के मंत्रिपद पर आसीन देखते हैं, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने वृहद् ग्रंथ 'राजनीति-रत्नाकर' में किया है, जो महाराज भवेश्वर की आज्ञा से लिखा गया था।[1]

किञ्च, चण्डेश्वर के पितृव्य स्थानान्तरिक हरदत्त और उनके चचेरे भाई गोविन्ददत्त को हम कीर्त्तिसिंह के आश्रय में देखते हैं। कीर्त्तिसिंह जब सुलतान से सहायता प्राप्त करने को 'जोनापुर' जाते हैं और वहाँ उन्हें अपनी माता का स्मरण होता है, तब उन्होंने उन लोगों के नाम गिनाये हैं, जिनके ऊपर वे अपने परिवार का भार छोड़ आये थे। कीर्त्तिलता में विद्यापति ने लिखा है—

गुणे गरुअ मन्ति गोविन्ददत्त
तसु बंस बडाई कहओ कत्त।
हरक भगत हरदत्त जान
संगाम कम्म अज्जुन समान॥[2]

प्रवाद है कि विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर भी राय गणेश्वर के सभापण्डित थे। इस प्रकार कर्णाट-साम्राज्य में जो जिस पद पर थे, वे ओइनवार-साम्राज्य में भी यथास्थान वर्त्तमान रहे। फिर, ओइनवार-वंश और बिसैवार-वंश (विद्यापति बिसैवार-वंश के थे) तो बहुत पहले से एक साथ कर्णाट-साम्राज्य के प्रतिष्ठित पदों पर रह चुके थे। दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध रह चुका था। इसलिए, बिसैवार-वंशवालों के लिए ओइनवार-साम्राज्य का दरवाजा बराबर खुला था। ओइनवार-साम्राज्य के तीन भागों में बँट जाने पर भी कहीं उनके लिए रोक नहीं थी। इसलिए, विद्यापति का सम्बन्ध तीनों राजदरबारों से बराबर बना रहा और हर जगह उनका सम्मान होता रहा। विद्यापति ने भी अपने ग्रन्थों और पदों में नाम लिखकर तीनों राज-घरानों के राजाओं के नाम अमर कर दिये। जिन राजाओं और रानियों की आज्ञा से उन्होंने ग्रन्थ-रचना की, उनका परिचय भी उन्होंने अपने ग्रन्थों में लिख दिया। यथा—'कीर्त्तिलता' में कीर्त्तिसिंह का; 'भूपरिक्रमा' में देवसिंह का; 'पुरुष-परीक्षा', 'गोरक्ष-विजय' और 'कीर्त्तिपताका' में शिवसिंह का; 'शैवसर्वस्वसार' और 'गङ्गा-वाक्यावली' में महारानी विश्वासदेवी का; 'विभागसार' में नरसिंह 'दर्पनारायण' का, 'दानवाक्यावली' में महारानी धीरमति का तथा 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' में भैरवसिंह का सविस्तर परिचय है। ये सभी राजे और रानियाँ ओइनवार-वंश के थे। इनमें कीर्त्तिसिंह कामेश्वर-ठाकुर के द्वितीय पुत्र भोगीश्वर के पौत्र और गणेश्वर के पुत्र थे। शेष सभी कामेश्वर ठाकुर

---

१. राज्ञा भवेशेनाज्ञप्तो राजनीतिनिबन्धकम्।
तनोति मन्त्रिणामार्यः श्रीमाञ्चण्डेश्वरः कृती॥
—मि० म०, विद्यापति-पदावली, भूमिका, पृ० ३७।

२. कीर्त्तिलता, डॉ० बाबूराम सकसेना, पृ० ७४।

के चतुर्थ पुत्र भवेश्वर (भवेश या भवसिंह) के वंशज थे। विद्यापति ने एकमात्र 'लिखनावली' नाम की पुस्तक पुरादित्य 'गिरिनारायण' की आज्ञा से लिखी, जो ओइनवार नहीं, 'द्रोणवार'-मूलक भूमिहार ब्राह्मण थे। इसका विस्तृत विवरण 'विद्यापति के ग्रन्थ'-शीर्षक निबन्ध में दिया जायगा। यहाँ कवि के पदों में जिन राजाओं और रानियों के नाम आये हैं, उनका दिग्दर्शन कराया जाता है, जिससे पता चलेगा कि ओइनवारों के यहाँ कवि की कितनी मर्यादा थी।

विद्यापति के पदों में जिन राजाओं के नाम आये हैं, उनमें सबसे वयोवृद्ध भोगीश्वर हैं।[१] ये कामेश्वर ठाकुर के द्वितीय पुत्र थे। अबतक के उपलब्ध पदों में प्रायः कवि का सबसे पहला पद यही है। यह पद 'तरौनी-पदावली' का है। इसलिए, इसकी प्रामाणिकता पर कतई सन्देह नहीं किया जा सकता। श्रीविमानविहारी मजूमदार ने लिखा है कि "इस पद की भाषा इतनी आधुनिक, भाव इतना तरल और रचना-शैली इतनी निकृष्ट है कि इसे विद्यापति के बाल्यकाल की रचना कहकर भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। किञ्च, राय भोगीश्वर कीर्त्तिसिंह के पितामह थे। यदि उनके समय में विद्यापति कविता करते थे, तो विद्यापति का रचनाकाल पुरुष-चतुष्टयव्यापी हो जाता है। १३७१ ई० में भोगीश्वर के पुत्र गणेश्वर मारे गये। इसे विद्यापति की रचना स्वीकार करने से, १३७१ ई० से पहले—भोगीश्वर के राज्यकाल में—कवि की अवस्था कम-से-कम पन्द्रह-सोलह वर्षों की आवश्यक है, अर्थात् १३५४ ई० के आसपास कवि का जन्म मानना होगा। कीर्त्तिलता १४०४ ई० से पहले की रचना नहीं हो सकती और उसमें कवि ने अपने को 'खेलन कवि' कहा है तथा

---

१. मोराहि रे आँगना चाँदन केरि गछिआ
ताहि चढ़ि कुररए काग रे।
सोने चञ्चु बँधए देब मोञे बाअस
जञो पिआ आओत आज रे॥
(गावह) गावह सहिलोरि झूमरि
मञन अराधने जाञु रे।
चउदिसि चम्पा मउली फूललि
चान्द उजोरिए राति रे॥
कइसे कए (मोञ) मञन अराधाबा
होइति बड़ि रति साति रे।
(बाँक समअ कागा केओ ने अपन हित
देखल जाखि पसारि रे॥)
विद्यापति कवि गाविआ
तों क अछ गुनक निधान (रे)।
राउ भोगीसर (सव) गुन नागरा
पदमा देवि रमान (रे)॥

—न० गु० (तरौनी-पदावली), पद-सं० ८०१

बालचन्द्र के साथ अपनी तुलना की है। १३५४ ई० में जन्म होने से १४०४ ई० में विद्यापति की अवस्था ५० वर्ष की हो जाती है और ५० वर्ष की अवस्था का आदमी अपने को 'खेलन कवि' कहकर परिचय नहीं दे सकता। इसीलिए, यह पद किसी दूसरे ने लिखकर विद्यापति के नाम से चला दिया है।"[१]

किन्तु, मजूमदार महाशय का उपर्युक्त कथन तर्कसंगत नहीं है। कारण, वे इस पद की भाषा को आधुनिक मानते हैं, परन्तु इस पद के 'मोजे', 'जओ', 'सहिलोरि', 'मञन', 'जाञु', 'कइसे', 'अराधबा', 'गाबिआ', 'तों क', 'अछ', 'राउ' आदि शब्द आज मैथिली में प्रयुक्त नहीं होते। इनके रूप बहुत बदल गये हैं। मजूमदार महाशय इस पद के भाव को तरल और इसकी रचना-शैली को निकृष्ट मानते हैं; किन्तु न इसका भाव तरल है और न रचना-शैली निकृष्ट है। इसमें एक प्रोषितभर्त्तृका नायिका की मानसिक स्थिति का सूक्ष्म निदर्शन है। वह अपने प्रियतम की बाट जोहती हुई कागा उचारती है। सखियों के आग्रह करने पर भी वह न गाती है और न मदनोत्सव में सम्मिलित होती है। और, रचना-शैली का क्या कहना? विद्यापति के भी बहुत कम पदों में ऐसी रचना-शैली है। कोमल-कान्त-पदावली का यह उत्तम उदाहरण है। प्रसाद गुण इसमें कूट-कूटकर भरा है।

मजूमदार महाशय के दूसरे तर्क में भी कुछ तथ्य नहीं है। कारण, किसी भी दीर्घायु व्यक्ति का रचनाकाल पुरुषचतुष्टयव्यापी हो सकता है। फिर, विद्यापति तो पूर्ण दीर्घायु थे, जिसका विवेचन 'विद्यापति का जीवन-काल' में हो चुका है। अब शंका का विषय रहा—'खेलन कवि।' सो, 'कीर्त्तिलता' की अनेक प्राचीन पाण्डुलिपियों में 'खेलनकवेः' नहीं, 'खेलतु कवेः' पाठ है, जिसका सविस्तर विचार 'विद्यापति के ग्रन्थ'-शीर्षक निबन्ध में आगे किया जायगा। अतः, मजूमदार महाशय का यह तर्क भी निस्सार है। अथच, कीर्त्तिलता में विद्यापति ने बालचन्द्र से अपनी नहीं, अपनी भाषा की तुलना की है—'बालचन्द विज्जावइ भासा, दुहु नहि लग्गइ दुज्जन-हासा।' इसलिए, इस उपमोपमेय भाव से 'कीर्त्तिलता' के रचनाकाल में विद्यापति को 'बालक' कहना अयुक्तिक ही नहीं, हास्यास्पद भी है। अतः, भोगीश्वर-नामाङ्कित यह पद विद्यापति का है, इसमें शंका के लिए कुछ भी अवकाश नहीं है।

किञ्च, मिथिला की राजपञ्जी में भोगीश्वर और कुसुमेश्वरवंशीय राजाओं का राज्यकाल नहीं है। जो वंश समाप्त हो जाता है, उस वंश की पंजी भी उपेक्षित होकर समाप्त हो जाती है। इसलिए, उपर्युक्त दोनों राजवंशों के समय-निर्धारण में मिथिला की राजपंजी से सहायता नहीं मिल सकती। अतः, विद्यापति ने जो कुछ लिखा है, वही प्रमाण है और उसपर थोड़ा विचार करने से ही मजूमदार महाशय का सारा प्रयास धूलि-धूसर हो जाता है। देखिए, 'कीर्त्तिलता' में विद्यापति ने लिखा है—"लक्खणसेन नरेस लिहिअ जबे पक्ख पञ्च बे।" अर्थात्, ल० सं० २५२ में (१३६१ ई०) में, गणेश्वर मारे गये। गणेश्वर और देवसिंह दोनों चचेरे भाई थे, दोनों समसामयिक थे। मिथिला-राजपञ्जी के अनुसार

---

१. 'विद्यापति-पदावली' (मित्र-मजूमदार-संस्करण), भूमिका, पृ० २८-२९।

शाके १२७०, अर्थात् १३४८ ई० में महाराज भवसिंहदेव और शाके १३०६, अर्थात् १३८४ ई० में देवसिंह गद्दी पर बैठे। गणेश्वर की मृत्यु के बाद, जब असलान मारा गया, तब कीर्त्तिसिंह के राज्यकाल में कवि ने कीर्त्तिलता लिखी। किञ्च, 'अनल-रन्ध्र-कर लक्खण नरबए, सक समुद्द-कर-अगिनि-ससी' के अनुसार देवसिंह की मृत्यु और शिवसिंह का सिंहासनाधिरोहण १४०२ ई० में होता है। मिथिला में ऐसा प्रवाद है कि उस समय देवसिंह के पुत्र महाराज शिवसिंह की आयु ५० वर्ष की थी और विद्यापति उनसे दो वर्ष बड़े थे, अर्थात् विद्यापति की आयु ५२ वर्ष की थी। इस प्रकार, गणना करने से विद्यापति का जन्म १३५० ई० में होना निश्चित होता है। अतः, कीर्त्तिसिंह के राज्यकाल में, अर्थात् १३७२ ई० में कवि की अवस्था लगभग २२ वर्ष की थी। इसीलिए, 'कीर्त्तिलता' में वीररस से ओतप्रोत कवि का यौवनोद्रेक छलकता है। मिथिला में प्रवाद है कि असलान का मिथिला पर बारह वर्षों तक अधिकार रहा। 'कीर्त्तिलता' में प्रयुक्त 'जोनापुर' को जौनपुर और 'इब्राहिमशाहि' को जौनपुर का नवाव इब्राहिमशाह मानकर इतिहासकारों ने जो भ्रमजाल फैलाया, उसी में उलझकर मजूमदार महाशय ने लिखा है कि १४०४ ई० से पहले 'कीर्त्तिलता की रचना' हो ही नहीं सकती है। किन्तु, न 'जोनापुर' 'जौनपुर' है और न 'इब्राहिमसाहि' जौनपुर का नवाब इब्राहिमशाह है। इसका विवेचन पहले हो चुका है।

किञ्च, राय गणेश्वर की मृत्यु के बाद सुलतान से सहायता की याचना के लिए जब कीर्त्तिसिंह जोनापुर गये, तब भोगीश्वर जीवित थे। राय गणेश्वर की मृत्यु १३६१ ई० में हुई और असलान का मिथिला पर बारह वर्षों तक, अर्थात् १३७२ ई० तक अधिकार रहा, जिसका विवेचन 'विद्यापतिकालीन मिथिला' में हो चुका है। यदि १३७१ ई० में कीर्त्तिसिंह जोनपुर गये होंगे, तो उस समय विद्यापति की आयु बीस वर्ष की रही होगी और बीस वर्ष की आयु के कवि के लिए पूर्वोक्त भोगीश्वर-नामाङ्कित पद की रचना करना असंभव नहीं।

भोगीश्वर के बाद वयःक्रम से विद्यापति के पदों में मंत्री महेश्वर का नाम आता है।[1] ये महाराज भोगीश्वर के छोटे भाई महराज कुसुमेश्वर के ज्येष्ठ पुत्र और मंत्री भी थे।

---

१. लता तरुअर मण्डप दीअ, निरमल ससधर मिति धवलीअ ॥
पौञनाल ऐपन भल भेल, रात परीहन पल्लव देल ॥
गावह माइ हे मङ्गल आए, वसन्त बिआह वने पए जाए ॥
मधुकर रमनी मङ्गल गाब, दुजवर कोकिल मन्त्र पढाव ॥
करु मकरन्द हथोदक नीर, विधु वरिआती धीर समीर ॥
कनएकेआ सुति तोरन तूल, लावा बिथरल बेलिक फूल ॥
केसु कुसुम करु सिन्दुर दान, जउतुक पाओल मानिनि मान ॥
केलि कुतूहल नव पँचवान, विद्यापति कवि दिढ कए भान ॥
अभिनव नागर बुझए रसवन्त, मंति महेस रेणुकादेवि कन्त ॥
—रागतरंगिणी, पृ० ४६।

ओइनवारवंशीय राजाओं के यहाँ प्रतिष्ठित पदों पर अधिकतर अपने आदमी ही रहते थे, पञ्जी-प्रबन्ध में प्रयुक्त उनके आस्पदों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है। भोगीश्वर के चार पुत्रों में भी दो स्थानान्तरिक और दो मुद्राहस्तक थे। कीर्त्तिसिंह के पिता गणेश्वर, जिन्हें असलान ने मारा था, राजा होने से पहले —पिता के राज्यकाल में—मुद्राहस्तक ही थे। मिथिला में पहले मंत्री को ही 'महामहत्तक' का आस्पद रहता था।[१] मन्त्रिवर चण्डेश्वर का आस्पद भी 'महामहत्तक' ही था। अतः, राजकुमार होते हुए भी मंत्रिपद पर रहने के कारण महेश्वर का आस्पद पञ्जी-प्रबन्ध में 'महामहत्तक' ही है।

इनके बाद विद्यापति के पदों में देवसिंह का नाम आता है। देवसिंह महाराज भोगीश्वर के सबसे छोटे भाई महाराज भवेश्वर के पुत्र थे। विद्यापति के कई पदों में देवसिंह का नाम आता है।[२] इन्हीं की आज्ञा से कवि ने 'भू-परिक्रमा' लिखी थी, जिसका विवेचन 'विद्यापति के ग्रन्थ'-शीर्षक निबन्ध में आगे किया जायगा।

इनके बाद विद्यापति के पदों में हरिसिंह का नाम आता है। हरिसिंह महाराज भवेश्वर के कनिष्ठ पुत्र और महाराज देवसिंह के छोटे भाई थे। इनके नाम का एक ही पद मिलता है।[३]

उपर्युक्त गीत-नायकों में राय भोगीश्वर राजपण्डित कामेश्वर ठाकुर के पुत्र थे और मंत्री महेश्वर, देवसिंह तथा हरिसिंह पौत्र थे। ये चारों वयःक्रम में विद्यापति से बड़े थे।

---

१. म० म० मुकुन्द झा बख्शी, मिथिलाभाषामय इतिहास, पाद-टिप्पणी, पृ० ५१३।

२. ससन-परसें खसु अम्बर रे, देखल धनि-देह।
नव जलधर तर चमकए रे, जनि बीजुरि रेह॥
आज देखलि धनि जाइते रे, मोहि उपजल रङ्ग।
कनकलता जनि सञ्चर रे, महि निरअवलम्ब॥
ता पुनु अपरुब देखल रे, कुचयुग अरविन्द।
बिगसित नहि किछु—कारन रे, सोँझा मुखचन्द॥
विद्यापति कवि गाओल रे, बूझए रसमन्त।
देवसिंह नृप नागर र, हाँसिनि देवि-कन्त॥
—रागतरंगिणी, पृ० ४६।

३. सुपुरुष प्रेम सुधनि अनुराग।
दिने दिने बाढ अधिक दिन लाग॥
माधव हे मधुरापति नाह।
अपन वचन अपने निरबाह॥
कमलिनि सूर जाने अनुभाव।
भमि भमि भमर मदन गुन गाव॥
सुकवि विद्यापति एहु रस भान।
सिरि हरिसिंहदेव ई रस जान॥
—न० गु०, पद-संख्या ७६४।

यह कवि का प्रारंभिक काल था। अतः, इस समय के थोड़े ही पद प्राप्त होते हैं। कवि के ग्रन्थों में एक 'भू-परिक्रमा' ही है, जो इस समय का ग्रन्थ है।

इन चारों के बाद विद्यापति के पदों में गुणीश्वर, राय दामोदर, महाराज रुद्रसिंह, राय अर्जुन, महाराज शिवसिंह और पद्मसिंह के नाम आते हैं। ये सभी राजे कामेश्वर ठाकुर के प्रपौत्र थे।

इनमें गुणीश्वर महाराज कुसुमेश्वर के ज्येष्ठ पुत्र महामहत्तक महेश्वर के सबसे छोटे लड़के थे। इनके नाम का एक पद 'रामभद्रपुर-पदावली' में पाया जाता है।[1] स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने 'गुनीसर' के स्थान में 'महेसर' पाठ कर दिया है[2] और पाद-टिप्पणी में लिख दिया है कि अक्षर उड़ गये हैं। किन्तु, अक्षर उड़े नहीं हैं, स्पष्ट हैं। 'सिरि महेसर सुत गुनीसर हे'—में केवल दो वर्ण—सुत का 'सु' और 'गुनीसर' का 'नी'—अस्पष्ट हैं। किन्तु, उन्होंने 'गुनीसर' के स्थान में 'महेसर' पाठ करके एक ऐतिहासिक पुरुष का अवलोप कर दिया है।

राय दामोदर महाराज भोगीश्वर के कनिष्ठ पुत्र स्थानान्तरिक गोविन्द के आत्मज थे। 'तरौनी-पदावली' में इनके नाम का एक पद है।[3]

---

१. नगरक बानिनि ओरे हरि पुछ हरि पुछा
किए किए हाट विकाए ॥
× × ×
× × × ॥ ध्रु० ॥
हीरा मनि मानिक ओरे अनुपम अनुपमा
नाना रतन पसार ॥
एक नाल दुइ ओरे सिरिफर सिरिफला
सोना केर समान ॥
अधरा सिरिफल ओरे आञ्चर आञ्चरा
अधरा अधिके बिकाए ॥
विद्यापति कवि ओरे गाबिह गाबिहा
झूमरि बुझ रसमन्त ॥
सिरि महेसर सुत गुनीसर हे
जूड़म देवि - सुकन्त ॥

—रामभद्रपुर-पदावली, पद-संख्या ४१४।

२. विद्यापति-विशुद्ध पदावली, पृ० ६२-६३।

३. सुन्दरि गरुअ तोर विवेक।
बिनु परिचअ पेमक आँकुर
पल्लव मेल अनेक ॥

इनके बाद रुद्रसिंह का नाम विद्यापति के पदों में आता है। ये कामेश्वर ठाकुर के तृतीय पुत्र महाराज कुसुमेश्वर के पुत्र महाराज रत्नसिंह के आत्मज थे। इनके नाम के कई पद प्राचीन पाण्डुलिपियों में मिलते हैं।[1]

राय अर्जुन का नाम साम्वसिंह था; किन्तु वे 'राय अजुन' के नाम से प्रसिद्ध थे। महाराज भवेश्वर के द्वितीय पुत्र त्रिपुरसिंह के ये लड़के थे। त्रिपुरसिंह और देवसिंह में राज्य को लेकर प्रारंभ से ही वैमनस्य था, जो कि राय अर्जुन और शिवसिंह के समय में चरम सीमा पर जा पहुँचा। अन्ततः, शिवसिंह के मित्र राजा पुरादित्य 'गिरिनारायण' के हाथों राय अर्जुन मारे गये, जिसका उल्लेख विद्यापति ने 'लिखनावली' के प्रारंभ में किया है।[2] विद्यापति शिवसिंह के अभिन्न मित्र थे। फिर भी, उनके लिए राय अर्जुन का द्वार सदा उन्मुक्त था। ओइनवारवंशीय राजाओं में पारस्परिक मतभेद रहने पर भी कवि के लिए कहीं रोक नहीं थी। उनका सम्मान हर जगह था। इसीलिए, कवि ने भी अपने पदों में नाम देकर उन सबको अमर कर दिया, जो उनके सम्पर्क में आये।

कखने होएत सुफल दिवस
वदन देखब तोर।
बहुत दिवस भुखल भमर
पिउत चान्द चकोर॥
भन विद्यापति सुन रमापति
सकल गुननिधान।
चिरे जिवे जीवओ राय दामोदर
दसासए अवधान॥

—न० गु० (त० पदावली), पद-संख्या १२०।

१. मलय पवन बह। वसन्त विजय कह॥
भमर करइ रोल। परिमल नहि ओल॥
ऋतुपति रङ्ग देला। हृदअ रभस भेला॥
अनङ्ग मङ्गल मेलि। कामिनि करथु केलि॥
तरुन तरुनि सङ्गे। रइनि खेपवि रङ्गे॥
विरहि विपद लागि। केसु उपजल आगि॥
कवि विद्यापति भान। मानिनी जीवन जान॥
नृप रुद्रसिंह बरु। मेदिनी कलपतरु॥

—न गु० (त० पदावली), पद-संख्या ६१३।

२. जित्वा शत्रुकुलन्तदीयवसुभिर्येनार्थिनस्तर्पिता-
दोर्द्दर्पार्जितसप्तरीजनपदे राज्यस्थितिः कारिता।
सङ्ग्रामेऽर्जनभूपतिर्विनिहतो बन्धौ नृशंसायित-
स्तेनेयं लिखनावली नृपपुरादित्येन निर्मापिता॥

—लिखनावली।

विद्यापति के ऐसे कई पद प्राचीन पाण्डुलिपियों में मिलते हैं, जिनमें राय अर्जुन का नाम है।[1]

शिवसिंह तो विद्यापति के आश्रयदाता ही नहीं, अन्तरंग मित्र भी थे। इन्हीं के आश्रय में विद्यापति की कविता-कामिनी की मधुर तान ने दिग्-दिगन्त को आप्यायित कर दिया। विद्यापति और शिवसिंह में जैसा निश्छल प्रेम था, वैसा अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। पण्डितराज जगन्नाथ के जिस प्रकार 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' आधार थे, उसी प्रकार उनसे लगभग दो सौ वर्ष पहले विद्यापति के भी शिवसिंह आधार थे। अन्तर इतना ही है कि पण्डितराज जगन्नाथ के 'दिल्लीश्वर' जगदीश्वर से भी पहले आते हैं; किन्तु विद्यापति के 'रूपनारायण' नारायण के बाद ही आते हैं—

लक्ष्मीपती सर्वलोकाभिरामौ
चन्द्राननौ चारुपाथोदनीलौ।
तौ पूरुषौ लक्षणैस्तैरुपेतौ
नारायणो रूपनारायणो वा॥[2]

इसीलिए, विद्यापति के असंख्य पदों में शिवसिंह का नाम पाया जाता है।[3] 'असंख्य' इसलिए कि विद्यापति के सभी पद आज उपलब्ध नहीं होते। आज जितने पद

१. हेरितहि दीठि' चिन्हसि हरि गौरी।
चान्द किरन जइसे लुबुधि चकोरी॥
हरि बड़ चेतन तोरि बड़ि कला।
तेसर न जानए दुइ मन मेला॥
मोञे तञो भाव लागि भल दुजना।
मनसिज सर सन्धान तरुना॥
जीवन माह जउवन दिन चारी।
तथिहि सकल रस अनुभव नारी॥
भनइ विद्यापति बुझ रसमन्त।
राए अरजुन कमला देवि-कन्त॥

—न० गु० (त० पदावली), पद-संख्या ६९।

२. पुरुष-परीक्षा (चन्द्र-कवि-कृत मिथिलाभाषानुवाद-सहित) पृ० १६६।

३. सूखल सर, सरसिज भेल झाल।
तरुन तरनि, तरु न रहल हाल॥
देखि दरनि दरसाव पताल।
अबहुँ धराधर धरसि न धार॥ ध्रु०॥
जलधर जलधन गेल असेखि।
करए कृपा बड परदुख देखि॥
पथिक पिआसल आब अनेक।
देखि दुख मानए तोहर विवेक॥

प्राचीन पाण्डुलिपियों में ही उपलब्ध हैं, उनमें भी दो सौ पदों से अधिक पदों में 'राजा सिवसिंह रूपनराअेन लखिमा देइ रमाने' का उल्लेख है।

प्रसंगवश यहाँ 'लखिमा देवी' के विषय में कुछ विचार किया जाता है। विद्यापति ने अपने पदों की भणिता में जहाँ किसी राजा या राजपुरुष का नाम दिया है, वहाँ उसकी पत्नी का भी प्रायः नामोल्लेख कर दिया है। महाराज शिवसिंह के नाम के साथ भी विद्यापति ने उनकी पत्नियों के नामोल्लेख किये हैं। पञ्जी-प्रबन्ध से पता चलता है कि शिवसिंह की छह पत्नियाँ थीं। किन्तु, विद्यापति ने अपने पदों में शिवसिंह के साथ सर्वाधिक लखिमा का नामोल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि 'लखिमा' महाराज शिवसिंह की 'पट्टमहिषी' थीं। यह भी हो सकता है कि सभी रानियों में सर्वाधिक रूप-गुणवती लखिमा रही हों। अतएव, महाराज शिवसिंह का प्रेम सबसे अधिक उनपर रहा हो और इसीलिए विद्यापति ने भी अपने पदों में महाराज शिवसिंह के साथ बार-बार लखिमा का नामोल्लेख किया हो।[१] महाकवि का आदर-भाव भी लखिमा के प्रति अधिक था। महाकवि उन्हें वहुत उच्च दृष्टि से देखते थे, इसीलिए उन्होंने लखिमा को लक्ष्मी का अवतार कहा है—'लखिमा लखिमी-देहा।'

महामहोपाध्याय परमेश्वर झा ने लिखा है कि महाराज शिवसिंह की रानियों में कुल, शील, विद्या, सौन्दर्य आदि गुणों में लखिमा, जिनकी प्रसिद्धि लोक में 'लखिमा ठकुराइनि' नाम से है, सबसे बड़ी-चढ़ी थीं। इसीलिए, महाराज शिवसिंह की सर्वतोऽधिक प्रीति उनमें थी।[२] महामहोपाध्याय डॉ॰ उमेशमिश्र ने भी उन्हीं का अनुसरण करते हुए लिखा है कि 'इनकी (शिवसिंह की) अनेक स्त्रियाँ थीं—लक्ष्मणा देवी (प्रसिद्ध—लखिमा देवी या ठकुराइनि), मधुमति देवी, सुखमा देवी, सोरम देवी, मेधा देवी तथा रूपिणी देवी। × × × इनमें लखिमा देवी प्रायः सबसे बड़ी थीं। इन्हीं को राजा ने पट्टमहिषी वनाया था। अतएव, सब कार्य में इनकी प्रधानता दीख पड़ती है। यह बड़ी पण्डिता थीं। इनके रचित मैथिली में पद्य हैं या नहीं, यह अभी नहीं कहा जा सकता; किन्तु संस्कृत में तो अनेक हैं।'[३]

पलटलि आसा निरस निहारि।
कहदहुँ कओन होइति ई गारि॥
कओन हृदअ नहि उपजए रोस।
ओल धरि करिअ एहे पए दोस॥
विद्यापति भन बुझ रसमन्त।
राए सिवसिंह लखिमा देवि-कन्त॥

—विद्यापति-विशुद्ध-पदावली (रा॰ पदावली), पृ॰ २१-२२।

१. मिथिला-तत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ॰ १५७।
२. मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वार्द्ध, पृ॰ १५७।
३. विद्यापति ठाकुर, पृ॰ २५-२६।

किन्तु, उपर्युक्त दोनों विद्वानों के कथन में कोई तथ्य नहीं है। कारण, जिस प्रकार झा (ओझा) की पत्नी 'ओझाइनि', मिश्र की पत्नी 'मिसराइनि' और पाठक की पत्नी 'पठकाइनि' कहलाती हैं, उसी प्रकार ठाकुर (ठक्कुर) की पत्नी 'ठकुराइनि' कहलाती हैं महाराज शिवसिंह के प्रपितामह सिद्ध कामेश्वर का आस्पद 'ठाकुर' अवश्य था; पर उनके पुत्र भवेश्वर ने ही 'सिंह' आस्पद ग्रहण कर लिया, जिसका उपयोग अपने नाम के साथ उनके वंशजों ने ओइनवार-साम्राज्य के अन्तिम दिनों तक किया। इसीलिए, न महाराज शिवसिंह 'ठाकुर' थे और न उनकी पत्नी लखिमा 'ठकुराइनि' थीं। विद्यापति ने भी कहीं उनके लिए 'ठकुराइनि' का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने लखिमा को 'देइ' या 'देवि' आस्पद से ही सर्वत्र विभूषित किया है। यदि महाराज शिवसिंह की पत्नी लखिमा 'ठकुराइनि' कहलातीं, तो विद्यापति के साहित्य में कहीं-न-कहीं उनके नाम के साथ 'ठकुराइनि' का प्रयोग अवश्य मिलता। फिर, महाराज शिवसिंह की पत्नी लखिमा विदुषी थीं—संस्कृत में रचना करती थीं,—ऐसा न कहीं उल्लेख है, न प्रवाद ही। अतः, मिश्रजी का उपर्युक्त कथन नितान्त भ्रामक है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि मिथिला में एक नहीं, तीन लखिमा हो गई हैं, जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है। सर्वप्रथम सप्तरत्नाकरकार महामहत्तक मंत्रिवर चण्डेश्वर ठाकुर की पत्नी लखिमा ठकुराइनि थीं।[1] पञ्जी-प्रबन्ध से ज्ञात होता है कि वे फुलसरा (परगना—सीरीपुर, पूर्णिया) ग्राम-निवासी पगुलवार-धेनु-मूलक यशोधर झा की कन्या थीं। मायके का नाम 'सोहागुनि' था। मिथिला में प्रचलित प्रथा के अनुसार ससुराल आने पर उनका नाम लखिमा (लक्ष्मी) रखा गया।[2] आज भी मिथिला में कन्या जब ससुराल जाती है, तब वहाँ उसका पुनः नामकरण होता है।

यही लखिमा ठकुराइनि विदुषी थीं। मिथिला में प्रवाद है कि इन्होंने ही प्रायश्चित्त लिखकर हरिनाथ उपाध्याय की पत्नी का उद्धार किया था।[3] इन्होंने ही किसी पंडित की लिखी रघुवंश की संस्कृत-टीका को देखकर कहा था—'रघुरपि काव्यम्? तस्यापि टीका? सापि संस्कृतमयी?'[4] आज भी मिथिला की पण्डित-मण्डली में लखिमा ठकुराइनि के उपर्युक्त व्यङ्ग्य-वाक्य समय-समय पर व्यवहृत होते हैं। इन्हीं के बनाये कुछ संस्कृत-श्लोक मिथिला के लोककंठ में आज भी विद्यमान हैं।[5] जीवन के अन्तिम दिनों में मंत्रिवर चण्डेश्वर ने सर्वस्व-दान किया और सपत्नीक बिठुआर (मधुबनी, दरभंगा) गाँव में जाकर तपस्या करने लगे। आज भी वहाँ एक छोटा-सा टीला और एक छोटी-सी पुष्करिणी है, जिन्हें लखिमा ठकुराइनि की तपोभूमि और तालाब कहा जाता है।

---

१. घनानन्दझा, घटकराज, पृ० ५।
२. पञ्जीकार श्रीशिवदत्तमिश्र, सौराठ, दरभंगा।
३. घटकराज, पृ० १५।
४. वही, पृ० १६।
५. इण्डियन एण्टिक्वेरी, १८८६ ई०, पृ० ३४८।

महामहोपाध्याय डॉक्टर उमेशमिश्रजी का ध्यान इस ओर नहीं गया, इसीलिए उन्होंने लखिमा ठकुराइनि की कृति का सारा श्रेय महाराज शिवसिंह की पत्नी लखिमा देवी के सिर मढ़ दिया।

दूसरी लखिमा देवी महाराज शिवसिंह की पत्नी हैं, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। विद्यापति ने अपने पदों में इनका नामोल्लेख करके इन्हें अमर कर दिया है। तीसरी लखिमा देवी ओइनवारवंशीय महाराज भैरवसिंह के छोटे भाई राजा चन्द्रसिंह 'रूपनारायण' की पत्नी थीं। इनके दरबार में विद्वानों का जमघट लगा रहता था। ये विद्वानों का बड़ा सत्कार करती थीं। इन्हीं की आज्ञा से मिसरू मिश्र ने 'विवादचन्द्र' और 'पदार्थचन्द्र'-नामक ग्रन्थ लिखे थे।[१] अस्तु।

पद्मसिंह महाराज देवसिंह के सबसे छोटे पुत्र थे। महाराज शिवसिंह की मृत्यु के बाद ये ही मिथिला के राजसिंहासन पर समासीन हुए। इनके नाम का एक ही पद 'रामभद्रपुर-पदावली' में मिलता है।[२]

कामेश्वर ठाकुर की पीढ़ी में महाराज भैरवसिंह की आज्ञा से विद्यापति ने 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' लिखी थी, जिसका विवेचन आगे 'विद्यापति के ग्रन्थ'-शीर्षक निबन्ध में किया जायगा। भैरवसिंह महाराज भवेश्वर के सबसे छोटे पुत्र महाराज हरिसिंह के

---

१ श्रीमल्लखिमादेवी तस्य श्रीचन्द्रसिंहनृपतेर्दयितस्य।
मिसरूमिश्रद्वारा रचयति विवादचन्द्राभिरामम्॥
—'विवादचन्द्र' का आरंभिक श्लोक ('विद्यापति ठाकुर', टिप्पणी, पृ० ४४।)

श्रीचन्द्रसिंहनृपतेर्दयिता लखिमा महादेवी।
रचयति पदार्थचन्द्रं मिसरूमिश्रोपदेशेन॥
—'पदार्थचन्द्र' का आरंभिक श्लोक ('विद्यापति ठाकुर', टिप्पणी, पृ० ४४।)

२. एकहिं वेरिं अनुराग बढाओल
पञ्चबान भेल मन्दा।
अधर बिम्बवत जेति न पलिछए
न होअए दिवसक चन्दा॥ ध्रु०॥
माधव तुअ गुने लुबुधलि राही।
पिअ-बिसरन मरनहुँ तह आगर
तोहें नागर सब चाही॥
दुइ मन रभस तेसर नहि जानए
पर दए समन्दए न जाई।
चिन्ताञे चेतन अधिक बेआकुल
रहलि सुमुखि सिर नाई॥
भनइ विद्यापति सुनह मधुरेपति
तोहें छाडि गति नहि आने।
बिसवास देवि-पति रस-कोविन्दक
नृपति पदुमसिंह जाने॥

पौत्र एवं महाराज नरसिंह 'दर्पनारायण' के द्वितीय पुत्र थे। यह कवि का परिणत वय था। इस समय में उनके मुख से शान्तरस के ही पद प्रायः निकलते थे; किन्तु यदा-कदा शृंगार-रस के छींटे भी छलक पड़ते थे। इसीलिए, महाराज भैरवसिंह के सम-सामयिक अमरसिंह के नाम के कई पद प्राचीन पाण्डुलिपियों में उपलब्ध होते हैं।[1] अमरसिंह कामेश्वर ठाकुर के तृतीय पुत्र महाराज कुसुमेश्वर के प्रपौत्र और महाराज रत्नेश्वर के पौत्र तथा महाराज रुद्रसिंह के पुत्र थे। अतः, डॉ० सुभद्र झा का यह कथन युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता कि शिवसिंह के बाद विद्यापति के पदों में किसी राजा का नाम नहीं है।[2] कारण, अमरसिंह सम्बन्ध में शिवसिंह के भतीजे थे।

नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा संपादित 'विद्यापति-पदावली' में एक पद है, जिसमें राघवसिंह का नाम है।[3] अमूल्य विद्याभूषण और खगेन्द्रनाथ मित्र द्वारा संपादित 'विद्यापति-पदावली' में भी ऐसे कई पद हैं, जिनमें राघवसिंह का नाम है। किन्तु, ये पद किसी प्राचीन पाण्डुलिपि में उपलब्ध नहीं होते। सभी लोक-कण्ठ से संगृहीत हैं। अतः, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये पद इन्हीं विद्यापति के हैं।

---

१. कानने कानने कुन्द फूल।
पलटि पलटि ताहि भमर भूल॥
पुनमति तरुनि पिआ सङ्ग पाव।
बरिसे बरिसे ऋतुराज आब॥
रअनि छोटि हो दिबस बाढ़।
जनि कामदेव करवाल काढ़॥
मलआनिल पिब जुवति मान।
बिरहिनि-वेदन केओ न जान॥
भने विद्यापति रितु वसन्त।
कुमर अमर जानो देइ कन्त॥
—न० गु० (त० पदावली), पद-संख्या ७२४।

२. विद्यापति-गीत-संग्रह, भूमिका, पृ० ६१-६२।

३. मन परबस भेल परदेस नाह।
देखि निसाकर तन उठ धाह॥
मदन वेदन दे मानस अन्त।
काहि कहब दुख परदेस कन्त॥
सुमरि सिनेह गेह नहि आव।
दारुन दादुर कोकिल राब॥
ससरि ससरि खसु निबिबन्ध आज।
बड मनोरथ घर पहु न समाज॥
भनइ विद्यापति सुनु परमान।
बुझ नृप राघव नव पँचबान॥
—ग्रियर्सन ६१, न० गु० ७०१।

किञ्च, राघवसिंह महाराज भवेश्वर के पुत्र हरिसिंह के प्रपौत्र थे। हरिसिंह के पुत्र महाराज नरसिंह दर्पनारायण थे। दर्पनारायण के ज्येष्ठ पुत्र महाराज धीरसिंह हृदयनारायण थे। राघवसिंह इन्ही धीरसिंह के पुत्र थे।

महाराज भैरवसिंह की आज्ञा से विद्यापति ने 'दुर्गाभक्ति-तरंगिणी' का प्रणयन किया था, जिसका उल्लेख हो चुका है। राघवसिंह महाराज भैरवसिंह के बड़े भाई के पुत्र थे। अतः, समसामयिक होने पर भी विद्यापति और राघवसिंह में वय में महान् अन्तर था। उस समय विद्यापति तुरीयावस्था में पहुँच चुके थे। इसलिए, ऐसे शृंगारिक पद, जिनमें राघवसिंह का नाम है, इन्हीं विद्यापति के हैं, यह विश्वसनीय नहीं है।

इस प्रकार, विद्यापति के पदों के निरीक्षण-परीक्षण से पता चलता है कि राजपण्डित कामेश्वर ठाकुर के बाद मिथिला का राज्य तीन हिस्सों में—भोगीश्वर, कुसुमेश्वर और भवेश्वर में—बँट गया। किन्तु, विद्यापति का सम्मान सब जगह था। सभी राजे उनसे प्रसन्न थे। यदा-कदा उन राजाओं में मतभेद भी हो जाता था, वे एक-दूसरे के प्राण के ग्राहक भी हो जाते थे, जैसे राय अर्जुन और शिवसिंह एक दूसरे के प्राण के ग्राहक थे, फिर भी विद्यापति सर्वत्र सम्मानित रहे। यही कवि की महत्ता—विशेषता थी।

विद्यापति के ग्रन्थ

विद्यापति केवल महाकवि ही नहीं, महाविद्वान् भी थे। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। अनेक भाषाओं पर उनका अधिकार था। मैथिली में उन्होंने कविताएँ लिखीं, तो अवहट्ठ में कीर्त्तिलता और कीर्त्तिपताका नाम की पुस्तकें लिखकर वीर-गाथा-काव्य का श्रीगणेश किया। इसी प्रकार, संस्कृत में उन्होंने अनेक विषयों पर अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। इन ग्रन्थों के अध्ययन-मनन से उनके विशाल पाण्डित्य का पता चलता है। विद्यापति के पदों के सम्बन्ध में तो आगे विचार किया जायगा। यहाँ केवल उनके ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

(१) *कीर्त्तिलता*—यह ग्रन्थ अवहट्ठ भाषा में है। इसमें महाराज कीर्त्तिसिंह का यशोवर्णन है। कीर्त्तिसिंह के पिता राए गणेश्वर को असलान-नामक किसी यवन ने छल से मार डाला और मिथिला पर अधिकार कर लिया। कीर्त्तिसिंह अपने भाई वीरसिंह के साथ 'जोनापुर' गये और वहाँ के सुलतान की सहायता से असलान को युद्ध में परास्त कर पितृवध का बदला लिया तथा मिथिला का उद्धार किया। इसी का वर्णन विद्यापति ने इसमें किया है। आरंभ में मंगलाचरण के बाद निम्नलिखित श्लोक हैं—

गेहे गेहे कलौ काव्यं श्रोता तस्य पुरे पुरे।
देशे देशे रसज्ञाता दाता जगति दुर्लभः॥
श्रोतुर्ज्ञातुर्वदान्यस्य कीर्त्तिसिंहमहीपतेः।
करोति कवितुः काव्यं भव्यं विद्यापतिः कविः॥

इस ग्रन्थ की रचना के समय विद्यापति प्रौढ हो चुके थे। उन्हें अपने ऊपर—अपनी कृति के ऊपर—पूर्ण विश्वास हो चुका था। इसीलिए वे आगे लिखते हैं—

सुअण पसंसइ कब्ब मझु दुज्जन बोलइ मन्द।
अबसओ बिसहर बिस बमइ अमिअ बिमुक्कइ चन्द॥

× × ×

बालचन्द बिज्जावइ भासा
दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा॥
ओ परमेसर हर सिर सोहइ
ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ॥
का परबोधओ कवण मणावओ
किमि नीरस मने रस लए लावओ।
जइ सुरसा होसइ मझु भासा
जो बुज्झिह सो करिह पसंसा॥
महुअर बुज्झइ कुसुमरस कब्ब कलाउ छइल्ल।
सज्जन पर उँअआर मन दुज्जन नाम मइल्ल॥
सक्कय वाणी बुहअन भावइ
पाउँअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल बअना सब जन मिट्ठा
तओ तइसन जम्पओ अवहट्ठा॥

इस ग्रन्थ में चार पल्लव हैं। भृंगी और भृंग के प्रश्नोत्तर के रूप में कथा का विस्तार होता है। आरंभ में—

भृंगी पुच्छइ भृंग सुन की संसारहि सार।

भृंग उत्तर देता है—

माननि। जीवन मान सओ वीर पुरुस अवतार।

भृंगी पुनः पूछती है—

वीर पुरुस कइ जम्मिअइ नाह न जम्पइ नाम।
जइ उच्छाहे फुर कहसि हओ आकण्डन काम॥

इसपर 'पुरुष' की प्रशंसा करते हुए भृंग कहता है—

पुरिस हुअउँ बलिराए जासु कर कन्न पसारिअ
पुरिस हुअउँ रघुतनअ जेन बले रावण मारिअ।
पुरिस भगीरथ हुअउँ जेन्ने णिअ कुल उद्धरिअउँ
परसुराम अरु पुरिस जेन्ने खत्तिअ खअ करिअउँ।

अरु पुरिस पसंसओ राएगुरु किर्त्तिसिंह गअ्रोस सुअ
जे सत्तु समर सम्मद्दि करु बप्प बैर उद्धरिअ धुअ ॥

इस प्रकार, प्रत्येक पल्लव के प्रारंभ में भृंगी पूछती है और भृंग उत्तर देता है। प्रत्येक पल्लव के अन्त में एक-एक आशीर्वादात्मक श्लोक है। चतुर्थ पल्लव के अन्त में निम्नलिखित श्लोक है—

एवं सङ्गरसाहसप्रमथनप्रालब्धलब्धोदयाम्
पुष्णाति श्रियमाशशाङ्कतरगिं श्रीकीर्त्तिसिंहो नृपः।
माधुर्यप्रसवस्थली गुरुयशोविस्तारशिक्षासखी
यावद्विश्वमिदञ्च खेलतु कवेर्विद्यापतेर्भारती ॥

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री को नेपाल-दरबार के पुस्तकालय में कीर्त्तिलता की एक प्राचीन पाण्डुलिपि प्राप्त हुई, जिसे उन्होंने प्रकाशित किया। पाठोद्धार के समय शास्त्री महोदय ने भ्रमवश उसमें उपर्युक्त श्लोक के 'खेलतु कवेः' के स्थान में 'खेलनकवेः' पढ़ लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बाद के प्रकाशकों ने—डॉ० बाबूराम सकसेना और श्रीशिवप्रसाद सिंह ने—भी उन्हीं का पदानुसरण कर अपने-अपने संस्करण में 'खेलनकवेः' पाठ को ही स्वीकार कर लिया। इसीलिए, भ्रमवश महामहोपाध्याय डॉ० उमेश-मिश्र[१], डॉ० विमानविहारी मजूमदार[२], डॉ० जयकान्तमिश्र[३], डॉ० उपेन्द्र ठाकुर[४] आदि ने भी विद्यापति का उपनाम 'खेलनकवि' मान लिया। प्रायः इसीलिए स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने कीर्त्तिलता को विद्यापति की प्रथम रचना मान लिया।[५] किन्तु, कीर्त्तिलता की रचना-शैली और शब्द-विन्यास से ही जान पड़ता है कि यह कवि के प्रौढ वय की रचना है। जबतक कवि में प्रौढता नहीं आती—अपने ऊपर विश्वास नहीं होता—अपनी कवित्व-शक्ति पर अभिमान नहीं होता, तबतक वह उपर्युक्त गर्वोक्तियाँ कैसे लिखता? अथच, नेपाल-दरबार के पुस्तकालय की पाण्डुलिपि सुलभ नहीं। इसलिए, उसमें कैसा पाठ है, यह तो निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता; किन्तु रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (बम्बई) और अनूप पुस्तकालय (बीकानेर) में जो कीर्त्तिलता की प्राचीन पाण्डुलिपियाँ हैं, उनमें स्पष्ट रूप से 'खेलतु कवेः' पाठ है। स्वर्गीय चन्दा झा की लिखी हुई कीर्त्तिलता की एक प्रति जायसवाल रिसर्च-इन्स्टीच्यूट, पटना में सुरक्षित है। उसमें भी 'खेलतु कवेः' पाठ ही है। अतः, 'खेलन कवि' को विद्यापति का उपनाम मानना और कीर्त्तिलता को उनकी प्रथम रचना स्वीकार करना

---

१. विद्यापति ठाकुर, पृ० ६४।
२. विद्यापति-पदावली, भूमिका, पृ० ११।
३. हिस्ट्री ऑफ् मैथिली लिटरेचर, भाग १, पृ० ३८।
४. हिस्ट्री ऑफ् मिथिला, पृ० २९९।
५. महाकवि विद्यापति, पृ० ५७।

कथमपि संगत नहीं है। इसीलिए, डॉ० सुभद्र झा ने 'खेलनकवेः' पाठ का युक्तियुक्त खण्डन करते हुए 'खेलतु कवेः' पाठ का समर्थन किया है, जो सर्वथा समीचीन है।[१]

(२) *कीर्त्तिपताका*—यह ग्रन्थ भी अवहट्ठ भाषा में है। इसमें महाराज शिवसिंह का यशोवर्णन है। दोहा और छन्द में यह ग्रन्थ लिखा गया है। कहीं-कहीं संस्कृत के श्लोक भी हैं। बीच-बीच में गद्य भी है। प्रारंभ में अर्धनारीश्वर चन्द्रचूड शिव और गणेश की वन्दना है। इसके बाद कवि कहता है—

पण्डिअ मण्डलि बद्धगुणे भीषम कीर मुहेन।
वाणी महुर महग्घ रस पिअउ सुअन सबलेन॥

इसके बाद कवि ने महाराज शिवसिंह के आचरण का वर्णन करते हुए लिखा है—

धम्म देखी व्यवहार लोक नहि, नहइ पर भेद। सबकाँ घर ऊब्बाह पलटि जनि जम्मिअ। बाहर दाने दलइ। दारिद्द खग्गोपरि पडी खण्डिअ। उस पऊरुस पत्राणे ····· तिरहुति मज्जादा बहि रहिअ। करि तुरअ पत्ति पअभार-भरे कुरुसु कोर कसमसि सहिआ। —आदि।

इसके बाद शृङ्गार रस के कतिपय पद्य हैं। फिर, सुलतान के साथ महाराज शिवसिंह के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। शिवसिंह की जय का जैसा वर्णन विद्यापति ने इसमें किया है, प्रायः वैसा वर्णन किसी भी दूसरे वीर-गाथा-काव्य में नहीं है। अंत में वे लिखते हैं—

एवं श्रीशिवसिंहदेवनृपतेः सङ्ग्रामजातं यशो
गायन्ति प्रतिपत्तनं प्रतिदिशं प्रत्यङ्गणं सुभ्रुवः।

इसकी एकमात्र खण्डित हस्तलिखित प्रति नेपाल-दरबार के पुस्तकालय में है। बीच के लगभग बाईस पत्र नहीं है। यत्र-तत्र छूट भी है।[२]

(३) *गोरक्ष-विजय*—यह एकाङ्की नाटक है। इसके कथोपकथन संस्कृत और प्राकृत में हैं तथा गीत मैथिली में। गोरक्षनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ की कथा के आधार पर कवि ने इसकी रचना की है। इसकी वर्णन-शैली प्रौढ और भाषा प्राञ्जल है। महाराज शिवसिंह की आज्ञा से भगवान् भैरव के प्रसादार्थ यह नाटक लिखा गया था। यथा—

नटः—श्रीविद्यापतिसत्कवीश्वरस्य गोरक्षविजयनामनाटकनटनाय महाराजाधिराज-श्रीमच्छिवसिंहदेवपादैः स्वहेतुकार्थं श्रीमद्भैरवभक्तये आज्ञापितोऽस्मि।

अर्धनारीनटेश्वर की वन्दना से नाटक का प्रारंभ होता है। उनमें भी पहले शिव की वन्दना है, फिर पार्वती की। यथा—

हर्षादम्भोजजन्मप्रभृतिदिविषदां संसदि प्रीतिमत्याः
गौर्या मौलौ पुरारेर्दु···तिपरिणये साक्षतं चुम्ब्यमानम्।

---

१. विद्यापति-गीतसंग्रह, भूमिका, पृ० २६।

२. इसकी प्रतिलिपि म० म० डॉ० उमेशमिश्र (प्रयाग) के पास है।

तद्वक्त्रं शैलिवक्त्रैर्मिलितमिति भृशं वीक्ष्य चन्द्रः सहासो
दृष्ट्वा तद्वृत्तमाशु स्मितसुभगमुखः पातु वः पञ्चवक्त्रः ॥

अपि च—

वक्त्राम्भोरुहि विस्मिताः स्तवकिताः वक्षोरुहि स्फारिताः
श्रोणीसीमनि गुम्फिताश्चरणयोरक्ष्णोः पुनर्विस्तृताः ।
पार्वत्याः प्रतिगात्रचित्रगतयस्तन्वन्तु भद्राणि वो-
विद्धस्यान्तिकपुष्पसायकशरैरीशस्य दृग्भङ्गयः ॥

शरद् ऋतु का वर्णन भी अपूर्व है । देखिए—

पिबति तमः शशिलेखा विकसति पद्मं हसन्ति कुमुदानि ।
लघुरपि राजति तारा गुरुरपि सीदति पयोवाहः ॥
प्रफुल्लसप्तच्छदगन्धलुब्धा मुग्धाः प्रभातोत्पलसौरभेषु ।
[भुग्नाश्च किञ्जल्क] भरेण भृङ्गा भूयोऽत्र कुर्वन्ति गतागतानि ॥

इसकी एकमात्र खंडित प्रति नेपाल-दरबार के पुस्तकालय में है । बारह पत्रों में ही नाटक सम्पूर्ण है । उनमें भी ६-७ संख्यक पत्र नहीं हैं । ८, ६, ११, १२ संख्यक पत्रों में एक-एक पंक्ति ही है । नाटक के अन्त में लिखा है—

सप्रक्रियमहाराजपण्डितवरश्रीमद्विद्यापतिसत्कविविरचितं गोरक्षविजयनामनाटकं समाप्तम् ॥ शुभमस्तु श्रीरस्तु ॥ ल०सं० ४६५ अग्रहण बदि ११ तिथौ ए दिने सुन्द (शैवे ?)-योगे करणश्रीमुरारिकण्ठस्यात्मजश्रीभगीरथेन लिखितं पुस्तकमिदम् ।[1]

(४) *भूपरिक्रमा*—यह ग्रन्थ महाराज देवसिंह की आज्ञा से विद्यापति ने लिखा था । उन दिनों महाराज देवसिंह नैमिषारण्य में रहते थे । राए गणेश्वर की मृत्यु के बाद असलान की क्रूर दृष्टि इनपर पड़ी और ये राज्यच्युत होकर नैमिषारण्य चले गये । प्रायः इसीलिए ग्रन्थारंभ में कवि ने इनके नाम के साथ या इनके पुत्र शिवसिंह के नाम के साथ राजा या महाराज की उपाधि नहीं लगाई । आरंभ में निम्नलिखित श्लोक हैं—

नत्वा गणपतिं साम्बं श्रीविष्णुं रविमम्बिकाम् ।
भूपरिक्रमणग्रन्थं लिख्यते भुवि नैमिषे ॥
देवसिंहनिदेशाच्च नैमिषारण्यवासिनः ।
शिवसिंहस्य च पितुः सूनपीठनिवासिनः ॥
पञ्चषष्ठिदेशयुतां पञ्चषष्ठिकथान्विताम् ।
चतुःखण्डसमायुक्तामाह विद्यापतिः कविः ॥
पुराणानि च तन्त्राणि, काव्यानि त्रिमनीषया ।
विलोक्य राजप्रबन्धानि (?) नवरत्नकृतानि च ॥

---

१. इसकी प्रतिलिपि बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के विद्यापति-विभाग में सुरक्षित है ।

देवसिंहस्य रुचये विद्यापतिकविर्महान् ।
वक्तुमारब्धवान् तत्र नानाप्रख्यानसंयुताम् ॥

इस ग्रन्थ में बलदेव द्वारा की गई भू-परिक्रमा का वर्णन है। सूत-वधजन्य ब्रह्महत्या लगने पर महर्षि धौम्य ने बलदेव को पापमुक्त होने के लिए भू-परिक्रमा करने का आदेश दिया। बलदेव ने महर्षि धौम्य के साथ पृथ्वी की परिक्रमा आरंभ की। नैमिषारण्य से घूमते-फिरते वे मिथिला आये। मार्ग में जो तीर्थ या नगर पड़े, धौम्य ने सबका इतिवृत्त कह सुनाया। इतना ही नहीं, एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ की ओर एक नगर से दूसरे नगर की दूरी का भी इसमें उल्लेख है, इसीलिए इसे इतिहास और भूगोल—दोनों कह सकते हैं।

श्रीविमानविहारी मजूमदार ने लिखा है कि जिस समय विद्यापति ने भू-परिक्रमा लिखी, उस समय देवसिंह अपने पुत्र शिवसिंह के साथ नैमिषारण्य में रहते थे।[१] किन्तु यह युक्तियुक्त नहीं है। कारण, भू-परिक्रमा के उपर्युक्त प्रारंभिक श्लोक में ही शिवसिंह को 'सूनपीठ' का निवासी कहा गया है।

ग्रन्थ के अन्त में लिपिकाल है; किन्तु अशुद्धि-बाहुल्य और नष्टाक्षर होने के कारण उससे ठीक-ठीक समय का ज्ञान नहीं होता। यदि 'भू-परिक्रमा' के लिपिकाल का वास्तविक ज्ञान हो जाता, तो कई ऐतिहासिक गुत्थियाँ सुलझ जातीं। फिर भी, अनुसंधायकों के 'अपि शिरसा गिरिं भिन्द्यात्' के लिए यहाँ उसका अविकल उल्लेख कर दिया जाता है—

मुनिवेरामबाणा शशिवासरे संख्यके ।
तासां परीक्षणं वृत्ति चक्रे भूपस्य चाज्ञया ॥

एक बात और। ग्रन्थारंभ में कवि ने देवसिंह को राजा या महाराज नहीं कहा; किन्तु 'दयावीर' की कथा के अन्त से उन्हें 'राजा' और 'भूभृत्' विशेषण से विशिष्ट कर दिया। यथा—

गद्यपद्येन विशदं कृत्वा विद्यापतिः कविः ।
श्रावयामास राज्ञे च देवसिंहाय भूभृते ॥

अतः, संभव है कि जिस समय विद्यापति 'भूपरिक्रमा' लिख रहे थे और देवसिंह राज्यच्युत होकर 'नैमिषारण्य' में निवास कर रहे थे, उसी समय असलान मारा गया तथा देवसिंह को अपना राज्य प्राप्त हुआ।

भूपरिक्रमा विद्यापति का प्रथम ग्रन्थ है। कारण, ओइनवार-वंशीय जिन राजा-रानियों के आदेश से विद्यापति ने ग्रन्थ-रचना की, उनमें सबसे वयोवृद्ध देवसिंह ही थे। संबंध में भी वे सबसे बड़े थे। अतः, उनके निदेश से लिखित होने के कारण विद्यापति के ग्रन्थों में इसे सहज ही प्राथमिकता प्राप्त हो जाती है। भाषा और शैली की दृष्टि से भी मालूम होता है कि यह कवि की प्रथम रचना है। उनके अन्य ग्रन्थों की भाषा से इसकी

१. मित्र-मजूमदार, विद्यापति-पदावली की भूमिका, पृ० ३७।

भाषा श्लथ है, शैली ढीली है। संभव है, इसीलिए विद्यापति ने बाद में 'भूपरिक्रमा' की सारी कथाओं को परिष्कृत करके 'पुरुष-परीक्षा' में उद्धृत कर दिया।

(५) पुरुष-*परीक्षा*—यह एक नीति-ग्रन्थ है। कथा-कहानियों के द्वारा नैतिक उपदेश देने की भारतीय परम्परा रही है। पञ्चतन्त्र, हितोपदेश आदि पुरातन ग्रन्थ इसी परम्परा के अन्तर्गत हैं। यह ग्रन्थ भी उसी परम्परा का सुदृढ स्तम्भ है। किन्तु, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश आदि में कौए, कछुए आदि के माध्यम से कथाओं का विस्तार किया गया है, जो अप्राकृतिक होने के कारण पाठकों के मन में एक प्रकार का कुतूहल उत्पन्न कर देता है। भले ही उन कथाओं में बालकों का मन रम जाय; परन्तु सत्यान्वेषकों को तो सत्य चाहिए। वे वैसी कथाओं का पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं, जिनमें सत्य निहित हो। यद्यपि पौराणिक कथाओं में सत्य निहित है—हरिश्चन्द्र, शिवि, पार्थ, युधिष्ठिर आदि की कथाएँ सत्य हैं—तथापि वे युगान्तर के पुरुष हैं। उनकी कथाओं का दृष्टान्त कलियुग में अल्प-विद्या-बुद्धिवालों की शिक्षा के लिए उपयुक्त नहीं होगा।[1] यही सब सोच-विचारकर विद्यापति ने इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक पुरुषों की कथाएँ ही लिखी हैं।

यह ग्रन्थ शिवसिंह की आज्ञा से विद्यापति ने लिखा। जिस समय कवि ने ग्रन्थ-रचना आरंभ की, उस समय शिवसिंह महाराज नहीं हुए थे। उनके पिता देवसिंह जीवित थे। इसीलिए, विद्यापति ने ग्रन्थारंभ में शिवसिंह को 'क्षितिपाल' नहीं, 'क्षितिपालसूनुः' कहा है।[2]

किन्तु, ग्रन्थ समाप्त होने के पहले ही देवसिंह ने शिवसिंह के ऊपर राज्यभार सौंप दिया और वे 'राजा' कहलाने लगे। मिथिला में भी प्रवाद है कि देवसिंह ने अपने जीवन-काल में ही शिवसिंह के ऊपर राज्यभार सौंप दिया और शिवसिंह 'महाराज' कहलाने लगे। इस ग्रन्थ के अन्तिम श्लोकों से भी इसकी पुष्टि होती है।[3]

---

१. कलौ शिक्षाहेतुर्न खलु कृतजातस्य चरितं
क्रियायां दृष्टान्तस्समयकृतभेदो न घटते।
न सा बुद्धिः पुंसां न च वपुषि तेजस्तदधुना
न वा सत्यं तादृक् कलिसमयसञ्जातजनुषाम्॥
—पुरुष-परीक्षा, (चन्द्रकवि-कृत मिथिलाभाषानुवाद-सहित, पृ० ४)

२. वीरेषु मान्यः सुधियां वरेण्यो विद्यावतामादिविलेखनीयः।
श्रीदेवसिंहक्षितिपालसूनुर्जीयाच्चिरं श्रीशिवसिंहदेवः॥
—वही, पृ० १।

३. सक्करीपुरसरोवरकर्त्ता हेमहस्तिरथदानविदग्धः।
भाति यस्य जनको रणजेता देवसिंहनृपतिर्गुणराशिः॥
यो गौडेश्वरगज्जनेश्वररणक्षोणीषु लब्ध्वा यशो-
दिक्कान्ताचयकुन्तलेषु नयते कुन्दस्रजामास्पदम्।
तस्य श्रीशिवसिंहदेवनृपतेर्विज्ञप्रियस्याज्ञया
ग्रन्थं ग्रन्थिलदण्डनीतिविषये विद्यापतिर्व्यातनोत्॥
—वही, पृ० २५१।

हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि से पुरुष-परीक्षा में कुछ अधिक प्रगल्भता है। इसकी भाषा और कथा-शैली उनसे प्रौढ है। इसका कारण यह है कि हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि केवल बालकों के लिए लिखे गये हैं; किन्तु 'पुरुष-परीक्षा' बालकों और पौर स्त्रियों (नागरिकाओं) के लिए लिखी गई है। इसीलिए, ग्रन्थारंभ में प्रतिज्ञा-वाक्य है—

शिशूनां सिद्ध्यर्थं नयपरिचितेर्नूतनधियां
मुदे पौरस्त्रीणाम्मनसिजकलाकौतुकजुषाम्।
निदेशान्निश्शङ्कं सदसि शिवसिंहक्षितिपतेः
कथानां प्रस्तावं विरचयति विद्यापतिकविः॥

राजा पारावार और सुबुद्धि-नामक मुनि के प्रश्नोत्तर के रूप में कथा का प्रारंभ किया गया है। राजा पारावार के 'पद्मावती' नाम की कन्या थी। वह विवाह-योग्या हुई, तो राजा ने 'सुबुद्धि'-नामक मुनि से पूछा—'मुने! पद्मावती विवाह-योग्या हुई। आप सोचकर कहिए कि किसे जामाता करूँ?'

मुनि ने कहा—'राजन्! पुरुष को वरण कीजिए।'

राजा ने पूछा—'मुने! क्या पुरुष से भिन्न भी वरण किया जाता है?'

मुनि ने कहा—'राजन्! संसार में अनेक पुरुष और पुरुषाकार हैं। उनमें पुरुषाकार को छोड़कर पुरुष को वरण कीजिए। कारण, पुरुषाकार सुलभ हैं; किन्तु पुरुष दुर्लभ है। जिसमें निम्नलिखित लक्षण हों, वह पुरुष है और उससे भिन्न सभी पुरुषाकार पुच्छहीन पशु हैं।'

वीरः सुधीः सविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान्।
तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः॥

कवि ने इन्हीं चारों का—वीर, सुधी, सविद्य और पुरुषार्थवान् का—उदाहरण-प्रत्युदाहरण के साथ चार परिच्छेदों में वर्णन किया है। इसकी भाषा प्रगल्भ होते हुए भी प्रसादगुण-युक्त है। कथा में प्रवाह है। राजा कालीकृष्ण बहादुर ने लॉर्ड बिशप टर्नर के आदेश से १८३० ई० में इसका अँगरेजी में अनुवाद किया। हरप्रसाद राय ने १८१५ ई० में बँगला में अनुवाद किया। कवीश्वर चन्दा झा ने मैथिली में अनुवाद किया। हिन्दी में भी इसके कई अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

(६) *लिखनावली*—इसमें पत्र लिखने की परिपाटी है। सप्तरी परगना (नेपाल तराई) में स्थित रजाबनौली के राजा पुरादित्य 'गिरिनारायण' की आज्ञा से विद्यापति ने इस पुस्तक की रचना की। प्रवाद है कि सुलतान के साथ युद्ध करते हुए महाराज शिवसिंह अन्तर्हित हो गये। ऐसा घनघोर युद्ध हुआ कि पता ही न चला कि शिवसिंह मारे गये या भागकर उन्होंने गिरि-गह्वर की शरण ली। इसके बाद गजरथपुर—महाराज शिवसिंह की राजधानी—उजाड़ हो गया। इस विषम परिस्थिति में शिवसिंह का परिवार विद्यापति की संरक्षकता में शिवसिंह के मित्र द्रोणवार 'गिरिनारायण' की छत्रच्छाया में आ गया। यहाँ विद्यापति का

खुदवाया हुआ एक तालाब आज भी वर्त्तमान है। ग्रन्थारंभ में मंगलाचरण के बाद श्लोक है—

सर्वादित्यतनूजस्य द्रोणवारमहीपतेः ।
गिरिनारायणस्याज्ञां पुरादित्यस्य पालयन् ॥
अल्पश्रुतोपदेशाय कौतुकाय बहुश्रुताम् ।
विद्यापतिस्सताम्प्रीत्यै करोति लिखनावलीम् ॥

इसमें चार प्रकार के पत्र हैं—(१) बड़ों के प्रति, (२) छोटों के प्रति, (३) बराबर-वालों के प्रति और (४) नियम-व्यवहारोपयोगी। विद्यापति का प्रतिज्ञा-वाक्य है—

उच्चैःकक्षमधःकक्षं समकक्षं नरम्प्रति ।
नियमे व्यवहारे च लिख्यते लिखनक्रमः ॥

इनमें बड़ों के लिए अठारह, छोटों के लिए अठाईस, बराबरवालों के लिए सात और नियम-व्यवहारोपयोगी इकतीस पत्र हैं। इस प्रकार सब मिलाकर चौरासी पत्र हैं। नियम-व्यवहारोपयोगी कई ऐसे पत्र हैं, जिनमें ल० सं० २९९ का उल्लेख है। इसलिए, संभव है कि विद्यापति ने उसी वर्ष लिखनावली लिखी हो।

लिखनावली के पत्रों से मिथिला की तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। गुरु और छात्र में, पिता और पुत्र में, एक राजा और दूसरे राजा में कैसा सम्बन्ध था, वे आपस में कैसा व्यवहार करते थे, इन सब विषयों के विशद विवेचन के लिए इसमें पर्याप्त सामग्री है। इनमें भी व्यावहारिक पत्रों का महत्त्व सबसे अधिक है। कारण, उन पत्रों से मिथिला की तत्कालीन सामाजिक, प्रशासनिक और आर्थिक दशा का चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है। उदाहरण के लिए, उपर्युक्त चारों प्रकार के पत्रों से यहाँ एक-एक पत्र उद्धृत किया जाता है।

सेनापति महाराजाधिराज को लिखता है—

स्वस्ति। प्रबलतरप्रतापार्कसम्पर्कनिरस्तरिपुतिमिरसंहारनिरवद्यराजनीतिकल्लोलिनी-कर्णधारमर्य्यादापारावारसङ्ग्रामसीमादुर्व्वारानेकराजचूडालङ्कारमणिमयूखमञ्जरीपिञ्जरीकृत-चरणारविन्दहृदयदेशनिवेशितगोविन्दरिपुराजकंसनारायणभवभक्तिपरायणमहाराजाधिराजश्रीमद-मुकदेवपादपद्मेषु समरविजयिषु अमुकस्थानात् सेनापतिश्रीअमुकस्य सिंहासनतलकृतशिरसः प्रणतिपत्रीयम्। श्रीमद्देवानां प्रतापोदयात् कुशलमत्र। विशेषस्तु समागतस्वहस्तपत्रं शिरसि निधाय सम्यक् समधिगतार्थं कुर्व्वन्नस्ति। गोचरस्तु श्रीमान् यवनराजः सम्प्रति गौडेश्वरमुद्दिश्य कृतप्रयाणो दिल्लीतश्चलितोऽस्तीति चारपुरुषेणागत्य कथितमस्ति। गौडेश्वरोऽपि दुर्गप्राकार-परिष्कारव्याकुलः सेनासङ्घटनपरायणश्च विद्यते। युद्धं करिष्यति सन्धानं वेति न ज्ञायते। ज्ञात्वा च पश्चाल्लिखिष्यामि। सम्प्रति तद्विधातुमादेष्टव्र्यामति किं बहुनेति ॥१॥

महाराजाधिराज अधीनस्थ राजा को लिखता है—

स्वस्ति । अमुकपत्तनात् दण्डपाटमुकुटसिंहासनश्वेतातपत्रसितचामरेत्यादिसमस्तप्रक्रिया-विराजमाननृपतिमुकुटमाणिक्यकिरणारुणनखमयूखरिपुराजद्विरदपञ्चाननर्निजकीर्त्तिकौमुदीबोधित-कुमुदकाननेत्यादिमहाराजाधिराजश्रीमदमुकसिंहदेवपादाः समरविजयिनः परमावदातचरितान् राजश्रीअमुकान् संवादयन्ति—सम्प्रति यूयं करिष्यत्क्रियमाणक्रमेण सेवां न कुरुथ, दीयमान-क्रमेण करन्न दत्थ, नैरपेक्ष्यमाचरथ । किमिदम् ? साम्प्रतमपि यदि स्वहितमिच्छथ, तदा प्रत्यब्द-दीयमानकरं श्रीकरणे प्रविष्टं करिष्यथ, सेवार्थं स्वकीयपुत्रं भ्रातरं वा समुचितं सैन्यसमेतं प्रहेष्यथ यद्येवं न कुरुथ तदा यत्र जीवथ, तत्र यास्यथ, नो चेत् प्रयाणं कृत्वा करितुरगपदाति-पदाघातैरेव युष्माकं दुर्गं चूर्णावशेषीकृत्य युष्मान् सुभटकोटिशरव्यापारैरचिरादेव यमपुरं प्रहेष्याम इति ।।१९।।

एक राजा दूसरे राजा को लिखता है—

स्वस्ति । यशष्पूरकर्पूरपरागपूरिताशेषदिङ्मण्डलाखिलधरणिवलयेषु इष्टापूर्त्तमण्डिता-शेषमेदिनीचक्रेषु सत्यव्रतपालनयुधिष्ठिरेषु समस्तप्रक्रियाविराजमानमहाराजश्रीअमुकदेवसिंहेषु सङ्ग्रामशतविजयिषु अमुकग्रामात् श्रीअमुकराजस्य प्रेमपत्रीयम् । कुशलमत्र, स्वेषाञ्च सवाहिनी-परिवाराणां कुशलोदन्तेन वयमानन्दनीयाः । विज्ञापनञ्च—आवयोर्मैत्री पूर्वस्माद्दिवसा-दनुवर्त्तमाना तथैव विद्यते यथाऽस्मदीये कोषे जनपदे अन्येषु च श्रीमतामायत्तिरस्ति । तत्र श्रीमतां विदितम्—यवनेश्वरप्रहिता सेना भवद्भूमिं पराभवितुं निकटमागताऽस्ति । ततो यद-स्माकमायत्तं श्रीमतामनुकूलं तदर्थमस्मासु लिखनीयम् । सतां मैत्रीप्रस्तावे प्रयोजिकैव भवति। यदि यवनेश्वरेण समं सन्धिर्विधीयते तदा वयं धनमौपायनवस्तूनि प्रस्थापयामः यदा युद्धमारभ्यते तदा सेनां प्रस्थापयामः, स्वयञ्च निकटमागत्य, यदर्हति, तत्कुर्मः । किं बहुनेति । बहिर्नामलिखनम् ।।४७।।

अब एक व्यावहारिक पत्र का उदाहरण लीजिए—

सिद्धिः । परमभट्टारकेत्यादिराजावलीपूर्वगतराजश्रीलक्ष्मणसेनदेवीयनवनवत्यधिक-द्विशततमवर्षे भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां शुक्रवारान्वितायामेवं मासपक्षदिवसानुक्रमेण कालेऽभि-लिख्यमाने यत्राङ्केनापि ल० सं० २९९, भाद्रशुदिचतुर्दशी १४ शुक्रे पुनः परमभट्टारक-पुण्यावलोकसमस्तप्रक्रियाविराजमानश्रीअमुकदेवानां सम्भुज्यमानायां तीरभुक्तौ अमुकतप्पासम्बद्ध-अमुकग्रामे राउतश्रीअमुकाः शूद्रक्रयणार्थं स्वधनं प्रयुञ्जते । धनग्राहकोऽप्यमीषां सकाशात् नामतः राउतश्रीअमुकः पञ्चमध्यस्थकृतमूल्येन रूप्यटङ्कद्वयेनात्मानमात्मना चन्द्रार्कावधिना विक्रीतवान् । यत्र विक्रीत आत्मा प्राणी १, विक्रयाङ्करूप्यटङ्क २ । गोत्रागोत्रनिवारको धर्म एव । अयञ्च शूद्रो धनिकगृहे दासकर्म करिष्यति । यदि कदाचित्प्रपलाय्य याति तदाऽनेन पत्रप्रामाण्येन राजसिंहासनगतोप्यानीय पुनर्दासकर्मणि युज्यते । अत्रार्थे साक्षिणौ अमुकामुकौ कृतौ स्तः । लिखितमुभयानुमत्या श्रीअमुकेन । लिखापन उभयदय । भरणपत्रमर्पादमेव । पत्रस्थौ साक्षिणौ ।।५६।।

लिखनावली के अन्त में विद्यापति लिखते हैं—

जित्वा शत्रुकुलं तदीयवसुभिर्येनार्थिनस्तर्पिता-
दोर्दर्पार्जितसप्तरीजनपदे राज्यस्थितिः कारिता।
सङ्ग्रामेऽर्जुनभूपतिर्विनिहतो बन्धौ नृशंसायित-
स्तेनेयं लिखनावली नृपपुरादित्येन निर्मापिता॥

दरभंगा से प्रकाशित 'लिखनावली' में उपर्युक्त श्लोक के 'बन्धौ' के स्थान में 'बौद्धो' पाठ है। प्रकाशक ने भूमिका में लिखा है कि "शिवसिंह ने जब गिरि-गह्वर की शरण ली और गजरथपुर उजाड़ हो गया, तब यवन-सेना के भय से महारानी लखिमा 'रजाबनौली' में रहने लगीं। वहाँ पानी का बड़ा अभाव था, इसलिए विद्यापति ने एक बड़ा तालाब खुदवाया। तालाब के यज्ञ में आमंत्रित पण्डितों के साथ बौद्धों का घोर कलह हुआ। 'सप्तरी' में बौद्धमतानुयायी अर्जुन का राज्य था। उसने उपद्रव आरंभ किया। इसी समय जनकपुर में रामनवमी का मेला था, जिसमें पुरादित्य 'गिरिनारायण' अपने दल-बल के साथ उपस्थित थे। साधु-वैष्णवों का भी जमघट था। वहाँ भी बौद्धों ने विवाद प्रारंभ किया, जो बढ़कर भयंकर युद्ध में परिणत हो गया। पुरादित्य ने संग्राम में बौद्ध-मतानुयायी अर्जुन को मार डाला और उसकी राजधानी लूट ली। लूट में जितने द्रव्य और पशु हाथ लगे, सब वैष्णवों और साधुओं में बाँट दिये और स्वयं राजा बनकर राज्य करने लगे। विद्यापति ने धर्मरक्षक समझकर पुरादित्य की आज्ञा से 'लिखनावली' का निर्माण किया।"

महामहोपाध्याय डॉ० उमेशमिश्र ने भी इसे अविकल स्वीकार कर लिया है।[1] डॉ० सुकुमार सेन ने भी 'बन्धौ नृशंसायितः' के स्थान में 'बौद्धो नृशंसायितः' पाठ को स्वीकार किया है और लिखा है कि "यह अर्जुन मिथिला के ब्राह्मणवंशीय राजा अर्जुन नहीं, किन्तु नेपाल का जयार्जुनमल्लदेव है। कारण, मिथिला का राजा अर्जुन बौद्ध नहीं था। यद्यपि नेपाल का राजवंश भी पूर्णतः बौद्ध नहीं था, तथापि बौद्धभावापन्न अवश्य था। जयार्जुनमल्लदेव का राज्यकाल चौदहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग था, इसलिए 'लिखनावली' ही विद्यापति की प्रथम रचना है।"[2]

किन्तु म० म० डॉ० उमेशमिश्र और डॉ० सुकुमार सेन—दोनों के अभिमत समीचीन नहीं प्रतीत होते। मिश्रजी ने दरभंगा से प्रकाशित 'लिखनावली' की भूमिका में जैसा देखा, लिख दिया। प्रायः सोचने का कष्ट नहीं किया। कारण, 'लिखनावली' में विद्यापति ने अनेक बार ल०, सं० २९९, अर्थात् १४०८ ई० का उल्लेख किया है। इससे प्रमाणित होता है कि उसका निर्माण-काल भी वही है। अब विचारणीय विषय यह है कि उस समय 'सप्तरी' में अथवा उसके आस-पास बौद्ध थे या नहीं? नेपाल में उस समय मल्ल-वंश का राज्य था। मल्ल-वंश के राजे बौद्ध नहीं, हिन्दू थे। तराई में बौद्धों का

१. विद्यापति ठाकुर, पृ० ५६-५७।
२. विद्यापति-गोष्ठी, पृ० १८।

राज्य था, ऐसा भी किसी इतिहास में नहीं मिलता। फिर, किसी बौद्धमतावलम्बी राजा अर्जुन की कल्पना करना असंगत ही नहीं, हास्यास्पद भी प्रतीत होता है। अथच, जनकपुर में रामनवमी का मेला कब से लगता है? आज का जनकपुर चतुर्भुजस्वामी की देन है। चतुर्भुजस्वामी सत्रहवीं शती में हुए थे। मकबानी (नेपाल) के तत्कालीन राजा श्रीसेन द्वारा चतुर्भुजस्वामी के नाम से प्रदत्त ताम्रपत्र में, जो कि जनकपुर के राम-मन्दिर में सुरक्षित है, विक्रम-संवत् १७१४ का उल्लेख है।[1] अतः, चतुर्भुजस्वामी का समय सत्रहवीं शती का मध्यभाग होता है। उन्होंने ही जनकपुर का उद्धार किया। उनसे पहले जनकपुर खँडहर के रूप में था। रामजी की मूर्त्ति भी मिट्टी के नीचे दबी थी। फिर, रामनवमी का मेला और साधु-वैष्णवों का जमघट कपोल-कल्पना से अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

सेन महोदय का जयार्जुनमल्ल भी 'लिखनावली' में उल्लिखित अर्जुन नहीं हो सकता। कारण, नेपाल का मल्ल-वंश प्रारंभ से ही हिन्दू था। कहीं भी ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि मल्ल-वंश का कोई राजा बौद्धभावापन्न था। और, यदि पुरादित्य ने जयार्जुनमल्ल का वध किया होता, तो फिर सम्पूर्ण नेपाल ही उनके अधिकार में आ गया होता। ऐसी परिस्थिति में नेपाल की मुख्य भूमि काठमाण्डू, भातगाँव या पाटन को छोड़कर तराई— सप्तरी— में वे अपनी राजधानी क्यों बसाते? किञ्च, बेण्डल साहब ने जो नेपाल के राजाओं की वंशावली दी है, उससे पता चलता है कि जयार्जुनमल्ल का जन्म नेपालाब्द ४६७ (१३४७ ई०) में और मृत्यु नेपालाब्द ५०२ (१३८२ ई०) में हुई थी।[2] म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने जो नेपाल-राज-दरबार-पुस्तकालय का विवरण प्रकाशित किया है, उसमें भी जयार्जुनमल्ल के राज्यकाल में लिखित पुस्तकों का लिपिकाल १३७१ ई० और १३७६ ई० है।[3] 'लिखनावली' ल० सं० २९९ अथवा १४०८ ई० में लिखी गई, इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। इस प्रकार 'लिखनावली' के लिपि-काल से, जिस समय पुरादित्य वर्त्तमान थे, २६ वर्ष पहले ही जयार्जुनमल्ल की मृत्यु हो चुकी थी। जयार्जुनमल्ल और पुरादित्य समसामयिक ही नहीं थे, अतः सेन महोदय का कथन भी युक्तियुक्त नहीं है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि 'लिखनावली' में विद्यापति ने जिस अर्जुन का नामोल्लेख किया है, वह देवसिंह के बड़े भाई त्रिपुरसिंह का पुत्र साम्बसिंह—प्रसिद्ध राय अर्जुन है। मिथिला में प्रवाद है कि भवसिंह की मृत्यु के बाद त्रिपुरसिंह और देवसिंह में राज्य के लिए संघर्ष हो गया। वह संघर्ष महाराज शिवसिंह और राय अर्जुन के समय में चरम सीमा पर पहुँच गया। महाराज शिवसिंह के मित्र पुरादित्य 'गिरिनारायण' थे। उन्होंने अपने मित्र की ओर से राय अर्जुन पर चढ़ाई की और उसे मार डाला। इसी का स्मरण करते हुए

---

१. मिथिला-मिहिर, २० मार्च, १९६१ ई०।

२. हिस्ट्री ऑफ् नेपाल ऐण्ड सराउंडिंग किंग्डम्स (जे० ए० एस० बी, खंड ७२, भाग १, १९०३ ई०, पृ० २७)।

३. नेपालराजदरबारेर पूथीर विवरण, पृ० ८८।

विद्यापति ने लिखा—'संङ्ग्रामेऽर्जुनभूपतिर्विनिहतो बन्धौ नृशंसायितः।' इसीलिए, पञ्जी-प्रबन्ध में भी त्रिपुरसिंह के लिए 'राज्यदुर्जन त्रिपुर खाँड़े' लिखा हुआ है। अतएव, शिवनन्दन ठाकुर ने 'बन्धौ नृशंसायितः' पाठ ही स्वीकार किया है[1], जो सर्वतोभावेन समीचीन है।

एक बात और। म० म० डॉ० उमेशमिश्र ने पुरादित्य को 'दोनवार-वंशीय मैथिल ब्राह्मण' कहा है,[2] किन्तु उनका यह कथन नितान्त भ्रान्त है। 'दोनवार' मैथिल नहीं, भूमिहार ब्राह्मण होते हैं। आज भी नेपाल की तराई में और उसके आसपास हजारों दोनवार भूमिहार ब्राह्मण वर्त्तमान हैं।

(७) *शैवसर्वस्वसार*—महाराज पद्मसिंह की पत्नी महारानी विश्वासदेवी की आज्ञा से विद्यापति ने इस ग्रन्थ की रचना की। महाराज पद्मसिंह के पुत्र नहीं था, इसलिए उनकी मृत्यु के बाद विश्वासदेवी के हाथों में मिथिला का शासनसूत्र आ गया। सिंहासन पर बैठकर उन्होंने सफलतापूर्वक शासन किया। ग्रन्थारंभ में मंगल-श्लोक के बाद भवसिंह, देवसिंह, शिव-सिंह और पद्मसिंह के यशोगान के बाद विद्यापति ने महारानी विश्वासदेवी का विस्तार के साथ यशोगान किया है—

दुग्धाम्भोधाविव श्रीर्गुणगणसदृशे विश्वविख्यातवंशे
सम्भूता पद्मसिंहक्षितिपतिदयिता धर्म्मकर्म्मैकसीमा।
पत्युः सिंहासनस्था पृथुमिथिलमहीमण्डलं पालयन्ती
श्रीमद्विश्वासदेवी जगति विजयते चर्य्ययाऽरुन्धतीव॥
इन्द्रस्येव शची समुज्ज्वलगुणा गौरीव गौरीपतेः
कामस्येव रतिः स्वभावमधुरा सीतेव रामस्य या।
विष्णोः श्रीरिव पद्मसिंहनृपतेरेषा परा प्रेयसी
विश्वख्यातनया द्विजेन्द्रतनया जागर्त्ति भूमण्डले॥
दातारः कति नाभवन् कति न वा सन्तीह भूमण्डले
नैकोऽपि प्रथितः प्रदानयशसो विश्वासदेव्याः समः।
यस्याः स्वर्णतुलामुखाखिलमहादानप्रदानोत्सव-
स्वर्णैरर्थिमृगीदृशामपि तुलाकोटिध्वनिः श्रूयते॥
लीलालोलावनालीकुचनिचयदलद्वीचिविस्तारतार-
प्रव्यक्तोन्मुक्तमुक्तातरलतरतरद्वन्द्वसन्दोहवाहः।
पुष्यत्पुष्पौघमालाकुलकलितलसद्भृङ्गसङ्गीतभङ्गी
श्रीमद्विश्वासदेव्याः समरुचिरुचिरो विश्वभागस्तडागः॥
नित्यं देवद्विजार्थं द्रविणवितरणारम्भसम्भावितश्री-
धर्मज्ञा चन्द्रचूडप्रतिदिवससमाराधनैकाग्रचित्ता।

---

१. महाकवि विद्यापति, पृ० २०-२१।
२. विद्यापति ठाकुर, पृ० ५६।

विज्ञानुज्ञाप्य विद्यापतिकृतिनमसौ विश्वविख्यातकीर्त्तिः
श्रीमद्विश्वासदेवी विरचयति शिवं शैवसर्वस्वसारम् ।।

इस ग्रन्थ में शिव-पूजा-सम्बन्धी विधि-विधान हैं। दरभंगा-राज-पुस्तकालय में इसकी एक खण्डित प्रति है, जिसमें १४० पत्र हैं। राजेन्द्रलाल मित्र ने लिखा है कि एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल में भी इसकी एक प्रति है[१], पर ढूँढने पर आज उसका पता नहीं चलता।

सन् १३०४ साल में श्रीविमलाचरण चक्रवर्त्ती ने यूनियन प्रेस, दरभंगा से वर्धमान-जिला-निवासी पं० श्रीभाग्यवान विद्यालंकार-कर्त्तृक वंगानुवाद-सहित एक 'शैव-सर्वस्वसार' प्रकाशित किया। ग्रन्थ के आवरण-पृष्ठ पर मुद्रित है—"मिथिला-निवासी म० म० कविवर विद्यापतिठाकुर-कर्त्तृक संकलित।" भूमिका में भाग्यवान विद्यालंकार ने लिखा है कि यह ग्रन्थ मिथिला-निवासी म० म० विद्यापतिठाकुर ने रानी विश्वासदेवी की आज्ञा से लिखा था। किन्तु दरभंगा-राज-पुस्तकालय के 'शैवसर्वस्वसार' से यह ग्रन्थ भिन्न है। इसके आदि अथवा अन्त—कहीं भी विद्यापति अथवा रानी विश्वासदेवी का नाम नहीं है। फिर, किस प्रकार इसे विद्यालंकारजी ने विद्यापति-कृत कहा, इसका पता नहीं चलता।[२]

(८) *शैवसर्वस्वसार-प्रमाणभूत-पुराण-संग्रह*—जैसा कि ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है, इस ग्रन्थ में विद्यापति ने 'शैवसर्वस्वसार' के प्रमाणभूत पौराणिक वचनों का संग्रह किया है। संभव है, 'शैवसर्वस्वसार' लिखने से पहले पुराणों में यत्र-तत्र बिखरे हुए

---

१. हस्तलिखित पुस्तक-सूची, खंड ६, नं० १६८३।

२. आदि—

वरं प्राणत्यागः शिरसो वापि कर्त्तनम्।
नत्वनभ्यर्च्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम् ।।
तत्रादौ शिवमाहात्म्यम्। स्कन्दपुराणे—
उत्कृष्टतुल्यजातीनां महच्छब्दः प्रयुज्यते।
तस्मात्समस्तदेवानां महादेवोऽयमुत्तमः ।।

अन्त—

अथ शिवे जयासनमन्त्राः—
जयेश्वर महादेव जय भूतपते हर।
जयाशेष महाबाहो मोचय त्रिपुरान्तक ।।
जयमुच्चार्य यो नाम स्मरेद्देवस्य शूलिनः।
विसृज्य दुरितं सर्वं स याति परमां गतिम् ।।
जय भव शिव शर्व त्र्यक्ष दक्षार्चिताङ्घ्रे।
स्मरहर वृषकेतो धूर्जटे व्योमकेश ।।
वरद कुरु कृपां मे मोहविध्वस्तबुद्धे-
विंहितविविधमूर्त्ते भूय एव नमस्ते ।।
नमः शिवाय सर्वकल्याणदायिने।
समाप्तमिदं शैवसर्वस्वसारम्।

शिवार्चनात्मक प्रमाणों का संग्रह विद्यापति ने किया होगा। विद्यापति अपने पूर्वलिखित ग्रन्थ का उपयोग पश्चात् लिखे जानेवाले ग्रन्थ में करते थे। 'पुरुष-परीक्षा' में उन्होंने 'भूपरिक्रमा' की सारी कथाएँ यत्किञ्चित् परिवर्त्तन-परिवर्धन के साथ लिख दी हैं। और, यह एक संग्रहमात्र है। यदि ग्रन्थ के रूप में विद्यापति ने इसका प्रणयन किया होता, तो उनके और ग्रन्थों की तरह इसमें भी मंगलाचरण के श्लोक रहते। किन्तु, इसका प्रारंभ इस प्रकार है –

ओं नमः शिवाय। लिङ्गपुराणे, श्रीकृष्ण उवाच—
यदाद्यमैश्वरं तेजस्तल्लिङ्गं प्रथमं स्मृतम्।
कल्पान्ते तस्य लिङ्गस्य लीयन्ते सर्वदेवताः॥
दक्षिणे लीयते ब्रह्मा वामतश्चाप्यहं प्रभुः।
हृदये चैव गायत्री सर्ववेदोत्तमोत्तमा॥
लीयन्ते वै मुखे वेदाः षडङ्गाः सपदक्रमाः।
जठरे लीयते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥
पुनरुत्पद्यते तस्माद्ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥

अन्त इस प्रकार है—

भविष्यपुराणे—
करबीरो बकश्चैव अर्कं उन्मत्तकस्तथा।
पाटलो बृहती चैव तथैव गिरिकर्णिका॥
तथा काशस्य पुष्पाणि मन्दारश्चापराजिता।
शमीपुष्पाणि······कुब्जकं शिखली तथा॥
अपामार्गस्तथा पद्मं जातीपुष्पं सवासकम्।
चम्पकोशीरतगरं तथा वै नागकेशरम्॥
पुन्नागं किङ्किरातञ्च द्रोणपुष्पं तथा शुभम्।
शिशिरोदुम्बरश्चैव यथा मल्ली तथैव च॥
पुष्पाणि यज्ञवृक्षस्य तथा बिल्वः प्रियः शुभे।
कुसुम्भस्य च पुष्पाणि तथा वै कुङ्कुमस्य च॥
नीलश्च कुमुदश्चैव तथा नीलोत्पलानि च।
अम्लानञ्च लवङ्गञ्च वरुणं बकुलन्तथा॥
सुरभीणि च सर्वाणि जलस्थलाम्बुजानि च।
गृह्णामि शिरसा देवि यो मे भक्त्या निवेदयेत्॥

(६) *गंगावाक्यावली*—विद्यापति ने यह ग्रन्थ रानी विश्वासदेवी की आज्ञा से लिखा। इसमें गंगा के स्मरण-कीर्त्तन से आरंभ करके गंगा-तट पर प्राण-विसर्जन तक के विधि-विधानों एवं फलों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ के लेखक के रूप में विद्यापति का

नहीं, विश्वासदेवी का नामोल्लेख है; विद्यापति का नाम केवल संपादक के रूप में हैं। आरंभ में मंगलाचरण के बाद का निम्नलिखित श्लोक देखिए—

यावद्गङ्गा विभाति त्रिपुरहरजटामण्डलं मण्डयन्ती
मल्लीमाला सुमेरोश्शिरसि सितमहावैजयन्ती जयन्ती।
याता पातालमूलं स्फुरदमलरुचिश्शेषनिर्मोकवल्ली
तावद्विश्वासदेव्या जगति विजयतां गाङ्गवाक्यावलीयम् ॥

अन्त के श्लोक में भी (विश्वास) देवी का उल्लेख है—

यावत्स्वर्गतरङ्गिणी हरजटाजूटान्तमालम्बते
यावद्विश्वविकासविस्तृतकरः सूर्योयमुज्जृम्भते।
यावन्मण्डलमैन्दवं वितनुते शम्भोः शिरोमण्डनं
तावत्कल्पलतेयमस्तु सफला देव्याः सतां श्रेयसे ॥

इसके बाद विद्यापति का नामोल्लेख है। यथा—

कियन्निबन्धमालोक्य श्रीविद्यापतिसूरिणा।
गङ्गावाक्यावली देव्याः प्रमाणैर्विमलीकृता ॥

किन्तु, मिथिला के विद्वानों में परम्परागत विश्वास है कि विद्यापति ने ही विश्वासदेवी के नाम से 'गङ्गावाक्यावली' की रचना की थी। विद्यापति के अन्य नैबन्धिक ग्रन्थों—दानवाक्यावली, दुर्गाभक्तितरङ्गिणी आदि—की भाषा-शैली से इसकी भाषा-शैली की इतनी समानता है कि इसे विद्यापति-कृत स्वीकार करने में थोड़ी भी हिचक नहीं होती। ग्रन्थ के अन्त में जो प्रशस्ति है, उससे भी इसकी पुष्टि होती है। यथा—

इति समस्तप्रक्रियाविराजमानदानदलितकल्पलताभिमानभवभक्तिभावितबहुमानमहामहादेवीश्रीमद्विश्वासदेवीविरचिता गङ्गावाक्यावली समाप्ता।

यदि विश्वासदेवी ने ग्रन्थ-रचना की होती, तो उन्होंने अपने लिए ऐसी प्रशस्त प्रशस्ति का उपयोग नहीं किया होता। कोई भी लेखक ऐसा नहीं करता।

(१०) *विभागसार*—यह ग्रन्थ विद्यापति ने महाराज नरसिंह 'दर्पनारायण' की आज्ञा से लिखा था। इसमें दायभाग का संक्षेप में बहुत ही सुन्दर विवेचन किया गया है। द्वादशविध पुत्र-लक्षण-निरूपण, अपुत्रधनाधिकारि-निरूपण, स्त्रीधन-विभाग-निरूपण आदि विषय भी इसमें हैं। इससे मिथिला के तत्कालीन दायभाग पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। आज भी हिन्दू-उत्तराधिकार के लिए इसकी प्रामाणिकता अक्षुण्ण है। आरंभ में मंगलश्लोक के बाद है—

राज्ञो भवेशाद्धरिसिंह आसीत्तत्सूनुना दर्पनरायणेन।
राज्ञा नियुक्तोऽत्र विभागसारं विचार्य विद्यापतिरातनोति ॥

(११) *दानवाक्यावली*—विद्यापति ने महाराज नरसिंहदेव 'दर्पनारायण' की पत्नी रानी धीरमति की आज्ञा से यह ग्रन्थ लिखा। प्रायः जितने प्रकार के दान हो सकते हैं,

सबके विधि-विधान इसमें हैं। देश, काल और पात्र का भी इसमें विशद विवेचन है। मैथिली के कुछ शब्दों में संस्कृत की विभक्ति लगाकर विद्यापति ने इसमें प्रयोग किया है, जिनका अन्यत्र प्रयोग नहीं मिलता। जैसे—'राहळिः', 'साठी' आदि। ग्रन्थारंभ में मंगल-श्लोक के बाद रानी धीरमति का परिचय इस प्रकार है—

श्रीकामेश्वरराजपण्डितकुलालङ्कारसारः श्रिया-
मावासो नरसिंहदेवमिथिलाभूमण्डलाखण्डलः।
दृप्यद्दुर्द्धरवैरिदर्पदलनोऽभूद्दर्पनारायणो
विख्यातः शरदिन्दुकुन्दधवलभ्राम्यद्यशोमण्डलः॥
तस्योदारगुणाश्रयस्य मिथिलाक्ष्मापालचूडामणेः
श्रीमद्धीरमतिः प्रिया विजयते भूमण्डलालङ्कृतिः।
दाने कल्पलतेव चारुचरिते यारुन्धतीव स्थिरा
या लक्ष्मीरिव वैभवे गुणगणे गौरीव या गण्यते॥
वापी प्राज्यजलाधिकाशिविमला विज्ञानवापीसमा
रम्यं तीर्थनिवासिवासभवनं चन्द्राभमभ्रंलिहम्।
उद्यानं फलपुष्पनम्रविटपच्छायाभिरानन्दनं
भिक्षुभ्यः सरसान्नदानमनघं यस्या भवान्या इव॥
लक्ष्मीभाजः कृतार्थानकृतसुमनसो या महादानहेम-
ग्रामैराजीवराजीबहलतरपरागाक्षरागैस्तळागैः।
विज्ञाऽनुज्ञाप्य विद्यापतिमतिकृतिनं सप्रमाणामुदारा
राज्ञी पुण्यावलोका विरचयति नवां दानवाक्यावलीं सा॥

शाके १८०५ में सतलखा (दरभंगा)-निवासी पण्डित फणीमिश्र ने बनैली-राज्याधीश राजा लीलानन्द सिंह की पत्नी एवं राजा पद्मानन्द सिंह की माता रानी पार्वती देवी के द्रव्य-साहाय्य से, विक्टोरिया-प्रेस, काशी से 'दानवाक्यावली' प्रकाशित की, जिसके मुखपृष्ठ पर 'दानवाक्यावलीयम्—श्रीलखिमानिर्मिता' मुद्रित है। द्वितीय पृष्ठ में जो ग्रन्थ-परिचय है, उसमें मिश्रजी ने लिखा है—'सकलसद्विद्यैकवसत्या धीरमत्युपनामिकया श्रीलखिमया नाम विरचितेयन्दानवाक्यावली' आदि। मिश्रजी मैथिल थे, संस्कृत के विद्वान् थे, फिर भी उन्होंने ऐसी ऊटपटाँग बात कैसे लिख दी, इसका पता नहीं चलता। प्रायः उन्होंने उपर्युक्त प्रारंभिक श्लोकों पर ध्यान नहीं दिया।

(१२) *दुर्गाभक्तितरङ्गिणी*—यह ग्रन्थ महाराज भैरवसिंह की आज्ञा से विद्यापति ने लिखा था। इसमें दो तरंगें हैं। प्रथम तरंग में गृह-निर्माण, प्रतिमा-निवेशन, प्रतिमा-लक्षण आदि विविध विषयों का विशद विवेचन है। द्वितीय तरंग में शारदीय दुर्गापूजा-पद्धति है। ग्रन्थारंभ के श्लोकों से ज्ञात होता है कि ग्रन्थ-रचना के समय भैरवसिंह के पिता

नरसिंह भी जीवित थे। कारण, उनके नाम के साथ भी वर्त्तमानकालिक 'अस्ति' और 'श्री' का प्रयोग है। यथा—

अस्ति श्रीनरसिंहदेवमिथिलाभूमण्डलाखण्डलो-
भूभृन्मौलिकिरीटरत्ननिकरप्रत्यर्चिताङ्घ्रिद्वयः ।
आपूर्वापरदक्षिणोत्तरगिरिप्राप्तार्थिवाञ्छाधिक-
स्वर्णक्षोणिमणिप्रदानविजितश्रीकर्णकल्पद्रुमः ॥
विश्वख्यातनयस्तदीयतनयः प्रौढप्रतापोदयः
सङ्ग्रामाङ्गणलब्धवैरिविजयः कीर्त्यासलोकत्रयः ।
मर्यादानिलयः प्रकामनिलयः प्रज्ञाप्रकर्षाश्रयः
श्रीमद्भूपतिधीरसिंहविजयी राजत्यमोघक्रियः ॥
शौर्यावर्जितपञ्चगौडधरणीनाथोपनम्रीकृता-
नेकोत्तुङ्गतुरङ्गसङ्गतसितच्छत्राभिरामोदयः ।
श्रीमद्भैरवसिंहदेवनृपतिर्यस्यानुजन्मा जय-
त्याचन्द्रार्कमखण्डकीर्त्तिसहितः श्रीरूपनारायणः ॥
देवीभक्तिपरायणः श्रुतिमुखप्रारब्धपारायणः
सङ्ग्रामे रिपुराजकंसदलनप्रत्यक्षनारायणः ।
विश्वेषां हितकाम्यया नृपवरोऽनुज्ञाप्य विद्यापतिं
श्रीदुर्गोत्सवपद्धतिं स तनुते दृष्ट्वा निबन्धस्थितिम् ॥

उपर्युक्त प्रारंभिक श्लोकों में महाराज नरसिंह के तीन पुत्रों का उल्लेख है--धीरसिंह, भैरवसिंह और रूपनारायण। 'रूपनारायण' भैरवसिंह के छोटे भाई चन्द्रसिंह का विरुद था। भैरवसिंह का विरुद 'हरिनारायण' था। पञ्जी-प्रबन्ध से पता चलता है कि ओइनवार-राजवंश में 'रूपनारायण'—विरुदाङ्कित तीन राजे हुए हैं—शिवसिंह, चन्द्रसिंह और भैरवसिंह के पुत्र रामभद्र। पञ्जी-प्रबन्ध से अपरिचित होने के कारण ही श्रीविमानविहारी मजूमदार ने लिखा है कि विद्यापति ने 'रूपनारायण' भैरवसिंह की आज्ञा से 'दुर्गाभक्तितरङ्गिणी' की रचना की।[1] ग्रन्थ के अन्त में भी विद्यापति ने पुनः तीनों भाइयों का उल्लेख किया है। वहाँ 'रूपनारायण' विरुद नहीं देकर चन्द्रसिंह का स्पष्ट नामोल्लेख है। यथा—

भूपश्रीभवसिंहवंशतिलकः श्रीदर्पनारायण-
स्वात्मानन्दननन्दनक्षितिपतिश्रीधीरसिंहः कृती ।
शक्रश्रीसहभूरुपेन्द्रमहिमश्रीभैरवक्ष्माभुजो-
दुर्गाभक्तितरङ्गिणी क्षतारयन्तस्यास्तु सत्प्रीतये ॥
मर्यादाम्बुनिधिः सदानयविधिः प्रौढप्रतापावधिः
सद्यः सङ्गरसङ्गरङ्गविजयश्रीलब्धदोःसन्निधिः ।

---

१. मित्र-मजूमदार, 'विद्यापति-पदावली' की भूमिका, पृ० १८।

यस्य क्षीरसमुद्रमुद्र (तुल्य ?) यशसो रामस्य सौमित्रिवत्
क्षोणीमण्डलमण्डनो विजयते श्रीचन्द्रसिंहोऽनुजः ॥

(१३) *गयापत्तलक*—यह एक छोटी-सी पुस्तिका है। इसमें गया-श्राद्ध-सम्बन्धी सभी बातों का संक्षिप्त विवेचन है। इसके प्रारंभ में मंगलाचरण के श्लोक नहीं हैं। किसी राजा का नामोल्लेख भी इसमें नहीं है। इससे अनुमान होता है कि किसी व्यक्तिविशेष के लिए नहीं, सकल-लोक-कल्याणार्थ ही विद्यापति ने इसकी रचना की थी। ग्रन्थ के अन्त में विद्यापति का नाम है। यथा—

इति महामहोपाध्यायश्रीविद्यापतिकृतं गयापत्तलकं समाप्तम्।

(१४) *वर्षकृत्य*—इसमें वर्ष-भर के पर्वों का विधान है। मिथिला में और भी कई 'वर्षकृत्य' प्रचलित हैं; किन्तु इस 'वर्षकृत्य' में तिथि-द्वैध के ऊपर जैसा विशद विवेचन है, वैसा किसी दूसरे 'वर्षकृत्य' में नहीं मिलता। इसमें भी मंगलाचरण के श्लोक नहीं हैं। किसकी आज्ञा से विद्यापति ने इस ग्रन्थ की रचना की, इसका भी उल्लेख नहीं है। एक स्थान पर 'रूपनारायण' का अवश्य उल्लेख है। यथा—

तथा चाष्टम्यां या दिवातनी पूजा ब्रह्मपुराणोक्ता सा उभयत्र पूर्वाह्नलाभे उत्तरत्रैव कार्या। दिवातनत्वञ्च पूजाया ब्रह्मपुराणेऽहनीति वचनात्। तथा च—

तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी।
डाकिनी च महाघोरा योगिनी जटिभिस्सह।
अतोऽर्थं पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः॥ इति।
रूपनारायणस्त्वरसोऽप्येवम्।

किन्तु, ओइनवार-राजवंश में एक नहीं, तीन रूपनारायण थे, जिनका उल्लेख पहले हो चुका है। उनमें दो—शिवसिंह 'रूपनारायण' और चन्द्रसिंह 'रूपनारायण'—विद्यापति के समसामयिक थे। इसलिए, निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि किस 'रूपनारायण' के समय में 'वर्षकृत्य' की रचना हुई। अधिक संभव है कि चन्द्रसिंह 'रूपनारायण' के समय में ही विद्यापति ने इसकी रचना की होगी। कारण, उनके जितने शास्त्रीय निबन्ध हैं, सभी शिवसिंह के बाद के ही हैं। एक भी निबन्ध शिवसिंह के समय का नहीं है। फिर, इसे ही शिवसिंह के समय का कैसे कहा जा सकता है? और, निबन्ध-लेखन तो परिणत वय का काम भी है।

(१५) *मणिमञ्जरी*—यह एक नाटिका है। इसमें राजा चन्द्रसेन और मणिमञ्जरी की कथा है। आरंभ में सूत्रधार कहता है—परिषद् से आदेश मिला है कि विद्यापति की 'मणिमञ्जरी' नाम की नाटिका का अभिनय करो। अर्द्धनारीश्वर के स्तवन से नाटिका प्रारंभ होती है। यथा—

आनन्देन जळीकृता नवनवोत्कण्ठारसाभ्यागता
लज्जारज्जुनिवर्त्तिता क्षणमथो विश्रान्तकर्णोत्पला।

इत्येवं नवसङ्गमोल्लसितयोर्द्दोलाचिणा (किलाः ?) सालसा
दक्पाताः शिवयोरभिन्नवपुषोर्विघ्नं विनिघ्नन्तु वः ॥

नान्द्यन्ते सूत्रधारः । कृतमतिप्रपञ्चेन । आदिष्टोऽस्मि परिषदा यदद्य श्रीविद्यापति-नामधेयस्य कवेः कृतिरभिनवा मणिमञ्जरीनामनाटिका भवद्भिरस्मदग्रेऽभिनतेव्येति । तद्भवतु तावत् प्रेयसीमाहूय सङ्गीतकं सम्पादयामि ॥

अन्त में भी भरत-वाक्य के बाद विद्यापति का नाम है । यथा—

सन्तः सन्तु निरापदो विजयतां राजा प्रजारञ्जने
विप्राः प्राप्तशुभोदयाश्चिरममी तिष्ठन्तु निर्व्याकुलाः ।
काले सन्तु पयोमुचो जलमुचः सर्वाश्रमाणामियं
शस्यैः शस्यतरा धरापि नितरामानन्दकन्दायताम् ॥
इति निष्कान्ताः सर्वे । मञ्जरीसङ्गमो नाम चतुर्थोऽङ्कः ॥४॥
महामहो० ठक्कुर श्रीविद्यापतिकृता मणीमञ्जरी समाप्ता ॥०॥

१६६३ शाके की लिखी हुई इसकी एक हस्तलिखित प्रति पटना-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित है ।

विद्यापति-पदावली

ऐसे विरल ही लेखक या कवि होते हैं, जिनकी ख्याति अपने जीवनकाल में होती है । किन्तु, विद्यापति ऐसे ही लेखकों और कवियों में एक थे । उनकी ख्याति उनके जीवनकाल में ही दूर—बहुत दूर तक फैल चुकी थी । मिथिला तो उनकी जन्मभूमि थी । इसलिए, वहाँ उनके पदों का प्रचार-प्रसार सहज ही हो गया । किन्तु, दूर देश में भी उनके पदों के प्रचलित होने का कारण है । उस समय मिथिला संस्कृत-विद्या के पठन-पाठन की केन्द्रस्थली थी । विशेषतः दर्शनशास्त्र के अध्ययन के लिए दूर-दूर के छात्र यहाँ आते थे । उस समय अर्धमागधी-प्रसूत भगिनी भाषाओं में आज की तरह दूरी भी नहीं थी । अतः, किसी एकभाषा-भाषी के लिए कोई अन्य भगिनी भाषा दुरवबोध नहीं थी । इसलिए, जब यहाँ से पढ़कर छात्र जाने लगते थे, तब वे अधीत शास्त्र-ज्ञान के साथ मैथिली के मधुर-मसृण पद भी लिये जाते थे । इस प्रकार विना किसी प्रयास के ही विद्यापति के पद दूर-दूर तक फैल गये । मिथिला से बाहर सबसे अधिक प्रचार बंगाल में हुआ । महाप्रभु चैतन्य के कानों में जब विद्यापति के पद पहुँचे, तब वे आत्मविभोर हो गये । महाकवि जयदेव-कृत 'गीतगोविन्द' के समान ही विद्यापति के पद भी उनके प्रिय थे । विद्यापति के पदों को सुन-सुनकर वे सदा आनन्द लाभ करते थे,[१] अतएव उनके अनुयायियों में विद्यापति के पदों का खूब प्रचार हुआ । केवल प्रचार ही नहीं हुआ, बाद में विद्यापति की

---

१. कर्णामृत विद्यापति श्रीगीतगोविन्द ।
दूँहे श्लोक-गीते प्रभूर कराय आनन्द ॥
—चैतन्य-चरितामृत, अध्याय ५ ।

भाषा-शैली के अनुकरण पर अनेक बंगाली कवियों ने संख्यातीत पदों की भी रचना कर डाली।

किन्तु, विद्यापति के पदों का इतना अधिक प्रचार होते हुए भी उनके सभी पद कहीं एकत्र उपलब्ध नहीं होते। इसलिए, यह कहना कठिन है कि विद्यापति ने कितने पदों की रचना की। आज जो भी पद उपलब्ध होते हैं, प्रायः वे सभी लोककंठ से संगृहीत हैं। मिथिला या नेपाल में जो प्राचीन पदावलियाँ उपलब्ध हुई हैं, वे भी विद्यापति-कालीन नहीं हैं। सभी पदावलियों में विद्यापति से अर्वाचीन कवियों के भी पद वर्त्तमान हैं। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति के बाद वे पद लोककंठ से संकलित हुए हैं। लोककंठ से संकलित होने के कारण ही उन पदों में तत्तत् स्थानविशेष की भाषा का प्रभाव है। एक ही पद की भाषा मिथिला की पदावलियों में कुछ है, तो नेपाल की पदावली में कुछ। केवल भाषा में ही पार्थक्य नहीं है, स्वरूप में भी पार्थक्य है। एक ही गीत का स्वरूप एक पदावली में और है, तो दूसरी पदावली में कुछ और। किसी में अधिक पंक्तियाँ हैं, तो किसी में कम। पदान्तर्गत शब्दों में भी एकरूपता नहीं है। एक ही शब्द विभिन्न पदावलियों में विभिन्न रूप में है। कहीं-कहीं तो टूट-फूटकर शब्द इतने विकृत हो गये हैं कि किसी एक पदावली के आधार पर अर्थ-संगति नहीं होती। सभी उपलब्ध पदावलियों में प्राप्त पदों को एकत्र करके, निरीक्षण-परीक्षण करने के पश्चात्, पाठोद्धार होने पर ही अर्थसंगति होती है। किञ्च, उपर्युक्त पदावलियों के जो पद आज लोककंठ में उपलब्ध हैं, वे घिस-पिटकर किस प्रकार बदल गये हैं, इसका भी लेखा-जोखा इन पदावलियों से हो जाता है। यद्यपि लिपि-काल का उल्लेख नहीं रहने के कारण निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि ये पदावलियाँ कब लिखी गईं, तथापि उनके निरीक्षण-परीक्षण से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे विद्यापति के निकट-परवर्त्ती काल की ही लिखी हुई हैं। लिपि के क्रम-विकास के ऊपर ध्यान देने से भी यही प्रमाणित होता है। अतः, इतना निस्संकोच कहा जा सकता है कि उपर्युक्त प्राचीन पदावलियों की भाषा में इस समय लोककंठ से उपलब्ध विद्यापति के पदों की भाषा की तरह अधिक भिन्नरूपता नहीं है। इन पदावलियों की भाषा विद्यापति की भाषा के बहुत समीप है। सभी उपलब्ध पदावलियों के अध्ययन-मनन से विद्यापति के पदों का स्वरूप भी निर्णीत हो जाता है। कारण, एक पदावली में जो पद या पदांश—शब्द, अक्षर, मात्रा आदि—टूट-फूट गये हैं, वे दूसरी पदावली में प्रायः मूलरूप में मिल जाते हैं। इसलिए, 'विद्यापति-पदावली' के संपादन में सर्वाधिक महत्त्व इन्हीं प्राचीन पदावलियों का है। अतः, नीचे इन्हीं उपलब्ध प्राचीन पदावलियों का विवेचन किया जाता है।

नेपाल-पदावली

यह पदावली नेपाल-दरबार-पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसकी लिपि प्राचीन मैथिली है। लिपि-विशेषज्ञों का अनुमान है कि यह अठारहवीं शती के प्रारंभिक काल की

लिपि है। किन्तु, मिथिला में प्राप्त पुरातन पुस्तकों की लिपि से इसकी लिपि में कोई अन्तर नहीं है, इसलिए इसे अठारहवीं शती से प्राचीन मानने में भी कोई आपत्ति नहीं। इसके अक्षर स्पष्ट हैं। कहीं-कहीं दो-चार अक्षर घिसकर नष्ट हो गये हैं। कई पत्र ऐसे भी हैं, जिनके सभी अक्षर अस्पष्ट हो गये हैं, अतः पढ़ने में कठिनाई होती है। फिर भी, परिश्रम-पूर्वक वे पढ़ लिये गये हैं। महाराजाधिराज दरभंगा की आर्थिक सहायता से इसकी प्रतिच्छवि मँगवाकर पटना-कॉलेज-पुस्तकालय में रखी गई है। यहाँ से पुनः प्रतिच्छवि करवाकर बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के विद्यापति-विभाग में सुरक्षित है। इस पदावली का कोई नाम नहीं है। किसी ने मुखपृष्ठ पर नागराक्षर में 'विद्यापति को गीत' लिख दिया है। किन्तु इसके सभी पद विद्यापति के नहीं हैं। अन्य तेरह कवियों के भी पन्द्रह पद इसमें वर्त्तमान हैं।[1] बारह पद ऐसे भी हैं, जिनमें कई खंडित हैं और शेष में किसी कवि का नाम नहीं है।[2] अतः, उनके रचयिता कौन थे, यह कहा नहीं जा सकता।

इस पदावली में पदों के साथ क्रम-संख्या नहीं है। किन्तु, गणना करने से २८४ पद होते हैं, जिनमें २६१ पद विद्यापति की भणिता से युक्त हैं। कई पद ऐसे भी हैं, जिनकी पुनरावृत्ति यत्किञ्चित् पाठभेद के साथ हो गई है। इस पदावली के कितने ही पद अन्य प्राचीन पदावलियों में भी पाये जाते हैं। जैसे—४५ पद 'तरौनी-पदावली' में, १२ पद 'रामभद्रपुर-पदावली' में, ६ पद 'रागतरंगिणी' में, ७ पद 'ग्रियर्सन के संग्रह' में और ४ पद 'पदकल्पतरु' में।

'विद्यापति-पदावली' के प्रथम संकलयिता नगेन्द्रनाथ गुप्त हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से विद्यापति के पदों को एकत्र कर अपने संस्करण में प्रतिष्ठित किया। उपर्युक्त 'नेपाल-पदावली' के ऊपर भी उनका ध्यान गया, परन्तु इसके सभी पदों को उन्होंने अपने संस्करण में स्थान नहीं दिया। मित्र-मजूमदार के संस्करण में भी कुछ पद छूट गये हैं। सर्वप्रथम इसके प्रकाशन का श्रेय डॉ० सुभद्र झा को है, जिन्होंने अँगरेजी टीका एवं गवेषणापूर्ण बृहत् भूमिका के साथ इसका प्रकाशन किया।

यह पहले कहा जा चुका है कि 'नेपाल-पदावली' में केवल विद्यापति के ही पद नहीं हैं, अन्य तेरह कवियों के भी पद हैं, किन्तु नगेन्द्रनाथ गुप्त ने उक्त पदावली के सभी पदों को विद्यापति-कृत मान लिया। इसलिए, उन्होंने कई ऐसे पदों का प्रकाशन नहीं किया, जिनकी भणिता में किसी अन्य कवि का नाम था। यथा—विष्णुपुरी की भणिता से युक्त ६० संख्यक पद, सिरिधर की भणिता से युक्त १४६ संख्यक पद, नृप मल्लदेव की भणिता से युक्त

---

१. पद-संख्या—३० राजपण्डित, ४१ कंस नृपति, ४८ आतम, ५६ कंसनराएन, ६० विष्णुपुरी, १३० लखिमिनाथ, १३२ रतन (रागतरंगिणी, पृ० १०५ के अनुसार), १४६ सिरिधर, १७० नृप मल्लदेव, १७५ अमृतकर, १७६ अमिअकर, २०४ पृथिविचन्द, २२४ भानु, २६६ धोरेसर और २७० रुद्रधर।

२. पद-संख्या—३८, १३१, १३२, १३३, १३४, १६०, १७२, १८६, २०४, २७४, २७६, और २८१।

१७० संख्यक पद, अमृतकर एवं अमिअकर की भणिता से युक्त १७५ और १७६ संख्यक पद तथा पृथिविचन्द की भणिता से युक्त २०४ संख्यक पद नगेन्द्रनाथ गुप्त के संस्करण में प्रकाशित नहीं हैं। अन्य कवियों के जो पद प्रकाशित हैं, उन्हें विद्यापति-कृत सिद्ध करने के लिए नगेन्द्रनाथ गुप्त ने भणिता में इच्छानुसार परिवर्त्तन-परिवर्धन कर दिया है। निम्नलिखित तालिका को देखने से यह स्पष्ट हो जायगा—

आतम गबइ बड़े पुने पुनमत पबइ—(ने० प०, पद-संख्या ४८)
कवि विद्यापति गबइ बड़े पुने पुनमत पबइ—(न० गु०, पद-संख्या ८२७)
नरनारायण नागरा कवि धीरेसर भाने—(ने० प०, पद-संख्या २६९)
नरनारायण नागरा कवि धीरे सरस भाने--(न० गु०, पद-संख्या ४३)
अइसन जे करिअ से नहि करबे
कवि रुद्रधर एहो भाने--(ने० प०, पद-संख्या २७०)
अइसन के करिअ से नहि करबे
कवि रुद्रधर एहो भाने।
राजा शिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमाने॥—(न० गु०, पद-संख्या ५०१)

उपर्युक्त भणिताओं में सर्वप्रथम 'आतम' के स्थान पर गुप्त महोदय ने विद्यापति को ला बिठाया। दूसरे पद की भणिता में 'धीरेसर' को 'धीरे सरस' में परिणत कर दिया और टीका में लिख दिया कि 'सरस कवि'— विद्यापति हैं।[1] तीसरे पद की भणिता में गुप्तजी ने दो पंक्तियाँ अधिक जोड़ दीं और टीका में लिखा कि 'विद्यापति के पदों में रुद्रधर का नाम मिथिला की पोथियों में भी पाया जाता है।'

'नेपाल पदावली' के एक पद (पद-संख्या २२४) की भणिता में 'भानु' कवि का नाम है। 'भानु' कवि महाराज भैरवसिंह के छोटे भाई राजा चन्द्रसिंह के दरबारी कवि थे, अतएव उक्त पद की भणिता में कवि ने चन्द्रसिंह के जीवन की कामना की है। भणिता इस प्रकार है—

चन्द्रसिंह नरेस जीबओ भानु जम्पए रे।

नगेन्द्रनाथ गुप्त ने इसे अपने संस्करण में (पद-संख्या ३२२) अविकल उद्धृत किया है और टीका में लिखा है कि 'विद्यापति ने अपने पद की भणिता में भानु-नामक किसी व्यक्ति का नाम दे दिया है।'

गुप्त महोदय ने 'नेपाल-पदावली' के कई पदों में, जिनके नीचे मूल प्रति में केवल 'भनइ विद्यापतीत्यादि' या 'भने विद्यापतीत्यादि' लिखा हुआ है, निज-निर्मित भणिता जोड़

१. साहित्य-परिषत्संस्करण, पृ० २७।

दी है। उदाहरणार्थ, 'नेपाल-पदावली' के २५ संख्यक पद के नीचे केवल 'विद्यापतीत्यादि' लिखा हुआ है; किन्तु गुप्त महोदय ने अपने संस्करण के ६६७ संख्यक उसी पद के नीचे निम्नलिखित भणिता लगा दी है—

भनइ विद्यापति गाओल रे
रस बूझए रसमन्ता।
रूपनराएण नागर रे
लखिमा देवि सुकन्ता॥

'नेपाल-पदावली' में कुल मिलाकर २८७ पद हैं। उनमें १४ पद अन्य ग्यारह कवियों के हैं। १६२ पदों में भणिता नहीं है। भणिता के स्थान में 'भनइ विद्यापतीत्यादि' है। ६० पदों की भणिता में विद्यापति का नाम है। इन साठ पदों में १३ में शिवसिंह का, एक में वैद्यनाथ का और एक में बैजलदेव का नाम है। देवसिंह का नाम भी एक पद में है। तीन पदों में विद्यापति का नाम 'कवि-कण्ठहार' विशेषण से विशिष्ट है; किन्तु चार पदों में केवल 'कवि-कण्ठहार' विशेषण का ही प्रयोग हुआ है।

रामभद्रपुर-पदावली

यह पदावली रामभद्रपुर (दरभंगा) गाँव में प्राप्त हुई, इसीलिए इसे 'रामभद्रपुर-पदावली' के नाम से अभिहित किया जाता है। यह पदावली आजकल पटना-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस पदावली में कितने पद थे, इसका पता नहीं चलता। कारण, यह पदावली खंडित है। सम्प्रति पत्र-संख्या १० और पद-संख्या २८ ही प्रारंभ में हैं। अन्तिम पत्र की संख्या १२१ और अन्तिम पद की संख्या ४१८ है। इस समय इसके ३२ पत्र ही हैं। ३२वें पत्र का आधा भाग ही है। अन्तिम पद खण्डित है, इसलिए निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि इसके बाद भी पत्र रहे होंगे। इसमें छियानबे पद हैं, जिनमें प्रथम पद का आदि और अन्तिम पद का अन्त खण्डित है। स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने सर्वप्रथम 'विद्यापति-विशुद्ध-पदावली' के नाम से इसका प्रकाशन किया। किन्तु, 'विद्यापति-विशुद्ध-पदावली' में केवल छियासी पद हैं। शेष दस पदों के अप्रकाशित रहने का कारण अज्ञात है। मित्र-मजूमदार ने भी तिरानबे पदों का ही उद्धार किया। तीन पद फिर भी छूट गये। इन पदों में साठ ऐसे पद हैं, जिनकी भणिता में विद्यापति का नाम है। दो में अमियकर का नाम है। शेष चौंतीस पदों में किसी कवि का नाम नहीं है। फिर भी, 'नेपाल-पदावली' और 'तरौनी-पदावली' से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त चौंतीस पदों में पाँच पद विद्यापति के हैं। शेष उनतीस पद विद्यापति के हैं, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। स्व० पं० शिवनन्दनठाकुर का यह कथन युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता है कि 'रामभद्रपुर-पदावली' के सभी पद विद्यापति के हैं। कारण, यदि सभी पद विद्यापति के होते, तो अमियकर का नाम दो पदों में कैसे होता। किन्तु, यह भी नहीं कहा

जा सकता कि ये भणिताहीन पद विद्यापति के नहीं हैं। कारण, भाषा, भाव और शैली के पर्यालोचन से ये पद विद्यापति के अन्य पदों के समकक्ष हैं। अतः, ये पद यदि विद्यापति के नहीं, तो विद्यापतिकालीन अवश्य हैं; इसलिए इन पदों का भी अपना महत्त्व है।

तरौनी-पदावली

यह पदावली तरौनी (दरभंगा) ग्राम-निवासी स्वर्गीय लोकनाथ झा के घर में विद्यापति-लिखित श्रीमद्भागवत के साथ सुरक्षित थी, इसीलिए इसे 'तरौनी-पदावली' के नाम से अभिहित किया जाता है। स्वर्गीय मोहिनीमोहन दत्त जब दरभंगा में मुन्सिफ थे, तभी उन्होंने इस पदावली को उपलब्ध किया। कलकत्ता-हाइकोर्ट के तत्कालीन न्यायाधीश शारदाचरण मित्र थे। उन्हें जब इस पदावली का पता चला, तब उन्होंने मोहिनीमोहन दत्त से इसे माँग लिया। उन्हीं से नगेन्द्रनाथ गुप्त को यह पदावली प्राप्त हुई। नगेन्द्रनाथ गुप्त ने भी विद्यापति-पदावली (साहित्य-परिषत्संस्करण) के प्रकाशित होने के बाद कलकत्ता-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को यह पदावली सौंप दी। किन्तु, जब उन्होंने विद्यापति-पदावली को पुनः वसुमती-कार्यालय से प्रकाशित करना चाहा, तब लाख यत्न करने पर भी उपर्युक्त पुस्तकालय में वह प्राप्त नहीं हो सकी। इस प्रकार, 'विद्यापति-पदावली' की एक दुर्लभ प्राचीन प्रामाणिक पाण्डुलिपि सदा के लिए खो गई। अब उसके विषय में नगेन्द्रनाथ गुप्त ने जो कुछ लिखा है, एकमात्र वही आधार है।

नगेन्द्रनाथ गुप्त ने लिखा है कि 'तरौनी-पदावली' में प्रायः साढ़े तीन सौ पद हैं,[१] जो सभी विद्यापति के हैं।[२] उन्होंने पुनः अन्यत्र (वसुमती-संस्करण की भूमिका में) लिखा है कि 'तरौनी-पदावली' में विद्यापति के जितने पद थे, सभी प्रकाशित कर दिये गये हैं। किन्तु, नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा प्रकाशित 'विद्यापति-पदावली' (साहित्य-परिषत्संस्करण) में जिन पदों के नीचे 'तालपत्र की पोथी से' लिखा हुआ है, उनकी गणना करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने 'तरौनी-पदावली' के केवल २३९ पद ही प्रकाशित किये हैं। इस प्रकार, 'तरौनी-पदावली' के शताधिक पद अप्रकाशित रह गये। संभव है, वे पद अन्य कवियों के रहे हों, इसीलिए गुप्त महोदय ने उन्हें प्रकाशित नहीं किया। यह भी संभव है कि प्रमादवश विद्यापति के भी पद अप्रकाशित रह गये हों। किन्तु 'तरौनी-पदावली' की मूल पाण्डुलिपि के अभाव में अब इस विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। नगेन्द्रनाथ गुप्त ने उक्त पदावली के सभी पदों को विद्यापति-कृत मानकर भी क्यों नहीं सबका प्रकाशन किया? यदि उक्त पदावली के विद्यापति-कृत सभी पदों को प्रकाशित कर दिया, तो शताधिक अप्रकाशित पद के रहते हुए भी सबको विद्यापति-कृत कैसे कह दिया? गुप्त महोदय का उपर्युक्त कथन ही परस्पर-विरोधी है! मूल पाण्डुलिपि के अभाव में जिसके निराकरण का अब कोई उपाय नहीं है।

---

१. विद्यापति-पदावली, साहित्य-परिषत्संस्करण, भूमिका, पृ० ४३।

२. वही, पृ० १०१।

नगेन्द्रनाथ गुप्त ने जिन पदों के नीचे 'तालपत्र की पोथी से' लिखा है, उन्हीं पदों के विवेचन से पता चलता है कि 'तरौनी-पदावली' में अन्य कवियों के भी पद थे। नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा प्रकाशित 'विद्यापति-पदावली' के ७८४ संख्यक पद के नीचे लिखा है—'तालपत्र की पोथी से'; किन्तु उस पद की भणिता में विद्यापति का नहीं, पञ्चानन का नाम है—

भने पञ्चानन ओखद आन न
विरह मन्द बेआधि।
जतहि पाउति हरि-दरसन
ततहि तेजति आधि॥

पञ्चानन विद्यापति की उपाधि थी, इसका कहीं प्रमाण नहीं मिलता, इसलिए इस पद को विद्यापति-कृत मान लेना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार गुप्त महोदय द्वारा प्रकाशित पदावली के ३६६ संख्यक पद के नीचे लिखा है—'तालपत्र की पोथी से'; किन्तु वह पद विद्यापति-कृत है अथवा नहीं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। कारण, उमापति-कृत 'पारिजातहरण' में वह पद उमापति के नाम से पाया जाता है। डॉ० ग्रियर्सन ने भी बहुत विचार-विमर्श करके इस पद को उमापति-कृत स्वीकार किया है।[1] उमापति विद्यापति से पूर्ववर्त्ती थे या परवर्त्ती, यह भी एक विवादास्पद विषय है। यदि उमापति को विद्यापति का परवर्त्ती मान लिया जाय, तो भी उनके द्वारा अपने ग्रन्थ में विद्यापति के पद को अपने नाम से लिख लेने का कोई कारण नहीं ज्ञात होता। यदि उमापति ने ऐसा किया होता, तो वे कदापि भणिता में विद्यापति के नाम को हटाकर अपना नाम नहीं रखते। इसलिए, 'पारिजातहरण' के उपर्युक्त पद को विद्यापति-कृत मानकर उमापति को लाञ्छित करना संगत नहीं है। विद्यापति और उमापति—दोनों अपने स्थान में, अपने कृतित्व में महान् हैं।

'तरौनी-पदावली' के जो २३६ पद नगेन्द्रनाथ गुप्त ने प्रकाशित किये हैं, उनमें १०३ पद ऐसे हैं, जिनमें विद्यापति के नाम के साथ-साथ उनके पृष्ठपोषक राजा अथवा किसी अन्य के नाम भी हैं। १०१ पदों में केवल विद्यापति का ही नाम है। एक पद पञ्चानन और एक पद उमापति का है; जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। शेष पदों में किसी कवि का नाम नहीं है। अतएव, वे पद विद्यापति-कृत हैं या नहीं, इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रागतरंगिणी

मैथिल कवि लोचन-कृत 'रागतरंगिणी' में विद्यापति के ५१ पद पाये जाते हैं। लोचन महाराज महिनाथ ठाकुर और महाराज नरपति ठाकुर के आश्रित कवि थे। कवि ने ग्रन्थारंभ में लिखा है कि इस समय राजा महिनाथ मैथिलों का शासन करते हैं

१. जरनल ऑफ् एशियाटिक सोसाइटी, भाग १, १८८४ ई०।

और उनके अनुज नरपति की आज्ञा से मैं कीर्त्ति-विस्तार करता हूँ।[1] महाराज महिनाथ ठाकुर का राज्यकाल १६६८ ई० से १६९० ई० पर्यन्त था।[2] अतः, इस ग्रन्थ का रचना-काल भी वही है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। इस प्रकार, यह ग्रन्थ आज से लगभग तीन सौ वर्ष पहले लिखा गया था। विद्यापति का जीवनकाल १३५० ई० से १४५० ई० पर्यन्त था, जिसका विवेचन पहले हो चुका है। अतः, विद्यापति और लोचन के बीच दो सौ वर्ष से अधिक अन्तर नहीं है। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि विद्यापति और लोचन की भाषा में आज की तरह अधिक अन्तर नहीं रहा होगा। किञ्च, विद्यापति के समान लोचन भी कवि और संगीत-मर्मज्ञ थे, जिसके प्रमाण के लिए उनकी रागतरंगिणी ही पर्याप्त है। इसीलिए, 'रागतरंगिणी' में विद्यापति के जो पद पाये जाते हैं, वे सब तरह से विशुद्ध और प्रामाणिक माने जा सकते हैं। लय, ताल, छन्द, मात्रा आदि का विचार करते हुए लोचन ने उन पदों को इस प्रकार श्रृङ्खलाबद्ध कर दिया है कि आज भी वे विश्रृङ्खलित नहीं हुए हैं—अपने यथार्थ रूप में वर्त्तमान हैं। विद्यापति की जन्मभूमि मिथिला में ही एक मैथिल कवि द्वारा ये पद संगृहीत हैं। अतः, इनपर किसी अन्य भाषा का प्रभाव भी नहीं है। संप्रति जो 'रागतरंगिणी' उपलब्ध है, उसमें मुद्रण अथवा संपादन की जो त्रुटियाँ रह गई हैं, यत्किञ्चित् परिश्रम से ही उनका परिहार हो जाता है। यथा—

आंचरे वदन झपावह गोरि
राज सुनैछि अचाँदक चोरि।
घरेंघरेंपें हरि गेलछ जोहि
एषने दूषन लागत तोहि॥ आदि।[3]

---

१. तस्योल्लासिकलाकुलेन मुदितो नित्योन्नतस्सन्नतः
सूनुस्सज्जनरञ्जनः प्रतिपलं दुश्शीलहृद्गञ्जनः।
शोमाभिः कुसुमायुधस्य सुमहद्धिक्कारकारी नरान्
वीरश्रीमहिनाथभूपतिलकः शास्तेऽधुना मैथिलान्॥
तस्यानुजोऽपि निजवैरिदलोद्भटानां
न्यक्कारकारिधनुरायतपुङ्खकाण्डः।
चन्द्राननो नरपतिर्धुनिगानसिन्धु-
राविर्बभूव गुणिराजगणैकबन्धुः॥

यो जागर्त्ति महीतले निरुपमस्सर्वासु पुंसाङ्कला-
स्वासन्नेषु च कल्पपादपवदानन्दाय यो नित्यशः।
तस्य श्रीनृपसुन्दरात्मजमहीनाथानुजस्याज्ञया
विप्रः कोऽपि सुवंशजो नरपतेः कीर्त्तिन्तनोति प्रियाम्॥

—रागतरङ्गिणी, पृ० १-२।

२. म० म० परमेश्वर झा, मिथिलातत्वविमर्श, उत्तरार्ध, पृ० ३५।

३. रागतरंगिणी, पृ० ५६।

उपयुक्त पंक्तियों में पदच्छेद अशुद्ध है। विशुद्ध पदच्छेद इस प्रकार होगा—

आंचरे वदन झपावह गोरि
राज सुनैछिअ चाँदक चोरि।
घरें घरें पेहरि गेलछ जोहि
एषने दूषन लागत तोहि॥

इसी प्रकार यत्र-तत्र अक्षराशुद्धि भी है। यथा—

नव जौवन अभिरामा।
जेत देखल तत कहि न परिआ
छाओ अनुपम एक वामा।

इसका विशुद्ध पाठ इस प्रकार होगा—

नवजौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहि न पारिआ
छओ अनुपम एक ठामा॥

'विद्यापति-पदावली' के प्रथम संपादक नगेन्द्रनाथ गुप्त ने अपने संस्करण में 'रागतरंगिणी' से भी विद्यापति के पदों का संकलन किया है, किन्तु उन्होंने 'रागतरंगिणी' से कई ऐसे पद भी संकलित किये हैं, जो विद्यापति के नहीं हैं। उदाहरणार्थ, गुप्त महोदय के ४८४ संख्यक पद को लीजिए। नगेन्द्रनाथ गुप्त ने लिखा है कि यह पद 'रागतरंगिणी' और 'तरौनी-पदावली' से लिया गया है। 'तरौनी-पदावली तो उपलब्ध नहीं है, इसलिए कहा नहीं जा सकता कि उसमें यह किसके नाम से था। किन्तु, 'रागतरंगिणी' में यह पद 'जसोधर नवकविशेखर' के नाम से है। भणिता पर दृक्पात कीजिए—

भनइ जसोधर नवकविशेखर पुहबी तेसर काँहाँ।
साह हुसेन भृङ्गसम नागर मालति सेनिक ताहाँ॥

—रागतरंगिणी, पृ० ६७

नगेन्द्रनाथ गुप्त ने इसे बदलकर इस प्रकार कर दिया है—

भनइ विद्यापति नव कविशेखर पुहुबी दोसर कहाँ।
साह हुसेन भृङ्गसम नागर मालति सेनिक जहाँ॥

गुप्त महोदय ने अनेक पदों में ऐसा परिवर्त्तन किया है। यहाँ एक तालिका प्रस्तुत की जाती है, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा।

कवि रतनाई भाने।
सङ्क कलङ्क दुअओ असमाने॥

—रागतरंगिणी, पृ० ७६

भनइ विद्यापति गावे ।
बड़ पुने गुनमति पुनमत पावे ॥

—नगेन्द्रनाथ गुप्त, पद-सं० १६

प्रीतिनाथ नृप भान ।
अचिरे होएत समधान ॥

—रागतरंगिणी, पृ० ८०

विद्यापति कवि भान ।
अचिर होएत समाधान ॥

—न० गु०, पद-सं० ६४३

भवानीनाथ हेन भाने, नृप देव जत रस जाने, नव कान्हे लो ॥

—रागतरंगिणी, पृ० ९५

कवि विद्यापति भाने, नृप सिवसिंह रस जाने, नव कान्हे लो ॥

—न० गु०, पद-सं० १२६

जामिनि सुफले जाइति अवसान ।
धैरज कर धरणीधर भान ॥

—रागतरंगिणी, पृ० ९८

जामिनि सुफले जाइति अवसान ।
धैरज धरु विद्यापति भान ॥

—न० गु०, पद-सं० ७९३

सुकृत सुफल सुनह सुन्दरि गोबिन्द वचन सारे ।
सोरमरमन कंसनराएन मिलत नन्दकुमारे ॥

—रागतरंगिणी, पृ० १००-१

सुकृत सुफल सुनह सुन्दरि विद्यापति वचन सारे ।
कंसदलननारायन सुन्दर मिलल नन्दकुमारे ॥

—न० गु०, पद-सं० ५९

दान कलपतरु मेदिनि अवतरु नृप हिन्दू सुलताने ।
मेधा देइपति रुपनराएन प्रणवि जीवनाथ भाने ॥

—रागतरंगिणी, पृ० ११२

दानकलपतरु मेदिनि अवतरु नृपति हिन्दु सुरतान रे ।
मेधा देविपति रुपनराअन सुकवि भनथि कण्ठहार रे ॥

—न० गु०, पद-सं० ६०

रसमय स्यामसुन्दर कवि गाव, सकल अधिक भेल मनमथ भाव ।
कृष्णनराएण ई रस जान, कमलावतिपति गुनक निधान ॥

—रागतरंगिणी, पृ० ११५

विद्यापति कविवर एह गाव, सकल अधिक भेल मनमथ भाव।

—न० गु०, पद-सं० ५७७

गजसिंह भन एहु पूरब पुनतह ऐसनि भजए रसमन्त रे।
बुझए सकल रस नृप पुरुषोत्तम असमति देइ केर कन्त रे॥

—रागतरंगिणी, पृ० ७२

भनइ विद्यापति एहु पूरब पुनतह ऐसनि भजए रसमन्त रे।
बुझए सकल रस नृप शिवसिंह लखिमा देइ कर कन्त रे॥

—न० गु०, पद-सं० १६

गजसिंह कह दुख छाड़त सुनह विरहिजन रे।
नृप पुरुषोत्तम सहि रह तेहिँ दयाजे मिलु रे॥

—रागतरंगिणी, पृ० ६८

विद्यापति कह सुन्दरि मन धीरज धरु रे।
अचिर मिलत तोर प्रियतम मन दुख परिहरु रे॥

—न० गु०, पद-सं० ६३६

भनइ जमिअकर सुनु मधुरापति राधाचरित अपारे।
राजा सिवसिंह रुपनराजन लखिमा देइ कण्ठहारे॥

—रागतरंगिणी, पृ० ८४-८५

भनइ अमियकर सुनह मधुरपति राधाचरित अपारे।
राजा शिवसिंह रुपनराजेन सुकवि भनथि कण्ठहारे॥

—न० गु०, पद-सं० ३१७

कवि कुमुदी कह रे रे थिर रह सुपुरुष वचन पसानक रेह॥

—रागतरंगिणी, पृ० ६८

भनइ विद्यापति ओरे सहि लेह सुपुरुस-वचन पसानक रेह॥

—न० गु०, पद-संख्या ६४२

किन्तु, नगेन्द्रनाथ गुप्त का प्रथम प्रयास था। वे मिथिला से बाहर के रहनेवाले थे, इसलिए उनकी उपर्युक्त भ्रान्तियाँ सर्वथा नगण्य हैं।

'रागतरंगिणी' में विद्यापति के तीन ऐसे पद हैं, जिनमें विद्यापति का नाम नहीं है; किन्तु ग्रंथकार ने पद के नीचे लिख दिया है—'इति विद्यापतेः।' दो पद ऐसे भी हैं, जिनमें विद्यापति का नाम नहीं; किन्तु उनकी उपाधि 'कण्ठहार' मात्र है।

वैष्णव-पदावली

बंगाल में विद्यापति के पद किस प्रकार पहुँचे और किस प्रकार वहाँ लोककण्ठ में उन्हें स्थान मिला, इसका प्रतिपादन पहले हो चुका है। किन्तु, वहाँ वे पद अपने वास्तविक रूप में रह नहीं सके। देश, काल और पात्र के भेद से उनमें बहुत परिवर्त्तन हो गया।

महाप्रभु चैतन्य के अनुयायियों ने विद्यापति के पदों को कीर्त्तनोपयोगी बनाने के लिए उनमें नाना प्रकार के परिवर्त्तन-परिवर्धन किये। जो शब्द बंगाल में अप्रचलित थे अथवा जिनके अर्थ समझने में बंगालियों को कठिनाई होती थी, उन्हें परिवर्त्तित करने में भी वहाँ संकोच नहीं किया गया। इसीलिए, विद्यापति के एक ही पद में, जो मिथिला और बंगाल—दोनों स्थानों से उपलब्ध है, इतना अन्तर हो गया है। किन्तु, इस प्रकार परिवर्त्तन-परिवर्धन करने के बाद भी आज विद्यापति के शताधिक पद बंगाल के वैष्णव-ग्रंथों में सुरक्षित हैं, जो अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होते। इसलिए, बंगालियों का—विशेषतः उन संकलयिताओं का जितना धन्यवाद किया जाय, थोड़ा है।

इस प्रकार की वैष्णव-पदावलियाँ, जिनमें विद्यापति के पद संगृहीत हैं, अनेक हैं। उनमें मुख्य हैं—राधामोहन ठाकुर का 'पदामृत-समुद्र', गोकुलानन्द सेन (प्रसिद्ध—वैष्णवदास) का 'पदकल्पतरु', दीनबन्धुदास का 'संकीर्त्तनामृत' और किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा संकलित 'कीर्त्तनानन्द'। 'पदामृत-समुद्र' में विद्यापति के ६४ पद, 'पदकल्पतरु' में १६१ पद, 'संकीर्त्तनामृत' में १० पद और 'कीर्त्तनानन्द' में ५८ पद हैं। विश्वनाथ चक्रवर्त्ती के 'क्षणदा-गीत-चिन्तामणि'-नामक ग्रन्थ में भी कुछ ऐसे पद हैं, जिन्हें नगेन्द्रनाथ गुप्त ने विद्यापति के पद मानकर अपने संस्करण में स्थान दिया है। इनके अतिरिक्त कई अप्रकाशित पद-संग्रह भी वंगीय साहित्य-परिषद्, कलकत्ता-विश्वविद्यालय और शान्तिनिकेतन आदि में सुरक्षित हैं, जिनका अनुसन्धान होना अभी बाकी है। एक अप्रकाशित पद-संग्रह श्रीविमानविहारी-मजूमदार के पास है,[१] जिसमें विद्यापति के पद संगृहीत हैं। मजूमदार महोदय ने अपने संस्करण में इस पद-संग्रह से विद्यापति के कई अप्रकाशित पद संकलित किये है।

उपर्युक्त वैष्णव-पदावलियों में विद्यापति के जो पद हैं, वे सभी नेपाल या मिथिला की प्राचीन पाण्डुलिपियों में नहीं पाये जाते हैं। फिर भी, जो पाये जाते हैं, उनसे पता चलता है कि बंगाल में विद्यापति के पदों का किस प्रकार रूप-परिवर्त्तन हुआ है। बंगालियों ने विद्यापति के पदों को किस प्रकार तोड़-मरोड़कर—घटा-बढ़ाकर आत्मसात् किया है, इसे स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित पद ही पर्याप्त है—

कि कहब रे सखि आनन्द ओर।
चिरदिने माधव मन्दिरे मोर॥
पाप सुधाकर जत दुख देल।
पिआ-मुख-दरसने तत सुख भेल॥
आँचर भरिया यदि महानिधि पाइ।
तब हाम पिया दूर देशे ना पाठाइ॥
शीतेर ओढनी पिया गीरेषेर वा।
बरिषार छत्र पिया दरियार ना॥

---

१. श्रीविमानविहारी मजूदार, विद्यापति-पदावली, भूमिका, पृ० ८२।

भनये विद्यापति सुन वरनारि।
सुजनक दूख दिन दुइ चारि॥

—पदकल्पतरु, पद-संख्या १६६५

इसके प्रारंभिक चार चरण मैथिल विद्यापति की रचना हैं, इसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं है। किन्तु, बाद के चरण प्रक्षिप्त हैं, यह भी निस्सन्देह कहा जा सकता है। किन्तु, विद्यापति के शताधिक पदों का संरक्षण करते हुए बंगालियों ने यदि उनके पदों में यत्किञ्चित् परिवर्त्तन-परिवर्धन भी किया, तो वह क्षम्य है।

लोककंठ के पद

मिथिला की संगीत-पद्धति बहुत प्राचीन है। विद्यापति के बहुत पहले से ही मैथिली में पदों की रचना हो रही थी। विद्यापति के समय में, जबकि ओइनवार-साम्राज्य का सौभाग्य-सूर्य द्वादश कलाओं से पूर्ण होकर मिथिला के आकाश में चमक रहा था, अनेक ऐसे कवि हुए, जिन्होंने मैथिली का शृंगार किया। जिस प्रकार गङ्गोत्री से निकली गङ्गा हरद्वार में आकर विस्तार पाती है, उसी प्रकार मैथिली कविता का विस्तार भी ओइनवार-साम्राज्य के समय हुआ। उस समय के कवियों में विद्यापति सबसे महान् थे—कवि-कण्ठहार थे। इसलिए, उनके पथ-प्रदर्शन में मैथिली कविता की धारा अपने उद्दाम वेग से प्रवाहित हो चली, जिससे मिथिला ही नहीं, भारत का संपूर्ण पूर्वोत्तर भूभाग आप्लावित हो गया। उस धारा के अनुसरण करनेवाले कितने कवि हुए, आज भी यह अनुसंधान का विषय बना हुआ है। उन कवियों की सम्पूर्ण कृतियों का कहीं एकत्र संग्रह नहीं, जिससे उनके विषय में कुछ कहा जाय। हाँ, लोककंठ में उनकी कविता-कामिनी की मनोहारिणी पायल आज भी खनक रही है, जिसमें विद्यापति का स्वर सबसे अधिक ऊँचा सुनाई पड़ता है।

विद्यापति ने कितने पदों की रचना की, इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। एक 'नेपाल-पदावली' को छोड़कर अन्य सभी उपलब्ध प्राचीन पदावलियाँ खण्डित हैं। इसलिए, उन पदावलियों में विद्यापति के कितने पद रहे होंगे, यह कहा नहीं जा सकता। जो पद इनमें उपलब्ध हैं, उनमें भी एकरूपता नहीं है। एक ही पद दो पदावलियों में दो रूपों में पाया जाता है। एक पदावली में भी जो पद दो बार आ गये हैं, उनमें भी एकरूपता नहीं है। इसलिए, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये सभी पद लोककंठ से संगृहीत हैं। लोककंठ में रहने के कारण ही इन पदों की एकरूपता नष्ट हो गई। देश, काल और पात्र का प्रभाव उनपर आ पड़ा। किन्तु, इतना होते हुए भी विद्यापति के पदों की मधुरिमा नष्ट नहीं हुई। इसीलिए, आज भी मिथिला के लोककंठ में विद्यापति के असंख्य पद वर्त्तमान हैं। मिथिला में ऐसा एक भी पर्व-त्योहार नहीं होता, जिसमें विद्यापति के पद नहीं गाये जाते हों। आज भी मिथिला की अमराइयों में झूले पर झूलते हुए तरुणों के

कोमल कंठ से निःसृत विद्यापति के मधुर-मसृण पद राह चलते पथिकों को अपनी ओर आकृष्ट किये विना नहीं रहते। वर-वधू को घेरकर कोहवर को ले जाती हुई ललनाओं के मुख से संगीत-लहरी को सुनकर कौन आत्मविभोर नहीं हो जाता। उपनयन-विवाह के शुभ अवसर पर मिथिला के पल्ली-ग्रामों का वातावरण ही संगीतमय हो जाता है। यदि बाहर का कोई उन दिनों मिथिला के ग्रामीण अंचलों में पहुँच जाय, तो उसे अवश्य वह स्वप्नलोक-सी मालूम पड़ेगी। वैसे भी कहीं घाट-वाट पर, पेड़ की छाया में बैठा युवक 'बारहमासा' अलापता है, तो चक्की चलाती युवती 'लगनी' की धुन देती है। सुवह-शाम दरवाजे पर शिवजी की मृण्मय मूर्त्ति को पूजकर वृद्धजन नचारी गा-गाकर अश्रु-प्लावित नेत्रों से अपना दुःख-दर्द उनसे निवेदन करते हैं। जिस प्रकार मिथिला अपनी संस्कृति और सभ्यता को आज भी जुगाये है, उसी प्रकार वह अपने संगीत को भी लोककंठ में सँजोये है। उसमें भी विद्यापति-संगीत का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। सर्वप्रथम इस ओर डॉ० ग्रियर्सन का ध्यान गया। वे जब मधुबनी में मैजिस्ट्रेट थे, तभी उन्होंने बड़े परिश्रम से लोककंठ से विद्यापति के ८२ पदों का संकलन करके 'एन इण्ट्रोडक्शन टू द मैथिली लैंग्वेज ऑफ् नॉर्थ बिहार, कण्टेनिंग ए ग्रामर स्क्रिप्टोमेथी ऐण्ड भोकेबुलरी'-नामक ग्रन्थ में प्रकाशित किया। ग्रियर्सन द्वारा लोककंठ से संगृहीत विद्यापति के कई पद प्राचीन पदावलियों में भी पाये जाते हैं। 'नेपाल-पदावली' में ४, 'रागतरंगिणी' में ३ और 'तरौनी-पदावली' में १६ पद ऐसे हैं, जिनका संग्रह ग्रियर्सन ने लोककंठ से किया है, इसलिए लोककंठ में वर्त्तमान विद्यापति के पदों की प्रामाणिकता निस्सन्दिग्ध हो जाती है। ग्रियर्सन द्वारा संगृहीत विद्यापति के पदों में दो पद 'क्षणदा-गीतचिन्तामणि' में और एक पद 'पदामृत-समुद्र' में भी पाये जाते हैं। उनमें चार पद ऐसे भी हैं, जिनकी भणिता में भोल झा द्वारा संगृहीत 'मिथिला-गीत-संग्रह' में अन्य कवियों के नाम हैं। ग्रियर्सन द्वारा संगृहीत २३ संख्यक पद में चन्द्रनाथ, २६ संख्यक पद में नन्दीपति, ४९ संख्यक पद में रुद्र और ६६ संख्यक पद में धैरजपति के नाम हैं। उनके ३७ संख्यक पद में 'रागतरंगिणी' (पृ० ८४-८५) और 'तरौनी-पदावली' में अमिअकर का नाम है, किन्तु 'पद-कल्पतरु' (पद-संख्या १५२३) में विद्यापति का नाम है। किन्तु, केवल डॉक्टर ग्रियर्सन के संग्रह में नहीं, अन्यत्र भी ऐसा भ्रम हुआ है। नगेन्द्रनाथ गुप्त के ६६३ संख्यक पद में भी विद्यापति का नाम है। गुप्त महोदय को यह पद मिथिला के लोककंठ से प्राप्त हुआ था। किन्तु, परिषद् के विद्यापति-विभाग में मिथिला के एक पुराने पण्डित-घराने से प्राप्त प्राचीन पाण्डुलिपि सुरक्षित है, जिसमें यह पद 'कवि कृष्ण' के नाम से है। इसी प्रकार, 'नेपाल-पदावली' का ६३ संख्यक पद स्वर्गीय डॉक्टर अमरनाथ झा द्वारा संपादित 'हर्षनाथ-काव्य-ग्रन्थावली' (पृ० ११०) में कुछ परिवर्त्तन करके दे दिया गया है, किन्तु किसी ने ऐसा जान-बूझकर नहीं किया है। जिस प्रकार लोककंठ में पड़कर विद्यापति के पदों का रूप-परिवर्त्तन हुआ, उसी प्रकार भणिता में भी नाम-परिवर्त्तन हुआ। विद्यापति के कितने पदों में दूसरे कवियों के नाम आ गये हैं या दूसरे कवियों के कितने पदों में विद्यापति का नाम आ गया है, इसका निश्चय होना कठिन है। बड़े-से-बड़े

विज्ञ संपादक भी इसमें स्खलित हो जा सकते हैं। फिर भी, मिथिला के लोककंठ में जो विद्यापति के पद हैं, वे उपेक्षणीय नहीं हैं। भाषा, भाव या शैली, किसी दृष्टि से वे प्राचीन पदावलियों में उपलब्ध विद्यापति के पदों से न्यून नहीं हैं। उदाहरणस्वरूप निम्न-लिखित पद ध्यातव्य है—

मालति ! करु परिमल-रस दान ।
तुअ गुन-लुब्ध मुग्ध मन मधुकर
मोहि न करिअ अपमान ।।
मधुमय मालति ! मल्लि, बल्लि अरु
कुन्द, कुमुद, अरविन्द ।
चम्पक परिहरि तोहि हृदअ धरि
कतहु न पिब मकरन्द ।।
सुबुधि सजानि रूप-गुन-आगरि
जग भरि के नहि जान ।
अलि-गुन आगरि प्रमुदित नागरि
करह अधर-मधु दान ।।
आतप बिति गेल, पावस रितु भेल
तइओ न तेजह मान ।
जान प्रसून भ्रमर जओ बिलसत
तोहरे दोष निदान ।।
निज हित जानि सजानि हेम-सम
पेम करिअ अङ्गिकार ।
भनइ विद्यापति प्रमुदित अलिपति
उपवन करहिँ बिहार ।।[१]

मिथिला के लोककंठ में विद्यापति के शृंगारिक पदों से अधिक पव-त्योहार के पद हैं। किन्तु, ये पद ललनाओं के कंठ में हैं, इसलिए इनका संग्रह-कार्य अत्यन्त कठिन है। फिर भी, तीन सौ पद परिषद् के विद्यापति-विभाग में संगृहीत हुए हैं, जिनमें अधिकांश अप्रकाशित हैं। इनमें सोहर, मलार, बटगमनी, तिरहुत, समदाउनि, योग, उचिती, नचारी, महेशवानी आदि नाना प्रकार के पद हैं। उदाहरणस्वरूप विद्यापति की निम्नलिखित उचिती द्रष्टव्य है—

स्रवन सुनिअ तुअ नाम रे ।
जगत विदित सब ठाम रे ।।

१. श्रीचुल्हाई झा, कठरातुमौल (दरभंगा)।

तुअ गुन बहुत पसार रे ।
ताहि कतहु नहि पार रे ॥
छिति कागत जनि जानि रे ।
सागर करु मसिहानि रे ॥
सुरतरु कलम जनाइ रे ।
फनिपति लिखथि बनाइ रे ॥
लिखि न सकथि तुअ गून रे ।
कहि न सकथि तुअ पून रे ॥
सुकवि भनथि अवधारि रे ।
सुपुरुष जग दुइ-चारि रे ॥[१]

उचिती स्वागत-गीत है। विशिष्ट अतिथि—जामाता आदि के स्वागत के समय इसे गाया जाता है। इसके स्वर मधुर और भाव बड़े अनूठे होते हैं। इसमें प्रायः किसी विशिष्ट देवता को—राम, कृष्ण अथवा महादेव को—लक्ष्य करके अन्योक्ति रूप से अतिथि की अभ्यर्थना की जाती है। ऊपर के पद में शिव की अभ्यर्थना है। निम्नलिखित पद को देखिए। इसमें कृष्ण की अभ्यर्थना की गई है—

त्रिभुवनपति व्रजराज हे ।
बूझि भजल हमे आज हे ॥
हमे निच जाति गोआरि हे ।
तोहें प्रभु देव मुरारि हे ॥
वदन बिलोकिअ तोर हे ।
ससि जनि निरखु चकोर हे ॥
कामिनि करु अभितोष हे ।
सुपुरुष छम सब दोष हे ॥
सुकवि विद्यापति भान हे ।
सुपुरुष गुनक निधान हे ॥[२]

अब एक 'महेशबानी' का भी उदाहरण लीजिए। इसमें पार्वती-परमेश्वर के गृह-कलह का कैसा सुन्दर चित्रण विद्यापति ने किया है—

रुसि चलली भवानी तेजि महेश ।
कर धए कार्त्तिक गोद गणेस ॥
तोहें गउरी! जनु नैहर जाह ।
त्रिशूल बघम्बर बेचि बरु खाह ॥

---

१. आधा दाइ, तरौनी (दरभंगा)।
२. श्रीफेकू झा की पत्नी, मँगरौनी (दरभंगा)।

त्रिशूल बघम्बर रहओ बरपाए।
हमे दुख काटब नैहर जाए॥
देखि अएलहुँ गउरी! नैहर तोर।
सबकाँ परिहन बाकल-डोर॥
जनु उकटी शिव! नैहर मोर।
नाङ्ट सओ भल बाकल-डोर॥
भनइ विद्यापति सुनिअ महेश।
नीलकण्ठ भए हरिअ कलेस॥[1]

उपर्युक्त यत्किञ्चित् निरीक्षण-परीक्षण से ही लोककंठ में स्थित विद्यापति के गीतों का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। अतः, वे पद किसी प्रकार भी उपेक्षणीय नहीं हैं। उनका संकलन, संपादन और प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है।

अग्रहायण-शुक्ल-पञ्चमी
विक्रम-संवत् २०१८

—शशिनाथ झा
—दिनेश्वरलाल 'आनन्द'

१. स्व० तेजनारायण झा पंडा, कपिलेश्वर स्थान (दरभंगा)

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[१]

मालवरागे—

हृदय[१] तोहर जानि नहि[२] भेला[३]
परक[४] रतन आनि मञे[५] देला।
कएल माधव हमे अकाज
हाथि मेराउलि[६] सिंह-समाज ॥ ध्रुवं ॥
राखह[७] माधव मोरि विनती
देहे[८] परिहरि[९] पर-युवती[१०] ॥
चुम्बने नयन[११] काजर गेला
दसने अधर खण्डित भेला ॥
पीन पयोधर[१२] नखर[१३] मन्दा
जनि महेसर सरद[१४] चन्दा ॥
न मुख वचन तन[१५] चित थीरे
कापए[१६] घनहन सबे सरीरे ॥
घर गुरुजन दुजन[१७] शङ्का[१८]
न[१९] गुनह माधव मोहि कलङ्का ॥
भने विद्यापति दूती[२०] भोरि[२१]
चेतन गोपए[२२] गुपुति[२३] चोरि[२४] ॥

नेपाल-पाण्डुलिपि, पृ० १, पद १, पंक्ति १

पाठभेद—

राम० (पद-सं० ४०)—१ हृदअ। २ न। ४ आनक। ६ मेलाउलि। ७ राख। १० जुवती। ११ नअन। १२ पओधर। १३ नखरें। १४ सेखर। १५ न मन। १६ काम्प। १९ लओलह। २१ भन विद्यापति तञे दुति मोरी। २३-२४ वेकत चोरी।

संपादकीय अभिमत—१ हृदअ। ४ आनक। ५ मोञे। ६ मेलाउलि। १० जुवती। ११ नअन। १२ पओधर। १३ नखरेँ। १४ सेखर। १५ न मुख वचन न मन थीरे। १६ काँपए। १७ दुरजन। १९ लओलह। २४ चेतन गोपए बेकत चोरी।

न०गु० (पद-सं० १८२)—२ न। ५ मोञे। ६ परीहरि। १० जुवती। १४ शिखर। १५ न चित। १६ काँप। १७ दुरजन। १८ सङ्का। २१ कवि विद्यापति भान। आनक वेदन नइ बुझ आन॥

मि० म० (पद-सं० २६३)—३ जानि भेला। ५ मोञे। ८ देह। ६ परीहरि। १० जुवती। १४ सिखर। १५ न चित। १६ काँप। १७ दुरजन। १८ सङ्का। २० दूति। २२ गोपये। २३ गूपति।

झा—१५ न चित। १६ गुनह।

शब्दार्थ—तोहर=तुम्हारा। मञे=मैं। मेलाउलि=मिलाया। नखरे=नखक्षत से। घनहन=जोरों से। भोरी=भोली, मुग्धा। गोपए=छिपाता है। मोहि=मुग्ध होकर।

अर्थ—तुम्हारे हृदय (हृदयगत भाव) को मैं समझ नहीं सकी, इसलिए मैंने दूसरे का रत्न ला दिया। हे माधव! हमने यह अच्छा काम नहीं किया कि हाथी को सिंह के समाज में मिला दिया।

हे माधव! मेरी विनती स्वीकार करो। पराई स्त्री का त्याग कर दो। (हाय! तुमने इसकी कैसी दशा कर दी?)

चुम्बन से आँखों का काजल (मिट) गया, दशन से अधर खण्डित हो गया।

नखक्षत से पीन पयोधर मन्द पड़ गया। मालूम होता है, जैसे शिवजी के मस्तक पर चन्द्रमा उग आया हो।

इसके मुख से बोली नहीं निकल रही, इसका मन स्थिर नहीं है और इसका पूरा शरीर जोरों से काँप रहा है।

घर में गुरुजनों से (और बाहर) दुर्जनों से शङ्का है। हे माधव! तुमने मुग्ध होकर कलङ्क का विचार नहीं किया। विद्यापति कहते हैं—दूती! तुम (बड़ी) भोली हो। अरे, चेतन व्यक्ति तो गुप्त चोरी को गुप्त ही रखते हैं।

[२]

मालवरागे—

बारिस जामिनि कोमल कामिनि
दारुण[1] अति अन्धकार
पथ निशाचर[2] सहसे सञ्चर[3]
घन[4] पर जलधार ॥ ध्रु० ॥
माधव प्रथम नेहे से भीती[5]
गए[6] अपनहि से अविलोकिअ[7]
करिअ[8] तैसनि[9] रीती[10] ॥

सं० अ०—१ दारुण। २ निसाचर। ३ संचर। ४ घन (तर)। ५ भीति। ७ अवलोकिअ। ६ तइसनि। १० रीति।

अति भयाउनि[11] आतर[12] जउनि[13]
कैसे[14] कए आउति पार
सुरत रस सुचेतन बालभु
ता पति सबे असार ॥
एत गुनि[15] मने[16] विमुख सुमुखि[17]
तोह मने नहि लाज
कतए देषल[18] मधु अपने
जा मधुकर समाज ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १, प० २, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २३५)—१ निदारुण। ५ मीति। ६ गये। ७ सेअ विलोकिय। ८ करिय। १० रीति। १३ जउनि। १४ कइसे। १५ सुनि। १७ सुमुखी। १८ देखल।

मि० म० (पद-सं० ३२७)—१ दारुण। २ निसाचर। ५ मीति। ७ सेअ विलोकिअ। १० रीति। १३ जउनि। १४ कइसे। १५ शुनि। १६ मन। १८ देखल।

झा० (पद-सं० २)—४ घन तर। ७ अवलोकिअ।

शब्दार्थ—बारिस = बरसात। जामिनी = (यामिनी—सं०) रात। निसाचर = रात्रिचर, रात में चलनेवाले राक्षस आदि। सहसे = (सहस्र—सं०) हजारों। घन (तर) = जोरों से। नेहे = (स्नेह—सं०) परिणय में। भीति = (भीता—सं०) डर रही है। भआउनि = भयावनी। आतर = (अन्तर—सं०) बीच में। जउनि = यमुना। आउति = आएगी। बालभु = वल्लभ, प्रिय। ता पति = (तां प्रति—सं०) उसके लिए।

अर्थ—बरसात की रात है और कोमल कामिनी है। अत्यन्त भयावह अन्धकार है। मार्ग में हजारों निशाचर घूम रहे हैं। घनघोर वर्षा हो रही है।

हे माधव! (ये ही कारण हैं कि) वह प्रथम परिणय में डर रही है। इसलिए स्वयं जाकर उसे देखिए और वैसा व्यवहार कीजिए (जिससे कि उसका भय दूर हो।)

बीच में अत्यन्त भयावनी यमुना नदी बह रही है। वह किस तरह उसे पार करके आ सकती है!

सुरत रस और सुचेतन वल्लभ—ये सभी उसके लिए सारहीन हैं। (अर्थात्—बाला के लिए इनका कुछ भी महत्त्व नहीं।)

मन में ये सारी बातें समझ करके भी तुम सुमुखी (नायिका) से विमुख हो रहे हो? तुम्हारे मन में लज्जा नहीं आती है?

मधु को स्वयं मधुकर के समीप जाते कहीं देखा है?

---

११ भआउनि। १२ आँतर। १४ कइसे। १८ देखल।

[३]

मालवरागे—

कतहु साहर कतहु सुरभि[१]
कतहु नवि मंजरी
कतहु कोकिल पञ्चम गाबए
समए[२] गुने गुजरी[३] ॥ ध्रु० ॥
कतहु भमर भमि भमि कर
मधु मकरन्द पान
कतहु सारस वासर जोरए[४]
गुपुत[५] कुसुम बान ॥
सुन्दरि नहि[६] मनोरथ ओळ[७]
अपन वेदन जाहि निवेदओ
तइसन मेदिनिथोळ[८]
पिआ देसातर[९] हृदय आतर[१०]
पर दुआरे समाद
काज विपरीत[११] बुझए न पारिअ
अपद हो अपवाद ॥
पथिक दए समदए चाहिअ
बाटे घाटे नहि आब[१२]
खने बिसरिअ खने सुमरिअ[१३]
थीर[१४] न थाकए भाव ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २ (क), प० ३, पं० ४

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५०५)—३ गुंजरी । ४ वासरजे रोए । ५ सुचत । १२ याब । १३ सुमरि । १४ सुथोर ।

झा (पद-सं० ३)—२ समय ।

सं० अ०—१ सउरभ । ६ नहि (हे) । ७ ओड़ । ८ थोड़ । ९ देसाँतर । १० आँतर । ११ विपरित । १४ थिर ।

शब्दार्थ—कतहु = कहीं। साहर = (सहकार—सं०) कुसुमित आम्रवृक्ष। गुने = गणना कर रही है। गुजरी = ग्वालिन। भमि-भमि = घूम-घूमकर। सारस = पक्षिविशेष। वासर = दिन। ओळ = अन्त। वेदन = दुःख। मेदिनि = पृथ्वी। आँतर = आतुर। दुआरे = द्वारा। समाद = संवाद। अपद = अस्थान, स्थानभ्रष्ट। थाकए = रहता है।

अर्थ—कहीं आम्रवृक्ष खिल रहे हैं, कहीं सौरभ फैल रहा है, कहीं नई मंजरियाँ उग आई हैं।

कहीं कोयल पंचम राग अलाप रही है; किन्तु (प्रोषितभर्त्तृका) गोपी समय की गणना कर रही है। (अर्थात् उपर्युक्त कारणों से प्रोषितभर्त्तृका नायिका को अपने प्रिय का स्मरण हो आता है और वह अवधि की गणना करने लगती है।)

(कवि उद्दीपन के और कारण भी दिखलाता है—)

कहीं भौंरे घूम-घूमकर मधु-मकरन्द का पान कर रहे हैं। कहीं छिपा हुआ कामदेव दिन में ही सारस पक्षी को प्रेमपाश में जोड़ रहा है।

नायिका सखी से कहती है—हे सुन्दरी ! मनोरथ का अन्त नहीं है; पर अपना दुःख मैं जिसे कहूँ, ऐसा आदमी दुनिया में बहुत कम है।

मेरे प्रिय दूर देश में हैं, (मेरा) हृदय (हृद्गत भाव) आतुर है। दूसरे के द्वारा संवाद भेज सकती हूँ, पर यह कार्य विपरीत है। विना आधार या कारण के ही अपवाद हो जाने की संभावना है।

अब बाट-घाट में बैठकर पथिक के द्वारा संवाद नहीं भेजना चाहिए। कारण, वह कभी उसे भुला बैठता है, कभी याद करता है। उसके भाव स्थिर नहीं रहते।

[४]

मालवरागे—

जेहे अवयव पुरुब समय[१]
निचर[२] विनु विकार
से आबे जाहु ताहु देखि झापए[३]
चिन्हिमि न बेबहार ॥ ध्रु० ॥
कन्हा तुरित सुनसि[४] आए
रूप देखते[५] नयन भुलल
सरुप[६] तोरि दोहाए ॥

सं० अ०—१ समअ। २ नीचर। ३ झाँपए। ५ देखइते।

सैसब बापु[७] बहीरि फेदाएल
यौवने[८] गहल पास
जेओ किछु धनि बिरुह बोलए
से[९] सेओ सुधासम भास ॥
जौवन सैसब खेदए लागल
छाडि[१०] देहे[११] मोर ठाम
एत दिन रस तोहे बिरसल
अबहु नहि विराम[१२] ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २, प० ४, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १३)—४ शुनसि। ६ सरूप। ८ जौवने। १० छाड़ि।
मि० म० (पद-सं० २२७)—५ देखत। १० छाड़ि।
झा० (पद-सं० ४)—६ सरूप। ८ जौवने। १० छाड़ि।

शब्दार्थ—जेहे = जो। निचर = निश्चल। जाहु-ताहु = जिस-तिसको। चिन्हिमि = पहचानती है। सरुप = सत्य। बापुर = बेचारा। फेदाएल = भाग गया। बिरुह = विरुद्ध। खेदए = खदेड़ना।

अर्थ—पहले जो अवयव निश्चल और विकारहीन था, (चाञ्चल्य और विकार आ जाने से) अब उसे ही जिस-किसी को देखकर ढकती है। उसका (यह) व्यवहार समझ में नहीं आता ?

हे कृष्ण ! शीघ्र आकर सुनो। उसके रूप को देखकर मेरी आँखें भुला गईं। तुम्हारी सौगंध, मैं सच कह रही हूँ।

बेचारा शैशव बाहर भाग गया। यौवन समीप आ पहुँचा। इसलिए विरुद्ध होकर भी वह जो कुछ बोलती है, सो अमृत के समान मालूम पड़ता है।

यौवन अब शैशव को खदेड़ रहा है। (कह रहा है—) मेरा स्थान छोड़ दो। इतने दिनों तक तुमने रस को विरस (शुष्क) किया। अब भी विश्राम नहीं लेते ?

---

७ बापुर हारि। ८ जौवने। ९ सेओ। ११ देह। १२ बिसराम।

[५]

मालवरागे—

तोहर वचन अमिअ[१] ऐसन[२]
ते[३] मति भूललि[४] मोरि
कतए देखल भल मन्द होअ
साधु न फाबए चोरि ॥ ध्रु० ॥
साजनि आबे कि बोलब आओ
आगु[५] गुनि जे काज न करए
पाछे[६] हो पचताओ[७] ॥
अपनि हानि जे कुल के[८] लाघव
किछु न गुनल[९] तबे
मन[१०] मनोरथ[११] बानिहि[१२] लागल
आ ओर[१३] गमाओल हमे[१४] ॥
जतने कतन[१५] के न बेसाहए
गुजा[१६] केदहु कीन
परक वचने कुञ्ज धस[१७] देअ
तैसन[१८] के मतिहीन ॥
भमर[१९] भमर सबे केओ बोलए
मञे[२०] धनि जानल मोर
पढ़ि-गुनि हमे[२१] सबे बिसरल
दोस नहि किछु तोर ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३ (क), प० ५, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४२१)—१ अमिय। ३ तें। ४ भुललि। ५ आगे। ८ कुलक। ९ गुनल। १० मने। ११ मनमथ। १२ बानहि। १३ आओव। १५ कत न। १६ गुँजा। १९ नागर। २० मने। २१ हमें।

सं० अ०—२ अइसन। ६ पाछु। ७ पछुताओ। ८ कुलक। १३ ओर १४ सबे। १६ गुंजा। १७ धँस। १८ तइसन। २० मोजे।

न० गु० के पाठ की भणिता—

मने विद्यापति सुन तोञे जुवति
हृदय न कर मन्द ।
राजा रूपनरायन नागर
जनि उगल नव चन्द ॥

मि० म० (पद-सं० ११३)—१ अमिश्र । ३ तें । ४ भुललि । ५ आगे । ८ कुलक । १० मने । ११ मनमथ । १२ बानहि । १३ आओब । १५ कत न । १६ गुँजा । १९ नागर । २० मने ।

मि० म० में भी उपर्युक्त भणिता है । केवल 'भने' के स्थान में 'भन' है ।

शब्दार्थ—अमिञ = अमृत । फाबए = सोहती है । आओ = और । बानिहि = वाणी में । आ = और । ओर = अन्त । कुञ = कूप । भमर = भ्रमणशील । मोर = अपना ।

अर्थ—तुम्हारा वचन अमृत के समान है । इसलिए मेरी मति भुला गई । भले आदमी को बुरा होते कहाँ देखा है । साधु को चोरी नहीं फबती है ।

हे सखी ! अब और मैं क्या बोलूँगी ? जो आगे सोचकर कार्य नहीं करता है, उसे पीछे पछतावा होता है ।

अपनी हानि और कुल का लाघव—तब मैंने कुछ भी विचार नहीं किया । मन का मनोरथ (तुम्हारी) वाणी में ही लगा रह गया और मैंने अपना अन्त गँवा दिया ।

कितने यत्न से कोई खरीदता है न ? (अर्थात्—जो कुछ खरीदा जाता है, निरख-परखकर खरीदा जाता है ।) क्या कोई गुंजा खरीदता है ? दूसरे की बात पर कुँए में गिर जाय—ऐसा कौन मतिहीन है ?

भ्रमर को सभी भ्रमणशील कहते हैं । मैंने उसे अपना समझ लिया । पढ़-गुनकर मैंने सब-कुछ भुला दिया । तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं ।

[६]

मालवरागे—

अविरल[१] नयन गलए जलधार
नव जलबिन्दु सहए के पार ॥
कुच दुहु[२] उपर[३] आननहि[४] हेरु
चान्द[५] राहु डरे[६] चढल[७] सुमेरु ॥ ध्रु० ॥
कि कहब सुन्दरि[८] ताहेरि[९] कहिनी
कहहि[१०] न पारिअ[११] देखलि जहिनी ॥
अनल अनिल[१२] बम मलअज बीख
जे[१३] छल सीतल[१४] से[१५] भेल तीख ॥
चान्द[१६] सन्ताबए[१७] सविताहु जीनि
नहि जीवन एकमत भेल[१८] तीनि ॥

किछु उपचार न मानए[१९] आन
एहि बेआधि अथिक पचवान[२०] ॥
तुअ दरसन बिनु तिलाओ[२१] न जीब
जैअओ[२२] कलामति पीउख पीब ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३, प० ६, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ११३)—१ गरए। २ युग। ३ ऊपर। ४ आनन। ७ चढ़ल। ८ साजनि। ११ पारिय। १२ अनिल अनल। १३ जेओ। १४ शीतल। १५ सेओ। १७ सतावए। १८ भेलि। १९ मान नहि। २० ताहि बेआधि भेषज पञ्चबान। २२ जइअओ।

विशेष—न० गु० (तरौनो-तालपत्र) की पदावली में द्वितीय पंक्ति के बाद ही ५वीं और ६ठी पंक्तियाँ हैं।

मि० म० (प० सं० २६६)—१ गरए। २ जुग। ४ आनन। ५ चाँद। ६ डर। ७ चढ़ल। ८ सजनी। ९ तकर। १० कहए। १२ अनिल अनल। १३ जेहु। १५ सेहु। १६ चाँद। १७ सतावए। १९ मान नहि। २० ताहि बेआधि भेषज पँचवान। २१ तिलओ। २२ जइओ।

विशेष—मि० म० संस्करण में भी द्वितीय पंक्ति के बाद ही ५वीं और ६ठी पंक्तियाँ हैं।

झा (प० सं० ६)—१७ सतावए।

सं० अ०— अविरल नजन गरए जलधार
नव जलबिन्दु सहए के पार ॥
कि कहब साजनि ! ताहेरि कहिनी
कहहि न पारिअ देखलि जहिनी ॥ ध्रु० ॥
कुचजुग ऊपर आनन हेरु
चान्द राहु-डरेँ चढ़ल सुमेरु ॥
अनिल अनल बम मलअज बीख
जेओ छल सीतल सेओ भेल तीख ॥
चान्द सतावए सबिताहु जीनि
नहि जीवन एकमत भेल तीनि ॥
किछु उपचार मान नहि जान
ताहि बेआधि भेषज पञ्चबान ॥
तुअ दरसन बिनु तिलाओ न जीब
जइअओ कलामति पीउख पीब ॥

टिप्पणी—पंक्ति-सं० ५ में 'सुन्दरि' सम्बोधन किया गया है। यदि इसके बदले 'माधव' या कृष्णवाची अन्य शब्द रहता, तो सम्पूर्ण गीत के भाव में कोई व्यवधान नहीं आता। किन्तु, यहाँ यह कल्पना करनी पड़ेगी कि कृष्ण के साथ कोई दूसरी सुन्दरी भी वहाँ उपस्थित थी, जहाँ राधा की इस विरह-दशा का वर्णन सखी करती है। और, अन्त में पुनः कृष्ण से भी अनुरोध करती है।

शब्दार्थ—अविरल = सतत । गलए = चू रही है । कुच = स्तन । आननहि = मुख को । ताहेरि = उसकी । कहिनी = कथा । जहिनी = जैसी । तीख = तीक्ष्ण । सन्ताबए = सन्ताप दे रहा है । सविताहु = सूर्य को । जीनि = जीतकर । पचबान = कामदेव । तिलाओ = तिलमात्र भी । जैअओ = यद्यपि । पीउख = (पीयूष)—सं० अमृत ।

अर्थ—आँखों से अविरल जलधारा चू रही है । नये जलबिन्दु का सहन कौन कर सकती है ।

कुचयुग के ऊपर मुख को देखो । (मालूम होता है,) चन्द्रमा राहु के डर से सुमेरु पर चढ़ा हो ।

हे सुन्दरी ! उसकी कथा क्या कहूँ ? जैसा देखा है, (वैसा) कह नहीं सकती ।

वायु आग उगल रही है, चन्दन विष उगल रहा है । जो शीतल थे, वे तीक्ष्ण हो गये ।

चन्द्रमा सूर्य को भी जीतकर (सूर्य से भी बढ़कर) सन्ताप दे रहा है । (अब उसका) जीवन (संभव) नहीं । (कारण,) तीनों (वायु, चन्दन और चन्द्रमा) एकमत हो गये हैं ।

दूसरा कोई भी उपचार उसपर काम नहीं करता । (कारण,) यह कामव्याधि है (अर्थात् , कामदेव-जनित है) ।

तुम्हारे दर्शन के विना वह तिलमात्र भी नहीं जी सकती । यद्यपि कलावती अमृत (ही क्यों न) पीवे ।

विशेष—'ताहि वेआधि भेषज पञ्चबान' (तरौनी-तालपत्र)
उस व्याधि की दवा पञ्चबाण है ।

मालवरागे—

[७]

कंटक[१] माझ कुसुम परगास
भमर बिकल नहि पाबए पास[१(क)] ।
रसमति मालति पुनु पुनु देखि
पिबए चाह मधु जीव[२] उपेषि[२(क)] ।। ध्रु० ।।
भमरा विकल[३] भमए[४] सब[५] ठाम
तोह[६] बिनु मालति नहि बिसराम ।।
ओ मधुजीवी तञे[७] मधुरासि
साचि[८] धरसि मधु तञे[९] न लजासि ।।

सं० अ०—१ कण्टक । २(क) उपेखि । ८ साँचि । ९ मने ।

अपने[१०] मने धनि[११] बुझ अवगाहि
तोहर[१२] दुषन[१३] बध लागत काहि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥[१४]

नेः पृ० ४(क), प० ७, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (प० सं० ८४)—१ कण्टक । २ जी । ३ भेल । ४ घुरए । ५ सबे । ६ तोहि । ७ तोञें । ८ साँचि । ९ मने । १० अपनेहु । ११ गुनि । १२ तसु । १३ दूषन ।

न० गु० की भणिता—

भनइ विद्यापति तौं पय जीव
अधर सुधारस जौं पय पीब ॥

मि० म० (प० सं० २५४)—१ कण्टक । १(क) वास । ३ भेल । ४ घूरए । ७ तोँहीँ । ८ साँचि । ९ मने । १० अपनेहु । ११ गुनि । १२ तसु । १३ दूसन ।

विशेष—न० गु० की भणिता मि० म० में भी है ।

झा (प० सं० ७)—२(क) उपेखि । ८ साँचि ।

शब्दार्थ—कंटक = काँटा । माझ = मध्य । उपेषि = उपेक्षा करके । भमए = घूमता है । मधुरासि = मधु का समूह । साचि = जुगाकर । अवगाहि = अवगाहन करके ।

अर्थ—काँटों के बीच फूल खिल रहा है । व्याकुल भ्रमर पास तक नहीं पहुँच पाता ।

रसवती मालती को बार-बार देखकर (अपने) जीवन की उपेक्षा करके (वह) मधु पीना चाहता है ।

व्याकुल भ्रमर सब जगह घूमता है, हे मालती ! (परन्तु) तुम्हारे विना (उसे) विश्राम कहाँ ?

वह मधुजीवी है (और) तुम मधु का समूह हो । मधु को जुगाकर रखती हो । क्या तुम्हें लज्जा नहीं होती ?

हे धन्ये ! अपने मन में विचार कर समझो । तुम्हारा दोष है, (फिर) वध किसे लगेगा ?

मालवरागे—

[८]

मञे सुधि[१] पुरुब पेमभरे भोरि[२]
भान अछल पिआ[२(क)] आइति मोरि[३] ।
जाइते[३(क)] पुछलन्हि भलेओ न मन्दा
मन बसि मनहि बढओलन्हि[४] दन्दा ॥ ध्रु० ॥

---

१३ दूषन । १४ भनइ विद्यापति तञो पए जीब । अधर सुधारस जञो पए पीब ।

ए सखि सामि[४(क)] अकामिक गेला
जिवहु अराधल[५] अपन न[६] भेला ॥
सुपुरुस[६(क)] जानि कैइलि तुअ सेरी[७]
पाओल पराभव अनुभव[७(क)] बेरी ॥
तिला एक लागि रहल अछ जीबे
...से नेह[८] बरए[८(क)] जनि दीबे[८(ख)] ॥
चान्दवदनि[९] धनि झाखह जनु[१०]
तुअ गुण लुबुधि आओत पुनु कान्हु[११] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

नें० पृ० ४(क), प० ८, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (प० सं० ६२६)—१ छलि। २ भोरी। ३ मोरी। ४ वढ़ाओल। ५ अराधन। ६ न अपन। ७ कयल हमें मेरी। ८ विन्दु सिनेह। ९ चाँदवदनि। १० न झाँखह आने। ११ तुअ गुन सुमरि आओब पुनु कान्हे।

न० गु० का भणिता—

मनइ विद्यापति एहु रस जाने
राए सिवसिंह लखिमा देवि रमाने ॥

मि० म० (प० सं० १६०)—१ छलि। २ भोरी। २ (क) पिया। ३ मोरी। ३ (क) जाइत। ४ वढ़ाओल। ४(क) सामी। ५ अराधन। ६ न अपन। ७ कएल हमे मेरी। ८ बिनु सिनेह। ८(क) बरइ। ९ चाँदवदनि। १० न झाँखह आने। ११ तुअ गुन सुमरि आओब पुनु कान्हे।

विशेष—न० गु० की मणिता मि० म० में भी है। केवल 'सिवसिंघ' और 'देइ' का पाठभेद है।

न० गु० और मि० म० संस्करण में द्वितीय पंक्ति के वाद ही ५वीं और ६ठी पंक्तियाँ हैं। 'तरौनी के तालपत्र' में भी यही क्रम है।

नेपाल-पाण्डुलिपि में १६ संख्यक पद भी यही है, जिसमें अन्तिम दो पंक्तियों के स्थान में निम्नलिखित पंक्तियाँ अधिक हैं—

सुख जनमातर सुरत सपना
सुन भेले नीन्द गुन दरसि अपना ॥
ताहि सुपुरुस के कि बोलिबो आइ
अनुसए पाओल वचन बडाइ ॥
वचन रभस नहि मुख नहि हासे
भागे ने बि(र)चए भञ विलासे ॥

हृदय न डरे रति हेतु जनाइ
कओने परि सेओब निठुर कन्हाइ ॥

१६ संख्यक पद का पाठभेद—

२ मोरी। ३ मोरी। ३ (क) जाए खने। ५ अराधिन। ६ (क) सुपुरुष। ७ कैलि तुअ सेरी। ७ (क) अनुमवि। ८ (ख) जनि अन्धार बरइ घर दीबे।

झा (पद-सं० ८)—४ बढ़ओलन्हि। ५ अराधन। ८ (वितु) सनेह। १० जनू। ११ कान्हू।

शब्दार्थ—सुधि = सूधी, कपटहीन। पेमभरे = प्रेम के भरोसे। भोरि = भोली। अछल = था। आइति = (आयत्ति—सं०) अधीन। मन्दा—बुरा। दन्दा = (द्वन्द्व—सं०) झंझट। सामि = स्वामी। अकामिक = अकारण। सेरी = आश्रय। दीवे – दीपक।

अर्थ—मैं (इतनी) सूधी हूँ कि पूर्व-प्रेम के भरोसे भोली बन गई। भान हो रहा था कि प्रिय मेरे अधीन हैं।

जाते हुए (उन्होंने) भला या बुरा—कुछ भी नहीं पूछा। मन में बसकर, मन में झंझट बढ़ा दिया।

ए सखी! स्वामी आकस्मिक रूप से (अकस्मात्) चले गये। प्राण-पण से आराधना की, पर अपने नहीं हो सके।

(हे माधव!) सुपुरुष समझकर तुम्हारा आसरा किया; किन्तु अनुभव के समय पराभव ही पाया।

तिलमात्र (क्षण-भर) के लिए प्राण बच रहे हैं, (विना) तेल के जैसे दीपक जल रहा हो।

हे चन्द्रवदने! धन्ये! चिन्ता मत करो। तुम्हारे गुण से लुब्ध होकर कृष्ण फिर आयेंगे।

सं० अ०—मोजे सुधि पुरुब पेमभरे भोरि
भान अछल पिआ आइति मोरि ॥
ए सखि! सामि अकामिक गेला
जिवहु अराधल अपन न भेला ॥ ध्रु० ॥
जाइते पुछलन्हि भल ओ न मन्दा
मन बसि मनहि बढ़ओलन्हि दन्दा ॥
सुपुरुष जानि कएलि तुअ सेरी
पाओल पराभव अनुभव वेरी ॥
तिला एक लागि रहल अछ जीबे
बिन्दु-सिनेह बरए जनि दीबे ॥
चान्दवदनि धनि झाँखह जनू
तुअ गुण लुबुधि आओब पुनु कान्हू ॥

मालवरागे—

[६]

कत अछ युवति[1] कलामति[2] आने
तोहि मानए जनि दोसरि पराने।
तुअ दरसन बिनु तिलाओ न जिबइ[3]
दारुण[4] मदन वेदन कत सहइ[5] ॥ ध्रु० ॥
सुन सुन[6] गुणमति[7] पुनमति रमणी[8]
न कर विलम्ब छोटि मधुरजनी।
सामर अम्बर तनुक रङ्गा
तिमिर मिलओ ससि[9] तुलित तरङ्गा[9(क)] ॥
सपुन सुधाकर आनन तोरा
पिउत अमिअ[10] हसि[11] चान्द[12] चकोरा ॥
भनइ विद्यापति इत्यादि ॥

ने० पृ० ४, प० ६, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (प० सं० ८७)—३ जीवइ। ४ दारुन। ६ शुन शुन। ७ गुनमति। ८ रमनी। ९ शशी। १० अमिय।

मि० म० (प० सं० २५)—३ जीवइ। ४ दारुन। ७ गुनमति। ८ रमनी। १० अमिय। १२ चाँन्द।

झा (प० सं० ६)—५ सहई।

शब्दार्थ—मधुरजनी = वसन्त की रात। सामर = श्याम वर्ण। अम्बर = कपड़ा। ससि = चन्द्रमा। तुलित = (तडित्—सं०) विजली। सपुन = सम्पूर्ण। सुधाकर = चन्द्रमा। आनन = मुख। अमिअ = अमृत।

अर्थ—कितनी ही अन्य कलावती युवतियाँ हैं, फिर भी (वह) तुम्हें दूसरे प्राण की तरह मानता है।

तुम्हारे दर्शन के विना (वह) तिलमात्र (क्षण-भर) भी नहीं जी सकता। वह कितनी दारुण मदन-व्यथा सहन करेगा ?

अरी गुणवती और पुण्यवती रमणी ! सुनो-सुनो ! विलम्ब मत करो, वसन्त ऋतु की रात छोटी होती है।

सं० अ०—१ जुवति। २ कलावति। ४ दारुन। ७ गुनमति। ८ रमनी। ९(क) ससि तलित तरङ्गा। ११ हँसि।

नीले वस्त्र में तुम्हारे शरीर का रंग (ऐसा मालूम होगा, जैसे) अन्धकार में चन्द्रमा या विजली की तरङ्ग हो।

तुम्हारा मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान है। (इस) हँसते हुए चन्द्रमा का अमृत चकोर (कृष्ण) पान करेगा। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

मालवरागे—

[१०]

सरदक चान्द सरिस मुख तोर रे[१]
छाड़ल विरह अन्धारक दुख रे ॥
अमिल मिलल[२] अछ सुदृढ[३] समाज रे
पुरुबक पुन परिणत[४] भेल आज रे ॥ ध्रु० ॥
हेरि हल सुन्दरि सुनहि वचन रे[५]
परिहरि[६] लाज सुनहि[६(क)] मन मोर रे[७] ॥
रसमति मालति भल अवसर रे
पिबओ मधुर मधु भूषल[८] भमर रे ॥
उपगत[९] पाहोन[१०] रितुपति[११] साह रे
अपनुक अङ्गिरल कर निरवाह रे ॥
सुपुरुषे[१२] पाओल सुमुखि सुनारि रे
दैवे[१३] मेराओल उचित विचारि रे ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५ (क), प० १०, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (प० सं० ४७६)—१ तोर मुख रे। २ मिलिल। ३ सुध्द। ४ परिनत। ५ सुनह वचन मोर रे। ६ परिहर। ७ सुलह मन तोर रे। ८ भूखल। ९ उपनत। १० पाहुन। ११ ऋतुपति। १२ सुपुरुखे।

मि० म० (प० सं० ८२०)—१ तोर मुख रे। ६ परिहर। ६(क) सुलहि।

झा—८ भुषला।

शब्दार्थ—सरिस = सदृश। अमिल = न मिलने योग्य, दुर्लभ। पुन = पुण्य। हेरिहल = देखो। परिहरि = छोड़कर। भूषल = भूखा हुआ। पाहोन = (प्राघुण—सं०)

सं० अ०—१ सरदक चान्द सरिस तोर मुख रे। ४ परिनत। ७ परिहरि लाज सुनहि मोर मन रे। ८ भुखल। १० पाहुन। १२ सुपुरुखेँ। १३ दइवे मिलाओल।

मेहमान। रितुपति = वसन्त। साह = बादशाह। अङ्गिरल = अंगीकार किया हुआ। मेराओल = मिलाया।

अर्थ—शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान तुम्हारा मुख है। (उससे) विरह-रूपी अन्धकार का दुःख छूट गया।

जो दुर्लभ था, वह आज सुदृढ होकर समाज में आ मिला। पूर्व-पुण्य आज सफल हो गया।

हे सुन्दरी ! देखो, (मेरी) सुनो। लाज छोड़कर मेरा अभिप्राय सुनो।

हे रसवती मालती ! अच्छा अवसर है। भूखा भ्रमर मधुर मधु का पान करे।

बादशाह वसंत मेहमान होकर उपस्थित हुआ है। अपने अङ्गीकार किये हुए का निर्वाह करो।

सुपुरुष ने सुन्दरी सुमुखी को प्राप्त किया है। विधाता ने उचित विचार कर (इस तरह) मिलाया है।

मालवरागे—

[११]

जहि खने निअर गमन होअ[१] मोर
तहि खने कान्ह[२] कुशल पुछ[३] तोर[४]।
मन दए बुझल[५] तोहर अनुराग
पुनफले गुणमति[६] पिआ मन जाग ॥ ध्रु० ॥
पुनु पुछ पुनु पुछ मोर मुख हेरि
कहिलिओ[७] कहिनी कहबि[८] कत बेरि ॥
आन[९] बेरि अवसर चाल आन[१०]
अपने रभसे[११] कर कहिनी कान ॥
लुबुधल भमरा कि देब उपाम
बाधल[१२] हरिए[१३] न छाड़ए[१४] ठाम ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने पृ० ५(क), प० ११, पं० ५

सं० अ०—६ पुनफले" गुनमति पिआ-मन जाग। ८ कहए। ९ जान। १० आन। ११ रभसे" १२ बाँधल। १३ हरिन।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ८२)—१ होय। २ कान्हू। ३ पूछ। ४ मोर। ५ बूझल। ६ गुनमति। ७ कहिलओ। ११ रमस।

मि० म० (पद सं० २५५)—२ कान्हु। ३ कुसल पुछ। ६ गुनमति। १२ बाधला। १३ हरिन। १४ छाड़ए नाहि।

झा०—१४ छाड़ए नहि।

शब्दार्थ—खने = क्षण में। निअर = निकट। कहिनी = कथा। रभसे = उत्सुकतावश। उपाम = उपमा। बाधल = बँधा हुआ। कान = कृष्ण।

अर्थ—जिस क्षण (उनके) निकट मेरा गमन होता है, उसी क्षण कृष्ण तुम्हारा कुशल पूछते हैं।

मन देकर (अच्छी तरह सोच-विचार कर, उनके हृदय में) तुम्हारा अनुराग समझा। पुण्यफल से गुणवती प्रिय के मन में जगती है (अर्थात्—पुण्य के उदय होने पर ही गुणवती का स्मरण प्रिय के मन में होता है।)।

मेरी ओर देख करके बार-बार पूछते हैं, कही हुई कहानियाँ कई बार कहते हैं।

अन्य समय में अन्य अवसर को चला देते हैं (अर्थात्—किस समय क्या कहना चाहिए, इसका विचार नहीं करते)। अपनी ही उत्सुकतावश कृष्ण बातें करने लगते हैं।

लुब्ध भ्रमर की उपमा क्या दूँ? बँधा हुआ हरिण स्थान नहीं छोड़ पाता। (अर्थात्—बँधा हरिण जिस तरह अपनी जगह से टस-से-मस नहीं हो पाता, उसी तरह कृष्ण तुम्हारे प्रेमपाश में बँधकर टस-से-मस नहीं होते। अतः, बँधा हरिण ही उनकी उपमा हो सकता है।)

मालवरागे—

[१२]

कत न जीवन सङ्कट परए
कत न मीलए नीधि[1]।
उत्तिम तँअओ[2] सत[3] न छाडए[4]
भल मन्द कर बीधि[5] ॥ ध्रु० ॥
साजनि गए बुझाबह कान्हू[6]
उचित बोलइते[7] जे होअ से हे[8]
दैन भाखह जनू[9] ॥

सं० अ०—२ तइअओ। ३ सत्त। ४ छाड़ए। ६ कानु। ८ से होअ। ९ जनु।

जैसनि[१०] सम्पत्ति तैसनि[११] आसति
पुरुब[१२] अइसन छला ॥
मान बेचि यदि प्राण[१३] जे राषीअ[१४]
ता ते[१५] मरण[१६] भला ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५, प० १२, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६३)—३ सता। छाड़य। ६ कान्हु। ८ सेहे। ६ जनु। १२ पुरुष। १३-१४ प्रान मान वेवि जदि प्राए जे राखीअ। १५ ता तें। १६ मरन।

मि० म० (प०-सं० ४२४)—१ निधी। ३ सता। ४ छाड़ए। ५ विधो। ७ बोलइत। ८ सेंहे। १३-१४ प्रान मन वेवि जदि प्रान जे राखीअ। १५ ता तें।

शब्दार्थ—सत = सत्य। छाड़ए = छोड़ता है। दैन = दीनता। आसति = आसक्ति (सं०)। छला = था।

अर्थ—(चाहे) जीवन कितने संकट में पड़ जाय, (चाहे) कितनी निधियाँ मिल जायँ, (पर) उत्तम व्यक्ति सत्य को नहीं छोड़ता। भला-बुरा तो विधाता करता है।

हे सखी! जाकर कृष्ण को समझाओ। उचित कहते जो (होना) हो, सो हो; (पर) दैन्य-भाषण मत करना।

गुण और योग्यता के अनुरूप ही (उनकी) आसक्ति पहले देखी जाती थी, (किन्तु अब ऐसी बात नहीं)। मान बेचकर प्राण रखने से मर जाना अच्छा है।

मालवरागे—

[१३]

कोकिल कुल[१] कलरव
काहल बाहर बाजे[२]
मञ्जरिकुल[३] मधुकर गुजरए[४]
से सुनि[५] कुज[६] रगाव[७] ॥
मने[८] मलान परान दिगन्तर
लग नुकाएल[९] लाज[१०] ॥

---

१० जइसनि। ११ तइसनि। १३ प्रान। १४ राखिअ। १५ ता तें। १६ मरन।

सं० अ०—२ राव। ६ कुंज। ७ रँगाव। ८ मन।

विरहिन जन मरन कारन तउ[११]
बेकत भउ रितुराज[१२] ॥
सुन्दरि अबहु तेजिअ रोस
तु[१३] वर कामिनि इ मधु यामिनि[१४]
अपद न दिअ दोस ॥
कमल चाहि कलेवर कोमल
वेदन सहए न पार ॥
चान्दन चन्द कुन्द तनु ताबए
ताबन[१५] मोतिम हार ॥
सिरिसि कुसुम सेज ओछाओल
तहू[१६] न आबए नीन्द[१७] ॥
आकुल चिकुर चीर न समर
सुमर देव गोविन्द ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६ (क), प० १३, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४१०)—२ राव। ५ जनि। ६ गुजर। ७ गाव। १० एहु किए न लाज। ११ कारन। १४ जामिनि। १५ माव न। १६ तइओ। १७ निन्द।

मि० म० (पद-सं० ४१४)—१ कूज। २ बाज। ५ शुनि। ६ गुजर। ७ गाव। ९-१० लगन की एल लाज। ११ कारन। १२ भउ वेकत विधुराज। १५ माव न। १६ तहु।

झा—३ कुंज। ४ गुजर। ६ कुजर। ७ गाव। ९ लगनु की एन। ११ कारन। १२ विधुराज। १६ ताहु।

शब्दार्थ—कलरव = मधुर स्वर। काहल = वाद्यविशेष। गुजरए = गुंजार करते हैं। दिगन्तर = क्षितिज के पार। लग = समीप। नुकाएल = छिप रही है। बेकत = व्यक्त। अपद = अस्थान, अनवसर। चाहि = बढ़कर। पार = है। ताबए = जल रहा है। तावन = (तापन—सं०) = ताप देनेवाला अथवा तप्त हो गया। तहू = उसपर। समर = सँभलता है।

अर्थ—कोकिल-समूह कलरव (कर रहा) है। बाहर (कहीं दूर में) काहल बज रहा है। मंजरियों पर भौंरे गुंजार कर रहे हैं। इन्हें सुनकर कुंज में रंगीनियाँ आ गई हैं।

सं० अ०—१३ तू। १४ ई मधुयामिनि। १६ ताहु। १७ निन्द।

मन म्लान है, प्राण क्षितिज के पार (प्रिय के समीप) है; (किन्तु) लज्जा समीप में छिपी हुई है। विरहिणियों के मरण-निमित्त ऋतुराज प्रकट हो आया है।

हे सुन्दरी! अब भी रोष का त्याग करो। तुम कामिनियों में श्रेष्ठ हो (और) यह मधुऋतु की रात है। अनवसर में दोष मत दो। (अर्थात्—यह दोष देने का अवसर नहीं है।)

कमल से भी बढ़कर (तुम्हारा) शरीर कोमल है। (यह) दुःख सहन नहीं कर सकता। चन्दन, चन्द्रमा और कुन्द के फूल शरीर को जला रहे हैं। मोतियों की माला ताप दे रही है।

शिरीष के फूलों की शय्या बिछाई (लेकिन) उसपर भी नींद नहीं आती। अस्तव्यस्त केश और वस्त्र भी नहीं सँभल रहे हैं। (अब भी तो) श्रीकृष्ण का स्मरण करो।

मालवरागे—

[१४]

के मोरा जाएत दुरहुक दूर
सहस सौतिनि बस[१] माधुरपुर॥
अपनहि हाथ[२] चललि अछ नीधि
जुग दश[३] जपल आजे भेलि सीधि॥ ध्रु०॥
भल भेल माइ हे कुदिवस गेल
चान्द कुमुद दुहु दरसन[४] भेल॥
कतए दमोदर देव वनमालि[५]
कतएक[६] हमे[७] धनि गौर[८] गोआरि[९]॥
आजे[१०] अकामिक दुइ डिठि[११] मेलि
दैव[१२] दाहिन[१३] भेल हृदय उबेलि॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि
कुदिवस रहए दिवस दुइ चारि॥

ने० पृ० ६ (क), प० १४ पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ८३१)—१ वस। २ हात। ४ दरशन। ५ वनमारि। ६ कतए। ७ कहमे। ८ गोप। ९ गोयारि। ११ दिठि। १२ देव।

मि० म० (पद-सं० ५६८)—३ दस। ६ कतए। ७ कहमे। ८ गोप। ११ दिठि। १२ देव।

झा (पद-सं० १४)—६ कत एक। १२ देव। १३ दहिन।

सं० अ०—३ दस। ५ वनमारि। १० आज।

शब्दार्थ—जाएत = जाता। सौतिनि = सपत्नी। गौर = गौण = तुच्छ। अकामिक = अकस्मात्। डिठि = दृष्टि। उबेलि = उद्वेलित।

अर्थ—मेरे लिए कौन दूर-से-दूर जाता? (जिस) मथुरा में हजारों सौतें वास करती हैं। अपने ही (स्वयमेव) हाथों में निधि चली आई। दस युग से जप करती थी, आज सिद्धि मिली है।

भला हुआ कि कुदिवस (बुरे दिन) चले गये। चन्द्रमा और कुमुद—दोनों में दर्शन हो गये।

कहाँ देवरूप वनमाली दामोदर और कहाँ मैं तुच्छ ग्वालिन?

आज अकस्मात् ही दोनों की आँखें मिल गईं। विधाता दक्षिण हो गया। हृदय उद्वेलित हो रहा है।

विद्यापति कहते हैं—हे श्रेष्ठ नारी! सुनो। बुरे दिन दो-चार दिन ही रहते हैं।

मालवरागे—

[१५]

सजल नलिनि दल सेज सोआइअ[१]
परसे जा असिलाए[२]
चान्दने[३] नहि हित चान्द[४] विपरित[५]
करब कओन[६] उपाए॥ ध्रु०॥
साजनि सुद्दढ[७] कइए जान
तोहि बिनु दिने दिने तनु खिन
बिरहे विमुख कान्ह॥
कारनि वैदे[८] निरसि तेजलि[९]
आन[१०] नहि उपचार॥
एहि बेआधि औषध[११] तोहर
अधर अमिअ[१२] धार॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ६, प० १५, पं० ८

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४०६)—१ ओछाइअ। ३ चन्दने। ७ सुद्ध। १२ अमिय।
मि० म० (पद-सं० ४१२)—१ ओछाइअ। ४ चाँद। ५ विपरीत। ७ सुद्ध। १२ अमिअ।
झा—७ सुद्ध।

सं० अ०—२ अलिसाए। ३ चन्दने। ६ कओन। ८ बइदे। ९ तेजल। १० आन। ११ अउषध।

शब्दार्थ—सेज = शय्या। सोआइअ = सुलाती हूँ। परसे = स्पर्श से। असिलाए = कुम्हला जाती है। कइए = करके। कारनि = रोगी। बेआधि = व्याधि। अमिञ = अमृत।

अर्थ—सजल नलिनीदल की शय्या पर सुलाती हूँ, तो स्पर्श से ही वह कुम्हला जाती है। चन्दन हित नहीं, चन्द्रमा भी विपरीत है; (मैं) कौन उपाय करूँ ?

हे सखी! (निश्चित रूप से) जानो। तुम्हारे विना दिन-दिन (कृष्ण का) शरीर खिन्न (होता जा रहा) है। विरह से कृष्ण विमुख (विकृतमुख) हो गये हैं।

वैद्य ने रोगी को निराश कर छोड़ दिया। इसका दूसरा उपचार नहीं है। इस व्याधि की दवा तुम्हारे अधरामृत की धारा है।

मालवरागे—

[१६]

मञे सुधि[१] पुरुब[२] पेमभरे भोरी
भान अछल पिआ[३] आइति मोरी ॥
जाए खने[४] पुछलन्हि भलेओ न मन्दा
मन बसि मनहि बढओलन्हि[५] दन्दा ॥ ध्रु० ॥
ए सखि सामि[६] अकामिक गेला
जिबहु अराधिन[७] अपन न[८] भेला ॥
सुपुरुष[९] जानि कैलि[१०] तुअ[११] सेरी[१२]
पाओल पराभव अनुभवि[१३] बेरी ॥
तिला एक लागि रहल अछ[१४] जीवे
जनि अन्धार बरइ घर दीवे[१५] ॥
सुख जनमातर सुरत सपना
सुन भेले नीन्द गुन दरसि अपना ॥
ताहि सुपुरुस[१६] के कि बोलिबो आइ
अनुसए पाओल वचन बडाइ ॥
वचन रभस नहि मुख[१७] नहि हासे
भागे ने[१८] वि(र)चए भञ विलासे ॥
हृदय न डरे रति[१९] हेतु जनाइ
कओने परि सेओब निठुर कन्हाइ ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७ (क), प० १६, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६३६)--१ छलि। ४ जाइते। ५ बढ़ाओल। ७ अराधन। ८ न अपन। ९ सुपुरुख। १० कयल। ११ हमे। १२ मेरी। १३ अनुभव। १५ विन्दु सिनेह वरइ जनि दीवे।

मि० म० (पद-सं० १६०)—१ छलि। ३ पिया। ४ जाइते ५ बढ़ाओल। ६ सामी। ७ अराधन। ८ न अपन। ९ सुपुरुस। १० कएल। ११ हमे। १२ मेरी। १३ अनुभव। १५ विनु सिनेहे वरइ जनि दीवे।

झा--२ पुरुष। ५ बढ़ओलन्हि। ७ अराधन। १४ अछि। १७ सुख। १८ भागि ने। १९ बड़।

विशेष--मि० म० और न० गु० के संस्करण में अन्त की आठ पंक्तियाँ नहीं हैं। उनके स्थान में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं--

चाँदवदनि धनि न झाँखह आने।
तुअ गुन सुमरि आओव पुनु कान्हे॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने।
राए सिवसिंह लखिमा देवि रमाने॥

और, ५वीं तथा ६ठी पंक्तियाँ दूसरी पंक्ति के बाद ही हैं।

शब्दार्थ—सुधि = सूधी, छल-प्रपञ्चहीन। भोरी = भोली, भुलाई हुई। भान = विश्वास। अछल = था। आइति = (आयत्ति—सं०) अधीन। भलेओ = भला। मन्दा = बुरा। दन्दा = (द्वन्द्व—सं०) झंझट। अकामिक = अकारण। अराधिन = आराधना की। भेला = हुए। जनमातर = जन्मान्तर। आइ = आज। अनुसए = (अनुशय—सं०) पश्चात्ताप। रभस = प्रेम। सेरी = आश्रय। सुरत = कामक्रीडा। रति = अनुराग।

अर्थ—मैं सूधी (छल-प्रपञ्चहीन) हूँ। (इसीलिए) पूर्व-प्रेम में भुला गई। विश्वास था कि प्रिय मेरे अधीन हैं। (किन्तु) जाते समय भला या बुरा (कुछ भी) नहीं पूछा। (केवल) हृदय में निवास करके मन में द्वन्द्व बढ़ा दिया।

हे सखी! स्वामी अकारण ही चले गये। प्राणपण से आराधना की, (किन्तु) अपने नहीं हुए।

सुपुरुष समझकर तुम्हारा (कृष्ण का) आश्रय किया, (किन्तु) अनुभव के समय (परिणाम में) पराभव पाया।

तिलमात्र के लिए (क्षण-भर के लिए) जीव बच रहा है, जैसे अँधेरे घर में दीपक जल रहा हो (टिमटिमाता हो)।

अपना गुण दिखलाकर सुख जन्मान्तर के लिए और कामक्रीडा स्वप्न के लिए हो गई। नींद तो शून्य (खत्म) ही हो गई।

उस सुपुरुष को आज क्या कहूँ, (जिससे) वाचनिक बड़ाई मिलने पर भी पश्चात्ताप ही पाया।

सं० अ०—७ अराधल। १० कएलि। १३ अनुभव। १५ बिन्दु सिनेह बरइ घर दीबे। १६ सुपुरुष। १८ भागे ने विरचए भजे-विलासे।

वचन में प्रेम नहीं, मुख में हँसी नहीं; भाग्य से भी भ्रू-विलास की रचना नहीं। भय से हृदय में अनुराग का हेतु (बीज) पैदा नहीं होता, (फिर) किस प्रकार निष्ठुर कृष्ण की सेवा करूँगी।

मालवरागे —

[१७]

कुसुमे रचित सेजा दीप रहल तेजा
परिमल अगर चन्दने ॥
जबे जबे तुअ मेरा निफले बहलि बेरा
तबे तबे पीडलि[१] मदने ॥ ध्रु० ॥
माधव तोरि राही वासकसजा[२]
चरण सबद (भाने[३]) चौदिस[४] आपए काने
पिआ[५] लोभे परिनति लजा ॥
सुनिअ[६] सुजन नामे अवधि न चूकए[७] ठामे
जनि वन पसेर लहरी[८] ॥
से तुअ गमन आसे निन्द न आबे[९] पासे
लोचन लागल देहरी ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७, प० १७, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३०६)--३ जाने। ६ सुनिअ। ७ चुकए। ८ पइसल हरी।

मि० म० (पद-सं० ३५३)--१ पीड़लि। २ वासक सजा। ५ पिया। ६ सुनिअ। ७ चुकए। ८ पसेरल हरी।

झा (पद-सं० १७)--३ माने। ९ आवए।

शब्दार्थ—रहल = रहा। मेरा = मेला। बहलि = बीत गई। बेरा = वेला—(सं०)। वासकसजा = (वासकसज्जा—सं०) बन-ठनकर तैयार। आपए = अर्पित करती है। परिनति = परिणाम। ठामे = स्थान। पसेर = पसाही, स्वतः फैलनेवाली आग।

अर्थ—फूलों की रची शय्या, तेजोमय दीपक, परिमल, अगर और चन्दन (इन सामग्रियों के रहने पर भी) जब-जब तुम्हारे मिलन का समय आया, व्यर्थ ही बीत गया। वह कामदेव की वेदना से अत्यन्त व्यथित हुई।

सं० अ०--३ भाने। ४ चउदिस।

हे माधव ! तुम्हारी राधा वासकसज्जा[१] (बन-ठनकर तैयार) है। पैर की आवाज सुनने के लिए (वह) चारों दिशाओं में कान लगाये (बैठी) है। प्रिय के लोभ में (उसे) परिणाम में लज्जा ही मिलती है।

सुजन के नाम सुनती हूँ कि वह अवधि के स्थान को नहीं भूलता, जैसे जंगल को (जंगली) आग की लपट (??)

वह तुम्हारे आगमन की आशा में (बैठी) है। (उसके) पास नींद नहीं आती। आँखें देहली पर टिकी हैं।

विशेष—'जनि पसेर लहरी', 'जनि पसेरल हरी', 'जनि पइसल हरी'—इन तीनों में अर्थ-संगति नहीं बैठती है। संभव है, लेखक के प्रमाद से अन्त की चार पंक्तियों में पद-व्यत्यय हो गया हो। निम्नलिखित पाठ से अर्थ-संगति बैठ जाती है—

सुनिअ सुजन नामे, अवधि न चूकए ठामे,
लोचन लागल देहरी।
से तुअ गमन-आसे, निन्द न आबे पासे,
जनि वन पसेर लहरी॥

मालवरागे—

[१८]

आसा[१] मन्दिर बैस[२] निसि गमाबए
सुखे न सूत[३] सयान[४]।
जखने[५] जतने[६] जाहि निहारए
ताहि ताहि तुअ[७] भान[८]॥
वन उपवन कुज[९] कुटीरहि
सबहि तोर[१०] निरूप।
तोहि बिनु पुनु पुनु मुरुछए
अइसन पेम सरूप[११]॥ध्रु०॥
मालति सफल जीवन तोर।
तोरे[१२] विरहे भूवन[१३] भमए
भेल मधुकर भोर॥

---

१. कुरुते मण्डनं यस्याः सज्जिते वासवेश्मनि।
सा तु वासकसज्जा स्याद्विदितप्रियसङ्गमा॥
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका ८५

जातकि केतकि कत न अछ[१४]
कुसुम[१५] रस समान।
सपनहु[१६] नहि काहु[१७] निहारए
मधु कि करत पान॥
जकर[१८] हृदय जतए[१९] रहल[२०]
धसि[२१] पए[२२] ततहि जाए।
जैअओ[२३] जतने बान्धि[२४] निरोधिअ
निमन[२५] नीर समाए[२६]॥
भने विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ८ (क), प० १८, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १०४)—१ आसाजे। २ पाठाभाव। ३ सुत। ४ सञान। ६ जतए। ७ तोहि। ९ कुञ्ज। १० तोहि। १३ भुअन। १४ अछए। १५ सबहि। १६ सपनेहु। १७ ताहि। १८ जतहि। २० रतल। २१ से धसि। २२ पाठाभाव। २३ जइअओ। २४ बाँधि। २६ थिराए।

मि० म० (पद-सं० ४३)—१ आसाये। २ पाठाभाव। ४ सँयान। ५ जखन। ६ जतए। ७ तोहि। ९ कुञ्ज। १० तोहि। ११ प्रेम-स्वरूप। १२ तोर। १३ भुअनं। १४ अछए। १५ सबहि। १७ ताहि। १८ जाकर। १९ जतहि। २० रतल। २१ से धसि। २२ पाठाभाव। २३ जइअओ। २४ बाँधि। २६ थिराए।

झा (पद-सं० १८)—८ मान। २५ निम न।

विशेष—न० गु० और मि० म० संस्करण में १५वीं पंक्ति के बाद निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

साहर न बह सउरभ न सह
गुजरि गीत न गाव।
चेतन बापु चिन्ताजे[१] आकुल
हरखे[२] सबे सोहाव॥

और अन्त में—

इ रस राए सिवसिंह जानए
कवि विद्यापति भान।
रानि लखिमा देवि वल्लभ
सकल गुन[३] निधान॥

पाठभेद—

मि० म०—१ चिन्ताए। २ हरख। ३ गुए।

शब्दार्थ—निसि = रात्रि। सयान = (सज्ञान—सं०) सयाना युवक। सरूप = सच्चा अथवा स्वरूप। भोर – मुग्ध। निमन = (निम्न—सं०) नीचे।

अर्थ—आशा से घर में बैठकर रात बिता देता है। युवक सुख से सोता नहीं है। जब यत्नपूर्वक जिसको देखता है, उसमें उसे तुम्हारा ही भान होता है।

वन, उपवन, कुञ्ज और कुटीर—सबमें तुम्हारा ही आरोप करता है। तुम्हारे बिना बार-बार मूर्च्छित होता है—ऐसा सच्चा प्रेम है (अथवा प्रेम का स्वरूप ऐसा है)।

हे मालती! तुम्हारा जीवन सफल है। भ्रमर तुम्हारे विरह से मुग्ध होकर संसार-भर में घूम रहा है।

सं० अ०—आसाजे मन्दिर बसि निसि गमाबए
सुखेँ न सूत सजान।
जखने जतने जाहि निहारए
ताहि-ताहि तुअ भान॥ ध्रु०॥
मालति! स'फल जीवन तोर।
तोरे विरहेँ भुअन भमए
भेल मधुकर भोर॥
जातकि केतकि कत न अछए
कुसुम रस समान।
सपनेहुँ नहि काहु निहारए
मधु कि करत पान॥
वन उपवन कुंज कुटीरहिँ—
सबहिँ तोहि निरूप।
तोहि बिनु पुन-पुन मुरुछए
अइसन पेम सरूप॥
साहर-निवह सउरभ न सह
गुंजरि गीत न गाव।
चेतन बापु चिन्ताजे आकुल
हरखेँ सबे सोहाब॥
जकर हृदअ जतए रतल
से धसि ततहि जाए।
जइअओ जतने बाँधि निरोधिअ
निमन नीर थिराए॥
ई रस राए सिवसिंह जानए
कवि विद्यापति भान।
रानि लखिमा देवि-वल्लभ
स'कल गुन-निधान॥

जातकी, केतकी आदि समान रसवाले कितने ही कुसुम हैं, (लेकिन भ्रमर) स्वप्न में भी उन्हें नहीं देखता; मधुपान क्या करेगा ?

जिसका हृदय जहाँ लगा रहता है, (वह) धँस करके वहाँ चला जाता है। यद्यपि पानी को यत्न से बाँधकर रोका जाता है, तथापि वह नीचे की ओर ही प्रवृत्त होता है।

मालवरागे—

[१९]

पुरल[1] पुर परिजन पिसुन[2]
जामिनि[3] आध अन्धार[4]।
बाहु पैरि[5] हरि पलटि जाएब
पुनु जमुना पार ॥
ऐ[6] कुले[7] कुलकलङ्क डराइअ
ओ[8] कुले आरति तोरि।
पिरिति लागि पराभव सहिअ[9]
इथि अनुम[10] मोरि ॥ ध्रु० ॥
माधव[11] तेज भुज गीमपास[12]।
जानब कन्ते दुरन्त के जाएत
अछि होएत उपहास[13] ॥
एत बोलि मोर गोचर धरब
राषबि[14] दुअओ लाज[15]।
मनाहु[16] मुह[17] मलान न करब
होएत पुनु समाज ॥
जगत कत न जुव जुवजन[18]
कत न लाबए पेम।
बापु[19] पुरुष विचेखन[20] बोलिअ[21]
जे चिन्ह आएस हेम[22] ॥

सं० अ०—१ पूरल। २ पिसुने। ५ तरि। १० अनुमति। १२ गिमपास। १४ राखबि। १८ जुवति जुवजन। १९ बापू। २० विचक्खन।

भालभु[23] समन्दि[24] चलु[25] ससिमुखि[26]
कवि विद्यापति भान ।
निकृत नेह निमेषेओ बहुत
नइछ्छ छैले ओ जान[27] ॥

ने पृ० ८(क), प० १९, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २६०)—२ पिसुने । ५ तरि । ६ एँ । ७ कुल । ८ ओ । ९ सहब । १० अनुमति । ११ कान्हा । १२ गिम पास । १३ पहु जनले दुरंत वाढ़त होएत रे उपहास । १४-१५ गोचर एक मोर पए राखब राखबि दुअओ लाज । १६ कबहु । १७ मुख । १८ जुबती । २० विचखन । २१ चाहिअ । २२ जे कर आगिल खेम ।

मि० म० (पद-सं० ६१)—२ पिसुने । ३ जामिनी । ४ अँधार । ५ तरि । ६ ए । ७ कुल । ८ ओ । ९ सहब । १० अनुमति । ११ कान्हा । १२ गिम पास । १३ पहु जनले दुरन्त वाढ़त होएत रे उपहास । १४-१५ गोचर एक मोर पए राखब राखबि दुअओ लाज । १६ कबहु । १७ मुख । १८ जुबती । २० विचखन । २१ चाहिअ । २२ जे कर आगिल खेम । २३ वालम्भु । २४ समदि । २५ चललि । २६ बाला । २७ इ रस रानि लखिमावल्लभ राए सिवसिंघ जान ।

झा (पद-सं० १९)—१० अनु (मति) । १६ मला (न) हु । १८ जुव-जुव (ती) । २७ न इ छ्छ छैलेओ जान ।

विशेष—न० गु० के संस्करण में अन्त की चार पंक्तियाँ नहीं हैं ।

शब्दार्थ—पुरल = भरा हुआ । पुर = नगर । परिजन = आत्मीय जन । पिसुन = (पिशुन—सं०) चुगलखोर । जामिनि = (यामिनी—सं०) रात्रि । पैरि = तैरकर । ऐ = इस । कुले = (कूल—सं०) तट । ओ = उस । आरति = (आर्त्ति—सं०) पीड़ा । पिरिति = प्रीति । इथि = (इति—सं०) इसीलिए । गीमपास = ग्रीवापाश । दुरन्त = दुष्परिणाम । गोचर = विनती । समाज = मिलन । बापु = वेचारे । विचेखन = विचक्षण । आएस (आयस—सं०) लोहा । हेम = सोना । भालभु = वल्लभ (सं०) । समन्दि = संवाद देकर । निकृत = शठ (नायक) । नइछ्छ = निछछ, निश्छल । छैलेओ = छैला ।

अर्थ—चुगलखोर परिजनों से नगर भरा हुआ है, आधी रात तक अँधेरा है । हे हरि ! बाँह से तैरकर, यमुना पार करके लौट जाऊँगी ।

(यमुना के) इस किनारे कुल-कलङ्क से डर रही हूँ (और) उस किनारे तुम्हारी पीड़ा है । प्रीति के लिए पराभव सहती हूँ । इसीलिए मुझे (जाने की) अनुमति (चाहिए) ।

हे माधव ! बाँहों का ग्रीवापाश (गलबाँही) छोड़ दो । स्वामी समझ पायेंगे, तो इसका दुष्परिणाम होगा (और) उपहास होगा ।

सं० अ०—२३ बालभु ।

इसी बात से मेरी विनती स्वीकार कीजिए (और) दोनों की लाज रखिए। मन एवं मुँह को म्लान मत कीजिए; फिर मिलन होगा।

संसार में कितने युवक (और) युवतियाँ हैं, कितने प्रेम किये जाते हैं; (किन्तु वही) श्रेष्ठ पुरुष विचक्षण कहलाता है, जो लोहा (और) सोना को पहचानता है। (उनकी परख करना जानता है।)

कवि विद्यापति कहते हैं—शशिमुखी वल्लभ को संवाद देकर (समझा-बुझाकर) चली। शठ (नायक) का प्रेम निमेषमात्र के लिए भी बहुत है। निछक्का (सच्चा) छैला ही उसे जानता है।

मालवरागे—

[२०]

मोरि अविनए[1] जत पळलि[2] खेओब[3] तत
चिते सुमरबि मोरि नामे।
मोहि सनि अभागलि[4] दोसरि जनि[5] होअ
तन्हि सन[6] पहु मिल[*]काम[7] ॥ ध्रु० ॥
माधव मोरि सखि समन्दल[8] सेवा।
युवति[9] सहस सङ्गे सुख[10] बिलसब रङ्गे
हम जल आजुरि[11] देवा ॥
पुरुब[12] प्रेम[13] जत निते सुमरब तत
सुमर जत न होअ सेखे
रहए सरिर जओ की न[14]भुजिअ[15] तओ
मिलए रमणि[16] सत[17] संखे ॥
पेअसि समाद सुनिअ[18] हरि विसमय
करु पाए ततहि बेरा।
कवि भने विद्यापति रूपनराएन[19]
लखिमा देवि[20] सुसेला[21] ॥

ने० पृ० ९(क), प० २०, पं० १

सं० अ०—४-५ अभागलि मोहि सनि, दोसरि होअओ जनि। ७ कामे। ८ समन्दलि। ९ जुवति। १० सुखेँ। ११ आँजुरि। १३ पेम। १५ भुञ्जिअ। १६ रमनि। १९ कवि विद्यापति भन रूपनराएन। २० लखिमा देवि। २१ सुसेरा।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७७२)—२ परलि। ४ अभागिन। ५ जनु। ७ कामे। ६ जुवति। १२ पुरब। १३ पेम। १४ कीन। १५ मुँजिअ। १६ रमनि। १८ सुनिए। १६ राजा रूपनाराएन। २१ सुसेरा।

मि० म० (पद-सं० १८३)—३ खेओँब। ४ अभागिनि। ५ जनु। ६ सम। ७ कामे। ६ जुवति। १२ पुरब। १४ कीन। १५ मुँजिअ। १६ रमनि। १७ शत। १८ सुनिए। २० देइ।

झा (पद-सं० २०)—१ अविनय। १३ पेम।

शब्दार्थ—पळलि = हुई। खेओब = क्षमा कर देना। काम = अवश्य। जल आंजुरि = जलाञ्जलि (सं०)। भुजिअ = भोग सकते हैं। पेअसि = प्रेयसी। समाद = संवाद। पाए = प्रयाण। सुसेरा = सुन्दर आश्रय।

अर्थ—मेरी जितनी अविनय हुई हो, सब क्षमा कर देना। चित्त में मेरे नाम का स्मरण करना। मुझ-सी भाग्यहीना दूसरी मत हो, (लेकिन) उनके समान स्वामी अवश्य मिलें।

हे माधव! मेरी सखी ने (अपनी) सेवा कह भेजी है (अपनी सेवा की याद दिलाई है)। हजारों युवतियों के साथ सुख से विलास करना और हमें जलाञ्जलि दे देना।

पूर्व-प्रेम का उतना ही नित्य स्मरण करना कि वह शेष (खत्म) न हो जाय। अगर शरीर रहेगा, तो क्या नहीं भोग सकते हैं? सैकड़ों रमणियाँ मिल सकती हैं।

प्रेयसी का संवाद सुनकर कृष्ण को विस्मय हो गया (और उन्होंने) उसी समय प्रयाण किया। कवि विद्यापति कहते हैं—रूपनारायण लखिमा देवी के सुन्दर आश्रय हैं।

मालवरागे—

[२१]

लाखे[१] तरुअर कोटीहि[२] लता
जुवति कत न लेख।
सबहि फूला मधु मधुकर
मधुहु मधु विशेष[३] ॥ ध्रु० ॥
सुन्दरि अबहु वचन सून।
सबे परिहरि[४] तोहि इछ हरि
आपु सराहसि[५] पून ॥
जे मधु[६] भमर निन्दहु सुमर
बासि[७] बिसरए न पार।

एळि[८] मधुकर जहि[९] उडि पल[१०]
सेहे ससारक[११] सार ॥
तोरि सराहनि तोरिए चिन्ता
सेजहु तोरिए ठाम ।
सपनेहु तोहि देखि पुनु कए
लए उठ तोरिए नाम ॥
आलिङ्गन दए पाछु निहारए
तोहि बिनु सुन कोर ।
पाछिलि कथा अकथ कथा
लाजे न तेजए नोर ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६(क), प० २१, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६७)—२ कोटिहि। ३ सब फुल मधु मधुर नहीं फूलहु फूल बिसेख। ४ परीहरि। ५ सराहहि। ६ फूल। ८ जाहि। ९ उड़ि। १० पर। ११ सँसारक।

['तोरि सराहनि तोरिए चिन्ता'...से 'लाजे न तेजए नोर' तक का पाठभेद]

तोरि ए[१] चिन्ता तोरि ए[२] कथा
सेजहु तोरिए चाओ ।
सपनहु हरि पुनु पुनु कए लए
उठ तोरिए नाओ ॥
अलिङ्गन[३] दए पाछु निहारए
तोहि बिनु सुन[४] कोर ।
अकथ कथा आपु अबथा
नयने[५] तेजए[६] नोर ॥

अन्त में यह भणिता है—

राहि राहि[७] जाहि मुह[८] सुनि
ततहि अपए कान[९] ।
सिरि सिवसिंह[१०] इ जानए
कवि विद्यापति भान ॥

सं० अ०—लाखें तरुअर, कोटिहि लता,
जूवति कत न लेख ।
सबहि फूलाँ मधु-मधुमय,
मधुहु मधु विसेख ॥ ध्रु० ॥

मि० म० (पद-सं० ४२)—१ लाख। २ कोटिहि। ३ सब फूल मधु मधुर नाही फूलहु फूल विसेख। ५ सराहहि। ६ फूल। ७ वास। ८ जाहि। ९ उड़ि। १० पड़। ११ संसारक।

विशेष—न० गु० संस्करण के समान आगे की पंक्तियाँ हैं, जिनका पाठभेद—

१ तोहरे। २ तोहरे। ३ आलिङ्गन। ४ सून। ५ नयने। ६ तेजये। ७ राही। ८ मुँह। ९ अप्पए। १० सिवसिंघ।

रा० त०—

लाखहुँ लता कोटि तरुअ
जूवति कतन लेख।
सवहि फूलाँ मधु मधुमय
मधुहुँ मधु विसेष ॥
साजनि हमर वचन सूँन।
सव परिहरि तोहि इछ हरि
अओकि सराहसि पून।
तोरिए चिन्ता तोरि बरता
सेजहु तोरिए ठाम ॥

जे फूल भमर निन्दहु सुमर,
बासि बिसरए न पार।
जाहि मधुकर ऊड़ि-ऊड़ि पड़,
सेहे सँसारक सार ॥
सुन्दरि! अबहु वचन सून।
सबे परिहरि तोहि ईछ हरि,
अओ कि सराहसि पून ॥
तोरिए चिन्ता, तोरिए बरता,
सेजहुँ तोरिए ठाञो।
सपनहुँ हरि तोहि न बिसर
लए उठ तोरिए नाञो ॥
आलिङ्गन दए पाछु निहारए,
तोहि विनु सुन कोर।
पाछिलि कथा गुपुति बेथा,
लाजे न छाड़ए नोर ॥
सरस कवि विद्यापति गाओल
निज मने अवधारि।
जेकर पेमेँ पराधिन बाँलभु
सेहे कलावति नारि ॥

सपनहुँ हरि तोहि न विसरल
लए उठ तोरिए नाम ॥
आलिङ्गन बेराँ पाछु निहारए
तोह बिनु सुन कोर।
हृदय कथा गुपुति बेथा
लाजे न छाडए नोर ॥
सरस कवि विद्यापति गाओल
निअ मने अवधारि।
जकर पेमें पराधिन बाँलभु
सेहे कलावति नारि ॥

झा (पद-सं० २१)--७ जाहि। ९ संसारक।

शब्दार्थ—तरुअर = तरुवर। लेख = उल्लेख्य। परिहरि = छोड़कर। पून = पुण्य। बासि = वासी। एलि = एड़, अर्दित कर। जहि = जिसे। पल = पड़, पड़ना। संसारक = संसार का। ठाम = स्थान। तोरिए = तुम्हारा। पाछु = पीछे। सुन = शून्य। पाछिलि = पीछे की। अकथ = अकथ्य।

अर्थ—लाखों तरुवर हैं, करोड़ों लताएँ हैं, कितनी युवतियाँ उल्लेख्य हैं। सब फूलों में मधु है, मधुकर हैं; (किन्तु) मधु-मधु में (भी) विशेषता है।

हे सुन्दरी! अब भी मेरी बात सुनो। श्रीकृष्ण सबको तजकर तुम्हारी इच्छा करते हैं। (इसलिए) अपने पुण्य की सराहना करो।

भ्रमर जिस मधु को नींद में भी सुमरता है, वासी होने पर भी नहीं बिसार पाता, (और) उसके पास आने पर तुरत उसपर उड़कर बैठ जाता है, वही संसार में सर्वश्रेष्ठ है।

(श्रीकृष्ण) तुम्हारी ही सराहना (और) तुम्हारी ही चिन्ता करते हैं। उनकी शय्या पर भी तुम्हारा ही स्थान है। स्वप्न में भी तुम्हें ही बार-बार देखकर, तुम्हारा नाम लेकर (जब-तब चौंक) उठते हैं।

आलिङ्गन देकर पीछे (आलिङ्गन करने के बाद) देखते हैं, (तो) तुम्हारे विना क्रोड को सूना पाते हैं। पिछली कथा तो अकथनीय है (अर्थात्—किसी से पिछली कथाएँ कह भी नहीं सकते)। लज्जा से आँसू भी नहीं बहा सकते।

मालवरागे—

[२२]

आदर[१] अधिक काज न[२] बन्ध।
माधव बुझल तोहर अनुबन्ध ॥
आसा राखह नयन[३] पठाए।
कति[४] खन कौसले[५] क(प)ट[६] नुकाए ॥ ध्रु० ॥

ए कान्हु ए कान्हु[7] तोहे[8] जे सयान[9] ।
ता के[10] बोलिअ[11] जे उचित न जान ॥
कसिअ कसौटी[12] चीन्हिअ[13] हेम ।
प्रकृति परेषिअ[14] सुपुरुष[15] पेम ॥
सौरभे[16] जानिअ कुसुम[17] पराग ।
नयने नीर दिअ[18] नव अनुराग ॥
विद्यापतिः ॥[19]

ने० पृ० ६, प० २२, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३४४)—१ आदरे । २ नहि । ३ नएन । ४ कत । ६ कपट । ७ चल चल माधव । ८ ताहे । ९ सआन । ११ बोलिय । १३ चिन्हिअ । १४ परेखिय । १५ सुपुरुख । १६ परिमले । १७ कमल । १८ निवेदिअ ।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति नयनक लाज ।
आदरे जानिअ आगिल काज ॥

मि० म० (पद-सं० ३७६)—१ आदरे । २ नहि । ३ नएन । ४ कत । ६ कपट । ७ चल चल माधव । ८ तोह । ९ सआन । १० तावे । १३ चिन्हिअ । १४ परेखिअ । १५ सुपुरुख । १६ परिमल । १७ कमल । १८ निवेदिअ । अन्त में उपर्युक्त भणिता है ।

झा (पद-सं० २२)—३ नएन । १९ विद्यापति ।

शब्दार्थ—बन्ध = सिद्धि । अनुबन्ध = प्रयोजन । सयान = सज्ञान । हेम = सोना ।

अर्थ—आदर अधिक (करते हो, पर) कार्य-सिद्धि नहीं । हे माधव ! मैंने तुम्हारा प्रयोजन समझ लिया ।

आँखें भेजकर (आँखों के इशारे से) आशा रखते हो; (लेकिन) कौशल से कपट कबतक छिप सकता है ?

हे कृष्ण ! तुम सज्ञान हो । (तुम्हें क्या कहा जाय ?) उसको कहना चाहिए, जो उचित नहीं जानता ।

कसौटी पर कसकर सोना को पहचानते हैं (और) प्रकृति से ही सुपुरुष का प्रेम परखा जाता है ।

सौरभ से फूलों का पराग जाना जाता है (और) आँखों का पानी ही नव अनुराग देता है (अर्थात्—आँखों के पानी से ही नव अनुराग जाना जाता है) ।

सं० अ०—२ नहि । ३ नअन । ५ कौसलेँ । ८ तोहेँ । ९ सआन । १२ कसउटी । १४ परेखिअ । १५ सुपुरुख । १६ सउरभेँ । १८ नअने निवेदिअ ।

मालवरागे —

[२३]

अगमने प्रेम[१] गमने कुल जाएत
चिन्ता पङ्क लागलि करिणी[२] ।
मञे[३] अबला दह दिस[४] भमि झाखओ[५]
जनि व्याध[६] डरे[७] भीरु[८] हरिणी[९] ॥ ध्रु० ॥
चन्दा दुरजन गमन विरोधक[१०]
उगल गगन भरि[११] वैरि मोरा[१२] ॥
कुहु[१३] भरमे पथ पद आरोपल
आए तुलाएल पञ्चदशी[१४] ।
हरि अभिसार मार उदबेजक
कओने[१५] निबारब कुगत ससी[१६] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १० (क), प० २३, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २८८)—२ करिनी । ९ हरिनी । १० विरोधी । ११ भरि नखत । १२ (बाद में) के पहु आन परबोधी । १३ कुहू । १६ शशी ।

मि० म० (पद-सं० ३१७)—१ प्रेमकु । २ करिनी । ४ दिसआ । ५ झाखओँ ९ हरिनी । १२ (बाद में) के पहु आन परबोधी । १३ कुहू । १४ पञ्चदसी । १५ कओने ।

झा—(पद-सं० २३)—१३ कुहू ।

शब्दार्थ—करिणी = हस्तिनी । दह = दस । कुहु = अमावास्या । पथ = मार्ग । तुलाएल = उपस्थित हुआ । पञ्चदशी = पूर्णिमा । मार = कामदेव । उदबेजक = उद्वेग करानेवाला । कुगत = कुमार्ग पर चलनेवाला ।

अर्थ—नहीं जाने से प्रेम (और) जाने से कुल जायगा । (अतएव) चिन्ता-रूपी पङ्क में हस्तिनी फँस गई है ।

मैं अबला दसों दिशाओं में फिरकर झाँख रही हूँ; जैसे व्याध के डर से भीता हरिणी झाँखती है ।

दुर्जन चन्द्रमा गमन का विरोधी है । मेरा वैरी सम्पूर्ण आकाश में उग आया है ।

सं० अ०—१ पेम । २ करिनी । ३ मोञे । ५ झाँखओ । ६ बेआध । ७ डरेँ । ८ भिरु । ९ हरिनी । १० विरोधी । १२ उगल गगन भरि नखत वैरि मोरा के पहु आन परबोधी । १४ पञ्चदसी ।

अमावास्या के धोखे मार्ग पर पैर रखा; (किन्तु) पूर्णिमा आकर उपस्थित हो गई ।

कृष्ण के लिए अभिसार में कामदेव उद्वेग करानेवाला है; (लेकिन) कुमार्ग पर चलनेवाले चन्द्रमा को कौन रोकेगा ?

मालवरागे—

[२४]

प्रथम प्रेम हरि जत बोलल
आदर ओल[१] न[२] भेल ।
बोलल जनम भरि जे रहत
दिने दिने दुर गेल ॥ ध्रु० ॥
किदहु मोर अविनय पळल[३]
की[४] मोर दीघर मान ।
कि परपेअसि[५] पिसुन वचन तथी
पिआओ[६] देल कान ॥ ध्रु० ॥[७]
साजनि माधव नहि गमार ।
पेमे पराभव बहुत पाओल
करम-दोस हमार ॥
बड[८] बोलि हरि जतने सेओल[९]
सुरतरु सम जानि ।
अनुभवे[१०] भेल कपट-मन्दिर
आबे की[११] करब आनि ॥
सुपहुक वचन......रद[१२] सम
मोहि[१३] अखलल[१४] भान ।
अपन[१५] भासा बोलि बिसरए
इथी[१६] बोलत आन ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १० (क), प० २४, पं० ५

सं० अ०—४ कि । १० अनुभवेँ । १२ सुपहुक वचन द्विरद-रद-सम मोहि अखलल भान ।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६१)—१ अदरओ। ३ परल। ४ कि। ७ कत। १२ वजर। १४ रेख लेल। १५ अपना। १६ इथि।

मि० म० (पद-सं० ८५१)—१ अदरओ। २ नन। ४ कि। ५ परपेयसि। ६ पियाञे। ८ कत। ९ सेओबल। ११ कीपर। १२ बद सम। १४ सुखलल। १५ आपन। १६ इथि।

झा (पद-सं० २४)—७ पाठाभाव। १३ मोहिअ।

शब्दार्थ—बोलल = कहा। ओल = ओर, अन्त। भेल = हुआ। किदहु = क्या। पड़ल = पड़ा हुआ। दीघर = दीर्घ। तथी = तो। इथी = यही। अखलल = अक्षर, (आक्षेति > अक्खति, अच्छति > अक्खइ, अच्छइ > अक्खडइ।) जो टस-से-मस नहीं हो।

अर्थ—प्रथम प्रेम में जितना कृष्ण ने कहा, उतना आदर अन्त तक नहीं हुआ। (मैंने समझा,) कहा हुआ जन्म भर रहेगा; पर दिन-दिन वह दूर चला गया।

क्या मेरी अविनय आ पड़ी, क्या मेरा मान दीर्घ है? क्या पर-प्रेयसी या पिशुन के वचन में प्रिय ने कान दिया है?

हे, सखी! माधव गँवार नहीं हैं। (मैंने) प्रेम में बहुत पराभव पाया—(यह) मेरा कर्मदोष है।

कृष्ण को बड़ा कहकर (समझकर), सुरतरु के समान जानकर सेवा की; (किन्तु) अनुभव से वे कपट-मन्दिर (साबित) हुए। अब उन्हें लाकर क्या करोगी?

बड़ों का वचन (हाथी के) दाँत के समान मुझे अक्षर (टस-से-मस नहीं होनेवाला) ज्ञात हुआ। (किन्तु वे) अपनी बात कहकर भूल जाते हैं—यही दूसरे कहेंगे।

मालवरागे—

[२५]

सेहे परदेसे[१] परजोषित[२] रसिआ[३]
हमे धनि कुलमति नारि।
तन्हि पुनु कुशले[४] आओब निज आलए
हम जीवे गेलाह मारि॥ ध्रु०॥
कहब पथिक पिआ[५] मन दए रे
जौवन बले[६] चलि जाए॥
जओ[७] आबिअ तओ[८] अइ(स)ना[९] आओब
जाओ[१०] विजयी रितुराज।

सं० अ०—१ परदेस। २ परजोखित। ४ कुसले। बले"। ९ अइसदा। १० जावे। १४ जानिअ। १५ जान।

अवधि बहत[11] हे रहत[12] नहि जीवन
पलटि न होएत समाज ॥
गेला नीर निरोधक की फल
अवसर बहला दान ।
जओ[13] अपने नहि जानीआ[14] रे
भल जन पुछब आन[15] ॥
विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १०, प० २५, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६६८)—१ परदेश। ३ रसिया। ५ पिया। ८ तइअओ। ९ न। १२ रहव। १४ जानीअ।

मि० म० (पद-सं० ५०४)—१ परदेश। २ परजोसित। ४ कुसले। ७ जयँ। ९ अइ न। ११ बहुत। १२ रहुत। १३ जयँ।

झा (पद-सं० २५) – ९ सुइना।

शब्दार्थ—परजोषित = परकीया स्त्री। आलए = आलय—सं०। अइ (स) ना = इस अवसर में। बहत = व्यतीत हो जाने पर। समाज = सङ्ग।

अर्थ—वे (श्रीकृष्ण) परदेश में परकीया स्त्री के रसिक हैं; (किन्तु) हम तो कुलवती नारी हैं।

वे तो सकुशल अपने घर (लौट ही) आयेंगे; (लेकिन) हमारे जीवन को नष्ट कर गये।

हे पथिक ! प्रिय को मन देकर (लगाकर) कहना (कि) यौवन बरजोरी चला जा रहा है।

यदि आना हो, तो ऐसे ही अवसर में आयें, जबतक कि विजयी ऋतुराज है।

अवधि बीत जाने पर जीवन नहीं रहेगा (और) लौटकर (फिर) समागम नहीं होगा।

पानी के (बह) जाने पर अवरोध (बन्ध) से क्या ? अवसर बीत जाने पर दान से क्या ? यदि स्वयं नहीं समझते, तो किसी दूसरे भले आदमी से (भी) पूछ लें।

मालवरागे—

[२६]

नवहरितिलकवैरि[1]-सख यामिनि[2]
कामिनि[3] कोमल कान्ती[4]।
जमुना[5]-जनकतनयरिपु घरिणी[6]
सोदरसुअ[7] कर साती[8] ॥ ध्रु० ॥

माधव तुअ गुण[९] लुबुधलि रमणी[१०]।
अनुदिने[११] खिन[१२] तनु[१३] दनुजदमनधनि[१४]
भवनज[१५] वाहन गमनी॥
दाहिन हरि तह पाब पराभव
एत सबे सह तुअ[१६] लागी।
बेरिएक सरु[१७] सागर गुनि खाइति
बधक होएब[१८] तोहे[१९] भागी॥
सारङ्ग साद विषाद[२०] बढ़ाबए[२१]
पिकधुनि सुनि पचताबे[२२]।
अदितितनयभोअण[२३] रुचि सुन्दर[२४]
दसमि[२५] दशा लग आबे॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ११(क), प० २६, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० प्र० ४)—१ वैरी। २ यामिनी। ३ कामिनी। ४ काँति। ५ यमुना। ६ घरणी। ७ सुय। ८ शाति। १२ खीन। १४ धनी। १६ तुय। १७ शर। १८ होयब। १९ तोहें। २१ बढावय। २२ पछतावे। २३ भोअन। २५ दशमी।

अन्त में भणिता—

विद्यापति मन गुनि अबला जन
समुचित चलु निअ गेहा।
राजा शिवसिंह रूपनरायन
लखिमा लखिमी देहा॥

मि०.म० (पद-सं० ५७४)—१ वैरी। २ यामिनी। ३ कामिनी। ४ कान्ति। ६ घरनी। ८ साति। १२ खीन। १४ धनी। १५ भवनुहु। १७ सर। १८ होयव। १९ तोहें। २० विसाद। २१ बढावय। २२ पछतावे। २३ भोअन। २५ दसमी।

शब्दार्थ—नव हरि = द्वितीया का चन्द्रमा। नवहरितिलक = महादेव। नवहरितिलकवैरि = कामदेव। नवहरितिलकवैरि-सख = वसन्त। जमुनाजनक = सूर्य। जमुनाजनकतनय = कर्ण। जमुना-जनकतनयरिपु = अर्जुन। जमुना-जनकतनयरिपु-

---

सं० अ०—२ जामिनि। ४ काँति। ६ घरिनी। ८ साति। ९-१० माधव तुअ गुने लुबुधलि रमनी। ११ अनुदिन। १३ तनि। १७ सर। १९ तोहे। २२ पछतावे। २३ भोअन। २४ सुन्दरि। २५ दसमि दसा।

घरिणी = सुभद्रा। जमुना-जनकतनयरिपुघरिणी-सोदर = कृष्ण। जमुना...सोदर-सुत = प्रद्युम्न (कामदेव)। साती = (शास्ति—सं०) दण्ड। दनुज = दैत्य। दनुजदमन = विष्णु। दनुजदमनधनि = लक्ष्मी। दनुज...धनि-भवन = कमल। दनुज...भवनज = ब्रह्मा। दनुज...वाहन = हंस। दाहिन हरि = दक्षिण पवन। बेरिएक = कदाचित्। सरु = पाँच। सागर = चार। सरु सागर गुनि = बीस, विष। सारङ्ग = भ्रमर। साद = शब्द। सारंग-साद = भ्रमर-गुञ्जन। अदितितनय = देवता। अदिति...भोअण = अमृत। रुचि = कान्ति। दसमि दसा = मृत्यु। कान्ती = (कान्ति—सं०)।

अर्थ—वसन्त की रात है (और) कामिनी कोमल आकृतिवाली है।
(अतएव) कामदेव दण्ड दे रहा है।
हे माधव! रमणी तुम्हारे गुण से लुभा गई है।
हंसगामिनी प्रतिदिन खिन्न होती जा रही है।
दक्षिण पवन से (वह) पराभव पाती है। ये सभी तुम्हारे लिए ही सहती है।
कदाचित् (वह) विष खा लेगी, तो तुम वध के भागी होगे।
भ्रमर का गुञ्जार विषाद बढ़ा रहा है। कोयल की ध्वनि सुनकर वह पछता रही है।
अमृत के समान सुन्दर कान्तिवाली (नायिका) मृत्यु के समीप पहुँच रही है।

मालवरागे—

[२७]

हरिरिपुवरदपत्र[१] गृहरिपु
ता हर काल हे।
तासु भीमरुत विरहे बेआकुल
से सुनि हृदया साल हे॥ ध्रु०॥
सुन सुन्दरि तेज मान कुरु गमने।
अनुदिने तनु खिनि तुहिन नही जीनि
तुअ दरसने ता जीवने॥
हरिरिपु असन, ऐसन वरगो, जिम
मुञ्चसि, गोविजिम[२] गोविना[३]।
करे कपोल गहि सीदति सुन्दरि
गोज मिलल ससिहि कला॥
हरिरिपुनन्दप्रियासहोदर
देइ न[४] ता सुअ कामिनी॥
विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ११, प० २७, पं० ३

पाठभेद—

झा (पद-सं० २७)—पए। २ गोव्रज मे। ३ गोविन्द।

विशेष—इस दृष्टकूट का पाठ अपूर्ण प्रतीत होता है। अतएव, अनेक शब्दों की अर्थ-संगति नहीं बैठती। फिर भी, प्रकृत मूल सामग्री से जो भाव ध्वनित होते हैं, वे प्रस्तुत किये जाते हैं।

शब्दार्थ—हरिरिपु = राहु, वरद = ब्रह्मा। पत्रगृह = कमल। रिपु = वर्षा। तासु भीमरुत = वर्षा में भयानक शब्द करनेवाला मयूर। तेज = छोड़ो। तुहिन नहीं जीनि = तुम्हीं नहीं जी सकोगी। ता जीवने = उसका जीवन। हरिरिपु = राहु। हरि... असन = अमृत। ऐसन = ऐसी। वरगो जिम = वर युवती। मुञ्चसि = छोड़ते हो। गोवि-जिम = गोपियों की तरह। गोविना = हे गोविन्द। करे = हाथ से। कपोल गहि = गाल पर हाथ रखकर। सीदति = दुःखी है। हरि = सर्प। हरिरिपु = गरुड। हरिरिपुनन्द = विष्णु। हरिरिपुनन्दप्रिया = लक्ष्मी। हरिरिपुनन्दप्रियासहोदर = चन्द्रमा। देइ न ता = उसे नहीं देता। सुअ = सुख।

पाण्डुलिपि में पद के नीचे लिखा है--१ गोव्रज मे। ३ गोविन्द। ४ देति नहि हे।

अर्थ—वर्षा का समय संप्राप्त है।

मयूर का गर्जन सुनकर नायिका के हृदय में कष्ट हो रहा है।

हे सुन्दरी ! मान छोड़कर नायक के पास जाओ।

तुम दिन-दिन खिन्न होती जा रही हो, तुम नहीं जी सकोगी। किन्तु विना तुम्हारे देखे उनका भी जीवन नहीं रहेगा।

अमृत जैसी कान्तिवाली श्रेष्ठ गोपी को कृष्ण छोड़ रहे हैं।

हाथ पर गाल रखकर वह कामिनी झाँख रही है। जान पड़ता है, जैसे कमल चन्द्रकला में मिल गया हो।

चन्द्रमा उसे शान्ति नहीं दे रहा है।

मालवरागे—

[२८]

चान्दबदनि धनि चान्द उगत जबे
दुहुक उजोरे दुरहि सओ[१] लखत सबे।
चल गजगामिनि जाबे तरुण[२] तम
किम्बा[३] कर अभिसारहिँ[४] उपसम ॥ ध्रु० ॥
चान्दबदनि धनि रयनि[५] उजोरी[६]
कओने[७] परि गमन होएत सखि मोरी[८]।

सं० अ०—१ सओ। २ तरुन। ३ किंवा। ४ अभिसारहि। ५ रजनि।

तोहे[९] परिजन परिमल दुरबार
दुर सञो[१०] दुरजने लखब अभिसार ॥
चौदिस[११] चकित नयन[१२] तोर देह
तोहि लए जाइते मोहि सन्देह ॥
अगिरिअ[१३] एलाहु[१४]पर आएत काज
विफल भेले[१५] मोहि जाइते लाज ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १२(क), प० २८, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २४४)—१ सजो। २ तरुन। ४ अभिसारहि। ६ उजोरि। ७ कओने। ८ मोरि। १० सजो। १३ आगरि। १४ अएलाहु।

मि० म० (पद-सं० ३०४)—१ सयँ। २ तरुन। ४ अभिसारहि। ६ उजोरि। ७ कओने। ८ मोरि। १० सायँ। १३ आगरि। १४ अएलाहु।

झा (पद-सं० २८)—६ तोहो।

शब्दार्थ—उजोरे=प्रकाश से। लखत=देखेंगे। उपसम=रोक। रयनि=रात्रि। कञोने परि=किस तरह। अगिरिअ=अंगीकार करके। पर आएत=(परायत्त—सं०) पराधीन।

अर्थ—हे चन्द्रवदने! जब चन्द्रमा उग जायगा, तब दोनों के प्रकाश से सब लोग दूर से ही देख लेंगे।

हे गजगामिनी! जबतक घना अन्धकार है, तभी तक चलो अथवा अभिसार को रोक ही दो।

(नायिका सखी से पूछती है—) नायिका चन्द्रवदना है, (इसलिए) चाँदनी रात है। हे सखी! किस तरह मेरा गमन होगा?

तुम्हारा परिजन परिमल की तरह दुर्वार है (अर्थात्—जिस तरह परिमल फूल के चारों ओर व्याप्त रहता है, उसी तरह परिजन भी चारों ओर व्याप्त हैं)। दूर से ही दुर्जन अभिसार देख लेंगे।

चारों ओर चकित आँखें तुम्हारी देह (पर) लगी हैं। तुम्हें लेकर जाते मुझे सन्देह हो रहा है।

पराधीन कार्य को अङ्गीकार करके (मैं) आई थी अथवा अङ्गीकार करके आई तो थी; किन्तु काम पराधीन है। विफल होकर जाने में मुझे लज्जा हो रही है।

---

११ चउदिस। १२ नञन। १३-१४ अँगिरि अएलहुँ। १५ भेलेँ।

मालवरागे—

[२६]

जलउ जलधि जल[१] मन्दा
जहा[२] बसे दारुण[३] चन्दा ।
वचन नहि के परमाने[४]
समग्र न सह पचवाने[५] ॥ ध्रु० ॥
कामिनि[६] पिश्रा[७] विरहिनी
केवल रहलि[८] कहिनी ।
अवधि समापित भेला
कइसे हरि वचन चुकला ॥
निठुर पुरुष[९] पिरिती[१०]
जिव दए सन्तर[११] युवती[१२] ।
निचल नयन[१३] चकोरा
ढरिए[१४] ढरिए[१५] पळ नोरा ॥
पथए[१६] रहश्रो[१७] हेरि हेरी
पिश्रा[१८] गेल अवधि बिसरी ।
विद्यापति कवि गावे
पुनफले सुपुरुष[१९] की नहि पावे ॥

ने० पृ० १२(क), प० २६, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६७८)—४ परमाणे । ५ पचवाणे । ६ कामिनी । ७ पिया । ८ रहिलि । १० पिरीति । ११ सन्तव । १४ ढरिये । १५ ढरिये । १६ पथये । १७ रहश्रो । १८ पिया ।

मि० म० (पद-सं० ५२६)—३ दारुन । ६ कामिनी । ७ पिया । ९ पुरुस । १० पिरीति । ११ सन्तब । १२ जुवती । १६ पथये । १८ पिया । १९ सुपुरुस ।

झा (पद-सं० २६)—१ पाठाभाव ।

शब्दार्थ—जलधि = समुद्र । दारुण = भयानक । पचवाने = कामदेव । सन्तर = पार करती है । निचल = निश्चल । ढरिए ढरिए = ढुलक-ढुलककर । पथए = मार्ग ।

सं० अ०—२ जहाँ । ३ दारुन । ४ वचनक नहि परमाने । ५ पँचवाने । १२ जुवती । १३ नजन । १७ रहए ।

अर्थ—समुद्र का मन्द (निकृष्ट) पानी जल जाय—जहाँ भयानक चन्द्रमा वास करता है।

(प्रिय के) वचन का कोई प्रमाण नहीं; (किन्तु) कामदेव समय (अवधि) का सहन नहीं करता (अर्थात्—अवधि की प्रतीक्षा नहीं करता)।

कामिनी प्रिय की विरहिणी हो गई। (प्रिय की) केवल कहानी रह गई।

अवधि बीत गई। कृष्ण कैसे (अपना) वचन भूल गये?

निष्ठुर पुरुष की प्रीति को युवती प्राण देकर पार करती है।

नयन-रूपी चकोर निश्चल (संचारहीन) हो गये। (उनसे) आँसू ढुलक-ढुलककर गिर रहे हैं।

(विरहिणी प्रिय के) मार्ग को देख रही है। (किन्तु) प्रिय अवधि को भूल गये।

विद्यापति कवि गाते हैं (कहते हैं) कि सुपुरुष पुण्यफल से क्या नहीं पाता है?

मालवरागे—

[३०]

पुरुब जत अपुरुब भेला
समय बसे सेहओ[१] दुर गेला।
काहि निवेदओ कुगत पहू[२]
परम हो[३] परवतओ[४] लहू[५] ॥ ध्रु०॥
तोहँहुँ[६] मानवित्त[७] अभिमानी
परजना ओ बड भय हानी।
हृदय[८] वेदन राखिअ गोए
जे किछु करिअ भुजिअ[९] सोए॥
सबहि साजनि धैरज सार
नीरसि कह कवि[१०] कण्ठहार॥

ने० पृ० १३ (क), पद० ३०, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५१८)—२ पहु। ३ परमहो। ४ परवत। ५ ओलाहु। ६ तोहँहु। ७ मानवित्तँ। ९ भुञ्जिअ। १० कहु।

झा (पद-सं० ३०)—४ पर-रत ओ। ७ मानवि ओ।

सं० अ०—१ सेहो। ६ तोहहुँ। ७ मानिनि ओ। ८ हृदअक।

शब्दार्थ—पुरुब = पूर्व। अपुरुब = अपूर्व। सेहओ = वह भी। कुगत = कुमार्गगामी। मानवित्त = मानधन। परजना = पर-पुरुष। गोए = छिपाकर। भुजिअ = भोग करते हैं। नीरसि = सब-कुछ छोड़कर।

अर्थ—पूर्व (समय) में जो कुछ अपूर्व (व्यवहार) हुआ, समय के फेर से वह भी दूर चला गया।

किससे निवेदन करूँ कि (मेरे) प्रभु कुमार्गगामी हो गये। पर्वत के सदृश महान् व्यक्ति भी अत्यन्त नीच हो सकता है!

तुम भी मान-धन की अभिमानिनी हो (और) वे पर-पुरुष हैं। बड़ा भय है कि हानि (न हो जाय!)

हृदय की वेदना छिपाकर रखनी चाहिए। जो जैसा करते हैं, वैसा भोगते हैं।

कविकण्ठहार (विद्यापति) कहते हैं कि हे सजनि! सब-कुछ छोड़कर धैर्य धारण करो।

मालवरागे—

[३१]

झटक झाटल छाडल[1] ठाम
कएल महातरु तर बिसराम।
ते[2] जानल जिव रहत हमार
सेष[3] डार[4] टुटि पळल[5] कपार॥ ध्रु०॥
चल चल माधव कि कहब जानि
सागर अछल थाह भेल पानि।
हम[6] जे अनओले[7] की भेल काज
गुरुजने परिजने होएतउ हे[8] लाज॥
हमरे वचने जे[9] तोहहि विराम
फेकलेओ चेप पाब पुनु ठाम॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० १३ (क), प० ३२, पं० ५

पाठभेद—

न०गु० (पद-सं० ३४९)—१ छोड़ल। ५ परल। ८ होएत।
मि० म० (पद-सं० ४३५)—१ छोड़ल। ३ सेस।

स० अ०—१ झाँटल छाड़ल। २ तजे। ४ डारि। ६ हमें। ७ अनओलेँ। ८ पाठाभाव। ९ जनो।

झा (पद-सं० ३१)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—झटक = झंझावात। झाटल = झकझोरा। छाडल = छोड़ा। सेष = अन्त में। अछल = था। अनओले = मँगाया। फेकलेओ = फेंका हुआ भी। चेप = ढेला।

अर्थ—झंझावात से झकझोरी हुई मैंने स्थान-त्याग किया (और) महातरु के नीचे विश्राम किया।

इससे (मैंने) समझा कि मेरे प्राण बचेंगे; (किन्तु) अन्त में डाल टूटकर माथे पड़ी।

हे माधव, चलो, चलो, जान-बूझकर मैं क्या कहूँ ? (जो) समुद्र था, (उसका भी) पानी थाह हो गया।

हमें मँगाकर कौन काम हुआ ? अब गुरुजनों (और) परिजनों के बीच होते भी लज्जा होगी।

मेरे कहने से भी यदि तुम्हें विराम (चैन) हो, (तो समझूँगी कि) फेंका हुआ ढेला भी पुनः स्थान पा गया।

ए रागे—

[३२]

अवयव सबहि नयन पए भास[1]
अहिनिसि झाषए[2] पाओब पास।
लाजे न कहए हृदय[3] अनुमान
प्रेम[4] अधिक लघु जानत आन[5] ॥ ध्रु० ॥
साजनि की[6] कहब तोर गेआन[7]
पानी पाए सीकर[8] भेल[9] कान्ह।
बहिर[10] होइआ[11] नहि[12] कहिअ समाद
होएतौ[13] हे सुमुखि पेम परमाद ॥
जओ तन्हिके जीवने[14] तोह काज
गुरुजन परिजन परिहर लाज।
दण्ड दिवस दिवसहि हो मास[15]
मास पाब[16] गअ[17] वर्षक[18] पास ॥

सं० अ०—१ अबएब सबहि नअन पए भास। २ झाँखए। ३ हृदअ। ४ पेम। ५ आन। ६ कि। ९ भेलि। ११ होइअ। १३ होएतउ। १७ गए। १८ बरखक।

तोहर युडाइ[१९] तोहरे[२०] मान
गेल बुजाए[२१] केओ आन परान ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १३, प० ३३, पं० ३

पाटभेद—

न० गु० (पद-सं० ४१६)—४ पेम। ६ कि। ७ गेयान। ८ सिकर। १० बाहर। ११ होइ। १२ आनहि। १३ होएतओ। १५ मास। १७ गए। १८ वरसक। १९ जुड़ाइ। २१ बुझाय।

मि० म० (पद-सं० ४१५)— २ झाखए। ४ पेम। ५ जनित आन। ६ कि। ७ गेआन। ८ सिकर। ११ होइ। १२ आनहि। १४ जीवन। १८ वरसक। १९ जुड़ाइ। २० तोहार। २१ बुझाय।

झा (पद-सं० ३२)—६ कि। १६ पार। २१ रुआए।

शब्दार्थ—पए = पर। पाओब = पाऊँगा। गेआन = ज्ञान। पानी = (पाणि—सं०) हाथ। पाए = (पाद—सं०) पैर। सीकर = जंजीर। युडाइ = जुड़ाई, शीतलता। बुजाए = बुझाए = जान पड़ता है।

अर्थ—(तुम्हारे) सभी अवयव (कृष्ण की) आँखों पर भासमान हैं। (वे) अहर्निश झाँखते हैं कि (कब) सामीप्य पाऊँगा ?

(वे) लज्जावश कहते नहीं। (तुम) हृदय में ही अनुमान कर सकती हो। अन्य व्यक्ति बड़े प्रेम को भी छोटा ही समझते हैं।

हे सखी ! तुम्हारे ज्ञान को मैं क्या कहूँ ? कृष्ण के हाथ-पैर के लिए (तुम) जंजीर (बन गई हो)।

संवाद नहीं कहने से (संवाद ले जानेवाला) बहरा हो जाता है। (इसीलिए मैं संवाद कह रही हूँ।) हे सुमुखि ! (नहीं जाने से) प्रेम में प्रमाद हो जायगा।

अगर उनके जीवन से तुम्हें काम हो, तो गुरुजनों और परिजनों की लज्जा छोड़ दो।

(उनके लिए) दण्ड दिवस (और) दिवस मास हो रहा है (और) मास तो वर्ष के समीप जा पहुँचा है।

तुम्हारा मान तुम्हें ही शीतलता प्रदान कर सकता है। (लेकिन) जान पड़ता है, किसी दूसरे के प्राण गये।

मालवरागे—

[३३]

भागल कपोल अलके[१] लेल साजि
सङ्कुरल[२] नयन[३] काजरे आजि[४]।
पकला केश[५] कुसुम कर वास
अधिक सिङ्गारे[६] अधिक उपहास ॥ ध्रु० ॥

---

१९ जुड़ाई।

सं० अ०—१ अलकेँ। ३-४ नअन काजरेँ आजि। ५ केग। ६ सिङ्गारेँ।

आहा बएस कतए चलि[७] गेल
बड़ उपताप देखि मोहि भेल।
थोथल[८] थैआ थन दुइ[९] भेल
गरुअ नितम्ब सेहओ दुर गेल॥
जौवन सेष[१०] सुखाएल अङ्ग
पछेहेळि[११] लुळए उमत अनङ्ग॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० १४ (क), प० ३४, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १५, परकीया)—हमे धनि कूटनि परिनति नारि
वैसहु वास न कहों विचारि
काहु के पान काहु दिअ सान
कत न हकारि कयल[१] अपमान
कय परमाद धिया मोर भेल
आहे यौवन कतय चल गेल
भाङ्गल कपोल अलक भरि साजु
सङ्कुल लोचने काजर आजु
धवला केस कुसुम करु वास
अधिक सिङ्गारे अधिक उपहास
थोथर थैया थन दुओ भेल
गरुअ नितम्ब कहाँ चल गेल
यौवन शेष[२] सुखाएल अङ्ग
पाछु हेरि विलुलइते उमत अनङ्ग
खने खस घोघट विघट समाज
खमे खने आव[३] हकारलि लाज
भनहि विद्यापति रस नहि छेओ
हासिनिदेवि पति देवसिंह देओ

मि० म० (पद-सं० ६)—(न० गु० से) १ कए। २ सेस। ३ अब। शेष पाठ न० गु० की भाँति है।
झा (पद-सं० ३३)—२ सङ्कुचल। ४ आंजि। ८ थोथळ।

शब्दार्थ—भाँगल = सिकुड़े हुए। अलके = केश से। सङ्कुरल = सङ्कुचित। आजि = अञ्जन करके। थोथर थैआ = जर्जर। थन = स्तन। गरुअ = गुरु—सं०। पछेहेळि = पीछे-पीछे। लुळए = चलता है।

७ चल। ८ थोथड़। ९ दुहु। १० जउवन सेख। ११ पछेहेड़ि लुड़ए उमत अनङ्ग।

अर्थ—सिकुड़े हुए कपोलों को केशों से सज्जित कर लिया, संकुचित नेत्रों को काजल से आँज लिया।

पके केशों को फूलों से सुवासित कर लिया; (लेकिन) अधिक शृङ्गार से अधिक उपहास ही हुआ।

अहा! (मेरी) युवावस्था कहाँ चली गई? देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।

दोनों स्तन जर्जर हो गये। गुरु नितम्ब भी दूर चला गया।

यौवन शेष हुआ, अङ्ग सूख गये; (फिर भी) उन्मत्त अनङ्ग पीछे-पीछे चल रहा है!

मालवरागे—

[३४]

तोहर हृदय[१] कुलिस कठिन
वचन अमिअ धार।
पहिलहि नहि बूझए[२] पारल
कपट के बेबहार॥
जत जत मन छल मनोरथ
विपरित सबे भेल[३]।
आखि देखइते कुपथ[४] धसलिहु
आरति गौरव[५] गेल॥ ध्रु०॥
साजनि हमे कि बोलब आओ।
आगु गुनि जे काज न करिअ[६]
पाछे हो पचताओ॥
उत्तिम जन बेबथा छाडए[७]
निअ[८] बेथा चूक।
कैसे[९] कए से मुह देषाबए[१०]
पैसि पतारल कूप॥
अबे हमे तुअ सिनेह जान(ल)
कओन उपमा देव।

सं० अ०—१ हृदअ। २ बुझए। ३ सबे बिपरित भेल। ४ जाखि देखइते कूप। ५ गउरव। ६ करए। ९ कइसे। १० देखाबए।

ए हरि चोचक खोन्धा[11] अइसन
किछु न बानि-षेव[12] ॥
विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १४(क), प० ३५, पं० ५

पाठभेद—

झा (पद-सं० ३४)—२ बुझए। ६ करए। ७ छाउए। ८ निज। १२ किछु लबा लिषेब।

शब्दार्थ—कुलिस = वज्र । अमिञ = अमृत । आरति = आर्त्ति—सं० । आओ = और। गुनि = सोचकर। पचताओ = पछतावा। बेबथा = व्यवस्था। बेथा = व्यथा। पतारल = पातालगामी। चोचक = चोंचा (एक छोटी चिड़िया) का। खोन्धा = खोंता, घोंसला। बानि-षेब—तानी-भरनी।

अर्थ—तुम्हारा हृदय वज्र के समान कठिन है; (किन्तु) वचन अमृत की धार है। (मैं) कपट का व्यवहार पहले नहीं समझ सकी।

(मेरे) मन में जितने जो कुछ मनोरथ थे, सभी विपरीत हो गये। आँख से देखते हुए भी (मैं) कुपथ में जा गिरी। आर्त्तिवश (मेरा) गौरव चला गया।

हे सखी! मैं और क्या कहूँगी? आगे सोचकर जो काम नहीं करता है, (उसे) पीछे पछतावा होता है।

उत्तम मनुष्य व्यवस्था छोड़ दे, अपनी व्यथा के चलते चूक जाय, तो वह पातालगामी कूप में पैठकर किस तरह मुँह दिखा सकता है?

अब मैंने तुम्हारा स्नेह जान लिया। (मैं उस स्नेह की) क्या उपमा दूँ? हे कृष्ण! चोंचे के घोंसले की तरह (उसमें) कुछ भी तानी-भरनी नहीं है।

मालवरागे—

[३५]

एषने[1] पाबओ ताहि विधाताहि[2]
बान्धि[3] मेलओ अन्धकूप[4] ।
जकर नाह[5] सुचेतन नही[6]
ताके कके[7] दिअ रूप ॥ ध्रु० ॥
इ[8] रूप हमर वैरी भए गेल
देह[9] बहु डिठि[10] साल ।
आनका इ[11] रूप हिते[12] पए[13] होअए
हमर इ[14] भेल काल ॥

---

११ चोँचक खोँता। १२ बानि-खेब।

सं० अ०—१ एखने। ६ नाही। ८ ई। ११ आनक ई। १४ ई।

साजनि आबे कि पुछह सार ।
परदेस पररमनि रतल
न आव[१५] कन्त हमार ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १४, प० ३६, पं० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५११)—२ तोहि विधाता। ३ हिंसाह्नि। ४ अनुरूप। ५ जक। ६ बलाह। ७ तकेक के। ९ देहब। १० कुडिठि। ११ आनकाइ। १२ हित। १५ नअरि।

झा (पद-सं० ३५)—२ विधाता ताहि। ८ ई। ९-१० देह बहुति विसाल। ११ अनका ई। १३ पाप। १४ ई।

शब्दार्थ—एषने = इस क्षण में। पावओ = पाऊँ। ताहि = उस। मेलओ = धकेल दूँ। जकर = जिसका। नाह = नाथ—सं०, स्वामी। ताके = उसको। कके = क्यों। डिठि = दृष्टि।

अर्थ—इस क्षण में उस विधाता को पाऊँ, तो बाँधकर अन्धकूप में डाल दूँ। जिसका स्वामी सुचेतन नहीं, उसे (वह) रूप क्यों देता है ?

यह रूप मेरा शत्रु हो गया। (मेरा) शरीर बहुतों की आँखों को साल रहा है। दूसरों का यह रूप हित हो सकता है; (किन्तु) मेरा तो यह काल हो गया।

हे सखी ! अब क्या सार पूछ रही हो ? पर-देश में, पर-रमणी में अनुरक्त मेरे कन्त नहीं आ रहे हैं।

मालवरागे—

[३६]

हमरे वचने सखि सतत न जएबे[१]
तहु[२] परिहरिहह[३] राति ।
पढ़ल गुनल सुग बिराडे खाएब[४]
सब दिस होएब अकान्ति[५] ॥ ध्रु० ॥
अलुरि धरब[६] हमर उपदेस ।
बिरडा[७] नाम[८] जते दुरे[९] सूनिअ[१०]
हठे छाड़ब से देस ॥

सारो आनि सेचानके सोपलह
देषितहि[११] अपनी आखि[१२] ।
सूध मासु हाडहि[१५] सञो खएलक
केवल पखिआ[१४] राखि ॥
भमि भमि बिरडा[१५] सबहि[१६] निहारए
डरे नहि करए उकासी ।
दही दुधहु[१७] सञो[१८] षएलक[१९]
गिरिहथ[२०] पळल उपासी ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १५(क), प० ३७, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५६१)—१ लजए। २ बेतहु। ३ परिहरिहुहु। ४ अगरि बाड़े खाए। ५सब दिस हीएत सुकान्ति। ६ अनुविध। ७ विरज। ८ नामे। ९ दूर। १० सुनिञ। ११ देखतहि। १३ सुधमा सुहाउहि। १४ पखि आ। १५ विरइ। १६ सेवहि। १७ दुध। १८ कुसञो। १९ खएलक। २० गिरि दुख।

झा (पद-सं० ३६)—५ होएत अकान्ति। ६ अनु विवर। ९ दुषे। ११ देपतहि। १५ विरडो।

शब्दार्थ—तहु = उसपर भी। परिहरिहह = परिहार करना, त्याग देना। सुग = सुग्गा। बिराडे = बिलाव। अकान्ति = उदासी। अलुरि = अज्ञ, कर्त्तव्य-ज्ञान-शून्य। सारो = सारिका, मैना। सेचान = (सचान—सं०) बाज। सोपलह = समर्पित किया। सूध = शुद्ध। मासु = मांस। हाडहि = हड्डी से। पखिआ = पाँख। भमि-भमि = घूम-घूमकर। उकासी = खाँसी। गिरिहथ = गृहस्थ। पळल = पड़ा।

अर्थ—हे सखी! मेरे कहने से सदा मत जाया करो। उसपर भी रात को (तो जाना) छोड़ ही दो। (अर्थात् मेरे कहने से जाना-आना कम कर दो।)

पढ़े-लिखे सुग्गे को बिलाव खा लेगा; चारों ओर उदासी छा जायगी।

हे कर्त्तव्य-ज्ञान-शून्ये! (मेरे) उपदेश का पालन करो। बिलाव का नाम जितनी दूर में सुनो, हठात् उस देश को छोड़ दो।

अपनी आँखों से देखते हुए भी (तुमने) सारिका को लाकर बाज को सौंप दिया।

(वह) शुद्ध मांस हड्डी के साथ खा गया। केवल पाँखें रख दीं।

घूम-घूमकर बिलाव सबको घूर रहा है। (कोई) डर के मारे खाँसता तक नहीं। दूध से दही तक—वह खा गया। गृहस्थ उपासा (भूखा) रह गया।

सं० अ—११ देखितहि। १२ आखि। १९ दही दूध साँकर सञो खएलक।

मालवरागे—

[३७]

सुजन वचन हे जतने परिपालए
कुलमति राषए[१] गारि।
से पहु बरिसे विदेस गमाम्रोत
जञो की होइति वरनारि॥ ध्रु०॥
कन्हाइ[२] पुनु पुनु सभ धनि[३] समदि[४] पठाम्रोल
म्रवधि समापलि म्राए॥
साहर मुकुलित करए कोलाहल[५] पिक
भमर करए मधुपान।
ऋतु[६] जामिनि[७] हे कैसे कए गमाउति
तोह बिनु तेजति परान॥
कुचरुचि दुर[८] गेल देह म्रति खिन भेल
नयने गरए जलधार[९]।
विरह पयोधि काम नाव तहि[१०]
म्रास धरए कडहार[११]॥

ने० पृ० १५, प० ३८, पं० २

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५०८)—२ सुमधनि। ४ समाद। ६ मत। ७ जामिनि। ८ दुरे। ११ कड़हार।

झा (पद-सं ३७)—३ सुभधनि। ५ (कर) कोलाहल।

शब्दार्थ—परिपालए = परिपालन करते हैं। राषए = रखती है। गारि = गाली। पहु = प्रभु। बरिसे = बरसों। समदि = संवाद देकर। समापलि = समाप्त हुई। साहर = सहकार। गरए = चूती है। कडहार = कड़ुआर, पतवार।

अर्थ—सुजन (अपने) वचन का यत्न से परिपालन करते हैं। कुलमती गालियों को (भी छिपाकर) रखती है।

सं० अ०—१ राखए। २-४ कन्हाइ........? पुनु पुनु सब धनि समदि पठाम्रोल। ५ साहर मुकुलित कर कलरव। ६ मधुरितु जामिनि कइसे कए गमाउति। ९ नअन गरए जलधार। १० विरह पम्रोनिधि काम नाव तहि।

वे प्रभु बरसों विदेश में गँवा सकते हैं, यदि उनकी (पत्नी) वर नारी होगी।

हे कृष्ण! बार-बार सभी नायिकाओं ने संवाद भेजा है (कि) अवधि समाप्त हो चली।

सहकार मुकुलित हो गये, कोकिलाएँ कलरव कर रही हैं, भ्रमर मधुपान कर रहे हैं।

(मधु) ऋतु की रात (वह) कैसे बितायगी? तुम्हारे बिना (वह) प्राण त्याग देगी।

(उसके) स्तनों की कान्ति दूर हो गई, शरीर खिन्न हो गया और आँखों से जलधारा चू रही है।

विरह-रूपी समुद्र में उसके लिए कामदेव ही नाव है, (जिसे खेने के लिए वह) आशा-रूपी कड़ुआर धारण किये हुए है।

मालवरागे—

[३८]

सून सङ्केत निकेतन आइलि
सुमुखि विमुखि[1] भेलि।
मन मनोरथ बानी[2] लागलि
रजनि निफले गेलि ॥ ध्रु० ॥
सुन सुन हरि राही[3] परिहरि
की फल पाओल तोहे।
उचित छाड़ि अनुचित करसि
गेले न करिअ कोहे ॥
वारिस बसि नरी सर धारा[4]
धरि[5] जलधर कोपि।
तरुण[6] तिमिर दिग न जानए
अहि सिर गए रोपि ॥
विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १६ (क), प० ३९, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ३६१)—१ विमुखी। २ वाणी। ४ वारिस बसिल बीसर धारा।
झा (पद-सं० ३८)—४ वारि सरसि-नरी सब धारा।

शब्दार्थ—निकेतन = गृह। बानी = (वह्नि—सं०) आग। राही = राधा। गेले = गए हुए। नरी = नदी। जलधर = मेघ। तिमिर = अन्धकार। अहि = साँप।

सं० अ०—३ राहि। ५ धरिअ। ६ तरुन।

अर्थ—(नायिका) संकेत द्वारा निश्चित स्थान (गृह) में आई, परन्तु स्थान को सूना पाकर (अर्थात्—नायक को वहाँ नहीं देखकर वह) सुमुखी विमुखी हो गई (अर्थात्—उसका मुँह म्लान हो गया)।

(उसके) मन के मनोरथ में आग लग गई। रात व्यर्थ ही बीत गई।

हे हरि! सुनो। राधा को तजकर तुमने कौन-सा फल पाया?

उचित को छोड़कर (तुम) अनुचित कर रहे हो। (शरण में) गये हुए पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

मेघ ने क्रुद्ध होकर वर्षा के द्वारा नदी-नाले तथा सरोवर को भर दिया है।

घोर अन्धकार से दिशाएँ नहीं जानी जातीं। साँप के सिर पर (पैर) रोपकर वह गई।

मालवरागे—

[३९]

रभसहि[1] तह बोललन्हि मुखकान्ति
पुलकित तनु मोर कत धर भान्ति॥
आनन्द नोरे[2] नयन[3] भरि गेल
पेम[4] आकुर अङ्कुर भेल ॥ ध्रु० ॥
भेटल मधुरपति सपने मो आज
तखनुक[5] कहिनी कहइते लाज॥
जखने हरल हरि आचर[6] मोर
रसभरे[7] ससरु[8] कसनी[9] डोर॥
करे[10] कुचमण्डल रहलिहुँ गोए
कमले[11] कनकगिरि झापि[12] न होए॥
विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० १६(क), प० ४०, पं० ४

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५६६)—२ लोरे। ५ तखनक। ८ मन। ९ रुकसनी मोर। १२ झाँपल।
झा (पद-सं० ३९)—९ कसनी मोर

शब्दार्थ—रभसहि=आवेश से। मुखकान्ति=प्रसन्नमुख। भान्ति=प्रकार। आकुर=अंकुर। मधुरपति=मथुरापति (कृष्ण)। मो=मुझसे। कसनी डोर=नीवीबन्ध। कनकगिरि=कनकाचल।

सं० अ०—१ रभसहिँ। २ नोरेँ। ३ नअन। ४ पेमक आँकुर। ६ आँचर। ७ रसभरेँ। १० करेँ। ११ कमलेँ। १२ झाँपि।

अर्थ—अत्यन्त आवेश से उन्होंने मेरे मुख के सौंदर्य के विषय में बातें कीं, (जिससे) मेरा शरीर पुलकित हो गया। (उसने) कितने प्रकार (रूपरेखाओं) को धारण किया।

आनन्द के आँसू से मेरी आँखें भर गईं और प्रेमांकुर का उदय हुआ।

आज कृष्ण स्वप्न में मुझसे मिले। उस समय की कहानी कहते लज्जा होती है।

जब कृष्ण ने मेरे अञ्चल का अपहरण किया, (तब) रस-भार से नीवी-बन्ध खिसक गया।

मैंने हाथ से (अपना) कुच-मण्डल छिपा रखा, (परन्तु) कमल से कनकाचल ढका नहीं जाता!

मालवरागे—

[४०]

बान्धल हीर अजर लए[१] हेम
सागर तह हे गहिर छल पेम।
ओउ भरल[२] इ[३] गेल सुखाए
लाह बलाह[४] मोहे[५] भरि जाए॥ ध्रु०॥
ए सखि[६] एतवा मागओ[७] तोहि
मोरेहु[८] अएले[९] रखिहिसि[१०] मोहि।
आरति दरसहु[११] बोलि[१२] डराति[१३]
से सबे सुमरि जीव का[१४] साति[१५]॥
नल थल[१६] घर बाहर सम नेह[१७]
आरसि कए मोर देखित[१८] देह।
गत परान[१९] गेले[२०] होअ[२१] लाज
भल[२२] नहि अनुवद सुपहु[२३] समाज[२४]॥
मालति मधु मधुकर ले पोछि[२५]
मान ओ करति पहु[२६] अइसनि ओछि।

सं० अ०—३ ई। ४-५ लाह बलाह मोहेँ। ६ साजनि। ७ माँगओ। ८-१० मोरेहुँ अएलेँ रखिहसि। ११ दरसहुँ। १४ काँ। १८ देखितथि। २० गेलेँ।

भनइ विद्यापति कवि कठहार[२७]
कबहु[२८] न होअए जाति व्यभिचार ॥

ने० पृ० १६, प० ४३, पं० ५

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० २५)—३ ई। ४ वलाहें। ५ मेघें। ६ साजनि। ७ माङ्गओ। ८ मोरहुँ। ६ अएलें। १८ देखितह। २० भेलें। २१ ना। २१ जा। २२ मलि। २३ अपद। २४ अकाज। २६ बाहु कबओ हरि।

विशेष—रामभद्रपुर की पदावली में भणिता नहीं है।

मि० म० (पद-सं० ४५४)—२ ओ उभरल। ४ बलाहे। ५ मेघे। १० राखहिसि। १२ बोलित। १३ राति। १५ माति। १६ न नथ न। १७ गमनेह। १६ पराण। २५ नेपोछि। २७ कराठहार।

झा (पद-सं० ४०)—१ अजरल ए। २७ कराठहार।

शब्दार्थ—हीर = हीरा। अजर = अविनाशी। हेम = सुवर्ण। तह = से। गहिर = गहरा। पेम = प्रेम। ओउ = वह। भरल = भरा हुआ। लाह = लाक्षा। मोहे = मोह से। रखिहिसि = रखना। आरति = (आर्त्ति—सं०) दुःख। दरसहु = दिखलाने के लिए। साति = (शास्ति—सं०) दुःख। नल = नद। थल = स्थल। अनुवद = कहता है। जाति = स्वभाव, प्रकृति।

अर्थ—(मैंने) हीरे को सुवर्ण लेकर (दृढ़ता से) बाँधा था। सागर से भी गहरा (मेरा) प्रेम था।

(किन्तु) वह (सागर) भरा है (और) यह (प्रेम) सूख गया। लाह, मेघ (और) मोह—(इन तीनों से ये— सोना, समुद्र और प्रेम) भरते हैं।

हे सखी! मैं तुमसे इतना माँगती हूँ (कि) मेरे आने पर भी मुझे रख लेना।

दुःख दरसाने के लिए भी (कुछ) बोलने में डरती हूँ। उन सबका (पुरानी बातों का) स्मरण कर प्राणों को तकलीफ हो रही है।

नद में (जल में) या स्थल में, घर में या बाहर में—(सर्वत्र मेरा) प्रेम बराबर है। आइने में मेरा शरीर देख लेते।

लज्जा के चले जाने से प्राण को गया ही समझना चाहिए। सुपहु (सुप्रभु, सुनायक) के समाज में (लज्जा का त्याग) अच्छा नहीं कहा जाता।

मधुकर ने मालती का मधु पोंछ लिया। (अब) वह (मालती) ऐसी ओछी (गई-बीती) है कि मान करेगी?

कवि-कराठहार विद्यापति कहते हैं कि कभी किसी की प्रकृति में अन्तर नहीं पड़ता।

---

२८ कबहुँ।

मालवरागे—

[४१]

पहिलहि[१] सरस पयोधर[२] कुम्भ
आरति कत न करए परिरम्भ।
अधर सुधारस दरसए लोभ
राङ्कक हाथ रतन नहि सोभ ॥ ध्रु० ॥
साजनि[३] की[४] कहब कहइते[५] लाज
कान्हक[६] आइति पळलहु[७] आज।
नीवी[८] ससरि कतए दहु गेलि
अपनाहु आग[९] अनाइति भेलि ॥
करतल[१०] तले धरिअ कुच गोए
पळले[११] तलित झापि नहि होंए[१२]।
भनइ विद्यापति न कर सन्देह
मधु[१३] तह सुन्दरि मधुर सिनेह ॥

ने० पृ० १७ (क), प० ४३, पं० ५

पाठभेद—

न०गु० (पद-सं० ५७२)—६ कान्हुक। ७ पललुह। ८ नीवि। ९ आङ्ग।

मि० म० (पद-सं० ४८८)—३ सजनि। ५ कहइत। ६ कान्हुक। ७ पलथहु। ८ नीवि। ९ आङ्ग। १० करतले। ११ पलले।

झा (पद-सं० ४१)—७ पललुह। ११ पलले। १३ मधुत।

शब्दार्थ—आइति = (आयत्त—सं०) अधीन। आग = अङ्ग। गोए = छिपाकर। तळित = विद्युत्।

अर्थ—पहले (वे) आर्त्त होकर सरस पयोधर-कुम्भ का कितना परिरम्भ करते हैं? अधर-सुधारस में लोभ दरसाते हैं; (पर) रङ्क के हाथ में रत्न नहीं सोहता। हे सखी! क्या कहूँ, कहते लज्जा होती है। आज (मैं) कृष्ण के अधीन पड़ गई। नीवी खिसककर कहाँ चली गई! अपना अङ्ग भी अनायत्त हो गया (अर्थात्, अपने अधीन नहीं रहा)।

सं० अ०—१ पहिलहुँ। २ पओधर। ७ पळलहुँ। ९ अपनाहुँ आङ्ग। ११-१२ पळले तळित झाँपि नहि होए।

करतल के नीचे स्तन को छिपाकर रखती हूँ; (पर) गिरती (कौंधती) बिजली को ढका नहीं जा सकता।

विद्यापति कहते हैं—हे सुन्दरी! सन्देह मत करो। स्नेह मधु से भी (अधिक) मधुर होता है।

मालवरागे—

[४२]

नयनक[1] नीर चरणतल[2] गेल
थलहुक[3] कमल अम्भोरुह भेल।
अधर अरुण[4] निमिषि[5] नहि होए
किसलय[6] सिसिर[7] छाड़ि[8] हलु[9] धोए॥ ध्रु०॥
ससिमुखि नोरे ओळ नहि होए
तुअ अनुरागे शिथिल[10] सब कोए॥
भनइ विद्यापति॥

नें० पृ० १७, प० ४४, पं० ३

पाठभेद—

रा० पु०—१ नअनक। २ चरनतल। ३ थलक। ४ अरुनिमा। ५ लखि। ६ किसलअ। ७ सिसिरेँ। ८ छाड़ु। ९ जनि।

विशेष—राममद्रपुर की पदावली में ध्रुपद के बाद निम्नलिखित पाठ है—

माधव जतनहुँ राखए गोए
ससिमुखि नोर ओळ नहि होए॥
तुअ अनुराग सिथिल सखि जानि
अउलिउ विसरलि मनसिज बानि।
दारुन……

(आगे खण्डित है।)

न० गु० (पद-सं० ११२)—२ चरनतल।

सि० म० (पद-सं० २६७)—२ चरणतल। ४ अरुन। ५ निमिसि। १० सिथिल।

झा (पद-सं० ४२)—पाठभेद नहीं है।

सं० अ०—नअनक नीर चरनतल गेल।
थलहुक कमल अम्भोरुह भेल॥
अधर-अरुनिमा लखि नहि होए।
किसलअ सिसिरेँ छाड़ु जनि धोए॥ ध्रु०॥

शब्दार्थ—थलहुक कमल = थलकल (पुष्पविशेष)। अम्भोरुह = जलज (कमल)। निमिषि = निमेष। किसलय = नवपल्लव। हलु = है। ओल = ओर, अन्त।

अर्थ—आँख का पानी (आँसू) चरणतल में जा पहुँचा (अर्थात्, आँसू से उसके पैर तक भींग गये)। स्थलकमल जलज (कमल) हो गया।

निमिषमात्र के लिए भी उसका अधर रक्ताभ नहीं होता। (मालूम होता है, जैसे) शिशिर (ऋतु) ने नवपल्लव को धोकर छोड़ दिया है।

चन्द्रमुखी के आँसू का अन्त नहीं होता। तुम्हारे अनुराग से (उसके) सभी (अङ्ग) शिथिल हो गये।

मालवरागे--

[४३]

गगन मडल[1] दुहुक भूखन[2]
एकसर उग चन्दा।
गए चकोरी अमिअ[3] पीबए
कुमुदिनि सानन्दा॥ ध्रु०॥
मालति काअिअ[4] करिअ रोस।
एकल भमर बहुत कुसुम
कमन[5] ताहेरि दोस॥
जातकि केतकि नवि पदुमिनि
सब[6] सम अनुराग।
ताहि अवसर तोहि न बिसर
एहे तोहर[7] बड़ भाग॥

माधव। जतनहुँ राखए गोए।
ससिमुखि-नोर ओळ नहि होए॥
तुअ अनुराग सिथिल सखि जानि।
अउलिउ बिसरलि मनसिज बानि॥
दारुन······

सं० अ०—१ मंडल। ३ अमिअ पिंवए। ५ कओन। ६ सबे। ७ तोर।

अभिनव रस रभस पश्रोले[८]
कमन[९] रह विवेक ।
भने[१०] विद्यापति परहित[११] कर
तैसन हरि पए एक[१२] ॥

ने० पृ० १७, प० ४५, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४४०)—२ भूषन । ३ अमिय । ४ काँइए । ५ कमल । ७ तोर । ९ कश्रोन ।

मि० म० (पद-सं० ४३६)—३ अमिश्र । ४ काँइए । ७ तोर । १० मन । ११ पहर ।

झा (पद-सं० ४३)—३ अमिञे । ७ तोर ।

शब्दार्थ—गगन = आकाश । मडल = भूमंडल । काञिञे = क्यों । एकल = अकेला । कमन = कैसे । ताहेरि = उसका । एकसर = (एकस्वर—सं०) एकाकी ।

अर्थ—चन्द्रमा एकाकी उगता है, (फिर भी वह) आकाश (और) भूमंडल—दोनों का भूषण है। चकोरी (आकाश में) जाकर अमृत पान करती है (और) कुमुदिनी (भूमंडल में) प्रसन्न होती है ।

हे मालती ! क्यों रोष करती हो ? भ्रमर अकेला है (और) कुसुम बहुत हैं । उसका कौन दोष है ?

जातकी, केतकी (और) नवीना पद्मिनी—सबमें (उसका) समान अनुराग है । उस अवसर पर (भी वह) तुम्हें नहीं भूलता है—यही तुम्हारा बड़ा भाग्य है ।

अभिनव प्रेम के आनन्द को पाकर किसे विवेक रह सकता है। विद्यापति कहते हैं—(जो) परहित करते हैं, वैसे एकमात्र हरि ही हैं ।

मालवरागे—

[४४]

बडि[१] जुडि एहु[२] तरुक[३] छाहरि
ठामे ठामे बस[४] गाम ।
हमे एकसरि पिश्रा देसान्तर
नही दुरजन नाम ॥ ध्रु० ॥
पथिक एथा[५] लेहे[६] बिसराम[७] ।
जत बेसाहब कीछु न महघ
सबे मिल एहि ठाम ॥

---

८ पश्रोलें । ९ कश्रोना । १०-१२ भनइ विद्यापति जे परहित कर तइसन हरि पए एक ।

सं० अ०—१-३ बड़ि जुड़ि एहि तरुक ।

सासु नही घर पर परिजन
ननद सहज भोरि।
एतहु[८] अथिक विमुख जाएब
अबे अनाइति मोरि॥
भने विद्यापति सुन तञे जुवति
जे पुर परक आस।

ने० पृ० १८(क), प० ४६, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५८९)—२ तककी। ४ रस। ५ एखाने। ६ हेरि। ७ सरम। ८ एतकु।
झा (पद-सं० ४४)--२ ए। ३ कुतुकक।

शब्दार्थ—जुडि = शीतल। छाहरि = छाँह। ठामे-ठामे = स्थान-स्थान पर। एथा = (अत्र—सं०) यहाँ। लेहे = लो। बेसाहब = खरीदोगे। एतहु = इतना। अथिक = रहते।

अर्थ—इस पेड़ की छाया बड़ी शीतल है। स्थान-स्थान पर गाँव बसे हैं। मैं अकेली हूँ, प्रिय परदेश में हैं, (कहीं) दुर्जन का नाम नहीं है।

हे पथिक! यहाँ विश्राम लो। जो कुछ खरीदोगे, कुछ (भी) महँगा नहीं। सब-कुछ यहाँ मिलेंगे।

घर में सास नहीं है, परिजन परे हैं और ननद स्वभाव से ही भोली है। इतना रहते भी विमुख (होकर) जाओगे, तो अब मेरा वश नहीं है।

विद्यापति कहते हैं—हे युवती! सुनो। जो दूसरे की आशा पूर्ण करता है······

विशेष—पद अपूर्ण है। अन्त में और एक पंक्ति अपेक्षित है।

मालवरागे—

[४५]

उगमल[१] जग भम काहु न कुसुम रम
परिमल कर परिहार।
जकरि जतए[२] रीति ते बिनु नहीक थिति[३]
नेह न विषय[४] विचार॥ ध्रु०॥
मालति तोहि बिनु भमर सदन्द।
बहुत कुसुम वन सबही[५] विरत मन
कतहु न पिब मकरन्द॥

सं० अ०—१ उमगल। २ जे। ३ नहि थिति। ५ सबहि।

विमल कमल मधु सुधा सरिस विधु
नेह न मधुप विदार[६] ।
हृदय सरिस जन न देषिअ[७] जति षन[८]
तति खन[९] सयर[१०] अन्धार[११] ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १६, प० ४७, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३८४)—३ नही थिति। ४ विषम। ६ विचार। ७ देखिय। ८ खन। १० सगर। ११ अँधार।

मि० म० (पद-सं० ३८८)—३ कथिति। ७ देखिअ। ८ खन। ११ अँधार।

झा (पद-सं० ४५)—३ नहि थिति। ६ षन।

शब्दार्थ—उगमल=उमंग के साथ। भम=घूमता है। परिमल=पराग। परिहार=परित्याग। रीति=आरक्त, आसक्ति। थिति=स्थिति, ठहराव। सदन्द=(सद्वन्द्व—सं०) उलझन में पड़ा। विदार=(कोविदार—सं०) कचनार। सयर=सकल।

अर्थ—(भ्रमर) उमंग के साथ संसार (भर) घूमता है; (लेकिन) किसी फूल में रमता नहीं, यहाँ तक कि (उसे) सूँघता भी नहीं।

जिसका मन जहाँ आसक्त है, उसके विना उसकी स्थिति नहीं होती। स्नेह में विषय (पात्र) का विचार नहीं होता।

हे मालती! तुम्हारे विना भ्रमर उलझन में पड़ा हुआ है। वन में बहुत कुसुम हैं; (लेकिन उसका) मन सबसे विरत है। कहीं भी (वह) मकरन्द-पान नहीं करता।

कमल में विमल मधु है, सुधा के समान चन्द्रमा है, कचनार है; (लेकिन कहीं भी) भ्रमर का स्नेह नहीं है।

समान हृदयवाला व्यक्ति जबतक नहीं दीखता, तबतक सब-कुछ अन्धकार है।

मालवरागे—

[४६]

वसन्त रजनि[१] रङ्गे पलटि खेपलि[२] सङ्गे
परम रभस[३] पिआ गेल कही[४] ।
कोकिल पञ्चम[५] गाब तैंअओ[६] न सुबन्धु आब
उत्तिम[७] वचन व्यभिचर[८] नहीं[९] ॥ ध्रु० ॥

७-८ हृदअ सरिस जन न देखिअ जति खन। १० सअर।

साए साए उगलि रे बथा[10] ।
अवधि न अएले कन्ता
मो पति पछिमे सुर उगि गेला ॥
साहर मजर दिसा चान्दे उजरि निसा
विद्यापति भन इत्यादि ॥

ने० पृ० १६ (क), प० ४६, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७१६)—१ रयनि । २ खेपब । ३ रमसे । ४ कहि । ५ पचम । ६ तइअओ । ७ उतिम । ८ बेमिचर । ९ नहि ।

गुप्तजी ने ध्रु० के बाद 'तरौनी-तालपत्र' का निम्नलिखित पाठ दिया है—

साए उगलि वेरथा ।
अबहु न अएले कन्ता नहि भल परजन्ता
मो पति पछिम सुर उगि गेला ।
साहर सौरभे दिसा चाँद उजोरि निसा
तरु तर मधुकर पसरला ।
इ रस हृदय धरि तइअओ न आब हरि
से जदि पुरुब पेम बिसरला ॥
कवि भने विद्यापति सुन वर जउवति
मानिनि मनोरथ सुरतरु ।
सिरि सिवसिंह देवा चरनकमल सेवा
महादेवि लखिमा देवि वरु ।

सं० अ०—वसन्त-रजनि रङ्गे पलटि खेपबि सङ्गे
परम रभसे पिआ गेल कही ।
कोकिल पञ्चम गाब, तइअओ न सुबन्धु आव,
उत्तिम वचन बेभिचर नही ॥ ध्रु० ॥
साए ! साए ! उगलि रे बेथा ।
अवधि न अएले कन्ता, नहि भल परजन्ता,
मो पति पछिमे सुर उगि गेला ॥
साहर मँजरि दिसा, चान्दे‌ँ उजोरि निसा,
तरु पर मधुकर पसरला ।
इ रस हृदअ धरि, तइअओ न आब हरि,
से जदि पुरुब पेम बिसरला ॥
कवि भने विद्यापति, सुन वर जउवति,
मानिनि-मनोरथ-सुरतरु ।
सिरि सिवसिंह देवा चरन-कमल-सेवा
महादेवि लखिमा देवि-बरु ॥

मि० म० (पद-सं० १७२)—१ रयनि। २ खेपवि। ३ रभसे। ४ कहि। ५ पचम। ६ तइअओ। ७ उतिम। ८ बेभिचर। ९ नहि।

मि० म० पदावली में भी 'तरौनी-तालपत्र' का पाठ संगृहीत है।

झा (पद-सं० ४६)—१० बेबथा।

झा ने 'तालपत्र' से केवल 'नेपाल-पाण्डुपिलि' की पंक्तियों के शेषांश उद्धृत किये हैं।

विशेष—'तरौनी-तालपत्र' के पाठ से मिलाकर विशुद्ध पद निर्णीत होने पर ही इसका अर्थ स्पष्ट होता है।

शब्दार्थ—वसन्त-रजनि = वसन्त की रात्रि। रङ्गे = क्रीडा। पलटि = लौटकर। खेपबि = बिताऊँगा। रभसें = जोर देकर। बेभिचर = व्यभिचरित। साए = सखी। बेथा = व्यथा—सं०। परिजन्ता = पर्यन्त—सं०, अन्त। मो = मेरे। पति = प्रति। मोपति = मेरे लिए। सुर = (सूर—सं०) सूर्य। साहर = सहकार। उजोरि = उजेली। पसरला = फैल गये। तइअओ = तथापि, फिर भी। बिसरला = भूल गये। सुरतरु = कल्पवृक्ष। बरु = स्वामी।

अर्थ—(मैं) लौटकर वसन्त की रात को प्रेमक्रीडा में बिताऊँगा—(यह) बहुत जोर देकर प्रिय कह गये।

कोयल पंचम (स्वर) में गा रही है, तथापि सुबन्धु नहीं आते। (ऐसा क्यों?)। उत्तम पुरुष का वचन तो व्यभिचरित नहीं होता।

हे सखी! व्यथा उग आई (पैदा हो गई)। (किन्तु) अवधि पर कन्त नहीं आये। अन्त भला नहीं हुआ। मेरे लिए (ऐसा हुआ, मानों) पच्छिम में सूर्य उग गया (अर्थात्, मेरे पति के विचार में परिवर्त्तन होना मानों सूर्य का पश्चिम में उगना है)।

दिशाओं में सहकार खिल गये, चन्द्रमा से रात उजेली हो गई (और) तरुओं पर मधुकर फैल गये।

वे यदि इस रस को हृदय में धारण करके फिर भी नहीं आते, (तो मालूम होता है,) पहले का प्रेम भूल गये।

कवि विद्यापति कहते हैं—हे वरयुवती! सुनो। मानिनी के मनोरथों के कल्पतरु, महादेवी लखिमा देवी के पति श्रीशिवसिंहदेव के चरण-कमल की सेवा (करो)।

ए रागे—

[४७]

गुण[1] अगुण[2] सम कए[3] मानए
भेद न जानए पहू।
निअ[4] चतुरिम कत सिखाउबि
हमहु भेलिहु[5] लहू ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—१ गुन। २ अवगुन। ५ भेलिहुँ।

साजनि हृदय[६] कहओं तोहि।
जगत भरल नागर अछए
बिहि छललिहु[७] मोहि॥
कामकला रस कत सिखाउबि
पुब[८] पछिम न जान।
रभस बेरा निन्दे बेआकुल
किछु न ताहि गेआन[९]॥
भने विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० १९(क), प० ५०, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २२३)—१ गुन। २ अगुन। ३ कय। ४ निअ। ७ छललिह।

मि० म० (पद-सं० ३४८)—१ गुन। २ अगुन। ३ कय। ४ निअ। ७ छललिह।

झा (पद-सं० ४७)—५ मोलिहु।

शब्दार्थ—अगुण = अवगुण। चतुरिम = चतुरता। लहू = लघु। हृदय = हृदयगत भाव। बिहि = विधाता। रभस बेरा = क्रीडा के समय।

अर्थ—(मेरे) प्रभु गुण और अवगुण को सम करके मानते हैं, (उनमें) भेद नहीं जानते।

अपनी चतुरता कितनी सिखाऊँगी? (उनके कारण) मैं भी लघु हो गई।

हे सखी! (मैं) तुम्हें (अपना) हृदयगत भाव कहती हूँ। संसार नागरों से भरा है; फिर भी विधाता ने मुझे छला (अर्थात्, मेरे लिए नागर नायक नहीं दिया)।

(मैं उन्हें) कितना कामकला-रस सिखाऊँगी? (वे तो) पूरब-पच्छिम भी नहीं जानते।

(वे) केलि के समय नींद से व्याकुल हो जाते हैं। उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है?

ए रागे—

[४८]

सेओल सामि सब गुण[१] आगर
सदय सुद्ढ[२] नेह।
तहू सबे सबे रतन पाबए
निन्दहु मोहि सन्देह॥ ध्रु०॥

---

६ हृदअ। ८ पुब। ९ गेजान।

सं० अ०—१ सबे गुन। २ सदअ सुद्ढ।

पुरुष[३] वचन हो अवधान।
ऐसन[४] नहि एहि[५] महिमण्डल
जे परवेदन जान ॥
नहि हित मित कोउ[६] बुझाबए
लाख कोटी तोहे[७] सामी।
सबक आसा तोहे[८] पुराबह
हम[९] बिसरह काओ ॥
विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १६, प० ५१, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६३१)—१ गुन। २ सुद्धद़। ३ पुरुख। ६ कोऊ।

मि० म० (पद-सं० ५१५)—१ गुन। २ सुद्धद़। ६ कोऊ।

झा (पद-सं० ४८)—४ एसन। ५ पाठाभाव।

शब्दार्थ—सेओल=सेवा की। सामि=स्वामी। तहु=उनसे। अवधान = विचारपूर्ण। महिमण्डल=पृथ्वी। परवेदन=दूसरों का दुःख। हित=हितैषी। काओ=क्यों।

अर्थ—सर्वगुणागार, सदय एवं सुदृढस्नेह स्वामी की सेवा की। उनसे सबने सब तरह के रत्न पाये; (लेकिन) मुझे नींद में भी सन्देह हो गया।

पुरुष के वचन का अवधान करो। (अपने वचन का पालन करना पुरुष-धर्म है; किन्तु अवधि बीत जाने पर भी स्वामी नहीं आये। उन्होंने अपने वचन का पालन नहीं किया।—यही व्यंग्य है।) ऐसा (कोई) इस पृथ्वी पर नहीं, जो दूसरों का दुःख समझे।

कोई हितैषी या मित्र भी नहीं समझाते कि तुम लाखों-कोटियों के स्वामी हो। तुम सबकी आशा पूर्ण करते हो; (केवल) मुझे क्यों भूलते हो?

मालवरागे—

[४६]

सुखे न सुतलि कुसुमसयन[१]
नयने[२] मुञ्चसि वारि।
तहा[३] की धरब[४] पुरुष[५] दूषण[६]
जहा[७] असहनि[८] नारि ॥ ध्रु० ॥

---

४ अइसन। ७ कोटि तोहें। ८ तोहें। ९ हमें।

सं० अ०—१ सुखें न सुतसि कुसुम-सजन। २ नजने। ३ तहाँ कि। ६ दूखन। ७ जहाँ।

राही हठे[९] न तोलिअ[१०] नेह।
कान्ह सरीर दिने दिने दूबर
तोराहु जीव सन्देह॥
परक वचन हित न मानसि
बुझसि न सुरततन्त।
मने तञो जञो[११] मौन करिअ[१२]
चोरि आनए[१३] कन्त॥
किछु किछु पिआ[१४] आसा दीहह[१५]
अति न करब कोप।
अधिके[१६] जतने वचन बोलब
सङ्गम करब गोप॥
नव अनुरागे किछु होएबा[१७]
रह दिन दुइ तिनि चारि[१८]।
प्रथम प्रेम ओल[१९] धरि राखए
सेहे कलामति नारि॥
विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० २० (क), प० ५२, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४५१)--३ तहाँ। ४ करव। ५ पुरुख। ६ भूषण। ७ जहाँ। १४ पिअ। १५ दिहह। १८ रह दिन दुइ चारि।

मि० म० (पद-सं० ४३२)--३ तहाँ। ४ करव। ५ पुरख। ६ भूसन। ७ नहाँ। ९ हटे। १४ पिय। १५ दिहह। १६ आधके। १८ रह दिन तिनि चारि। १९ ओर।

झा (पद-सं० ४९)--८ अहसनि।

शब्दार्थ—सुतलि = सोई। मुञ्चसि = त्याग करती। असहनि = असहनशीला। तोलिअ = तोड़ना चाहिए। दूबर = दुर्बल। तन्त = तंत्र—सं०। तञो जञो = त्यों-ज्यों। गोप = छिपाकर। होएबा – होता है। ओल — अन्त।

---

९ हठेँ। १० तोळिअ। ११ जञो तञो। १२ करह। १३ आनह। १४ पिआजे। १७ नव अनुरागेँ किछु न होएब। १८ से रह दिन दुइ चारि। १९ ओळ।

अर्थ—फूलों की शय्या पर भी (तुम) सुख से नहीं सोती हो (अर्थात्, फूलों की शय्या पर भी तुम्हें तकलीफ हो रही है)। आँखों से पानी (आँसू) बहाती हो।

(लेकिन) वहाँ पुरुष का दोष क्या धरू (दूँ), जहाँ नारी असहनशीला है।

हे राधे! सहसा स्नेह को मत तोड़ो। दिन-दिन कृष्ण का शरीर दुर्बल होता जा रहा है। (और) तुम्हारे जीवन में भी सन्देह (हो रहा) है।

दूसरे के हित-वचन को नहीं मानती, कामशास्त्र को नहीं समझती। (कामशास्त्र जाननेवाली तो) मन को ज्यों-त्यों मौन करके चुप-चोरी कन्त को ले आती है।

प्रिय को कुछ-कुछ आशा देना, अधिक क्रोध नहीं करना, बड़े यत्न से बात करना और छिपाकर समागम करना।

नये अनुराग से कुछ नहीं होता है। वह तो दो-चार दिन रहता है। जो प्रथम प्रेम को अन्त तक रखती है, वही कलावती नारी (कहलाती) है। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

मालवरागे—

[५०]

पाउस निअर आएला रे
से देषि[१] सामि डराओ।
जखने गरजि घन बरिसता रे
कओन सेरि[२] पराओ[३] ॥ध्रु०॥
वचना[४] मेरो[५] सुन[६] साजना रे
बारिस न तेजिअ गेह।
जकरा भरे[७] घर[८] युवती[९] रे
से कैसे[१०] जाए विदेस॥
तोहे गुए[११] आगर नागरा रे
सुन्दर सुपहु हमार।
सोने[१२] बरिस घन सूनिआ[१३] रे
चौखडहु[१४] तसु नाम॥
विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० २० (क), प०५३, पं० ५

सं० अ०—१ देखि। २ कओनाक सेरि। ७ भरेँ। ९ जुवती। १० कइसे। ११ तोहेँ गुन १३ सुनिआ। १४ चौखण्डहु।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ४६६)—१ देखि। २ से। ३ विपराओ। ४ रचना। ५ मे। ६ रोअन। ७ मेरस। ८ पाठाभाव। ६ रसवती। १२ मौने। १३ सुनिआ। १४ चौखतहु।

झा (पद-सं० ३ एप० बी०)—८ युव।

शब्दार्थ—पाउस = पावस। निअर = निकट। आएला = आया। सामि = स्वामी। डराओ = डराती हूँ। सेरि = आश्रय। गेह = घर। भरे = भरोसे। चौखडहु = चौखण्ड, चतुर्दिक्।

अर्थ—हे स्वामी ! पावस निकट आ गया। उसे देखकर मैं डरती हूँ।
जब गरजकर बादल बरसेंगे, तब मैं भागकर किसके आश्रय में जाऊँगी ?
हे मेरे साजन ! मेरी बात सुनो। बरसात में घर मत छोड़ो।
जिसके भरोसे घर में युवती है, वह कैसे विदेश जाय ?
तुम गुणागार हो, नागर हो, मेरे सुन्दर सुपहु (सुप्रभु) हो।
बादल सोना बरसाता है—ऐसा सुनती हूँ। चतुर्दिक् उसका नाम है।

विशेष—पद अपूर्ण है, इसलिए अन्तिम पंक्ति का अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

मालवरागे—

[५१]

दिने दिने बाढए[१] सुपुरुष[२] नेहा
अनुदिने जैसन[३] चान्दक रेहा।
जे छल आदर तँ रहु[४] आधे[५]
आओर होएत की पछिलाहुँ बाधे[६] ॥ ध्रु० ॥
विधिबसे यदि[७] होअ अनुगति बाधे
तैअओ[८] सुपहु नहि धर अपराधे।
पुरत मनोरथ कत छल साधे
आबे कि पुछह सखि सब भेल बाधे॥
सुरतरु सेओल[९] अभि······[१०] लागी
तसु दूखण[११] नहि हमहि अभागी।
भनइ विद्यापति सुनह सयानी[१२]
आओत मधुरपति[१३] तुअ गुण[१४] जानी॥

ने० पृ० २०, प० ५४, पं० ३

सं० अ०—३ जइसन। ४ ते रहु। ७ जदि। ८ तइअओ। १० अभिमत। ११ दूखन। १२ सआनी। १४ गुन।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६०)—१ बाढ़ए। ४ तकरहु। ७ जदि। ६ सेओल मल १० अभिमत। ११ दूखन। १४ गुन।

मि० म० (पद-सं० ४५०)—१ बाढ़ए। २ सुपुरुस। ४ तबहु। ५ आँघे। ६ बाँधे। ७ जदि। ६ सेओल मलं। ११ दूखन। १३ मथुरपति। १४ गुन।

झा (पद-सं० ५०)—४ त रहुँ। १३ मधरपति।

शब्दार्थ—बाढए = बढ़ता है। रेहा = रेखा। साधे = कामना। सेओल = सेवा की। लागी = लिए। मधुरपति = मथुरापति, कृष्ण।

अर्थ—सुपुरुष का स्नेह दिन-दिन बढ़ता है, जैसे चन्द्रमा की रेखा (कला) अनुदिन बढ़ती है।

किन्तु जो आदर था, वह (भी) आधा (होकर) रहा। और क्या होगा? पीछे (के आदर) में भी बाधा (हो गई)।

यदि दैवयोग से अनुगमन में बाधा हो जाय, तो भी सुपहु अपराध नहीं धरते।

कितनी साध थी कि मनोरथ पूर्ण होगा; (किन्तु) हे सखी! अब क्या पूछती हो? सब बाधित हो गये।

अभिमत (अभिलाषा-पूर्त्ति) के लिए (मैंने) सुरतरु की सेवा की। (किन्तु) उसका दोष नहीं; मैं ही अभागिनी हूँ।

विद्यापति कहते हैं—हे सयानी! सुनो। कृष्ण तुम्हारे गुण को समझकर आयेंगे।

मालवरागे—

[५२]

गुरुजन कहि दुरजन सओ बारि
कौतुके[1] कुन्द[2] करसि फुल धालि[3]।
कैतवे[4] बारि सखीजन रङ्ग[5]
अह[6] अभिसार दूर[7] रति रङ्ग ॥ ध्रु०॥
ए सखि[8] वचन करहि[9] अवधान[10]
रात कि करति[11] आरति समधान।
अन्धकूप सम रयनि[12] विलास
चोरक मन जनि[13] बसए तरास[14]॥

सं० अ०—१-३ कौतुकेँ करसि कुन्द फुल धारि। ४-५ कइतकेँ बारि सखी जन सङ्ग। ११ रातुक रति। १२ रजनि। १३ जनो।

हरषित[१५] होए[१६] लङ्का के राए
नागर[१७] की[१८] करत[१९] नागरि पाए॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० २१ (क), प० ५५, पं० २

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ३२)—२ फूट। ३ फुलवालि। ४ कइतवे॑। ५ सङ्ग। ८ ए सखि सुमुखि। ६ पाठामाव। १० अनुमान। ११ रातुक रति। १२ रअनि। १३ जञो। १५ हरखित। १६ हो। १७ नागरे। १८ कि। १६ करब।

न० गु० (पद-सं० ३१३)—३ फुल धारि। ५ सङ्ग। ७ पूर। १४ बास। १६ करति।

मि० म० (पद-सं० ३३४)—३ फुल धारि। ४ कैतव। ५ सङ्ग। ६ ताह। ४५ हरसित। १६ करति।

झा (पद-सं० ५१)—११ रति कि करति।

शब्दार्थ—बारि = बचकर। कुन्द = पुष्पविशेष। फुल धालि = फूल धारण करके। कैतवे = छल से। अह = दिन। जनि = जैसे। तरास = त्रास—सं०। लङ्का के राए = निशिचर।

अर्थ—गुरुजनों को कहकर, दुर्जनों से बचकर, कौतुक से कुन्द फूल धारण करके—

छल से सखीजनों के साथ खेल छोड़कर (नायिका ने) दिन में अभिसार किया; (कारण,) रति-रङ्ग (का लक्ष्य) दूर था।

हे सखी! (मेरे) वचन को समझो। रात क्या आर्त्ति का समाधान करेगी?

रात्रि-विलास तो अन्ध-कूप के (विलास के) समान है। जैसे चोर के मन में त्रास रहता है (अर्थात्, रात को जैसे चोर डरता हुआ चोरी करता है, वैसे ही नायक भी डरता हुआ विलास करता है)।

(रात्रि-विलास से तो) निशिचर हर्षित होते हैं, (किन्तु रात्रि में) नागर नागरी को पाकर क्या करेगा?

मालवरागे—

[५३]

वालि[१] विलासिनि जतने आनलि
रमन करब राषि[२]।
जैसे[३] मधुकर कुसुम न तोल[४]
मधु पिब मुख माषि[५]॥ ध्रु०॥

---

१६ हो। १७ नागरे। १६ करब।

सं० अ०—१ बारि। २ राखि। ३ जइसे। ४ तोड़। ५ माखि।

माधव करब तैसनि[६] मेरा।
बिनु हकारेओ[७] सुनिकेतन[८]
आबए दोसरि बेला[९] ॥
सिरिसि[१०] कुसुम कोमल ओ धनि
तोहहु कोमल कान्ह।
इङ्गित उपर[११] केलि जे करब
जे न पराभव जान।
दिने दिने दून[१२] पेम बढाओब[१३]
जैसे बाढ सिसु ससी[१४]।
कौतुकहु[१५] किछु वाम न बोलब
निउर[१६] जाउबि हसी[१७] ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १२, प० ५७, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १४२)—१ वारि। २ राखि। ७ हकारे तुअ। ८ निकेतन। ६ बेरा। १२ दूने। १३ बढ़ाओब। १४ बाढसि सुससी। १६ निअर।

मि० म० (पद-सं० २८६)—२ राखि। ६ बेरा। १० सिरिस। १४ बाढ़सि सु-ससी। १६ निअर।

झा (पद-सं० ५२)—६ वेळा। १६ निडर।

शब्दार्थ—वालि = बारि, बाला। आनलि = लाई हुई। राषि = राखि, रखकर, बचाकर। माषि = स्पर्श करके। मेरा = मेला, सम्मिलन। हकारेओ = आमंत्रण के भी। सुनिकेतन = सुन्दर घर। बेला = समय। इङ्गित = इशारा। दून = द्विगुण। सिसु = शिशु—सं०। वाम = विरुद्ध। निउर = निकट।

अर्थ—यत्नपूर्वक लाई गई बाला विलासिनी के साथ बचाकर रमण कीजिएगा; जैसे भ्रमर फूल को तोड़ता नहीं, (केवल) मुख से स्पर्श करके मधु पीता है।

हे माधव! इस प्रकार सम्मिलन कीजिएगा, (कि) विना आमंत्रण (पाये) भी दूसरी बार वह सुग्रह (केलिग्रह) में आवे।

हे कृष्ण! वह नायिका शिरीष-कुसुम के समान कोमल है (और) तुम भी कोमल हो। (इसलिए) इशारे से केलि करना, जिससे पीडा न मालूम हो।

दिन-दिन द्विगुण प्रेम बढ़ाइएगा, जैसे बाल (दूज का) चन्द्र बढ़ता है। कौतुकवश भी कुछ विरुद्ध नहीं बोलिएगा; जिससे (वह पुनः) हँसती हुई निकट जायगी।

६ तइसनि। ६ बेरा। ११ ऊपर। १२ दूने। १५ कउतुकहु। १६ निअर। १७ हसी।

मालवरागे—

[५४]

जनम होअए[१] जनु[२] जओ पुनु होइ[३]
जुवती भए जनमए जनु कोइ[४] ।
होइह जुवति जनु हो रसमन्ती[५]
रसओ बुझए जनु हो कुलमन्ती[६] ॥ ध्रु० ॥
निधन[७] मागओ बिहि एक पए तोही[८]
थिरता दिहह अवसानहु मोही[९] ।
मिलि[१०] सामि नागर रसधारा[११]
परबस जनु होअ[१२] हमर पिआरा[१३] ॥
होइह परबस बुझिह विचारि
पाए विचार हार कओन नारि ।
भनइ विद्यापति अछ परकारे[१४]
दन्द समुद[१५] होएत[१६] जीव दए[१७] पारे[१८] ॥

ने० पृ० २२ (क), प० ५८, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४३७)—२ जनि । ५ रसमन्ति । ६ कुलमन्ति । ७ इ धन । ८ तोहि । ९ मोहि । ११ रसधार । १३ पियार । १४ परकार । १५ सुमुद । १७ दय । १८ पार ।

झा (पद-सं० ५३)—१ होअओ । ३ होईई । ४ कोई । १२ हो । १६ होएव ।

शब्दार्थ—होअए = हो । जनु = नहीं । जओ = यदि । निधन = (निर्धन—सं०) भिखारी । थिरता = स्थिरता । पिआरा = प्रिय । परकारे = उपाय । समुद = समुद्र ।

अर्थ—(किसी का) जन्म नहीं हो, यदि (जन्म) हो, तो कोई युवती होकर जन्म नहीं ले (अर्थात्, जन्म लेने पर भी युवती न हो)।

युवती हो, तो रसवती नहीं हो, रस समझनेवाली (रसिका) हो, तो कुलवती नहीं हो ।

हे विधाता ! (मैं) भिखारिणी (होकर) तुमसे एक ही (वरदान) माँगती हूँ (कि) अन्त समय में भी मुझे स्थिरता देना ।

सं० अ०—५ रसमन्ति । ६ कुलमन्ति । ८ तोहि । ९ अवसानहुँ मोहि । १० मिलिह । ११ रसधार । १३ पिआर । १४ परकार । १८ पार ।

मुझे स्वामी चतुर और रसिक मिले, परन्तु वह (पर के) वश में न हो।

(यदि) परवश हो तो, विचार करके समझे (अर्थात्, विचारवान् हो)। विचार पाकर कौन नारी हार सकती है? अर्थात्, यदि स्वामी विचारवान् होगा, तो नारी की हार नहीं हो सकती।

विद्यापति कहते हैं—एक उपाय है (कि वह) प्राण देकर द्वन्द्व-समुद्र पार हो जायगी।

मालवरागे—

[५५]

पञ्चवदन हर भसमे धवला।
तीनि नयन[१] एक बरए अनला ॥ ध्रु० ॥
दुखे[२] बोलए भवानी।
जगत भिषारि[३] मिलल हम[४] सामी ॥
बिसधर[५] भूषण[६] दिग परिधाना।
बिनु वित्ते इसर[७] नाम उगना ॥
भनइ विद्यापति सुनह भवानी।
हर नहि निधन जगत[८] सामी ॥

ने० पृ० २२, प० ५६, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २६)—३ भिखारि। ४ हम मिलल। ५ विषधर। ६ भूषन।
मि० म० (पद-सं० ५६४)--३ भिखारि। ४ हम मिलल। ४ बिसधर। ६ भूषन।
झा (पद-सं० ५४)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—धवला = शुभ्र। अनला = अग्नि। भिषारि = भिक्षुक। सामी = स्वामी। दिग परिधाना = दिगम्बर। इसर = ईश्वर। उगना = उग्रनाथ।

अर्थ—पञ्चवदन (शिव) भस्म से उज्ज्वल हैं। (उनके) तीन आँखें हैं, एक में आग बल रही है।

भवानी दुःख से बोलती है (कि) हमें संसार का (सबसे बड़ा) भिक्षुक स्वामी मिला।

(शिव का) भूषण विषधर है, वस्त्र दिशाएँ हैं। विना धन के ही (वे) ईश्वर हैं (और उनका) नाम उग्रनाथ है।

विद्यापति कहते हैं—हे भवानी! शिवजी निर्धन नहीं हैं। (वे तो) संसार के स्वामी हैं।

सं० अ०—१ नअन। २ दुखेँ। ३ भिखारि। ४ हमें। ५ विषधर। ६ भूषन। ७ वित्तेँ ईसर। ८ निरधन जगतक।

मालवरागे—

[५६]

नदी[1] बह नयनक[2] नीर
पळलि[3] रहए तहि[4] तीर।
सब खन भरम गेआन[5]
आन पुछि[6] कह आन॥ ध्रु०॥
माधव अनुदिने खिनि भेलि राही[7]
चौदसि चान्दहु चाही[8]।
केओ सखी[9] रहलि उपेषि[10]
केओ सिर धुन धनि[11] देखि॥
केओ कर सासक[12] आस
मञे[13] धउलिहु[14] तुअ पास।
विद्यापति कवि भान[15]
एत सुनि सारङ्गपानि॥
हरषि[16] चलल हरि गेह
सुमरिए[17] पुरुब सिनेह॥

ने० पृ० २३ (क), प० ६१, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७४३)—१ नदि। ५ गेआन। ६ पुछिअ। ७ राहि। ८ चाहि। ९ सखि। १० उपेखि। ११ धुनि धुनि। १२ससिकर। १५ भानि। १६ हरसि।

मि० म० (पद-सं० ५४२)—१ नदि। ३ पललि। ४ ताहि। ५ गेआन। ६ पुछिअ। ७ राहि। ८ चाहि। ९ सखि। १० उपेखि। ११ धुनि। १३ मयँ। १५ भानि।

झा (पद-सं० ५५)—३ पललि। ६ पुछिअ। १२ सामक। १३ मञो।

शब्दार्थ—पळलि = पड़ी। खिनि = क्षीण। चौदसि = चतुर्दशी। चाही = बढ़कर। उपेषि = उपेक्षा करके। धउलिहु = दौड़ी आई। सारङ्गपानि = (शार्ङ्गपाणि—सं०) कृष्ण।

अर्थ—(उसकी) आँख के पानी (अश्रु) से नदी बह रही है। (वह) उसके तट पर पड़ी रहती है।

सं० अ—२ नअनक। ६ आन पुछिअ कह आन। ७ राहि। ८ चाहि। ९ सखि। १० उपेखि। १२ साँसक। १३ मोञ। १४ धउलिहुँ। १५ बानि। १७ सुमरिअ।

(उसका) ज्ञान सदा भ्रमात्मक हो गया है। अन्य (बात) पूछने पर (वह) अन्य (उससे विपरीत) उत्तर देती है।

हे माधव! (कृष्णपक्ष की) चतुर्दशी के चन्द्रमा से भी बढ़कर राधा अनुदिन (क्रमशः) क्षीण हो गई।

कोई सखी (उसके जीवन की) उपेक्षा करके रह गई (अर्थात्—उसके जीवन से हाथ धो बैठी)। कोई उसे देखकर माथा धुनती है।

कोई (उसकी) साँस की आशा करती है (और) मैं तुम्हारे पास दौड़ी आई।

कवि विद्यापति कहते हैं—इतना सुनकर शार्ङ्गपाणि (कृष्ण) पहले के स्नेह का स्मरण कर खुशी-खुशी घर चले।

मालवरागे-धनछीरागे—

[५७]

बुझहि न पारलि परिणति[१] तोरि
अधरेओ[२] लळए[३] बाट[४] टकटोरि[५]।
फल पाओल कए तोह सनि सीट
कएलह हाडी[६] बासक[७] बीट ॥ ध्रु० ॥
मञे[८] जानलि अनुरागिनि मोरि
ओळ धरि[९] रहति[१०] हृदय[११] सँग चोरि।
निरजन जानि कएल तुअ कान
गुपुत रहल नही[१२] जानत आन[१३] ॥
सबतहु[१४] भेटी[१५] कएलह बोल
दुरजन वचने बजओलह ढोल।
विद्यापति ता जीवन सार
जे परदोस[१६] लुकाबए पार ॥

ने० पृ० २३(क), प० ६२, पं० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५८५)—२ अधरे। ३ ओललए। ४ बाटट। ५ काटारि। ६ हाती। ९ वधिर। १० हति। १६ परदेसे।

झा (पद-सं० ५६)—८ मञो।

सं० अ०—१ परिनति। २ अन्धरेओ। ६ हाँड़ी। ७ बाँसक। ८ मोञे। ११ हृदअ। १२ नहि। १३ जानल जान। १४ सबतह। १५ भेटिअ। १६ परदोष।

शब्दार्थ—परिणति = परिणाम। अधरेओ = अन्धा भी। लळए = चलता है। बाट = रास्ता। टकटोरि = टटोलकर। सीट = गुप्त सम्बन्ध। हाडी = हाँड़ी। बासक = बाँस के। बीट = कोठी। ओळ = अन्त। धरि = तक। निरजन = (निर्जन—सं०) एकान्त। तुअ = तेरे। गुपुत = छिपा। भेटी = भेंटकर, मिलकर। बोल = बात। ता = उसका। लुकाबए पार = छिप सकता है।

अर्थ—तुम्हारा (तुम्हारे साथ सख्य-सम्बन्ध का) परिणाम मैं समझ नहीं सकी। अन्धा भी रास्ते को टटोलकर चलता है। [अर्थात्, मैं अन्धे से भी गई-गुजरी हूँ कि विना तुम्हें टटोले (समझे-बूझे) ही तुम्हारा विश्वास कर लिया]।

तुम्हारे साथ गुप्त सम्बन्ध करके (मैंने उसका) फल पा लिया। (तुमने मुझे) बाँस की कोठी (बँसवाड़ी) की हाँड़ी बना दिया।

मैंने समझा (कि तुम) मेरी अनुरागिणी हो। अन्त तक (तुम्हारे) हृदय के साथ (मेरी) चोरी रहेगी।

एकान्त समझकर (मैंने अपनी बात) तुम्हारे कान में कीं (अर्थात्, तुमसे कही)। (लेकिन, वह) गुप्त रही नहीं, दूसरे जान गये।

सबसे मिलकर (तुमने) बातें कीं। दुर्जन के कहने से तुमने ढिंढोरा पीट दिया।

विद्यापति (कहते हैं—) उसका जीवन सार है, जो दूसरे के दोष को छिपा सकता है। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

धनछीरागे—

[५८]

वसन हरइते[१] लाज दुर गेल
पिआक[२] कलेवर अम्बर भेल।
अओधे[३] मुहे निहारए[४] दीब[५]
मुदला[६] कमल[७] भमर मधु पीब ॥ध्रु०॥
मनमथ चातक नही लजाए[८]
बड़ उनमसिआ[९] अवसर पाए।

सं० अ०—वसन हरइतेँ लाज दुर गेल।
पिआक कलेवर अम्बर भेल॥
अओधिअ नअन, निझाबिअ दीब।
मुकुलहुँ कमल भमर लघु पीब॥ ध्रु०॥
मनसिज-तन्त कहओ मन लाए।
बड़ उनमनिआ अवसर पाए॥

से सबे[१०] सुमरि मनहु[११] की[१२] लाज
जत सबे विपरित तन्हिकर[१३] काज ॥
हृदयक[१४] धाधस[१५] धसमसि[१६] मोहि
आओर कहब की[१७] कहिनी[१८] तोहि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २३, प० ५३, पं० ३

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० १७२)—१ हरइते । २ पिआक । ३-५ अओधे नअने निझावए दीव । ६ मुकुलहुँ । ७ कमलँ । ८ मनसिज तन्त कहओ मन लाए । ९ उनमनिआ । ११ मनहुँ । १२ काँ । १४ हृदअक । १५ धाधसि । १८ आओर कहिनी कि कहबि तोहि ।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

सकलओ रस नहि अनुवद नारि
विधापति कवि कहए विचारि ॥

न० गु० (पद-सं० ५८९)—३ अओधे । ४ निहारिए । ९ उनमतिआ । १३ तहिकर । १७ कि । १८ कहिली ।

मि० म० (पद-सं० ४८६)—२ पियाक । ३ अओधे । ४ निहारिए । ९ उनमतिआ । १० सब । १६ धसमस । १७ कि । १८ कहिली ।

झा (पद-सं० ५७)—पाठभेद नहीं है ।

शब्दार्थ—वसन = वस्त्र । कलेवर = शरीर । अम्बर = वस्त्र । अओधे = अधः—सं० । दीब = दीपक । उनमसिआ = उन्मना, उत्कंठित । धाधस = ढाढ़स । धसमसि = शिथिल । कहिनी = कथानक, बात ।

अर्थ—वस्त्र हरण करते ही लज्जा दूर चली गई । प्रिय का शरीर ही वस्त्र हो गया । (अर्थात्, प्रिय के शरीर से ही शरीर ढँक गया ।)

अधोमुख होकर दीपक को देखती है; (लेकिन इससे क्या ?) भौंरा मुँदे हुए कमल का भी मधु पी लेता है ।

से सबे सुमरि मनहुँ काँ लाज ।
जत सबे विपरित तन्हिकर काज ॥
हृदअक धाधसि धसमसि मोहि ।
आओर कहिनी कि कहबि तोहि ॥
सकलओ रस नहिं अनुवद नारि ।
विद्यापति कवि कहए विचारि ॥

कामदेव-रूपी चातक लज्जित नहीं होता, बल्कि अवसर पाकर और भी उत्कंठित हो जाता है।

उनके जो सब विपरीत कार्य हैं, उन सबका स्मरण कर मन को लज्जा होती है।

मुझे हृदय के ढाढ़स में शैथिल्य (मालूम होता है। इससे अधिक) तुम्हें और बात क्या कहूँ?

विशेष—नेपाल-पाण्डुलिपि से रामभद्रपुर की पाण्डुलिपि में ५वीं पंक्ति अच्छी है।

धनछीरागे—

[५६]

परतह परदेस[1] परहिक आस
विमुख न करिअ अवस दिअ बास।
एतहि जानिअ सखि पिअतम[2] कथा ॥ ध्रु० ॥
भल मन्द ननन्द हे मने अनुमानि
पथिक[3] के न बोलिअ टूटलि[4] बानि[5]।
चरण[6] पखालन[7] आसन दान
मधुरहु[8] वचने करिअ समधान ॥
ए सखि अनुचित एते[9] दुर जाइ
आओर[10] करिअ जत अधिक बडाइ[11] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २४ (क), प० ६४, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० पर० ३)—१ परदेश। ४ टुटलि। ७ पखालल। ८ मधुरहि। १० आब। ११ बड़ाइ।

मि० म० (पद-सं० ५८२)—२ पियतम। ४ टुटलि। ६ चरन। ७ पखालल। ८ मधुरहि। १० अब। ११ बड़ाई।

झा (पद-सं० ५८)—५ वाणि। ११ बड़ाई।

विशेष—तीसरी पंक्ति के पहले या बाद में एक पंक्ति की छूट प्रतीत होती है।

शब्दार्थ—परतह = प्रत्यह। टूटलि = टूटी। बानि = (वाणी—सं०) बात। पखालन = प्रक्षालन—सं०। समधान = (समाधान—सं०) सान्त्वना। एते = (इतः—सं०) यहाँ से।

सं० अ०—३-५ पथिके न बोलिअ टूटलि बानि। ६ चरन। ९ इत।

अर्थ—परदेश में नित्य दूसरे की ही आशा होती है। (इसलिए किसी को) विमुख नहीं करना चाहिए। अवश्य वास देना चाहिए।

हे सखी! प्रियतम के लिए इतनी ही कथा जानिए।

हे ननद! मन में भले-बुरे का अनुमान करके पथिक को टूटी बात नहीं कहनी चाहिए।

चरण-प्रक्षालन, आसन-दान (और) मधुर वचन से समाधान करना चाहिए (अर्थात्—मीठी बातों से सान्त्वना देनी चाहिए)।

हे सखी! (पथिक) यहाँ से दूर जायगा—(सो) अनुचित होगा। (इसलिए) उसकी और भी अधिक बड़ाई करनी चाहिए (जिससे कि वह अन्यत्र नहीं जाय)।

धनछीरागे—

[६०]

जलद बरिस घन दिवस अन्धार
रयनि[१] भरमे हमे[२] साजु अभिसार।
आसुर करमे सफल भेल काज
जलदहि राखल दुहु दिस[३] लाज ॥ ध्रु० ॥
मञे[४] कि बोलब[५] सखि अपन गेआन[६]
हाथिक चोरि दिवस परमान।
मञे[७] दूती मति मोर[८] हरास
दिवसहु के जा निअ[९] पिआ[१०] पास ॥
आरति तोरि कुसुम रस[११] रङ्ग
अति जीवने[१२] देखिअ अति सङ्ग[१३]।
दूती वचने सुमुखि भेल लाज
दिवस अएलाहु[१४] पर पुरुष[१५] समाज ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २४(क), प० ६५, पं० ४

सं० अ०—१ रजनि। ३ दिसि। ४ मोञ। ५ बोलबि। ७ मोञ। ८ मोरि। ११ कुसुमसर। १४ अएलाहुँ।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३१५)—६ निअ। ११ कुसुमसर। १३ अभिसङ्ग।

मि० म० (पद-सं० ३३३)—२ हम। ४ मोयँ। ६ गेआन। ७ मोयँ। ६ निअ। १० पिया। १२ जीवले। १३ अभिसन्द। १५ पुरुस।

झा (पद-सं० ५६)—१ रयणि।

शब्दार्थ—जलद = मेघ। घन = निरन्तर। दिवस = दिन। रयनि = रात्रि। आसुर करमे = राक्षसी वृत्ति से। परमान = प्रमाण (प्रत्यक्ष)। हरास = ह्रास। अति जीवने = दीर्घ जीवन। अति सङ्ग = नाना प्रकार का सङ्ग।

अर्थ—मेघ जोरों से बरस रहा था। दिन में ही अँधेरा छा गया। रात के भ्रम से मैंने अभिसार सजाया (किया)।

राक्षसी वृत्ति से कार्य्य सफल हुआ। मेघ ने दोनों ओर की लज्जा रखी।

(नायिका के उपर्युक्त कथन पर दूती कहती है—)

हे सखी! मैं अपना ज्ञान क्या कहूँ। (फिर भी, कहती हूँ कि) दिन को प्रमाण रखकर (अर्थात्—दिन-दहाड़े) हाथी की चोरी?

मैं दूती हूँ, मेरी बुद्धि छोटी है। (फिर भी, कहती हूँ कि) दिन में कौन अपने प्रिय के पास जाती है?

काम-क्रीडा के लिए तुम्हारी (ऐसी) उत्कंठा है! दीर्घ जीवन होने से नाना प्रकार के संग देखने में आते हैं। (जीवद्भिः किन्न दृश्यते!)

दूती के वचन से सुमुखी को लज्जा हो आई। (अब उसे ज्ञान हुआ कि) दिन में ही (मैं) पर-पुरुष के समाज में आ गई।

धनछीरागे—

[६१]

लहुँ[1] कए[2] बोललह[3] गुरु बड[4] भार
दुत्तर[5] रजनि दूर अभिसार।
बाट भुअङ्गम उपर[6] पानि
दुहु कुल अपजस अङ्गिरल जानि ॥ ध्रु० ॥
तोरे बोले दूती[7] तेजल निज गेह
जिव सञो[8] तौलल गरुअ सिनेह।

सं० अ०—६ ऊपर। ७ दूति।

दसमि दसा हे बोलब की[९] तोहि
अमिअ[१०] बोलि विष[११] देलए[१२] मोहि ॥
परनिधि हरलए[१३] साहस तोर
के जान कओन[१४] गति करबए[१५] मोर ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २४, प० ६६, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २५४)—१ लहु। २ कय। ३ कहलह। ४ तर। ५ दुतर। ८ सजो। १० अमिय। ११ बिख। १२ देलहे। १३ हरलय। १४ कओन।

मि० म० (पद-सं० ३२१)--२ कय। ४ तर। ५ दुतर। ६ ऊपर। ८ सयँ। ११ बिख। १२ देलहे।

झा (पद-सं० ६०)—४ तर।

शब्दार्थ—लहुँ = लघु। दुत्तर = (दुस्तर—सं०) कठिनाई से पार करने योग्य। भुअङ्गम = भुजङ्गम। अङ्गिरल = अङ्गीकार किया। जानि = जान-बूझकर। दसमि दसा = मृत्यु की दशा। परनिधि = पराई सम्पत्ति।

अर्थ—बड़े गुरु भार को (तुमने) छोटा करके कहा। (इसीलिए मैंने) कठिनाई से पार करने योग्य रात्रि में दूर का अभिसार किया।

मार्ग में सर्प थे (और) ऊपर पानी (पड़ रहा था, अर्थात् वर्षा हो रही थी । मैंने) जान-बूझकर दोनों कुलों का अपयश अङ्गीकार किया।

हे दूती ! तुम्हारे कहने से (मैंने) अपना घर त्याग दिया। स्नेह को मैंने प्राणों से अधिक महत्त्वपूर्ण समझा।

मृत्यु की दशा (आ पहुँची, अब) तुम्हें क्या कहूँ ? (तुमने) अमृत कहकर मुझे विष दिया।

(तुमने) पराई सम्पत्ति हर ली—तुम्हारे साहस (का क्या कहना ?) कौन जानता है, (तुम) मेरी कौन गति करोगी ?

धनछीरागे—

[६२]

जहिआ[१] कान्ह देल तोहि आनि[२]
मने पाओल भेल चौगुन बानि।
आब[३] दिने दिने[४] पेम भेल थोल
कए अपराध बोलब[५] कत बोल ॥ ध्रु० ॥

---

९ कि। १२ देलएँ। १३ हरलएँ। १५ करबएँ।

सं० अ०—२ तोहि आनि। ३ अबे। ५ बोलह।

अबे[६] तोहि सुन्दरि[७] मने नहि लाज
हाथक काकन अरसी काज।
पुरुषक[८] चञ्चल सहज सभाब[९]
कए मधुपान दहओदिस[१०] धाब॥
एकहि[११] बेरि तञे दुर कर आस
कूप न आबए पथिकक पास।
गेले मान अधिक होअ[१२] सङ्ग
बड़[१३] कए की उपजाओब रङ्ग॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० २५ (क), प० ६७, पं० १

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ५०)—१ जहुआ। ३ अवे। ४ दिने दिने हे। ५ बोलह। ७ साजनि १० दसओदिस। ११ एकहिँ। १२ हो। १३ वल।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति एहु रस जान
राए सिवसिंह लखिमा दे रमान।

न० गु० (पद-सं० ४४४)—३ आवे। ६ आवे। ९ सोभाव।

मि० म० (पद-सं८ १३४)—२ तोहे आनि। ३ आवे। ८ पुरुसक।

झा (पद-सं० ६१)—३ आवे। ८ पुरुप।

शब्दार्थ—जहिआ=जब। आनि=लाकर। पाओल=पाया। बानि=बन्धन। थोल=थोड़ा। काकन=(कङ्कण—सं०) कंगन। अरसी=(आदर्श—सं०) दर्पण। सभाब=स्वभाव। दहओदिस=दसों दिशाओं में। एकहि वेरि=एकबारगी। बड़=बल।

अर्थ—जब कृष्ण को लाकर तुम्हें (सौंप) दिया, तब मन में पाया कि (प्रेम का) बन्धन चतुर्गुण हो गया।

अब दिन-दिन प्रेम थोड़ा हो गया। अपराध करके कितनी बातें बोलूँ?

हे सुन्दरी! मन में तुम्हें लज्जा नहीं होती? (क्या) हाथ के कंगन को (देखने के लिए) दर्पण का काम होता है? (अर्थात्—तुम्हारा प्रेम-बन्धन कितना शिथिल हो गया है—यह भी मुझे कहना होगा?)

---

९ साजनि। ११ एकहिँ बेरि तोञ। १३ बल।

पुरुष का स्वभाव जन्म से ही चंचल होता है। (भ्रमर को देखो, वह) मधु-पान करके दसों दिशाओं में उड़ जाता है।

तुम एकबारगी अपनी आशा को दूर करो (कि कृष्ण तुम्हें मनाने के लिए आयेंगे!) कुँआ पथिक के पास नहीं आता।

(तुम्हारे जाने से) मान तो जायगा, (लेकिन) अधिक संग भी होगा। बल करके क्या रंग उपजाओगी?

मालवरागे—

[६३]

प्रथमहि अलक तिलक लेब साजि
काजरे चञ्चल लोचन आजि[1]।
वसने जाएब हे आग सबे गोए[2]
दुरहि[3] (र(ह)ब ते[4] अरथित होए॥ ध्रु०॥
सुन्दरि प्रथमहि रहब लजाए[5]
कुटिले[6] नयने देब मदन जगाए।
झापब[7] कुच दरसाओब आध[8]
खने खने सुदृढ़ करब निबि बान्ध[9]॥
मान कइए[10] दरसाओब[11] भाव
रस राखब ते[12] पुनु पुनु आब।

सं० अ०— प्रथमहि अलक-तिलक लेब साजि।
चञ्चल लोचन काजरेँ आजि॥
जाएब वसने आँग सबे गोए।
दुरहि रहब तञे अरथित होए॥ ध्रु०॥
मोरे बोलेँ सजनी! रहब लजाए।
कुटिल नअने देब मदन जगाए॥
झाँपब कुच दरसाओब आध।
खने-खने सुदृढ़ करब निबि-बान्ध॥
मान कइए दरसाओब भाव।
रस राखब, तञे पुनु-पुनु आब॥

सुन्दरि[13] मञ[14] कि सिखउबिसि[15] आओर[16] रङ्ग[17]
अपनहि गुरु भए कहत अनङ्ग ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २५ (क), प० ६८, पं ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १३०)—१ चञ्चल लोचन काजरे आँजि। २ जाएब वसने आङ्ग लेब गोए। ३ दूरहि। ४ रहब तेँ। ५ मोरे बोले सजनी रहव लजाए। ६ कुटिल। ७ झाँपब। ८ कन्त। ९ दृढ़ कए बाँधब निबिहुक अन्त। १० कइए किछु। ११ दरसब। १२ तें। १३ पाठाभाव। १४ हमे। १५ सिखउबि हे। १६ अओर से।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति इ रस गाव।
नागर कामिनि भाव बुझाब॥

मि० म० (पद-सं० २७०)—१ चञ्चल लोचन काजरे आँजि। २ जाएब वसने आँग लेब गोए। ३ दूरहि। ४ रहब तेँ। ५ मोरि बोलव सखि रहव लजाए। ६ कुटिल। ७ झाँपब। ८ कन्त। ९ दृढ़ कए बाँधब निवहुक अन्त। १० करए किछु। ११ दरसव। १२ तेँ। १३ पाठाभाव। १४ हम। १५ सिखओबि। १६ अओर। १७ रस-रङ्ग।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति इ रस गाव।
नागरि कामिनि भाव बुझाब।

झा (पद-सं० ६२)—४ बरते।

शब्दार्थ—अलक-तिलक = प्रसाधन। आजि = आँज लेना। आग = अङ्ग। गोए = छिपाकर। अरथित = उत्कण्ठित।

अर्थ—पहले काजल से चंचल लोचन को आँजकर प्रसाधन कर लेना।

वस्त्र से सभी अङ्गों को ढककर जाना। (किन्तु) दूर ही रहना। इसी से वे उत्कंठित होंगे।

हे सुन्दरी! पहले लजाकर रहना (और) कुटिल कटाक्ष से मदन को जगा देना।

स्तन को ढक लेना, (केवल) आधा स्तन दिखलाना (और) क्षण-क्षण में नीवी-बन्ध को मजबूत करना।

मान करके भाव दिखलाना। रस को (बचाकर) रखना। इससे (वे) बार-बार आयेंगे।

हे सुन्दरी! मैं और रङ्ग क्या सिखाऊँ? कामदेव स्वयं गुरु होकर (सब-कुछ) कह देगा।

मोञ कि सिखाउबि आओर रङ्ग।
अपनहि गुरु भए कहत अनङ्ग॥
सुकवि विद्यापति ई रस गाब।
नागरि कामिनि भाव बुझाब॥

ए रागे—

[६४]

सगर ससारक[1] सारे
अछए सुरत रस हमर पसारे ।
छुइ जनु हलह कन्हाइ
आरति मान न हलिअ नडाइ[2] ।
दुरहि रहओ मोरि सेबा
पहिल पढओक उधारि न देबा[3] ॥
हृदय[4] हार मोर देषी[5]
लोभे निकट नहि होएब विशेषी[6] ।
मिलत उचित परिपाटी
मधथ मनोज घरहि घर साटी ॥
विद्यापति कह नारी[7]
हरि[8] सओ[9] कैसन[10] रौक उधारी ॥

ने० पृ० २५, प० ६६, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २२२)—१ सँसारक। २ नड़ाइ। ५ देखी। ६ विसेखी।

मि० म० (पद-सं० ३४१)—१ सँसारक। २ नड़ाइ। ५ देखी। ६ विसेखी। ९ सयँ।

झा (पद-सं० ६३)—२ नड़ाई। ७ नारि। ८ सरि।

शब्दार्थ—ससारक=संसार का। पसारे=(पण्यशाल—सं०) दूकान। छुइ जनु हलह=छू मत डालो। हलिअ नडाइ=त्याग देना चाहिए। पढओक=बोहनी। मधथ=(मध्यस्थ—सं०) पंच। साटी=संगति। रौक=(रोक—सं०) नगद।

अर्थ—मेरी दूकान में सम्पूर्ण संसार का सार सुरत-रस है।

हे कृष्ण! (उसे) छू मत डालो। आर्त्तिवश मान को नहीं त्याग देना चाहिए।

मेरी सेवा दूर ही रहे। (कारण,) पहली बोहनी (मैं) उधार नहीं दूँगी।

मेरे हृदय में हार देखकर लोभ से बहुत निकट नहीं होइएगा।

उचित परिपाटी से ही (वह हार) मिल सकता है। कामदेव पंच होगा (और) घर-ही-घर (अर्थात्—घर बैठे ही) संगति हो जायगी।

विद्यापति कहते हैं—हे नारी! कृष्ण से नगद-उधार कैसा?

सं० अ०—१ संसारक। ३ पहिलुक पढओ उधारि न देबा। ४ हृदअ। ५ देखी। ६ विसेखी। १४ कइसन।

धनछीरागे—

[६५]

सुपुरुस भासा[१] चौमुख वेद
एत दिन बुझल अछल नहि भेद ।
से तहि[२] अछ सब मन जाग
तोह[३] बोलि बिसरल हमर अभाग[४] ॥ ध्रु० ॥
चल चल माधव कि[५] कहब जानि
समयक दोसे[६] आगि बम पानि ॥
रयनिक······व दुर जा चन्द[७]
भल जन हृदय[८] तेजए नहि मन्द ॥
कलिजुग[९] गति के साधु मन भङ्ग
सबे विपरीत कराब[१०] अनङ्ग[११] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २६(क), प० ७०, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३५०)—२ नितहि। ४ भाग। ५ को। ७ रयनिक वन्धव जानि चन्द। ९ कलियुग।

मि० म० (पद-सं० ३८१)—२ सतहि। ५ की। ७ रयनिक वन्धव जा चन्द। १० करबि।
झा (पद-सं० ६४)—१ भाषा। ६ समय दोसे। ९ कलियुग। १० करब। ११ आनङ्ग।

शब्दार्थ—चौमुख=(चतुर्मुख—सं०) ब्रह्मा। तहि=उसी तरह। तोह=तुम। वोलि=बोलकर। बिसरल=भुला दिया। जानि=जानकर। बम=वमन कर रहा है, उगल रहा है। साधु=सज्जन। अनङ्ग=कामदेव।

अर्थ—इतने दिनों तक समझती थी कि सुपुरुष की भाषा (और) ब्रह्मा के वेद—(दोनों में) भेद नहीं है।

सबके मन में जाग रहा था (कि) वह उसी तरह (आज भी) है। (लेकिन) तुमने बोलकर भुला दिया—(यह) मेरा अभाग्य है।

हे माधव! जाओ। समझ-बूझकर क्या कहूँगी? समय के दोष से पानी आग उगल रहा है।

सं० अ०—१ सुपुरुष भाषा। २ से तहि अछए सबहु मन जाग। ३ तोहैँ। ६ समअक दोषैँ। ७ रजनिक बान्धव दुर जा चन्द। ८ हृदअ।

रात्रि का बन्धु चन्द्रमा (उसे छोड़कर) दूर जाता है। भला आदमी हृदय का त्याग (हृदय-परिवर्त्तन) करता है, मन्द नहीं। (व्यङ्ग्यार्थ यह है कि जिसे जो करना चाहिए, वह उसे नहीं करता। सभी विपरीत कार्य हो रहे हैं।)

कलियुग के चलते सज्जनों का मन टूट जाता है (अर्थात्, उस में भी विकार आ जाता है)। कामदेव सब-कुछ विपरीत करा देता है।

धनछीरागे—

[६६]

अपनहि नागरि अपनहि दूत
से अभिसार न जान बहूत।
की फल तेसर कान जनाए
आनब नागर नयने[१] बझाए॥ ध्रु०॥
ए सखि रखिहिसि[२] अपनुक[३] लाज
परक दुआरे[४] करह जनु काज।
परक दुआरे[५] करिअ जओ काज
अनुदिने[६] अनुखने पाइअ लाज॥
दुहु दिस एक सओ[७] होइक विरोध
तकरा बजइते[८] कतए निरोध॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० २६(क), प० ७१, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १३१)—२ राखहिसि। ६ अनुदिन।
मि० म० (पद-सं० २४८)—२ राखहिसि। ३ अपनक। ७ सयँ। ८ बजइत।
झा (पद-सं०)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—दुआरे = द्वारा—सं०।

अर्थ—(जहाँ) स्वयं नागरी (और) स्वयं दूती हो (अर्थात्, नागरी स्वयं ही दूती का काम करे) उस अभिसार को बहुत (लोग) नहीं जानते।

तीसरे के कानों में जनाकर (देकर) क्या फल (मिलेगा)? नागर को आँखों से (कटाक्ष-निक्षेप से) बझाकर लाना चाहिए।

हे सखी! अपनी लाज रखना। दूसरे के द्वारा कार्य मत करना।

सं० अ०--१ नअने। २ रखिहसि। ४ दुआरेँ। ५ दुआरेँ।

यदि दूसरे के द्वारा कार्य किया जाय (तो) प्रतिदिन (और) प्रतिक्षण लज्जा प्राप्त हो।

दोनों ओर (अर्थात् नागरी और नागर—) किसी एक से विरोध हो जाय (तो) उसके (दूती के) बोलने में कहाँ निरोध (होगा)?

धनछीरागे—

[६७]

दरसने[१] लोचन दीघर धाव
दिनमणि[२] तेजि कमल जनि जाब।
कुमुदिनि[३] चान्द मिलल[४] सहवास
कपटे[५] नुकाबिअ मदन विकाश[६] ॥ ध्रु० ॥
साजनि[७] माधव देखल आज
महिमा छाडि[८] पलाएल लाज।
नीवी ससरि भूमि पलि[९] गेलि
देह नुकाबिअ देहक सेरि[१०] ॥
अपनेअ[११] हृदय[१२] बुझाबए आन[१३]
एकसर सब दिस देखिअ[१४] कान्ह ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २६, प० ७२, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५६६)—१ दरशने। २ दिनमनि। ४ मिलन। ७ सजनि। ८ छाड़ि। ९ पड़ि। १० सेलि। ११ अपने। १४ देखिय।

मि० म० (पद-सं० २४०)—२ दिनमनि। ३ कुसुदिनी। ४ मिलन। ६ विकास। ११ अपनोञे।

झा (पद-सं० ६६)—११ अपनेओ।

शब्दार्थ—लोचन = आँख। दीघर = दीर्घ। धाव = दौड़ता है। दिनमणि = सूर्य। मिलल = मिला हुआ। सहवास = सहावस्थान। नुकाबिअ = छिपाती है। पलाएल = भाग गई। ससरि = खिसककर। पलि गेल = जा पड़ी। सेरि = आश्रय। आन = दूसरा। एकसर = अकेला।

सं० अ०—२ दिनमनि। ५ कपटेँ। ६ विकास। ८ छाड़ि पळाएल। ९ पळि। ११ अपनेओ। १२ हृदअ। १३ आन।

अर्थ—(कृष्ण के) दर्शन होने पर, आँखें दीर्घ होकर (उनके पीछे) दौड़ चलीं। (जान पड़ा, जैसे—) कमल का त्याग कर सूर्य जा रहा हो (और कमल लालायित होकर उसके पीछे दौड़ रहा हो)।

(दर्शन के बाद ऐसा मालूम हुआ, जैसे) कुमुदिनी और चन्द्रमा का सहवास हुआ हो। (इस परिस्थिति में) मैंने छल से कामदेव के विकास को छिपाया।

हे सखी! (मैंने) आज कृष्ण को देखा। (देखकर) लज्जा (अपनी) महिमा छोड़कर भाग गई।

नीवी खिसककर भूमि पर आ पड़ी (और) देह (स्वयं) देह के आश्रय में जा छिपी।

अपना हृदय (भी) दूसरा (दूसरे व्यक्ति का-सा) मालूम होने लगा। अकेले कृष्ण ही सब ओर दिखाई देने लगे।

धनछीरागे—

[६८]

सरुप कथा कामिनि सुनु
परेरि[१] आगे कहह[२] जनु।
तञे[३] अति नीठुरि[४] ओ अनुरागी
सगरि निसि गमाबए जागी॥ ध्रु०॥
एरे राधे जानि न जान
तोरे विरहे[५] विमुख कान्ह।
तोरीए[६] चिन्ता तोरिए नाम
तोरि[७] कहिनी कहए[८] सब ठाम॥
आओर की[९] कहब सिनेह तोर
सुमरि सुमरि नयन[१०] नोर।
निते से आबए नीते[११] से जाए
हेरइते[१२] हसइते[१३] से न लजाए।
न पिन्ध कुसुम न बान्ध[१४] केस
सबहि सुनाब तोर उपदेस॥
विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० २७(क), प० ७३, पं० १

सं० अ०—५ तोरे विरहें। ६ तोरिए। ७ तोरिए। ८ कह सब। ९ कि। १० नअन। ११ निते। १३ हँसइते।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ९८)—२ कहहि। ४ निठुरि। ६ तोरिए। ११ निते। १४ बाँध।

मि० म० (पद-सं० २५६)—१ परहि। ३ तोहेँ। ४ निठुरि। ५ तोरि विरहे। ९ अरु की। ११ निते। १२ हेरइत। १३ हसइत।

झा (पद-सं० ६७)—६ तोरिए।

शब्दार्थ—सरुप = सत्य। परेरि = दूसरे के। नीठुरि = निष्ठुर। सगरि = समूची। निशि = रात। सिनेह = स्नेह। पिन्ध = पहनता है। बान्ध = बाँधता है।

अर्थ—हे कामिनी ! सत्य कथा सुनो (और) दूसरे के आगे मत बोलो।

तुम अत्यन्त निष्ठुर हो (और) वे अनुरागी हैं। (वे) जागकर समूची रात बिता देते हैं।

अरी राधे ! (तुम) जानकर भी नहीं जानती हो। तुम्हारे विरह से कृष्ण विमुख हैं।

(वे) तुम्हारी ही चिन्ता (करते हैं), तुम्हारा ही नाम (लेते हैं और) सब जगह तुम्हारी ही कहानी कहते हैं।

तुम्हारा और स्नेह क्या कहूँ ? बार-बार स्मरण करके (उनकी) आँखों में आँसू (आ जाते हैं)।

वे (तुम्हारे पास) प्रतिदिन आते-जाते हैं। (किसी के) देखने (अथवा) हँसने से वे नहीं लजाते।

(वे) न पुष्प (-माल्य) पहनते हैं (और) न बाल बाँधते (सँवारते) हैं। (केवल) तुम्हारा ही उपदेश सबको सुनाते हैं।

धनछीरागे—

[६९]

अपना मन्दिर बैसलि[१] अछलिहु[२]
घर नहि दोसर केवा।[३]
तहि खने पहिआ पाहोन[४] आएल
बरिसए लागल देवा ॥ ध्रु० ॥
के जान कि बोलति पिसुन परौसिनि[५]
वचनक भेल अवकासे।
घर अन्धार[६] निरन्तर धारा
दिवसहि रजनी भाने ॥
कओनक[७] कहब हमे के पतिआएत
जगत विदित पचबाने[८] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २७ (क), प० ७४, पं० ५

सं० अ०—१ बइसलि। २ अछलिहुँ। ४ पाहुन। ५ पड़ोसिनि। ७ कओन काँ। ८ पँचबाने।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २)—२ अछलहु। ४ पाहुन।

मि० म० (पद-सं० ८७६)—१ बेसलि। ६ अन्धारा। ८ पञ्चबाणे।

झा (पद-सं० ६८)—३ केरा। ६ अन्धारा।

विशेष—ध्रुपद के बाद एक पंक्ति की छूट प्रतीत होती है।

शब्दार्थ—मन्दिर = घर। बैसलि = बैठी। अछलिहु = थी। केवा = कोई। पहिआ = पथिक—सं०। पाहुन = (प्राघुण—सं०) अतिथि। देवा = मेघ। दिवस = दिन। रजनी = रात। पचबाने = कामदेव।

अर्थ—अपने घर में बैठी थी। घर में दूसरा कोई नहीं था। उसी समय पथिक अतिथि (होकर) आया (और) मेघ बरसने लगा।

कौन जानता है कि पिशुन पड़ोसिनें क्या बोलेंगी? बोलने के लिए अवसर मिल गया।

घर में अँधेरा था, निरन्तर वर्षा हो रही थी। दिन में ही रात्रि का भान हो रहा था।

(मैं) किसे कहूँगी? कौन विश्वास करेगा? (कारण,) कामदेव जगद्विख्यात है।

धनछीरागे—

[७०]

दुरजन वचन लहए[१] सब ठाम
बुझल[२] न रहए जावे परिनाम।
ततहि दुर[३] जा जतहि विचार
दीप देले नहि रह घर[४] अन्धार[५] ॥ ध्रु० ॥
मधुर[६] वचने[७] सखि कहब[८] मुरारि
सुपहु रोस कर दोस बिचारि।
से नागरि तोहे गुणनिधान[९]
अलपहि माने बहुत अभिमान ॥

सं० अ०— दुरजन वचन लहए सब ठाम।
बुझल न रहए जावे परिनाम ॥
ततहि दूर जा, जतहि विचार।
दीप देलेँ घर न रह अन्धार ॥ ध्रु० ॥
हमरि विनति सखि! कहब मुरारि।
सुपहु रोष कर दोष विचारि ॥
से नागरि, तोहेँ गुनक निधान।
अलपहि माने बहुत अभिमान ॥

कके बिसरलि[10] हे पुरुब परिपाटी[11]
लाउलि[12] लतिका की फल काटी[13] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २७, प० ७५, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६५)—१ न लह। २ बुझए। ४ घर न रह। ५ अँधार। ६ हमरि। ७ विनति। ८ कहवि। ९ गुनक निधान। १० बिसरलहि। ११ परिपाटि। १२ लाड़लि। १३ काटि।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विधापति एहु[14] रस जान।
राए सिवसिंह[15] लखिमा देवि[16] रमान॥

मि० म० (पद-सं० १२६)—१ न लह। २ बुझए। ३ दूर। ४ घर न रह। ५ अँधार। ६ हमरि। ७ विनति। ८ कहवि। ९ गुनक निधान। १० बिसरलहि। ११ परिपाटि। १२ लाड़लि। १३ काटि।

अन्त में उपर्युक्त भणिता है, जिसमें इस प्रकार पाठभेद है—

१४ एह। १५ सिवसिंघ। १५ देइ।

झा (पद-सं० ६६)—१२ लागलि।

शब्दार्थ—लहए=लहता है, फबता है। कके=क्यों।

अर्थ—जबतक परिणाम नहीं ज्ञात रहता, (तबतक) सभी जगह दुर्जनों की बात फबती है।

वहाँ से (दुर्जन की बात) दूर भागती है, जहाँ विचार है (अर्थात् विचार करनेवाला है)। जैसे, दीप देने से (अर्थात्, दीप जलाने से) घर में अँधेरा नहीं रहता।

हे सखी! मीठे शब्दों से कृष्ण को कहना (कि) भला आदमी (सुपहु) दोष का विचार करके रोष करते हैं।

(और कहना कि) वह (राधा) नागरी है (और) तुम गुण के निधान हो; (फिर) थोड़े मान में (इतना) बड़ा अभिमान?

(और) पहले की परिपाटी क्यों भुला दी? लगी हुई लता को काटकर (तुमने) कौन-सा फल पाया?

कके बिसरलि हे पुरुब परिपाटि।
लागलि लतिका की फल काटि॥
भनइ विद्यापति एहु रस जान।
राए सिवसिंह लखिमा देइ रमान॥

धनछीरागे—

[७१]

कूपक पानि अधिक होअ काढी[१]
नागर गुऐ[२] नागरि[३] रति बाढी[४]।
कोकिल कानन आनिअ[५] सार
वर्षा[६] दादुर करए विहार ॥ ध्रु० ॥
अहनिसि साजनि परिहर रोस[७]
तञे नहि जानसि तोरे दोस[८]।
छव[९] ओ बारह मासक मेलि
नागर चाहए रङ्गहि केलि ॥
ते परि तकर करओ[१०] परि(हार)[११]
करसु[१२] बोल जनु होए वि(का)र[१३]।
मोरे बोले दूर कर रोस[१४]
हृदय[१५] फुजी[१६] कर हरि परितोस[१७] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २८(क), प० ७६, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४५६)—१ कादि। २ गुने। ४ बाढ़ि। ५ आनिअ। ६ बरसा। ११ परिणाम। १२ विरस। १३ विराम।

मि० म० (पद-सं० ४३१)—१ काटि। २ गुने। ३ नगारि। ४ बाटि। ५ आनिअ। ११ परिणाम। १२ कु वसु। १३ विराम।

झा (पद-सं ७०)—५ आनिअ। १० ओ। १२ केव सुबोल। १३ विर(ाम)।

शब्दार्थ—काढी = काढने से, निकालने से। बाढी = बढ़ता है। कानन = जंगल। रंगहि = नाना प्रकार से। से परि = उसी प्रकार।

अर्थ—कुँए का पानी निकालने से बढ़ता है (अर्थात्—आज जितना पानी कुँए से निकालिएगा, दूसरे दिन उतना पानी कुँए में स्वभावतः आ जायगा और) नागर के गुण से नागरी का प्रेम बढ़ता है।

सं० अ०—१ कादि। २ गुने। ४ बादि। ५ आनिज। ७ रोष। ८ दोष। ९ छओ। ११ परिहार। १२ कुरस। १३ विकार। १४ रोष। १५ हृदअ। १६ फुजिअ। १७ परितोष।

कोकिल कानन में सार (तत्त्व, अर्थात् सरसता) लाता है (और) दादुर वर्षा ऋतु में विहार करता है।

हे सखी! अहर्निश का रोष छोड़ दो। तुम नहीं जानती, तुम्हारा ही दोष है।

छह (ऋतु) और बारह महीनों को मिलाकर (अर्थात्—छहों ऋतु और बारहों महीने में) नागर नाना प्रकार की केलि चाहता है।

इसीलिए उसका उसी तरह परिहार करना चाहिए। कटु वचन बोलकर विकार नहीं उत्पन्न करना चाहिए।

मेरे कहने से रोष दूर करो। हृदय खोलकर कृष्ण का परितोष करो।

धनछीरागे—

[७२]

ओ परबालभु तओे परनारि
हमे पए दुहु दिस भेलिहु[1] आरि।
तोह हुनि दरसन ई[2] हम लाग
तत कए सुमुखि जैसन तोर भाग ॥ ध्रु० ॥
अभिसारिनि तओे सुभ कर साज
ततमत करइते न होअए काज।
काज के कारएो[3] आगु के आह
अपन अपन भल सबे केओ चाह ॥

सं० अ०— चल-चल सुन्दरि! सुभ कर आज।
ततमत करइत नहि होअ काज ॥
गुरुजन-परिजन-डर करु दूर।
बिनु साहसेँ सिधि-आस न पूर ॥ ध्रु० ॥
बिनु जपलेँ सिधि केओ नहि पाब।
बिनु गेलेँ घर निधि नहि आब ॥
ओ परवल्लभ तोँ परनारि।
हम पए मधथ दुहू दिस गारि ॥
तोँह हुनि दरसन इह मन लाग।
तत कए देखिअ जइसन तुअ भाग।
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
जे अङ्गिरिअ ताँ न गुनिअ गारि ॥

भनइ विद्यापति दूती से
(दु)इ मन[४] मेलि कराबए जे ।।

नेo पृo २८, पo ७७, पंo १

पाठभेद—

नo गुo (पद-संo २३७)—

चल चल सुन्दरि सुभ कर आज ।
ततमत करइत नहि हो काज ।।
गुरुजन परिजन डर करु दूर ।
बिनु साहस सिधि आस न पूर ।।
बिनु जपले सिधि केओ नहि पाव ।
बिनु गेले घर निधि नहि आव ।।
ओ परवल्लभ तोंहि पर नारि ।
हम पय मध दुहु दिस गारि ।।
तोंह हुनि दरशन इह मन लाग ।
तत कए देखिय जेहन तुय भाग ।।
भनइ विद्यापति सुन वरनारि ।
जे अङ्गीरिय ताँ न गुनिअ गारि ।।

(डॉo ग्रियर्सन--मिथिला में प्राप्त)

मिo मo (पद-संo ३०६)—१ भेलिहु हुहु । २ पाठाभाव । ३ करिले । ४ इमन रे ।
झा (पद-संo ७१)—२ इ । ४ इम नारी ।

शब्दार्थ—परवालभु = पर-वल्लभ । आरि = मेड़ । लाग = लिए । ततमत = तारतम्य—संo । कारणे = लिए । आह = सोचता है ।

अर्थ—वे पर-वल्लभ हैं (और) तुम पर-नारी हो । मैं दोनों ओर मेड़ बनी हूँ । (अर्थात्—मेड़ जिस तरह खेत की रक्षा करता है, उसी तरह मैं भी तुम दोनों की रक्षा करती हूँ ।)

तुम्हारा और उनका दर्शन (करा देना)—यह मेरे लिए है (अर्थात् मेरे जिम्मे है) । हे सुमुखि ! सो सब करने पर भी जैसा तुम्हारा भाग्य होगा (वैसा काम होगा) ।

हे अभिसारिके ! तुम शुभ साज करो । तारतम्य करने से काम नहीं होता ।

कार्य के लिए आगे कौन सोचता है ? (अर्थात्—परिणाम को सोचकर कौन काम करता है ?) सभी अपना-अपना भला चाहते हैं । (अर्थात्—बुरा या भला—जैसे भी हो, सभी अपनी भलाई करते हैं ।)

विद्यापति कहते हैं—दूती वह है, जो दो (नायक-नायिका) के मन को मिला दे ।

धनछीरागे—

[७३]

उचित बएस मेरे[1] मनमथ चोर
चेलिश्रा[2] बुढिश्रा[3] करए[4] श्रगोर ।
बारह[5] बरष[6] श्रवधि कए गेल
चारि वर्ष तन्हि गेला[7] भेल ॥ ध्रु० ॥
वास चाहइते पथिकहु[8] लाज
सासु ननन्द नहि श्रछए समाज ॥
सात पाच[9] घर तन्हि सजि देल
पिश्रा देसान्तर श्रातर[10] भेल ॥
पळेश्रोस[11] वास[12] जोएन सत भेल
थाने थाने श्रवयव सबे[13] गेल ।
साछ[14] नुकाबिश्र[15] तिमिरक सीन्धि
पळउसिन देश्रए फळकी बान्धि ॥
मोरो[16] मन हे खनहि खन भाग
गमन गोपब कत मनमथ जाग ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २८, प० ७८, पं० ४

पाठभेद—

न० गु०—पाठाभाव ।

मि० म० (पद-सं० ५८६)—१ मोर । २ ठेलि । ३ श्राछदि । ४ श्राकरए । ५ करह । ११ पलेश्रो । १२ सवास । १४ साचु । १५ लुकाबिश्र । १५ मोर ।

झा (पद-सं० ७२)—१ मेरे । १६ मोरा ।

शब्दार्थ—मनमथ=कामदेव । चेलिश्रा=(चेटी—सं०) चेरी । श्रगोर=पहरा । समाज=साथ । सात पाच=बारह (१२वीं राशि=मीन=मीनकेतन=कामदेव ।) पळेश्रोस—पड़ोस । जोएन=योजन । थाने थाने=(स्थाने-स्थाने—सं०) जहाँ-तहाँ । साछ=(सार्थ—सं०) समूह । तिमिरक=श्रन्धेरे के । सीन्धि=सन्धि (बीच) । पळउसिन=पड़ोसिन । फळकी=टट्टी का बना छोटा फाटक ।

सं० श्र०—१ मोर । २ चेरिश्रा । ६ बरषेँ । ७ गेलाँ । ८ पथिकहुँ । ९ पाँच । १० श्रान्तर । १३ श्रबश्रब सब ।

अर्थ—मन्मथ-रूपी चोर (के लिए) मेरी अवस्था ठीक है। (कारण,) बुढ़िया नौकरानी पहरा दे रही है।

बारहवें वर्ष में (मुझसे) अवधि करके गये (और) उनको गये चार वर्ष बीत चुके। (अर्थात्—अब मेरा सोलहवाँ वर्ष बीत रहा है।)

सास (या) ननद—(कोई भी) साथ नहीं है। (इसलिए) पथिक भी डेरा डालने में लजाता है।

उन्होंने कामदेव के लिए घर सज दिया (और) स्वयं देशान्तर चले गये। (दोनों में) अन्तर हो गया।

पड़ोस का वास भी सौ योजन (दूर) हो गया। (मेरे) सभी अवयव (सगे-सम्बन्धी) स्थान-स्थान पर (जहाँ-तहाँ) चले गये (अर्थात्—यहाँ कोई नहीं है)।

(लोगों का) समूह अंधकार में छिप गया। पड़ोसिन ने फाटक बन्द कर लिया।

मेरा मन क्षण-क्षण भाग रहा है। (मैं) अभिसार को कितना छिपाऊँगी। (कारण,) कामदेव जाग रहा है।

मालवरागे—

[७४]

ततहि धाओल दुहु लोचन रे
जेहि पथे गेलि वरनारि।
आसा लुबुधल न तेजए रे
कृपणक पाछु भिषारि ॥ ध्रु० ॥
सहजहि आनन सुन्दर रे
भौह उनिरित[१] आखि।
पङ्कज मधुकर मधु पिबि रे
उडए पसारलि पाखि ॥

---

१ सं० अ०— सहजहि आनन सुन्दर रे
भउँह सुरेखलि आखि।
पङ्कज मधु पिबि मधुकर रे
उड़ए पसारल पाँखि ॥
ततहि धाओल दुहु लोचन रे
जेहि पथेँ गेलि बर नारि।
आसा लुबधल न तेजए रे
कृपनक पाछु भिखारि ॥

आजे देखलि धनि जाइते रे
रूप रहल मन लागि।
रूप लागल मन धाओल रे
कुच कञ्चन गिरि सान्धि॥
ते अपराधे मनोभवे रे
ततहि धएल जनि बान्धि॥
विद्यापति कवि गाबिह रे
गुण बुझ रसिक सुजान।
राजाहुँ रूपनराएण रे
लखिमा देवि रमान॥

ने० पृ० २९(क), प० ७९, पं० ४

इङ्गित नअन तरङ्गित रे
बाम भउँह भेल भङ्ग।
तखने न जानल ते सरँ रे
गुपुत मनोभव रङ्ग॥
चन्दने चरचु पयोधर रे
गृम गज मुकुता हार।
भसमे भरल जनु शङ्कर रे
सिर सुरसरि जलधार॥
बाम चरन अगुसारल रे
दाहिन तेजइते लाज।
तखन मदनसरँ पूरल रे
गति गञ्जए गजराज॥
आज देखलि धनि जाइति रे
रूप रहल मन लागि।
तेहि खन सओ गुन गौरव रे
धइरज (सबे) गेल भागि॥
रूप लागल मन धाओल रे
कुच कञ्चन गिरि सान्धि।
तेँ अपराधेँ मनोभव रे
ततहि धएल जनि बान्धि॥
विद्यापति कवि गाबिहा रे
गुन बुझ रसिक सुजान।
राजाहुँ रूपनराअेन रे
लखिमा देवि रमान॥

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५२)—

सहजहि आनन सुन्दर रे भँउह सुरेखलि आँखि।
पङ्कज मधु पिबि मधुकर उड़ए पसारए पाँखि॥
ततहि धाओल दुहु लोचन रे जतहि गेलि वर नारि।
आसा लुबुधल न तेजए रे कृपनक पाछु भिखारि॥
इङ्गित नयन तरङ्गित देखल वाम भउँह भेल भङ्ग।
तखने न जानल तेसरे गुपुत मनोभव रङ्ग॥
चन्दने चरचु पयोधर गृम गजमुकुता हार।
भसमे भरल जनि शङ्कर सिर सुरसरि जलधार॥
बाम चरण अनुसारल[२] दाहिन तेजइते लाज।
तखन मदन सरे पूरल गति गञ्जए गजराज॥
आज जाइते पथ देखलि रे रूपे रहल मन लागि।
तेहि खन सओ गुन गौरव रे धैरज गेल भागि॥
रूप लागि मन धाओल रे कुच कञ्चन गिरि साँधि।
तें[३] अपराधे मनोभव रे ततहि धएल जनि बाँधि॥
विद्यापति कवि गाओल रे रस बुझ रसमन्ता।
रूपनरायन नागर रे लखिमा देविक सुकन्ता॥

मि० म० (पद-सं० ३८, न० गु० से)—२ आगुसारल। ३ तेँ।

झा (पद-सं० ७३)—१ निवित।

शब्दार्थ—ततहि = वहीं। भिषारि = भिक्षुक। उनिरित = उन्निद्रित—सं०। सान्धि = सन्धि।

अर्थ—दोनों आँखें वहीं दौड़ चलीं, जिस रास्ते वरनारी गई थी। आशा-लुब्ध भिक्षुक कृपण का (भी) पीछा नहीं छोड़ता।

(उसका) सहज सुन्दर मुख, भौंह (और) उन्निद्रित आँखें—(ऐसा जान पड़ता है, जैसे) भ्रमर कमल का मधु पीकर, पङ्ख फैलाकर उड़ता हो।

आज नायिका को जाते देखा। (उसका) रूप मन में लग रहा (अर्थात्—गड़ गया)।

रूप में उलझा मन कुच-रूपी कंचन-गिरि के सन्धि (स्थल) में दौड़ गया। (वह वहाँ से आता नहीं। मालूम होता है,) जैसे उसी अपराध के कारण, कामदेव ने (उसे) वहीं बाँध रखा हो।

कवि विद्यापति गाते हैं (और) लखिमा देवी के रमण रसिक सुजान राजा रूपनारायण गुण समझते हैं।

धनछीरागे—

[७५]

दरसन लागि पुजए[१] निते[२] काम
अनुखन[३] जपए तोहरि[४] पए नाम ।
अवधि समापल[५] मास अषाढ़[६]
अबे दिने दिने हे[७] जीवन[८] भेल[९] गाढ़[१०] ॥ ध्रु० ॥
कहब समाद बालभु[११] सखि[१२] मोर
सबतह समय[१३] जलद[१४] बड[१५] घोर[१६] ।
एके[१७] अबला हे कुपुत[१८] पञ्चबान
मरम लखिए[१९] कर सर[२०] सन्धान ॥
तुअ गुण[२१] बान्धल अछए परान
पर वेदन देख[२२] पर नहि जान ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० २९, प० ८०, पं० ३

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ६९)—२ नितेँ । ५ समापलि । ६ अखाढ । ७ पाठाभाव । ८ जिवन काँ । ९ पाठाभाव । ११ कृष्ण के । १२ पाठाभाव । १३-१४ जलद समअ । १७ हमे । १८ गुपुत । २० सरस । २२ परक वेदन दुख ।

न० गु० (पद-सं० ७११)—१ पुजय । ६ अखाढ़ । १० गाढ़ । १५ बड़ । १६ लखए । २१ गुन ।

मि० म० (पद-सं० ५३७)—६ अषाढ़ । १० गाढ़ । १५ बड़ । २१ गुन ।

झा (पद-सं० ७४)—३ अनुषन । १५ बड़ । १६ घोर । २२ देखि ।

शब्दार्थ—लागि = लिए । गाढ = कठिन । कुपुत = क्रुद्ध ।

अर्थ—(तुम्हारे) दर्शन के लिए नित्य कामदेव को पूजती है (और) अनुक्षण केवल तुम्हारा नाम जपती है ।

आषाढ़ महीने में ही अवधि बीत गई । अब दिन-दिन (उसका) जीना दूभर हो गया ।

हे सखी ! वल्लभ से मेरा संवाद कहना (कि) सबसे कठिन वर्षाकाल होता है ।

एक तो मैं अबला हूँ, (दूसरे) क्रुद्ध कामदेव मर्म देखकर शर-सन्धान करता है ।

तुम्हारे गुण से प्राण बँधे हैं । (इसीलिए प्राण नहीं निकलते । इससे अधिक और क्या कहूँ ?) दूसरे का दुःख देखकर दूसरा नहीं समझ पाता ।

सं० अ०—२ नित । ४ तोहर । ५ समापलि । ७ पाठाभाव । १२ सखो । १३ समअ । १७ हमे । २१ गुन । २२ देखि ।

धनछीरागे—

[७६]

गगन भरल मेघ उठलि धरणि थेवे
पचसरे हिम्र गेल सालि।
जैम्रम्रो से देह खिन जिउति म्राजुक दिन
के जान की होइति कालि ॥ ध्रु० ॥
कन्हाइ म्रबहु बिसर सबे रोस।
पुरुष लाख एक लखवा पारिम्र
नारिक चारिम दोस ॥
कोपे कुगुति सबे समदि पठाबथि
दूती कहि से गेली।
तेँम्रसि त[1] तिथि सामर पख ससि
तइसनि दसा मोरि भेली ॥
की हमे साझक[2] एकसरि तारा
भादब चौठिक चन्दा।
म्रइसन कए पिम्राञे मोर[3] मुख मानल[4]
मोपति जीवन मन्दा ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३०(क), प० ८१, पं० १

सं० अ०— गगन भरल मेघा उठलि धरनि थेघा,
पँचसरें हिम्र गेल सालि।
जइअओ से देहेँ खिन, जिउति आजुक दिन
के जान कि होइति कालि ॥ ध्रु० ॥
माधव ! अबहु बिसर सबे रोष।
पुरुष लाख एक लखबा पारिअ,
नारिक चारिम दोष ॥
कोपँ कुगुति सबे समदि पठओलनि
दूती कहि से गेलि।
तेरसि तिथि ससि सामर पख निसि,
तइसनि दसा मोरि भेलि ॥

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५६)—

गगन गरज मेघा उठए[5] धरणि[6] थेघा
पचशर[7] हिय[8] गेल सालि[9] ।
से धनि देखलि[10] खिन जिउति[11] आजुक दिन
के जान कि होइति कालि[12] ॥
माधव मन दय[13] सुनह[14] सुवानी[15] ।
कुजन निरुपि[16] सुजन सखि सङ्गति
जे किछु कहय[17] सयानी[18] ॥
की हमे साँझक एकसरि तारा
भादव चौठिक चन्दा ।
ऐसन कए पिआए[19] मोर मुख मानल
मो पति जीवन मन्दा ॥
वामहु गति जत समदि पठौलनि[20]
से सबे कहि-कहि गेलि[21] ।
तेरसि तिथि ससि सामर पख निसि
दसमि दसा मोरि भेलि[22] ॥
भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
मने जनु मानह आने ।
राजा शिवसिंह[23] रूपनरायन[24]
लखिमा पति रस जाने[25] ॥

रा० पु० (पद-सं० ११४, न० गु० से)—५ उठय। ७ पचसर। ८ हिअ। ९ साली। १० सुमुखि देह। १२ काली। १३ दए। १४ सुन। १५ तसु वानी। १६ निरूपि। १७ कहए। १८ सआनी। १९ पिआओे। २० पठओलन्हि। २१ गेली। २२ भेली। २३ सिवसिंह। २४ रूपनराएन। २५ लखिमा देवि रमने।

मि० म० (पद-सं० १७८, न० गु० से)—६ धरनि। ११ जिवति। १३ दए। १७ कहए। २३ सिवसिंघ।

झा (पद-सं० ७५)—१ तेँ असित। २ साभक। ३ पाठाभाव। ४ मालल।

की हमेँ साँझक एकसरि तारा,
भादब चौठिक चन्दा ।
अइसन कए पिआ मोर मुख मानल,
मो पति जीवन मन्दा ॥
भनइ विद्यापति सुन वर जउवति,
मने जनु मानह आने ।
राजा सिवसिंह रूपनराजेन
लखिमा-पति रस जाने ॥

शब्दार्थ—धरणि=धरती। थेघे=टेककर। कालि=कल्ह। बिसर=भूल जाओ। लखवा पारिअ=लक्ष्य कर सकता है। कुगुति=कुगति। तेँअसि=त्रयोदशी। सामर=श्याम, कृष्ण। पख=पक्ष—सं०। ससि=चन्द्रमा। साझक=शाम का। एकसरि=अकेली। चौठिक=चतुर्थी तिथि का। मोपति=मेरे लिए।

अर्थ—मेघ से आकाश भर गया। (उसे देखकर विरहिणी) धरती टेककर उठ बैठी। (लेकिन इसी समय) कामदेव (उसके) हृदय को साल गया।

यद्यपि वह शरीर से खिन्न है (तथापि) आज दिन (किसी तरह) जीयेगी; (लेकिन) कौन जानता है कि कल क्या होगा ?

हे कृष्ण ! अब भी सारे रोषों को भूल जाओ। लाखों पुरुष में (कोई) एक स्त्रियों के चतुर्थ दोष* (काम) को लक्ष्य कर सकता है।

क्रुद्ध होकर (उसने अपनी) सारी कुगति (दुर्दशा) कहला भेजी (और) दूती सब-कुछ कह गई।

(दूती के द्वारा उसने कहला भेजा कि) कृष्णपक्ष की त्रयोदशी तिथि के चन्द्र के सदृश मेरी दशा हो गई है।

(और) क्या मैं शाम की अकेली तारा हूँ (या) भादो की चौथ का चन्द्रमा हूँ ?

प्रिय ने मेरे मुख को ऐसा ही समझ लिया। (मेरे लिए) जीवन मन्द (हीन) हो गया।

धनछीरागे—

[७७]

बोलिल बोल उत्तिम पए राख
नीच सबद जन की नहि[१] भाख।
हमे[२] उत्तिम कुल गुणमति[३] नारि
एतबा निअ[४] मने हलब विचारि ॥ ध्रु० ॥
सिनेह बढाओल[५] सुपुरुस[६] जानि
दिने (दिने)[७] कएलह आसा हानि।
कत न जगत अछ[८] रसमति फूल
मालति मधु मधुकर पए भूल ॥

---

* आहारो द्विगुणः स्त्रीणां बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥
—चाणक्य

सं० अ०—३ गुनमति। ६ सुपुरुष।

गेल[९] दीन[१०] पुनु प(ल)टि न आव
अवसर[११] बहला रह पचताब[१२] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३०, प० ८२, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३४८)—१ नहिं। २ हमे जे। ३ गुनमति। ४ निअ। ५ बढ़ाओल। ७ दिने दिने।

मि० म० (पद-सं० ४३८)—३ गुनमति। ४ निअ। ५ बढ़ाओल। ८ अछ जगत। ११ अवसर पल।

झा (पद-सं० ७६)—५ बढ़ाओल। ८ अछि। १० दिन।

शब्दार्थ—बहला = बीत जाने पर। पचताब = पछतावा।

अर्थ—उत्तम व्यक्ति अपने वचन की रक्षा करते हैं। नीच व्यक्ति क्या-क्या नहीं बक जाते? (पर, उनकी रक्षा नहीं कर पाते।)

मैं उत्तम कुल की गुणवती नारी हूँ। अपने मन में इतना अवश्य विचार करना।

(मैंने) सुपुरुष समझकर (तुमसे) स्नेह बढ़ाया; (किन्तु तुमने) दिन-दिन आशा की हानि की। (अर्थात्, निराश किया।)

संसार में कितने ही सरस फूल हैं; पर मधुकर (क्या) मालती के मधु को भूलता है?

बीते हुए दिन लौटकर नहीं आते। अवसर बीत जाने पर (केवल) पछतावा रह जाता है।

धनछीरागे—

[७८]

त्रिवली[१] अछ(लि)[२] तरङ्गिनि[३] भेलि
जनि बढिहाए[४] उपटि चलि गेलि।
नेआ[५] सओ[६] हे ऊच[७] चल धाए
कनक भूधर गेल दहाए ॥ ध्रु० ॥
माधव सुन्दरि नयनक[८] वारि
पीन पयोधर (डू)बल[९] झारि।
सहजहि सङ्कट परबस पेम
पातकभीत परापति जेम ॥

---

९ गेला। १० दिन। १२ पछताब।

सं० अ०—४ बढिआए। ५ नेआ। ७ ऊँच। ८ नअनक। ९ पओधर डूबल।

तोहरि पिरिति[१०] रीति दुर[११] गेलि
कुल सञो[१२] कुलमति कुलटा भेलि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३०, प० ८३, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४१)—२ अछलि। ३ तरङ्गिणि। ४ बढ़ियाइ। ५ नीचे। ६ अछल। ७ उचे। ९ रचल। ११ दूरहि। १२ सञे।

मि० म० (पद-सं० ५४१)—१ त्रिवलि। २-३ सुरतरङ्गिनि। ५-६ आसञो। ७ उठ। ९ बन। ११ दूर।

झा (पद-सं० ७७)—३ तरङ्गिणि। ७ उ (प)र। ९ बन।

शब्दार्थ—तरङ्गिनि=नदी। भेलि=हुई। बढिहाए=वृद्धि पाकर। उपटि=उत्ताल होकर। नेआ=नीचा। कनक भूधर=सोने का पहाड़ (स्तन)। झारि=झरकर। परापति=(परपात—सं०) श्राद्ध। जेम=भोजन करना।

अर्थ—(जो) त्रिवली थी, (सो) तरङ्गिणी हो गई (और) जैसे उत्ताल होकर (वह) बढ़ चली।

नीचे से (वह) ऊँचे (की ओर) दौड़ चली (जिससे) कनक-भूधर (स्तन) दह गया।

हे माधव ! सुन्दरी की आँखों के पानी ने झरकर पीन पयोधर को डुबा दिया।

पराधीन प्रेम में स्वभावतः संकट होता है; (फिर भी वह किया जाता है, जैसे) पापभीत होकर भी श्राद्ध में भोजन किया जाता है।

(हे कृष्ण !) तुम्हारी प्रीति-रीति (तो) दूर गई; किन्तु फल यही (हुआ कि) कुलवती कुल से (निकलकर) कुलटा हो गई।

विशेष—मैथिली में आज भी अपने से छोटों की मृत्यु पर 'अपरपात' शब्द का प्रयोग होता है। इससे जान पड़ता है कि 'परपात' शब्द का प्रयोग अपने से बड़ों की मृत्यु पर होता था।

धर्मशास्त्र में किसी की मृत्यु के बाद, श्राद्ध में भोजन करना निषिद्ध है। और, विना ब्राह्मण-भोजन कराये श्राद्ध संपन्न नहीं होता। इसलिए, पातकभीत होकर भी ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन करते हैं।

धनछीरागे—

[७९]

आध नयन[१] दए[२] तहुकर आध
कत रे[३] सहब मनसिज अपराध।
का लागि सुन्दरि दरसन भेल
जेओ छल जीवन सेओ दुर[४] गेल ॥ ध्रु० ॥

---

१० पिरीति।

सं० अ०—१ नजन।

हरि हरि कओोन कएल हमे पाप
जे सबे[५] सुखद ताहि तह ताप ।
सब दिस[६] कामिनि दरसन जाए
तइअओ बेआधि विरह अधिकाए ॥
कओोनक[७] कहब मेदिनि से थोळ[८]
सिव सिव एहि जनम भेल ओळ[९] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३१(क), प० ८४, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४१)—२ कए । ३ कतवे । ४ दूर । ६ दिसि । ८ थोल । ९ ओल ।

मि० म० (पद-सं० २३७)—२ कए । ३ कतवे । ४ दूर । ८ थोल । ९ ओल ।

झा (पद-सं० ७८)—पाठभेद नहीं है ।

शब्दार्थ—मनसिज = कामदेव । का लागि = किसलिए । ताहि तह = उनसे ।

अर्थ—आधी आँख—उसकी भी आधी आँख (मैंने) दी (अर्थात्—मैंने उसे कटाक्षमात्र से देखा) । काम के (इस) अपराध से (मैं) कितना (विरह-वेदनारूपी दुःख) सहन करूँगा ।

किसलिए सुन्दरी के दर्शन हुए ! जो भी (प्रकृतिस्थ) जीवन था, वह भी दूर चला गया ।

मैंने कौन (ऐसा) पाप किया कि जो सब सुखद थे, उनसे ताप हो रहा है ।

(यद्यपि) सभी ओर कामिनी के दर्शन होते हैं, तथापि विरह-व्याधि बढ़ रही है ।

मैं (अपनी बात) किससे कहूँगा ? पृथ्वी पर ऐसे (व्यक्ति) थोड़े हैं । शिव-शिव ! इसी में (मेरे) जन्म का अन्त हो गया ।

धनछीरागे—

[८०]

एके मधुयामिनि[१] सुपुरुष[२] सङ्ग
आइति[३] न करिअ[४] आसा भङ्ग ।
मञे कि[५] सिखउबि[६] हे[७] तोहहि[८] सुबोध
अपन काज होअ पर अनुरोध ॥ ध्रु० ॥

---

५ सब । ७ कओोनकाँ ।

सं० अ०—३ आइत । ४ करिअए । ५ मोज कि । ६-७ सिखाउबि ।

चल चल सुन्दरि चल[६] अभिसार
अवसर लाख लहए उपकार ।
तरतमे नहि किछु सम्भव काज
आसा दए तोह मने नहि लाज ॥
पिआ[१०] गुणगाहक[११] तओे[१२] गुणगेह[१३]
सुपुरुष वचन पषानक[१४] रेह ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३१, प० ८५, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २३९)—५ की । ८ तोहदि । ११ गुन गाहक । १२ तजे । १३ गुनगेह ।

मि० म० (पद-सं० ३०८)—१ मधुजामिनि । २ सुपुरुख । ५ की । १० पिया । ११ गुन गाहक । १३ गुनगेह । १४ पासानक ।

झा (पद-सं० ७९)—६ सिखाउबि । ७ (पाठाभव) ।

शब्दार्थ—मधुयामिनि = मधु ऋतु की रात । आइति = (आयत्त—सं०) अधीन, आश्रित । तरतमे = तारतम्य । गुणगेह = गुणनिधान । पषानक = पाषाण का । रेह = रेखा ।

अर्थ—एक तो मधु ऋतु की रात, (दूसरे) सुपुरुष का संग ! (अभिसार के लिए और क्या चाहिए ?) आश्रित का आशा-भंग नहीं करना चाहिए ।

मैं क्या सिखाऊँगी ? तुम (स्वयं) सुबोध हो । (अभिसार करने से) अपना काज होगा (और) दूसरे का अनुरोध (रहेगा) ।

हे सुन्दरी ! चलो, चलो । अभिसार करो । अवसर का उपकार लाख-गुना होता है ।

तारतम्य (करने) से कोई कार्य नहीं होता । आशा देकर (नहीं जाती हो !) तुम्हारे मन में लज्जा नहीं होती ।

प्रिय गुणग्राहक हैं (और) तुम गुणनिधान हो । (और क्या कहूँ ?) सुपुरुष का वचन पत्थर (पर) की रेखा होती है ।

धनछीरागे—

[८१]

प्रथम समागम भुषल[१] अनङ्ग
धनि रस[२] राषि[३] करब रतिरङ्ग ।
लोभ[४] न[५] करबे आइति पाए
बडेओ[६] भुषल[७] नहि दुइ[८] करे[९] खाए ॥ ध्रु० ॥

---

९ कर । ११ गुनगाहक । १२ तोज । १३ गुनगेह ।

सं० अ०—१ भुखल । ३ राखि । ४-५ हठ नहि । ७ भुखल । ९ करैँ ।

चेतन कान्ह तोहहि[10] जदि[11] आथि
के नहि जान महते लब[12] हाथि ।
आनलि जतने अधिके अनुरोधि[13]
पहिलहि सबहि हलबि[14] परिबोधि[15] ॥
हठे[16] नहि क(रबे र)ति[17] परिपाटी[18]
कोमलि[19] कामिनि बिघटति साटी[20] ।
जावे रभस रह[21] तावे विलास
विमति[22] बुझिअ जने[23] न जाएब पास ॥
परिहरि कबहु[24] धरबि नहि बाहु[25]
उगिलि[26] चान्द[27] तम[28] गीलए[29] राहु[30] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३१, प० ८६, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १४६)—१ भूखल। २ बल। ३ जानि। ४ हठ। ५ नहि। ६ पाठाभाव। ७ भूखल। ८ दुहु। ९ कओरे। १० तोंहहि। ११ यदि। १२ नव। १३ तुय गुन गन कहि कत अनुबोधि। १४ हललि। १५ परबोधि। १६ हठ। १८ परिपाटि। १९ कोमल। २० साटि। २१ सह। २२ विपति। २३ जञो। २४-२५ धसि परिहरि नहि धरबिए बाहु। २६ उगिलल। २७ चन्द। २८ पाठाभाव। २९ गिलए। ३० जन राहु।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति कोमल काँति ।
कौशल सिरिस सुम अलि भाँति ॥

मि० म० (पद-सं० २९२)—१ भूखल। २ बल। ३ जानि। ४ हठ। ५ नहि। ७ भूखल। ८ दुहु। ९ कर। १० तोँहहि। ११ यदि। १२ नव। १३ तुअ गुन गन कहि कत अनुबोधि। १४ हललि। १५ परबोधि। १६ हठ। १७ करब रति। १८ परिपाटि। १९ कोमल। २० साटि। २१ सह। २३ जयँ। २४-२५ धसि परिहरि नहि धरबिए बाहु। २६ उगिलल। २७ चाँद। २८ पाठाभाव। २९ गिलए। ३० जनि राहु।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति कोमल-काँति ।
कौसल सिरिस-सुमन अलि भाँति ॥

झा (पद-सं० ८०)—१६-१७ हठे न क(रिअ र)ति। १९ कोमल।

---

१३ तुअ गुनगन कहि कत अनुबोधि। १४ हललि। १६ हठेँ। १८ परिपाटि। १९ कोमल। २० साटि। २३ जबे। २४ कबहुँ। २६—३० उगिलल चान्द गिलए जनि राहु।

शब्दार्थ—भुखल = भूखा। अनङ्ग = कामदेव। आइति = अधीन। चेतन = समर्थ। आथि = (अस्ति—सं०) है। महते = महावत। लब = नवता है, झुकता है। साटी = संग। रभस = प्रेम। परिहरि = त्यागकर। गीलए = निगलता है।

अर्थ—प्रथम समागम है (और) कामदेव भूखा है। (फिर भी) नायिका के रस की रक्षा करके रति-रङ्ग कीजिएगा।

अधीन पाकर (अधिक) लोभ नहीं कीजिएगा। बड़ा भूखा भी दोनों हाथों से नहीं खाता।

हे कृष्ण! यदि आप समर्थ हैं (तो सब ठीक है।) कौन नहीं जानता कि महावत से हाथी झुकता है।

यत्नपूर्वक बहुत अनुरोध करके (इसे) लाई हूँ। (इसलिए) पहले सभी (प्रकार से इसका) प्रबोध कीजिएगा।

बरजोरी काम-क्रीडा नहीं कीजिएगा। (कारण,) कामिनी कोमलाङ्गी है। (वह) संग का विघटन कर देगी।

जबतक (नायिका में) औत्सुक्य रहे, तभी तक विलास कीजिएगा। विमति समझकर (उसके) पास नहीं जाइएगा।

(एक वार) छोड़कर (दुबारा) फिर (उसकी) बाँह नहीं पकड़िएगा। राहु चन्द्रमा को उगलकर (दुबारा) नहीं निगलता है।

धनछीरागे--

[८२]

हमे[१] युवती[२] पति गेलाह विदेश[३]
लग नहि बसए[४] पळउसिहु[५] लेश[६]।
सासु ननन्द[७] किछुअओ[८] नहि जान[९]
आँखि[१०] रतै(ाँ)धी[११] सुनए[१२] न[१३] कान॥ ध्रु०॥
जागह पथिक जाह जनु भोर
राति अन्धार[१४] गाम बड[१५] चोर।
सपनेहु[१६] भाओर[१७] न दे[१८] कोटवार[१९]
पओलहु नौते[२०] न करए विचार[२१]॥

सं० अ०—२ जुवती। ३ विदेस। १६-१७ भरमहुँ भाउरि। १८ देअ। १९ कोतवार। २० पओलहुँ नउतें।

नृप इथि काहु करए नहि साति[22]
पुरुष महते रह[23] सरब[24] सजाति ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३२(क), प० ८७, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० पर ६)—३ विदेशे। ४ बसय। ५ पड़ोसियाक। ६ लेशे। ७ दोसरि। ८ किछुओ। ११ रतौँधी। १२ सुनय। १३ नइ। १४ अँधार। १५ बड़। १६ भरमहु। १७ माउरि। १८ देअ। २१ काहुक केओ नहि करय विचार। २२ अधिप न कर अपराधहुँ साति। २३ सब। २४ हमर।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

विद्यापति कवि एह रस गाव।
उकुतिहि अवला भाव जनाव॥

मि० म० (पद-सं०५८३)—१ हम। २ जुवति। ३ विदेस। ५ पड़ोसियाक। ६ लेस। ७ दोसरि। ८ किछुओ। ९ नहिँ। १० आँख। ११ रतौँधि। १३ नहिँ। १४ अँधार। १५ बड़। १६ भरमहुँ। १७ भोँरि। १८ देअ। १९ कोतवार। २१ काहु न केओ नहिं करये विचार। २२ अधिप न कर अपराधहु साति। २३ सब। २४ हमर। अन्त में न० गु० की भणिता है।

झा (पद-सं० ८१)—५ पलउसिहु। ७ ननद। ९ ननि। २० लोते।

शब्दार्थ—पळउसिहु=पड़ोसियों का। लग=नजदीक। गाम=गाँव। भाओर=(भ्रमण—सं०) फेरी। कोटवार=कोतवाल। नौते=निमंत्रण। इथि=इसलिए। साति=(शास्ति—सं०) दण्ड। महते=महान्। सरब=(सर्व—सं०) सब।

अर्थ—मैं युवती हूँ (और मेरे) पति परदेश गये हैं। नजदीक में पड़ोसियों का लेश भी नहीं है।

सास और ननद कुछ भी नहीं समझतीं। उनकी आँखों में रतौंधी है। (वे) कानों से सुनती नहीं।

हे पथिक! निद्रा का त्याग करो। (कल) सुबह मत जाओ। अँधेरी रात है (और) गाँव में बहुत चोर हैं।

कोतवाल स्वप्न में भी फेरी नहीं देता। आमंत्रण पाने पर भी (वह) विचार नहीं करता।

इसलिए राजा किसीको दण्ड नहीं देता। (यहाँ) सभी बड़े आदमी सजातीय ही रहते हैं।

२२-२४ अधिप न कर अपराधहुँ साति।
पुरुष महत सब हमरे जाति॥
अन्त में भणिता— विद्यापति कवि एहु रस गाब।
उकुतिहि अबला भाव जनाब॥

धनछीरागे—

[८३]

पछाँ[1] सुनिअ भेलि महादेइ
कनके लाबेओ[2] कान[3] ।
गगन परसि रह समीरन
सूप भरि के आन[4] ॥ ध्रु० ॥
सुन्दरि अवे की देषह[5] देह ।
बिनु हटबइ अरथ बिहुन
जैसन हाटक गेह ॥
अपथ पथ परिचय भेले[6]
बसि दिन दुइ चारि ।
सुरत रस खन एके पाबिअ[7]
जाब जीव रह गारि ॥

ने० पृ० ३२, प० ८८, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४४२)—१ पछा । २ नावे । ३ वोकान ।

मि० म० (पद-सं० २४६)—१ पछा । २ नावे । ३ ओकान । ७ पारिअ ।

झा (पद-सं० ८२)—१ पछा । २ लावे ओ । ५ देखह ।

शब्दार्थ—पछाँ = पीछे । सुनिअ = सुनती थी । भेलि = हुई । महादेइ = महादेवी । लाबेओ = झुका था । गगन = आकाश । समीरन = वायु । हटबइ = वणिक् ।

अर्थ—सुनती हूँ, पीछे तुम महादेवी हो गई थी । सोने से तुम्हारे कान झुके थे । (लेकिन इससे क्या ?) हवा आसमान छू रही है; (किन्तु उसे) सूप में भरकर कौन ला सकता है ? (अर्थात्—पहले तुम महादेवी थी, तुम्हारे पास असंख्य धन था; पर अभी तुम सब तरह से दीन हो ।)

हे सुन्दरी ! अब (अपना) शरीर क्या देखती हो ? (वह तो ऐसा जान पड़ता है,) जैसे विना वणिक् अर्थ-हीन हाट का घर हो ।

कुमार्ग में परिचय होने से, दो-चार दिन (साथ में) वास करके, क्षणमात्र के लिए सुरत-रस प्राप्त होता है; (किन्तु) आजीवन गाली (अपवाद) रहती है ।

सं० अ०—४ नान । ५ देखह । ६ परिचअ भेलैं ।

धनछीरागे—

[८४]

सिनेह बढाओल[1] हम[2] छल भान
तोहर सोआधीन[3] करब परान ।
बहुल बुझओलह निञ बेबहार
मोहि पति सबे परजन्तक खार ॥ ध्रु० ॥
भल भेल मालति तोहहि उदास
पुनु मधुकरे न आओब तुअ पास ।
जत अनुराग भेल सबे राग
तोहरा की[4] बोलब हमर अभाग ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३२, प० ८६, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४१८)—

सिनेह बढ़ाओव इ छल भान ।
तोहर सोयाधिन करब परान ॥
भल भेल मालति भेलि हे उदास ।
पुनु न आओव मधुकरे तुअ पास ॥
एतवा हम अनुतापक भेल ।
गिरि सम गौरव अपदहि गेल ॥
अलपे बुझओलह निअ बेवहार ।
देखितहि निय[5] परिनाम असार ॥
भनइ विद्यापति मन दए सेव ।
हासिनि देवि पति गजसिंह[6] देव ॥

मि० म० (पद-सं० ४१६,) (न० गु० से)—५ निअ । ६ गजसिंघ ।

झा (पद-सं० ८३)—१ बढ़ाओव ।

शब्दार्थ—सिनेह = स्नेह । सोआधीन = स्वाधीन । वहुल = बहुत । निञ = निज । मोहि पति = मेरे लिए । परजन्तक = (पर्यन्त—सं०) अन्त तक । खार = क्षार । राग = द्वेष ।

अर्थ—मुझे विश्वास था कि तुम्हारे प्राण को (मैं) अपने अधीन कर लूँगा। (इसीलिए मैंने) स्नेह बढ़ाया ।

सं० अ०—२ हमे । ३ सोआधिन । ४ कि ।

(तुमने) अपने व्यवहार से बहुत-(कुछ) समझा दिया। मेरे लिए (वे) सभी (व्यवहार) अन्त तक खार ही हुए।

हे मालती ! अच्छा हुआ कि तुम उदास हो गई। मधुकर (अब) तुम्हारे पास फिर नहीं आयेगा।

जितने अनुराग थे,--सभी द्वेष (में परिवर्त्तित) हो गये। (लेकिन) तुमसे क्या कहूँ ? (सब-कुछ) मेरा अभाग्य है।

धनछीरागे—

[८५]

टाट टुटले आङ्गन बेकत
सबे परदा राष[1]।
टुना चटक राज[2] सओ बेसन[3]
दूती अइसन भाष[4] ॥ ध्रु० ॥
साजनि तेजसि[5] वचन रोध[6]।
टाकु सन हिअ[7] सोझो[8] करसि[9]
मानसि[10] बाङ्क[11] विरोध[12] ॥
टेना चढल[13] बक[14] बहुल[15] देषल[16]
अँधैअ[17] पोसल[18] आनि।
आबे दिने दिने तैसन कएलह
बाघ महिसा[19] कानि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३३(क), प० ६०, पं० २

पाठभेद—

सि० म० (पद-सं० ५८८)--१ राख। २ चटकराज। ३ बेस, न। ४ भाख। ५ ते जसि। ६ बोध। ७ कुहिअ। ८ सोझे। ९ कर। १० सिमान। ११ झिवाङ्क। १२ पाठाभाव। १३ चढ़लब। १४ केहु। १५ न। १६ देखल। १७ आँधे। १८ पोस न। १९ महिषा।

झा (पद-सं० ८४)---२ बाज। ३ रसेल। ८ सोझे। १४-१५ बकहुल। १७ अँधेअ।

शब्दार्थ—टाट = टट्टर। बेकत = व्यक्त। राष = रखता है। टुना = अँगुली की हल्की चोट। चटक = टूट सकता है। बेसन = व्यसन—सं०। तेजसि = त्याग करो। वचन रोध = बोलचाल बन्द होना। टाकु = टकुआ। सन = समान। हिअ = हृदय।

सं० अ० — १ राख। २ टूना चटक राज। १६ देखल। १७ अन्धइ। १८ पोसल आनि। १९ महिषा।

सोझो = सीधा । करसि = करो । मानसि = मानो । बाङ्क = वक्र—सं० । टेना = मछली बझाने के लिए डाला गया मिट्टी, सिरकी आदि का घेरा । वहुल = वहुत । अँधैअ = एक मछली, जो अंधी होती है । आनि = लाकर । कानि = वैर ।

अर्थ—टट्टर टूट जाने से आँगन व्यक्त (बेपर्द) हो जाता है। (इसीलिए कोई टट्टर को टूटने नहीं देता ।) सभी पर्दा रखते हैं । (अर्थात्—तुम्हें भी अपना पर्दा रखना चाहिए ।)

अँगुली की हल्की चोट से जो टूट सकता है (वह कहीं) राजा से व्यसन (झगड़ा) करे;—दूती इसी तरह कहती है । (अर्थात्—तुम्हें भी झगड़ा नहीं करना चाहिए ।)

हे सखी ! बोलचाल बन्द करना छोड़ दो । टकुए के समान हृदय को सीधा करो । वक्रता से विरोध मानो । (अर्थात्— टेढ़ापन छोड़ दो ।)

(मैं) टेना पर चढ़े हुए बहुतेरे बकों को देख चुकी हूँ । (फिर भी) अंधी मछली (अंधी मछली अर्थात्—मुग्धा नायिका) को लाकर पाल रखा है ?

(जो बचानेवाला है, उसके साथ तो तुमने) अब दिनानुदिन वैसा कर लिया है, (जैसा कि) बाघ और भैंसे का वैर हो ।

विशेष—कुछ संस्करणों में ऐसा पाठ दिया गया है—'टुना चटक बाज सञो बेसन'। इसके अनुसार यह अर्थ होगा—छोटी चिड़िया बाज से कैसे शत्रुता कर सकती है ? (शब्दार्थ—टुना = क्षुद्र । चटक = विशेषतः—गौरैया, सामान्यतः—चिड़िया ।)

धनछीरागे—

[८६]

हिम सम चान्दन[१] आनी
उपर पौरि उपचरिअ सआनी ।
तैंअओ[२] न जा तसु आधि[३]
बाहर औषध[४] भितर बेआधि[५] ॥ ध्रु० ॥
अबहु[६] हेर हरि[७] मोहे[८]
जीउति जुवति जस पाओब तोहे ।
अवधि अधिक[९] दिन लेखी
मुद[१०] नयन[११] मुख वचन उपेषी[१२] ॥
कण्ठ ठमाएल[१३] जीबे
राति नबसि[१४] मिझाएल दीबे ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३३(क), प० ९१, पं० ५

सं० अ०—१ चन्दन आनी । २ तइअओ । ४ अउषध । ६ अबहुँ । १० मुँदल । ११ नअन । १२ उपेखी ।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५१७)—१ चन्दन। ३ जात सुआधि। ५ बेयाधि। ७-८ हेरह विमोहे। ९ आयक। १३ ठसाए न। १४ वाति न रसि।

झा (पद-सं० ८५)—७ हेरह (ह)रि। १४ न वसि।

शब्दार्थ—पौरि = (प्रपूर्य—सं०) अनुलेपन करके। सआनी = सयानी, युवती। मोहे = मोहवश। लेखी = गणना करके। मुद = मूँद। ठमाएल = स्थान बना लिया। नबसि = झुक गई, ढल गई।

अर्थ—मैंने हिम के समान शीतल चन्दन लाकर (और शरीर के) ऊपर अनुलेपन करके युवती का उपचार किया।

तथापि उसकी आधि नहीं जाती। (कारण,) बाहर में औषध है (और) भीतर में व्याधि है।

हे कृष्ण! अब भी मोहवश (उसे) देखो। (तुम्हारे देखने मात्र से) युवती जी जायेगी। तुम यश के भागी हो जाओगे।

अधिक दिनों की अवधि की गणना करके (उसने) आँखें मूँद लीं (और) मुख से वचन की उपेक्षा कर दी।

(उसके) प्राण कण्ठगत हो गये, रात ढल गई (और) दीपक भी बुझ गया।

धनछीरागे—

[८७]

बाट भुअङ्गम उपर पानि
दुहु कुल अपजस अङ्गिरल आनि।
पर निधि हरलए साहस तोर
के जान कओन गति करबए मोर॥ ध्रु० ॥
तोरे बोले दुती तेज निज गेह
जीव सओ तौलल गरुअ सिनेह।
लहु कए कहलह गुरु बड भाग
मुदभर रजनी दुर अभिसार ॥
दसमि दसा हे बोलब की तोहि
अमिअ बोलि विष देलए मोहि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३३, प० ९२, पं० ३

झा (पद-सं० ८६)—पाठभेद नहीं है।

विशेष—पद-सं० ६१ द्रष्टव्य।

धनछीरागे—

[८८]

कण्टक माझ कुसुम परगास
भमर विकल नहि पाबए पास ।
रसमति मालति पुनु पुनु देषि
पिबए चाह मधु जीव उपेषि ॥ ध्रु० ॥
ओ मधुजीवी तञे मधुरासि
साँचि धरसि मधु तञे न लजासि ।
भमरा भमए कतहु ठाम
तोह बिनु मालति नहि बिसराम ।
अपने मने धनि बुझ अवगाहि
तोहर दुषण वध लागत काहि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३४ (क), प० ६४, पं० १

झा (पद-सं० ८७)—पाठभेद नहीं है।
विशेष—पद-सं० ७ द्रष्टव्य ।

धनछीरागे—

[८९]

हृदयक[१] कपट भेल नहि जानि
पर पेअसि हे[२] देलि[३] हमे[४] आनि ।
सुपुरुष वचन समय[५] बेबहार
खतखरिआ[६] दए[७] सीचसि[८] खार ॥ ध्रु० ॥
आबे हमे[९] कान्ह बोलब की बोल
हाथक रतन हराएल[१०] मोर ।
कके परतारलि[११] नागरि नारि
वचन कौसल छले[१२] देव मुरारि ॥
पलटि पठाबह[१३] तन्हिके ठाम
केओ जनु माधव बसए[१४] कुगाम

सं० अ०—१ हृदअक । ४ हमे जानि । ५ समअ । ६ खत-खड़िआ । ८ सीँचसि । ९ हम । १० हेराएल । १२ छलैँ ।

हरि अनुरागी त ठमा[१५] जाह
से आबे अपन मनोरथ चाह ।
लघु कहिनी भल कहइते आन[१६]
देले पाइअ के नहि जान ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३४(क), प० ६४, पं० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ३६७)—१ हृदय । २ पाठाभाव । ३ देलिह । ४ पाठाभाव । ६ खत खरि । ७ आदए । ११ परतारणि । १३ पचाबह । १४ धसएह गाम । १५ तठमा ।

झा (पद-सं० ८८)—६ खत खरिआ । १५ तठमा ।

शब्दार्थ—पेअसि = प्रेयसी । खतखरिआ = (खत = क्षत, खरिआ = खड्गी—सं०) खाँड़े का घाव । खार = नमक । हराएल = खो गया । कके = क्यों । परतारलि = फुसलाई । तन्हिके = उसी के । ठाम = स्थान । कुगाम = कुग्राम । त ठमा = उसी के स्थान में । जाह = जाओ ।

अर्थ—(तुम्हारे) हृदय का कपट मैं समझ नहीं सकी । (इसीलिए) दूसरे की प्रेयसी (मैंने) ला दी ।

सुपुरुष का वचन (और) समय पर (उसका) व्यवहार—(दोनों बराबर होते हैं) । (लेकिन तुम तो) तलवार से घाव देकर नमक से सींचते हो । (अर्थात्—तुम्हारा वचन तो मीठा है; परन्तु व्यवहार कड़ुआ है ।)

हे कृष्ण ! अब मैं कौन-सी बात कहूँ ? मेरे हाथ का रत्न ही खो गया । (अर्थात्—नायिका यहाँ आ गई ।)

हे देव-मुरारि ! (मैंने) नागरी नारी को वचन-कौशल से (और) छल से क्यों फुसलाया ? (अर्थात्—छल-बल-कल से फुसलाकर उसे क्यों ले आई ?)

(उसे) लौटाकर उसी के स्थान में भेज दो । हे माधव ! कोई (भी) कुग्राम में नहीं बसे । (अर्थात्—तुम कुग्रामवासी हो । प्रेम करना नहीं जानते । इसीलिए नायिका को लौट जाने दो ।)

हे कृष्ण ! (यदि तुम) अनुरागी हो, तो उसी के स्थान में जाओ । वह (भी) अब अपना मनोरथ चाहती है । (अर्थात्—यहाँ आने पर तुमने उसके साथ जैसा व्यवहार किया, वहाँ जाने पर वह भी तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहती है ।)

छोटी बात दूसरे को कहने में अच्छी लगती है, (सुनने में नहीं; पर तुम्हें सुनना पड़ता है । क्या किया जाया ?) कौन नहीं जानता कि (लोग) दिया हुआ ही पाते हैं । (अर्थात्—जो जैसा देता है, वह वैसा पाता है ।)

---

१५ तहमा । १६ आन ।

धनछीरागे—

[६०]

वचन अमिञ[1] सम मने अनुमानि
निरव[2] अएलाहु तुअ सुपुरुष जानि।
तसु परिणति[3] किछु कहहि[4] न जाए
सूति रहल पहु दीप मिझाए ॥ ध्रु० ॥
ए सखि पहु अवलेप सही
कुलिस अइसन हिअ[5] फाट नही।
करे[6] जुगे[7] परसि जगाओल भाव
तइअओ न तजे पहु नीन्द सभाव ॥
हाथ[8] झपाए[9] रहल मुह[10] लाए
जगइते[11] निन्द गेल न होअ जगाए ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३४, प० ६५, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४८८)—१ अमिअ। २ नियर। ३ परिनति। ८ हाय।

मि० म० (पद-सं० ४०१)—२ निअर। ३ परिनति। ५ हिय। ६-७ करजुगे। ११ जगइत।

झा (पद-सं० ८६)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—निरव = (नीरव—सं०) चुपचाप। तसु = उसका। परिणति = परिणाम। अवलेप = अपमान। सही = सहन करके। कुलिस = वज्र। अइसन = ऐसा। जुगे = (युग—सं०) दोनों। सभाव = स्वभाव।

अर्थ—(तुम्हारे) वचन को मन में अमृत के समान अनुमान करके, (उन्हें) भला आदमी समझकर चुपचाप (मैं) तुम्हारे (साथ) आ गई।

(किन्तु) उसका परिणाम कुछ कहा नहीं जाता। स्वामी दीप बुझाकर सो गये।

हे सखी! स्वामी के द्वारा किया गया अनादर सहन करके (भी) वज्र के समान (मेरा) हृदय नहीं फटता।

(यद्यपि) दोनों हाथों से स्पर्श करके (हिला-डुलाकर) भाव जगाया, तथापि स्वामी ने (अपने) नींद के स्वभाव को नहीं तजा।

(उन्होंने) हाथों से (अपना) मुँह ढक लिया। (अरे! सोया हुआ आदमी न जगता है, जो) जगा होकर भी सोया है, उसे जगाया नहीं जा सकता।

सं० अ०—३ परिनति। ४ कहल। ६ झँपाए। १० मुँह।

धनछीरागे—

[६१]

सुजन वचन[१] षोटि[२] न लाग
जनि दिढ[३] कठु आलक[४] दाग ।
झुठा[५] बोल चकमक आभ
देषिअ[६] सुनिअ[७] एते लाभ ॥ ध्रु० ॥
मानिनि मने न गुणहि[८] आन
गुण बुझइ[९] जञो हो[१०] गुणमान[११] ।
सुपुरुष सञो की कए कोप
ओहओ कान्ह जदुकुल गोप ॥
अति पबितर अथिक[१२] गाए
सेहओ[१३] पुनु बरदक माए ।
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३५(क), प० ६६, पं० २

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ४०७)—२ खोटि। ३ दिढ़। ४ आलका। ५ सुधा। ६ देखिअ। ९ गुलछ भज। १०-११ होअल मान। १३ मेहत।

झा (पद-सं० ६०)—१ वचन हे। ७ सुनिअ। १२ अति थिक।

शब्दार्थ—षोटि = क्षुद्रता। कठु = कठोर (कठ् कृच्छ्जीवने—भ्वादिः)। आल = लाल रंगविशेष, जो कभी मलिन नहीं पड़ता। आभ = (आभा—सं०) कान्ति। पबितर = पवित्र। अथिक = है। सेहओ = वह भी। बरदक = बैल की। माए = मा।

अर्थ—सज्जनों का वचन बुरा नहीं लगता, जिस प्रकार आल का कठोर धब्बा बुरा नहीं लगता।

झूठी बात चकाचौंध पैदा करनेवाली होती है। (उसे, देखिए, सुनिए—इतना ही लाभ होता है। (कुछ भी हाथ नहीं आता।)

हे मानिनी! मन में अन्यथा मत सोचो। यदि गुणवान् होगा (तो) गुण (अवश्य) समझेगा।

सुपुरुष (श्रीकृष्ण) से क्रोध करके क्या? (अन्ततः) वे कृष्ण तो यदुकुल के गोप ही हैं।

गाय अत्यन्त पवित्र है, फिर भी वह बैल की माता (ही) है।

सं० अ०—२ खोटि। ५ झूठा। ६ देखिअ। ७ सुनिअ। ८ गुनहि। ९ गुन बुझइ। १० होअ। ११ गुनमान।

धनछीरागे—

[६२]

अहनिसि वचने जुडग्रोलह[1] कान
अचिरे रहत सुख इ[2] भेल भान।
अबे दिने-दिने हे बुझल विपरीत
लाज गमाए विकल भेल चीत ॥ ध्रु० ॥
बिहिक विरोधे[3] मन्दा सञो[4] भेट
भाँड[5] छुइल नहि भरले पेट।
लोभे[6] करिअ हे मन्द जत काम
से न सफल होअ जञो बिहि वाम ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३५, प० ६७, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं ३४७)—१ जुड़ग्रोलह। ५ भाँड़।
मि० म० (पद-सं० ३७६)—१ जुड़ग्रोलह। ४ सयँ। ५ भाँड़।
झा (पद-सं० ६१)—२ ई। ५ भाँड़ो।

शब्दार्थ—अहनिसि = (अहर्निश—सं०) दिन-रात। अचिरे = (न चिरं यस्मात् इति बहुव्रीहिः) अनन्त काल तक।

अर्थ—(तुमने) दिन-रात (अपने) वचन से (मेरे) कानों को जुड़ाया। (इसलिए) यह भान हुआ (कि) अनन्त काल तक (तुमसे) सुख (मिलता) रहेगा।

अब तो दिन-दिन (तुम्हें) विपरीत (ही) समझा। लाज गँवाकर चित्त विकल हो गया।

विधि के विरोध से (अर्थात्—प्रतिकूल रहने से) नीच से भेंट हो गई। भाँड़ (भी) छुआ (और) पेट (भी) नहीं भरा।

लोभ से जितने बुरे काम किये जाते हैं, यदि विधाता वाम है, तो वे सफल नहीं होते।

धनछीरागे—

[६३]

आकुल चिकुर[1] बेढल[2] मुख सोभ
राहु कएल[3] ससिमण्डल लोभ।
उभरल[4] चिकुर माल कर[5] रङ्ग
जनि जमुना जल[6] गाङ्ग[7] तरङ्ग ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—२ ई। ३ विरोधेँ। ५ भाँड़ो। ६ लोभेँ।
सं० अ०—१ चिकुरेँ। ५ कुसुम माल धर रङ्ग। ६ मिलु। ७ गङ्ग।

बड[८] अपरुब[९] दुहु[१०] चेतन मेलि
विपरित रति कामिनि कर केलि ।
वदन सोहाओन[११] सम[१२] जलबिन्दु
मदने मोति दए[१३] पूजल इन्दु ।
पिआ[१४] मुख सुमुखि चुम्ब[१५] तेजि ओज
चान्द[१६] अधोमुख पिबए सरोज ।
कुच विपरीत[१७] विलम्बित हार
कनक कलश[१८] जनि[१९] दूधक धार ॥
किङ्किनि रनित[२०] नितम्बहि[२१] छाज
मदन महासिधि[२२] बाजन बाज ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३५, प० ९८ तथा पृ० ६२(क), प० १७४, पं० २

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० १०२)—१ चिकुरे। २ बेढ़ल। ४-५ उभरल कुसुम माल धर अङ्ग। ६ मिलु। ७ गङ्ग। १२ स्रम। १३ लए। १४ पिअ। १६ चाँद। १८ कलस। १९ बम। २० सबद। २१ नितम्बिनि। २२ विजय रथ।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति मने अनुमानि ।
कामिनि रम पिआ अनुमत जानि ॥

न० गु० (पद-सं० ५८४)—१ चिकुरे। २ बेढ़ल। ३ करल। ४ फूजल। ५ धर। ६ मिलु। ७ गङ्ग। ८ वड़। ९ अपुरुब। १० दुइ। ११ सोहाओन। १२ स्रम। १३ लए। १४ पिअ। १८ कलस। १९ बम। २० रटित। २१ नितम्बिनि। २२ महारथ।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति रसमय वानी ।
नागरी रम पिय अभिमत जानी ॥

मि० म० (पद-सं० ४९७)—२ बेढ़लि। ४ फूजल। ५ धर। ६ मिलु। ७ गङ्ग। ८ वड़। ९ अपुरुब। १० दुइ। ११ सोहाओन। १२ स्रम। १३ मदन मोति लए। १४ पिय। १५ चूम। १६ चाँद। १७ विपरित। १८ कलस। १९ बम। २० रटित। २१ नितम्बिनि। २२ महारथ।

झा (पद-सं० ९२)—२० रणित।

विशेष—न० गु० और मि० म० में पंक्ति-क्रम इस प्रकार है—(नेपाल पदावली की पंक्तियाँ)—१-२, ५-६, ११-१२, ९-१०, १३, १४, ३-४ और ७-८।

---

१२ स्रम। १३ लए। १४ पिअ। १८ कलस। २२ विजय रथ।

शब्दार्थ--आकुल = अस्त-व्यस्त । चिकुर = केश । बेढल = घिरा हुआ । उभरल = खुला हुआ । सम = श्रम । इन्दु = चन्द्रमा । ओज = (अवद्य—सं०) कृपणता (यथा—ओज कएने भोज नहि हो) । सरोज = कमल । छाज = सोहता है ।

अर्थ— अस्त-व्यस्त केशों से घिरा हुआ मुख (ऐसा) सोहता है, (जैसे) राहु ने चन्द्र-मण्डल का लोभ किया हो ।

खुले हुए केश माला (के साथ मिलकर ऐसा) रङ्ग कर रहे हैं, जैसे यमुना का जल गङ्गा की तरङ्ग (के साथ मिलकर कर रहा हो ।)

दोनों प्रौढ़ों (नायिका और नायक) का मिलन बड़ा अपूर्व (जान पड़ता है ।) कामिनी विपरीत रति-रूपी केलि कर रही है ।

श्रम (जनित) जलबिन्दु से (उसका) मुख शोभायमान है । (मालूम होता है, जैसे) कामदेव ने मोती देकर चन्द्रमा की पूजा की हो ।

सुमुखी कृपणता का त्याग करके प्रिय के मुख को चूमती है । (मालूम होता है, जैसे) चन्द्रमा अधोमुख होकर कमल को पी रहा हो ।

स्तन (के ऊपर) विपरीत (होकर) लटका हुआ हार (ऐसा जान पड़ता है, जैसे) स्वर्ण-कलश के ऊपर दूध की धारा हो ।

बजती हुई किङ्किणी नितम्ब पर सोहती है । (मालूम होता है, जैसे) कामदेव की महासिद्धि के बाजे बजते हों ।

धनछीरागे—

[६४]

वदन झपाबए अलकओ[1] भार
चान्दमडल[2] जनि मिलए अन्धार ।
लम्बित सोभए हार विलोल
मुदित मनोभव खेल हिडोल[3] ॥ ध्रु० ॥
पिअतम[4] अभिमत मने अवधारि
रति विपरित[5] रतलि वर नारि ।
मनि[6] किङ्किनि कर मधुर[7] बिराव[8]
जनि जएतुङ्ग[9] मनोबव[10] बाज[11] ॥

सं० अ०—१ झँपाबए अलकक । २ चान्द मण्डल । ३ हिँडोल । ५ विपरीत । ७-८ कर मधुरी बाज । ९ जयतूर । १० मनोभव ।

रभसे निहारि अधर मधु पीब ।
नाओी[१२] कुसुमसर आकठ जीव[१३] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३६(क) प० ६६, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५६०)—१ अलकक । ६ माल । ७ मधुरि । ८ बाज । ९ जएतुर । १० मनोभव । ११ राज । १३ आकटजीव ।

मि० म० (पद-सं० ४६४)—१ अलकत । २ चाँदमडल । ४ पियतम । ६ माल । ७ मधुरि । ८ राव । ९ जएतुर । १० मनोभव । १३ आकट जीव ।

झा (पद-सं० ९३)—१ घन कत । ६ माल । १० मनोभव । ११ राज ।

शब्दार्थ—अलकओ = केश के । विलोल = चञ्चल, डोलता हुआ । रतलि = रत हुई । बिराव = शब्द । जएतुङ्ग = जयतूर, विजयवाद्य । मनोबव = (मनोभव—सं०) कामदेव । रभसे = प्रेम से । नाओी = नम्र । कुसुमसर = कामदेव । आकठजीव = कठिन जीववाला ।

अर्थ—केशों के भार से मुख ढक रहा है । (मालूम होता है, जैसे) अन्धकार चन्द्र-मण्डल से मिल रहा हो ।

लटकता हुआ चञ्चल हार शोभा पा रहा है । (मालूम होता है; जैसे) कामदेव प्रसन्न होकर हिंडोला खेल (झूल) रहा हो ।

प्रियतम के अभिमत को मन में निश्चित करके वरनारी विपरीत रति में संलग्न हुई ।

मणि-खचित किङ्किणी मधुर शब्द कर रही है । (मालूम होता है,) जैसे कामदेव का विजय-वाद्य बज रहा हो ।

(नायिका) प्रेम से देखकर अधर-मधु पी रही है । कामदेव कठजीव (मानिनी) को भी नम्र (कर देता है) ।

धनछीरागे—

[९५]

घटक बिहि विधाता जानि
काचे कञ्चने छाडलि[१] हानि[२] ।
कुच सिरिफल सञ्चा पूरि
कुन्दि[३] बैसाओल[४] (कनक कटोरि)[५] ॥ ध्रु० ॥

---

१२ नाञि ।

सं० अ०—१ छाड़लि ।

रूप कि कहब मञे बिसेषि[६]
गए निरूपि(अ)[७] झटित देषि[८] ।
नयन[९] नलिन सम विकास
चान्दहु[१०] तेजल बिरुह[११] भास ॥
दिने रजनी हेरए बाट
जनि हरिणी[१२] बिछुरलि[१३] ठाट[१४] ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३६(क), प० १००, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७७४)—१ छाउलि। २ आनि। ३ कुँदि। ४ बइसाओल। ५ कनक कटोरि। ६ बिसेखि। ७ निरूपिअ। ८ देखि। १० चान्दह। ११ विरह। १२ हरिनी। १३ बिछुरल।

मि० म० (पद-सं० २६४)—१ छाउलि। २ आनि। ३ कुँदि। ४ बइसाओल। ५ कनक कटोरि। ६ विसेखि। ७ निरूपिअ। ८ देखि। १० चान्दह। ११ विरह। १२ हरिनी। १३ बिछुरल।

झा (पद-सं० ६४)—११ विरह। १४ बाट।

शब्दार्थ—घटक = घड़े का। बिहि = विधि = विधान। विधाता = ब्रह्मा। सिरिफल = (श्रीफल—सं०) बेल। सञ्चा = साँचा। पूरि = ढालकर। कुन्दि = ठोंककर, बिरुहभास = विरोधाभास, । रजनी = रात। ठाट = ठट्ट, झुंड।

अर्थ—विधाता ने (स्तन-रूपी) घड़े के विधान में जान-बूझकर काच और कञ्चन की हानि को छोड़ दिया। (अर्थात्—काच और कचन को मिलाने से जो हानि होगी, उसका विचार नहीं किया। दोनों को मिलाकर नायिका के स्तन का निर्माण कर दिया।)

(अथवा) स्तन को श्रीफल के साँचे में ढालकर (मानों) ठोंककर सोने के कटोरे में निहित कर दिया।

मैं (उसके) रूप की विशेषता क्या हूँ? शीघ्र जाकर, (स्वयं) देखकर (उसका) निरूपण कीजिए।

(उसकी) आँखें कमल के समान विकास (कर रही हैं। मालूम होता है,) चन्द्रमा ने भी विरोधाभास छोड़ दिया। (अर्थात्—मुख-रूपी चन्द्रमा के पास भी नेत्र-रूपी कमल का विकास हो रहा है।)

(वह) दिन-रात (तुम्हारी) बाट जोहती है। (मालूम होता है,) जैसे हरिणी (अपने) झुण्ड से बिछुड़ गई हो।

धनछीरागे—

[६६]

आसा खण्डह दए बिसबास
के जग जीबए तीनि पचास ।

---

६ मोञ बिसेखि। ८ देखि। ९ नञन। १२ हरिनी।

आनक[1] बोलिअ गोप गमार
तोहरा सहजक[2] कुल[3] बेबहार ॥ ध्रु० ॥
तोह जदुनन्दन कि[4] बोलिबो[5] जानि
धन्धहि[6] सङ्ग सरुप सओ कानि ।
सुपुरुष पेम हेम अनुमानि
मन्दा का[7] नहि[8] मन्दे[9] हानि ॥
आओर बोलब कत बोलइते लाज
फल उपभोगीअ[10] जैसन[11] काज ॥
सुन्दरि वचने कान्ह उपताप
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३६, पद १०१, पं० ३

पाठभेद—

सि० म० (पद-सं० ४०६)—१ अलिक । २ सहज । ३ कओन । ४ की । ५ बोलब । ६ धेनु । ७-८ कालहि ।

झा (पद-सं० ६५)—७-८ कालहि ।

विशेष—अन्त में एक पंक्ति की छूट प्रतीत होती है ।

शब्दार्थ—बिसबास = विश्वास । तीनि पचास = डेढ़ सौ (वर्ष = चिरजीवी) । आनक = दूसरे का । जानि = समझकर । धन्धहि = धन्धे से, प्रपञ्च से । सरुप = सत्य । कानि = द्वेष । पेम = प्रेम । हेम = सोना । मन्दा = नीच । उपभोगीअ = भोगते हैं । उपताप = सन्ताप ।

अर्थ—विश्वास देकर आशा भङ्ग करते हो ! (अरे ! जो करना हो, सो शीघ्र करो ।) संसार में कौन डेढ़ सौ वर्ष जीता है ? (अर्थात्—कौन चिरजीवी है ?)

दूसरे का (भी) कहना है कि गोप गँवार होते हैं । तुम्हारा तो (गँवारपन) स्वाभाविक कुल-व्यवहार (कुलक्रमागत व्यवहार ही) है ।

हे यदुनन्दन ! तुम्हें समझकर (फिर) क्या कहूँ ? (तुम्हें तो) प्रपञ्च से राग और सत्य से द्वेष है ।

सुपुरुष के प्रेम को (लोग) सोना समझते हैं । (इसीलिए उसे नीच कार्य नहीं करना चाहिए ।) नीच कार्य से नीच की हानि नहीं होती । (लेकिन, सुपुरुष की तो हानि होती ही है ।)

सं० अ०—१ आनहुँ । २ सहज । ३ कुलक । ५ तोहेँ जदुनन्दन कि बोलब । ७ काँ । ९ मन्दँ । १० उपभोगिअ । ११ जइसन ।

और क्या कहूँ ? कहते लज्जा होती है। (अन्ततः) जैसा कार्य होता है, वैसा फल भोगना (ही) पड़ता है।

सुन्दरी के कहने से कृष्ण को उपताप हुआ।

धनछीरागे—

[९७]

के बोल पेम अमिअ के धार
अनुभवे बूझिअ गबउ[१] अङ्गार ।
खएले[२] विष सखि हो परकार
बड़ मारष[३] ओ[४] देषितहि[५] मार ॥ ध्रु० ॥
एत सबे सजलह हमरा लागि
तूरे[६] बेढि[७] घर खोसलि आगि ।
तञे ओठपातरि[८] कि बोलिबो तोहि
बड[९] कए अपथ चलओलए मोहि ॥
तोरा करम धरम पए साखि
मन्दिउ[१०] खाए[११] पळउसिनि राखि ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३७(क), पद १०२, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ३६६)—१ बुझिअ गरउ। ३ मारख। ४ पाठाभाव। ५ देखितहि। ६ दूरे। ७ वोकढ़ि। ८ ओठ पातवि। ९ बड़। १० मन्दि। ११ उघाए।

झा (पद-सं० ९६)—५ दषितहि।

शब्दार्थ—गबउ = गवय = गो-सदृश पशुविशेष। परकार = (प्रकार—सं०) उपाय। मारष = (मारक—सं०) मारनेवाला। तूरे = (तूल—सं०) रूई से। वेढि = घेरकर। ओठपातरि = (यह एक मुहावरा है; जैसे—कान का पतला, आदि) वाचाल। साखि = साक्षी। मन्दिउ = मन्दतर = डायन। राखि = रक्षा कर, बचाकर।

अर्थ—कौन कहता है (कि) प्रेम अमृत की धारा है। गवय (वन्यजन्तु) भी अनुभव करके (उसे) अंगार समझता है।

हे सखी ! विष खाने पर भी (जीने का) उपाय होता है; (किन्तु) वह (कृष्ण) बड़े मारनेवाले हैं। देखते ही मार डालते हैं।

मेरे लिए (तुमने) इतने सब साज सजाये—रूई से घर को घेरकर (उसमें) आग खोंस दी।

सं० अ०—१ अनुभवेँ बूझिअ गबउ। २ खएलेँ। ३ मारुख। ५ देखित्तहि। ६ तूरे।

तुम बड़ी वाचाल हो। तुम्हें क्या कहूँ? (तुमने) बड़े कुपथ पर मुझे चला दिया। तुम्हारा कर्म-धर्म ही (मेरा) साक्षी है। (इतना ही मुझे कहना है कि) डायन भी पड़ोसिन को बचाकर (किसी को) खाती है।

धनछीरागे—

[९८]

हरि रव सुनि हरि गोभय गोभरि
गोतम गोरि[1] लोटाइ रे।
हरि रिपु रिपु मुख[2] विदिस[3] वसन[4] देय[5]
गोदिसे विदिसे बै(ा)राइ[6] रे ॥ ध्रु० ॥
ए हरि जदि तोहे परबस पेमे विरत रस
वचन दए राखिअ राही रे।
कुम्भतनय भोजन सुत सुन्दरि
मुख बसि अवनत भेला रे ॥
सास[7] समीर बाज जनि भुजगी[8]
हरि बिनु मुहहु[9] न[10] बोल रे।
समन्दलि[11] ससिमुखि सात[12] बरन[13] लेखि[14]
तेसरा[15] पद[16] दिढ[17] जानि रे ॥
राजा सिवसिंह रूपनराएण[18]
विद्यापति कवि बानि रे ॥

ने० पृ० ३७(क), प० १०३, पं० ५

पाटभेद—

मि० म० (पद-सं० १९४)—१ गोधर। २ सुख। ३-४-५ विदिसर सलदेय। ६ बैराइवे। ८ तुजगी। ९-१० सुहह हुन। १२ साते। १३ वरण। १४ देलेखि। १५ तेज। १६ सरापद। १७ दिय। १८ रूपनराएन।

झा (पद-सं० ९७)—९ मुहहहु। ११ समन्दल।

शब्दार्थ—हरि = कोकिल। हरि = कृष्ण। गो = चन्द्रमा। गो = आँख। गोतम = गोतम ऋषि। गोतम गोरि = अहल्या। हरि = सूर्य। हरि रिपु = राहु। हरि रिपु रिपु = चन्द्रमा। हरि रिपु रिपु मुख = चन्द्रमुखी। विदिस = अस्त-व्यस्त। गो = दस। गोदिसे = दसो दिशाओं में। विदिसे = यत्र-तत्र। कुम्भतनय = अगस्ति। कुम्भतनयभोजन = समुद्र।

सं० अ०—५ देअ। ७ साँस। ९ मुहहुँ। १४ लिखि। १८ रूपनराजेन।

कुम्भतनयभोजनसुत = चन्द्रमा। सास = (श्वास—सं०) साँस। समीर = वायु। भुजगी = सर्पिणी। सात बरन = 'विष खाए मरब' इस वाक्य के सात अक्षर।

अर्थ—हे कृष्ण ! कोकिल का शब्द सुनकर (और) चन्द्रमा के भय से आँखें भरकर (अर्थात्—रोती हुई वह) अहल्या की तरह (धरती पर) लोट रही है।

चन्द्रमुखी यत्र-तत्र वस्त्र डालकर (अर्थात्—अस्त-व्यस्तवसना होकर) दसो दिशाओं में जहाँ-तहाँ पगली बनी फिरती है।

हे कृष्ण ! यदि तुम परवश हो, प्रेम में रस नहीं रहा (तो) वचन देकर (भी) राधा की रक्षा करो।

चन्द्रमा सुन्दरी के मुँह में निवास करके ढल गया। (अर्थात्—सुन्दरी का मुख डूबते हुए चन्द्रमा की तरह मलिन हो गया।)

(उसकी) साँस सर्पिणी की तरह शब्द कर रही है। (वह) हरि के विना मुँह से (कुछ भी) नहीं बोलती। (अर्थात्—उसके मुँह से केवल तुम्हारा ही नाम निकलता है।)

चन्द्रमुखी ने सात अक्षर ('विष खाए मरब') लिखकर, (सात अक्षरों में) तीसरे पद (मरब) को दृढ समझकर संवाद भेजा है।

कवि विद्यापति कहते हैं कि राजा शिवसिंह 'रूपनारायण' (इसे समझते हैं)।

धनछीरागे—

[९९]

इन्दु से इन्दु इन्दु हर इन्दु त
आओर इन्दु जन[1] परगासे।
एक इन्दु हमे गगनहि देषल
तीनि इन्दु तुअ पासे ॥ ध्रु० ॥
कालि देषल हमे अदबुद[2] रङ्गे
मझु मन[3] लागल दन्दा।
कओन के कहब हमे[4] के पतिआएत
एक ठाम अछ चन्दा ॥
कओनेओ इन्दु तारा कओनेओ इन्दु तरुणी
कओने इन्दु चक्र समाजे।
एक[5] इन्दु माधव सओ खेलए
एक इन्दु गगनिरि[6] माझे[7] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३७, प० १०४, पं० ४

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५७८)—१ जल। २ अदभुद। ३ मसुमन। ४ हमे॑। ५ एकसा। ६ गगनि। ७ विमाझे।

झा (पद-सं० ९८)—५ एक से।

शब्दार्थ—इन्दु = चन्द्रमा। से = वह। हर = महादेव। जन परगासे = लोक में (उस नाम से) प्रसिद्ध है। गगन = आकाश। तुअ पासे = तुम्हारे समीप। कालि = कल्ह। अदबुद = अद्भुत। रङ्ग = रीति। मझु मन = मेरे मन में। लागल दन्दा = द्वन्द्व उत्पन्न हुआ। कओनके = किसको। पतिआएत = प्रतीत करेगा। एक ठाम अछ चन्दा = सब चन्द्रमा एक ही स्थान पर हैं। कओनेओ = कोई, तरुणी स्त्री। चक्र = लोगों का समूह। चक्र समाजे = लोगों के समूह में।

अर्थ—एक चन्द्रमा आकाश में है, एक चन्द्रमा महादेवजी के (माथे पर) है, एक चन्द्रमा (इन्दुमुखी) नायिका है और एक चन्द्रमा लोक-समूह में है (जो शशिमुखी के नाम से प्रसिद्ध है।

(इस प्रकार चार चन्द्रमा हैं, उनमें से) एक चन्द्रमा तो आकाश में है, शेष तीन तुम्हारे समीप हैं।

कल मैंने अद्भुत रीति देखी, जिससे मेरे मन में द्वन्द्व उत्पन्न हुआ।

किसे कहूँ? कौन विश्वास करेगा (कि अनेक) चन्द्रमा एक ही स्थान पर हैं?

कोई चन्द्रमा तो तारों के बीच में शोभा पा रहा है, कोई चन्द्रमा तरुणी में (राधा के मुख में) है और कोई चन्द्रमा लोगों के समूह में उस नाम से प्रसिद्ध है।

एक चन्द्रमा कृष्ण के साथ क्रीडा कर रहा है और एक चन्द्रमा आकाश में है।

धनछीरागे—

[१००]

करतल लीन सोभए[१] मुखचन्द
किसलय मिलु अभिनव अरविन्द।
कि कहति[२] ससिमुखि कि पुछसि[३] आन
बिनु अपराधे विमुख भेल कान्ह॥ ध्रु०॥

सं० अ०— करतल-लीन सोभए मुखचन्द।
किसलअ मिलु अभिनव अरविन्द॥
अहनिसि गरए नअन जलधार।
खञ्जने मिलि उगिलल मोतिहार॥ ध्रु०॥

अहनिसि नयने[४] गलए[५] जलधार
खञ्जने गिलि[६] उ(गि)लल मोतिम हार[७] ।
विरहे[८] बिखिन तनु भेल हरास
कुसुम सुखाए रहल अछ[९] वास ॥
झषइते[१०] संसय[११] पळल[१२] परान
अबहु[१३] न उपसम कर पचबान ।
भनइ विद्यापति दूती गोए
बि(न त) रसे[१४] परहित नहि होए ॥

ने० पृ० ३८(क), प० १०५, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६९५)—१ शोमय। २ करति। ३ बोलब। ४-५ गरए नयन। ६ मिलि। ७ उगिलल मोति हार। १० झखइते। ११ सँसय। १२ परल। १३ कवहुँ।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ[१५] विद्यापति सुन वर नारि।
धैरज धए[१६] रह[१७] मिलत मुरारि ॥

मि० म० (पद-सं० १७०)—२ करति। ३ वोलत। ४-५ गरए नयन। ७ उगिलत मोति हार। ८ विरह। ९ अछि। १० झखइति। १२ परल। १३ कवहुँ। अन्त में न० गु० की भणिता है, जिसका पाठभेद इस प्रकार है—१५ भनहि। १६-१७ धैरहु।

झा (पद-सं० ९९)—१४ (विनु प) रसे।

शब्दार्थ—किसलय=नवपल्लव। अरविन्द=कमल। अहनिसि=अहर्निश, दिन-रात। गिलि=निगलकर। बिखिन=अत्यन्त क्षीण। हरास=ह्रास। गोए=गुप्त रूप से। उपसम=शान्ति। तरसे=(तर्ष—सं०) इच्छा।

कि करति ससिमुखि कि बोलब आन ।
बिनु अपराधेँ विमुख भेल कान्ह ॥
विरहेँ बिखिन तनु भेल हरास ।
कुसुम सुखाए रहल अछ वास ॥
झँखइते संसअ पळल परान ।
कबहुँ न उपसम कर पँचबान ॥
भनइ विद्यापति सुन वर नारि ।
धैरज धए रह मिलत मुरारि ॥

अर्थ—(नायिका के) करतल में लीन मुखचन्द्र (इस तरह) शोभा पा रहा है; (जैसे) नवपल्लव (के साथ) नवीन कमल मिला हो।

चन्द्रमुखी क्या कहती है—(यह) दूसरे से क्या पूछते हो? (अर्थात्—दूसरा क्या बतला सकता है?) कृष्ण विना अपराध के ही विमुख हो गये।

(उसकी) आँखों से अहर्निश जल-धारा बह रही है। (मालूम होता है, जैसे) खञ्जन ने मोतियों के हार को निगलकर उगल दिया हो।

विरह से (वह) अत्यन्त क्षीण (हो गई है। उसके) शरीर का ह्रास हो गया है। (मालूम होता है, जैसे) फूल सूख गये; केवल) सुगन्ध रह गई।

झँखते-झँखते (उसके) प्राण संशय में पड़ गये। अब भी कामदेव शान्ति नहीं दे रहा है।

विद्यापति कहते हैं (कि) दूती चुपचाप कहती है कि विना इच्छा किये दूसरे का हित नहीं हो सकता।

धनछीरागे—

[१०१]

जाबे न मालति कर (पर)गास
ताबे न ता[१] (चा)हि मधु[२] (प) विलास।
लोभ परिहरि[३] सूनहि राँक
धके कि कतहु[४] डूबबि[५] पाक[६] ॥ ध्रु० ॥
तेज मधुकर ए[७] अनुबन्ध
कोमल कमल लीन मकरन्द।
एखने इछसि अहेन[८] सङ्ग
ओ अति सैसवे[९] न बुझ रङ्ग ॥
कर मधुकर दिढ[१०] गेआँन[११]
अपने आरति न[१२] मिल आन[१३] ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३८, प० १०६, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १४०)—१ ताहि-। २ मधुकर। ३ परीहरि। ४-५-६ केओ कुअ डूब विपाक। ७ एहन। ८ एहन। १० दिढ़।

सं० अ०—३ परीहरि। ४ ध' कए कि कतहु। ५-६ डूबबि पाँक। ७ तेजह मधुकर एहो। ८ ईछसि अइसन। ९ सैसवे। ११ (अपन) गेआन। १२ नहि। १३ आन।

मि० म० (पद-सं० २८८)—१ ताहि। ३ परीहरि। ४ केओ। ५ कुइ। ६ विपाक। १० तो हे दिढ़। ११ गेआन।

झा (पद-सं० १००)—५-६ डूबविपाक।

शब्दार्थ—(पर) गास=प्रकाश। परिहरि=त्याग करके। राँक=(रङ्क—सं०) दीन। धके=धर-पकड़ करके। पाक=पाँक=पङ्क। अनुबन्ध=विचार।

अर्थ—जबतक मालती प्रकाश नहीं करती, (अर्थात्—विकसित नहीं होती) तबतक भ्रमर उससे विलास नहीं चाहता।

अरे दीन (भ्रमर)! लोभ त्यागकर सुनो—धर-पकड़ करके (अर्थात्—जबरदस्ती) कहीं (वह) पंक में डूबेगी (फँसेगी)?

हे मधुकर! इस विचार का त्याग करो। (अभी) मकरन्द कोमल कमल में लीन है।

अभी (तुम) इस प्रकार सङ्ग की इच्छा करते हो? (यह उचित नहीं।) अति शैशव के कारण वह (रति-) रङ्ग नहीं समझती।

हे मधुकर! (तुम अपना) ज्ञान दृढ करो। अपनी आतुरता से दूसरा नहीं मिल सकता।

धनछीरागे—

[१०२]

जञो डिठिअओलए[१] इ[२] मति तोरि
पुनु हेरसि हो[३] खापरि[४] मोरि[५]।
भेल केकर धए हठए परनाह
बाघ मिता न जीवे पए आह॥ ध्रु०॥
अइसना सुमुखि करिअ कके रोस[६]
मञे कि बोलिबो[७] सखि तोरे दोस[८]।
अहेने अवयवे इ[९] बेबहार
पर पीडाए जीवन थिक छार॥
भल कए पुछलए[१०] घुरि संसार[११]
तर सूते गढि[१२] काट कुम्भार।
गुन जञो रह गुणनिधि[१३] सञो सङ्ग
विद्यापति कह इ बड[१४] रङ्ग॥

ने० पृ० ३८, प० १०७, पं० ४

सं० अ०—२ ई। ६ रोष। ७ बोलब। ८ दोष। ९ अइसन अवअब ई। १३ गुन रह जञो गुननिधि। १४ ई बड।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४५७)—१ डिठिका ओल। २ एहि। ३ हेरसि किए। ४ परि। ५ गोरि। ९ एहेन अवथ रे इ। ११ सँसार। १२ गढ़ि। १३ गुननिधि।

मि० म० (पद-सं० ४२९)—१ डिठिका ओल। २ एहि। ३ हेरसि किए। ४ परि। ५ गोरि। ९ एहन अवथ रे इ। ११ सँसार। १२ गढ़ि। १३ गुननिधि। १४ बड़।

झा (पद-सं० १०१)—१ डिठिका ओल। २ एइ। ३ हेरसि हो। ४ खा परि। ५ गोरि। ९ ई। १० सिषलसि।

शब्दार्थ—डिठिअओलए = दृष्टिपात किया = नजर लगाई। हेरसि = देखते हो। खापरि = खपड़ी। मोरि = मेरी। मिता = मित्र। आह = दया। ककें = क्यों। अहेने = अइसन = ऐसा। तर सूते = नीचे के धागे से। रङ्ग = आनन्द।

अर्थ—यदि (तुमने मेरी ओर) दृष्टिपात किया और तुम्हारी यही बुद्धि (दृष्टिपात करने की बुद्धि) रही, तो मेरी खपड़ी को देखते हो?

हठपूर्वक पकड़ करके दूसरे का स्वामी किसका (अपना) हुआ? (यदि) व्याघ्र मित्र (हो, तो भी उसे) जीव पर दया नहीं आती।

हे सुमुखी! ऐसे (व्यक्ति) पर रोष क्यों करती हो? हे सखी! मैं क्या कहूँ? (सब-कुछ) तुम्हारा ही दोष है।

इस तरह के अवयव के रहते हुए भी ऐसा व्यवहार? दूसरों को पीड़ा देनेवाला जीवन छार (राख के समान तुच्छ) है।

संसार-भर घूम-फिरकर अच्छी तरह पूछ लो—कुम्भकार भी (घड़ा) गढ़कर धागे से (उसके) तल (अधोभाग) को ही काटता है। (अर्थात्—कुम्भकार भी घड़े का गला नहीं काटता है।)

यदि गुण हो, तो गुणवान् का संग निभ सकता है। विद्यापति कहते हैं—यह (गुण और गुणी का संयोग) बड़ा आनन्ददायक होता है।

धनछीरागे—

[१०३]

चान्द गगन रह आओर तारागण
सुर[1] उगए परचारि।
निचल सुमेरु अथिक कनकाचल
आनब कओने पर चारि[2] ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—१ सूर। २ परि चारि।

कन्हाइ नयनहुँ[३] हलब निबारि।
जे अनुपम उपभोगे न आबए
की फल ताहि निहारि॥
जे चुरु[४] कए साएर सोषए[५]
जीबए[६] सुरासुर मारि।
जल थल पाए समहि सम (पेलए
से पाबए ई नारि॥)[७]
दूती वचने[८] जाहि जे फाबए
पाहन हीरा लाग।
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ३९(क), प० १०८, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १५)—

लघु लघु संचर[१] कुटिल कटाख। दुअओ नयन लह एकहोक[२] लाख।
नयन बयन दुइ उपमा देल। एक कमल दुइ खञ्जन खेल॥
कन्हाइ नयना हलिअ निवारि।
जे अनुपम उपभोग न आबए की फल ताहि निहारि॥
चाँद गगन वस अओ तारागन सूर उगल परचारि।
निचय सुमेरु अथिक कनकाचल आनब कओने उपारि।
जे चूरू[३] कए सायर सोखल जिनल सुरासुर मारि।
जल थल नाव समहि सम चालए से पाबए एहि नारि॥
भनइ विद्यापति जनु हरड़ावह नाह न हियरा लाग।
दूती वचन थिर कए मानव राए सिवसिंह[४] बड़ भाग॥

मि० म० (पद-सं० ३७, न० गु० से)—१ सञ्चर। २ एक होक। ३ चुरू। ४ सिवसिंघ।

झा (पद-सं० १०२)—२ परचारि। ७ (की फल ताहि) परचारि। ८ दूती व्याज।

शब्दार्थ—गगन = आकाश। सुर = (सूर—सं०) सूर्य। निचल = निश्चल। अथिक = है। कनकाचल = सोने का पहाड़। कओने पर = किस तरह। चुरु = चुल्लू। साएर = सागर। पाए = (पाद—सं०) पाँव। पेलए = उल्लंघन करे। फाबए = लाभ हो। पाहन = पत्थर।

---

३ नअनहुँ। ४ चूरू। ५ सोँखए। ६ जितए।

अर्थ—आकाश में चन्द्रमा और तारे रहते हैं, सूर्य (अपना) प्रचार करके (प्रकाश फैलाकर) उदित होता है, अचल सुमेरु सोने का पहाड़ है; (लेकिन) चारों को किस तरह ला सकते हैं ?

हे कृष्ण ! आँखों को बचाकर रखिए। जो अनुपम (वस्तु) उपभोग में नहीं आती, उसे देखने से क्या फल ?

जो चुल्लू में (भरकर) समुद्र को सोंख सकता है, जो सुर और असुर को मारकर जी सकता है, जल और स्थल को समान रूप से पाँव-पैदल लाँघ सकता है; वही इस नारी को पा सकता है।

(फिर भी) दूती के वचन से जिसे जो लाभ हो जाय (अर्थात्, दूती के कहने-सुनने से ही यह किसी को उपलब्ध हो सकती है। अन्यथा इसके लिए) हीरा भी पत्थर ही है। (अर्थात्—कृष्ण भी कुछ नहीं हैं।)

विशेष—अन्त में एक पद की छूट प्रतीत होती है।

धनछीरागे—

[१०४]

अपनेहि[१] पेम[२] तरुअर बाढल[३]
कारण[४] किछु नहि भेला।
साखा पल्लव[५] कुसुमे बेआपल
सौरभ[६] दह[७] दिस[८] गेला ॥ ध्रु० ॥
सखि हे दुरजन दुरनय[९] पाए।
मूरा[१०] जओ मूड़ह[११] सओ भागल[१२]
अपदहि[१३] गेल सुखाए ॥
कुलक धरम पहिलहि[१४] अछिआतल[१५]
कओने[१६] देब पलटाए।
चोर जननि जओ[१७] मने मने झाखओ[१८]
रोओ[१९] वदन झपाए[२०] ॥
अइसना[२१] देह गेह न सोहाबए
बाहर बम जनि आगि।

सं० अ०—१ अपनहिँ । २ पेमक । ४ कारन । ५ पल्लव-कुसुमेँ । ६-७-८ सउरभ दहो दिस गेला। ९ दुरनअ। ११ मूलहिँ । १२ भाङ्गल। १३ अपदहिँ । १८ झाँखिअ। १९-२० कान्दिअ बदन झँपाए।

विद्यापति कह अपनहि[22] आउति[23]
सिरि सिवसिंह[24] लागि ॥

ने० पृ० ३६, प० १०६, पं० १

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ५१)—१ पहिलहिँ। २ पेमक। ४ कारन। ६ सौरभे। ७ दिस। ८ भरि। ९ दुरनए। ११ मूलहिँ। १२ माङ्गल। १३ अपदहिँ। १४ पहिलेहिँ। १५ सुनि आउल। १८ भाखिअ। १९ कान्दिअ। २० भम्पाए। २१ ऐसने। २२ अपनेहिँ। २३ आउत। २४ सिवसिंह रस लागि।

न० गु० (पद-सं० ४३९)—१ अपनहि। ३ बाढ़ल। ४ कारन। ५ पलव। १० मूर। ११ मूड़हि। १२ माँगल। १५ अलि आएल। १७ निजओ।

मि० म० (पद-सं० १४७)—३ बाढ़ल। ४ कारन। १० मूर। ११ मूड़हि। १२ माँगल। १५ अलि आओल। १६ कओने। १८ भाखिओ। १९ रोओ ँ। २० भपाअ। २४ सिवसिंघ।

भा (पद-सं० १०३)—११ मूड़हि।

शब्दार्थ—अपनेहि = स्वयमेव। तरुअर = वृक्ष। भेला = हुआ। मूरा = मूली। मूड़ह = मूल से = जड़ से। भागल = टूट गया। अपदहि = विना अवसर के ही। अळिआतल = विदा किया। भाखओ = भँखती हूँ। लागि = लिए।

अर्थ—प्रेम का वृक्ष स्वयमेव बढ़ गया। कुछ भी कारण नहीं हुआ। (उस वृक्ष की) शाखा पल्लवों और फूलों से भर गई। सौरभ दसो दिशाओं में (फैल) गया।

हे सखी! जिस तरह मूली जड़ से टूट जाती है, (उसी तरह) दुर्जन की दुर्नीति को पाकर, (वह प्रेम-वृक्ष टूट गया और) विना अवसर ही सूख गया।

(मैंने) कुल-धर्म को पहले ही विदा किया; (उसे) कौन लौटा देगा?

चोर की माता की तरह (मैं) मन-ही-मन भँखती हूँ (और अपने) मुँह को ढककर रोती हूँ।

ऐसी (परिस्थिति में) न देह सुहाती है (और) न घर सुहाता है। (जान पड़ता है,) जैसे बाहर (कोई) आग उगल रहा हो।

विद्यापति कहते हैं—श्रीशिवसिंह के लिए (वह) स्वयं आयेगी।

धनछीरागे—

[१०५]

पहिलहि[1] परसए करे[2] कुचकुम्भ
अधर पिबए के कर आरम्भ।
तखनुक[3] मदन पुलके[4] भरि पूज
निवीबन्ध[5] बिनु फोएले फूज ॥ ध्रु० ॥

२२-२३-२४ विद्यापति भन अपनहिँ आउति। सिरि सिवसिंह रस लागि।

सं० अ०—१ पहिलहिँ। २ करेँ। ३ तखनहिँ। ४ पुलकेँ। ५ नीवीबन्ध।

ए सखि[६] लाजे[७] करब[८] की तोहि
कान्हक[९] कथा पुछह जनु मोहि ।
धम्मिल भार हार अरुझाव
पीन पयोधर[१०] नख कत[११] लाव ॥
बाहु बलय[१२] आकम भरे[१३] भाग[१४]
अपनि[१५] आइति नहि अपना[१६] आङ्ग ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ३९, प० ११०, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५७१)—५ नीवीबन्ध । ६ सखी । ८ कहब । ९ काह्नुक । ११ खत । १३ आँकममरे । १४ माङ्ग । १५ अपन ।

मि० म० (पद-सं० ४८९)—३ तखनक । ५ नीवीबन्ध । ९ कान्हुक । १३ आँकमभरे ।

झा (पद-सं० १०४)—८ कहब ।

शब्दार्थ—परसए = स्पर्श करते हैं । पुलक = रोमांच । फोएले = खोले । फूज = खुल गया । धम्मिल = (धम्मिल्ल—सं०) केश-कलाप । अरुझाव = उलझा दिया । बलय = कङ्कण । आकम = आलिङ्गन । भाग = टूट गया । आइति = (आयत्त—सं०) अधीन ।

अर्थ—पहले हाथ से कुच-कुम्भ का स्पर्श करते हैं, (फिर) अधर-पान करना आरंभ करते हैं ।

उस समय रोमाञ्च हो आता है, जिससे मानों कामदेव की पूजा होती है । नीवी-बन्ध विना खोले ही खुल जाता है ।

हे सखी ! (मैं) तुमसे क्या लज्जा करूँगी ? (फिर भी) कृष्ण की बात मुझसे मत पूछो ।

(उन्होंने) केश-कलाप के भार में हार को उलझा दिया (और) पीन पयोधर में कितने नख-क्षत किये ।

आलिङ्गन के भार से (मेरे) बाहु-वलय टूट गये । अपना अङ्ग (भी) अपने अधीन नहीं रहा ।

धनछीरागे—

[१०६]

ताके निवेदिअ[१] जे मतिमान
ज(न)लहि[२] गुण[३] फल के नहि जान ।
तोरे वचने कएल परिछेद
कौआ मूह[४] न भनिअए वेद ॥ ध्रु० ॥

---

७ लाजेँ । ८ कहब । १० पओधर । ११ खत । १२ बलअ । १३ आँकम भरेँ । १४ भाङ्ग । १६ आपन ।

सं० अ०—२ जनलहिँ । ३ गुन । ४ मूँह ।

तोहे[५] बहुवल्लभ हमहि[६] अञानि
तकराहुँ कुलक धरम भेलि हानि ।
कएल गतागत तोहरा लागि
सहजहि रयनि[७] गमाउलि जागि ॥
धन्ध बन्ध[८] सफल[९] भेल काज
मोहि आबे तन्हि की कहिनी लाज[१०] ।
दूती वचन सबहि[११] भेल सार
विद्यापति कह कवि कठहार[१२] ॥

ने० पृ० ४० (क), प० १११, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५१५)—१ निवदिअ। २ जलहि। ३ गुन। ४ मुह। ९ सकल। १२ कण्ठहार।

मि० म० (पद-सं० ३५४)—२ जलहि। ३ गुन। १० लाम। १२ कण्ठहार।

झा (पद-सं० १०५)—२ जलहि।

शब्दार्थ—ताके = उसको। परिछेद = निश्चय। अञानि = अज्ञानी। गतागत = यातायात। रयनि = रात। धन्ध बन्ध = छल-कपट।

अर्थ—जो बुद्धिमान् (समझदार) है, उसी को निवेदन करना चाहिए। कौन नहीं जानता कि गुण समझने पर ही फल मिलता है।

तुम्हारे कहने से (मैंने उसे ले आने का) निश्चय किया। (लेकिन, अब मालूम हुआ कि) कौआ के मुँह से वेद नहीं निकलता। (अर्थात्—तुम्हारे मुँह से सत्य नहीं निकल सकता।)

तुम बहुतों के वल्लभ हो—(यह जानकर भी मैं उसे ले आई। इसलिए) मैं ही अज्ञानी हूँ। (फल यही हुआ कि) उसके कुलधर्म की भी हानि हो गई।

तुम्हारे लिए मैंने यातायात किया, अनायास जगकर रात बिताई।

छल-प्रपञ्च करके कार्य सफल हुआ। (किन्तु) मुझे अब उससे क्या ? कहते भी लज्जा होती है।

कवि-कण्ठहार विद्यापति कहते हैं कि दूती का वचन सब प्रकार से सत्य हुआ।

---

५ तोहें। ६ हमहिँ। ७ सहजहिँ रजनि। ८ धन्धेँ-बन्धेँ। ११ सबहिँ।

धनछीरागे—

[१०७]

अलसे अरुण[१] लोचन तोर
अमिञे मातल चान्द[२] चकोर।
निचल भौँह[३] न[४] ले बिसराम
रन[५] जीनि[६] धनु तेजल काम ॥ ध्रु० ॥
ए रे[७] राधे[८] न कर लथा
उकुति गुपुत[९] बेकत[१०] कथा।
कुच सिरीफल[११] सहज[१२] सिरी
केसु विकशित[१३] कनक[१४] गिरी ॥
अलक[१५] बहल[१६] उधसु केस
हसि पलिछ्ल[१७] कामे सन्देश
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४०, प० ११२, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २६७)—१ अलसे पुरल। २ चाँद। ३ भँउह। ४ जे। ५ रण। ६ जिनि। ७ अरे रे। ८ सुन्दरि। ९ बेकत। १० गुपुत। ११ सिरिफल। १२ करज। १३ विकसित। १४ कनअ १५ बहल। १६ तिलक। १७ परिछल।

मि० म० (पद-सं० २९८)—१ अलसे पुरल। २ चाँद। ३ भँउह। ४ जे। ६ जिनि। ७ अरे रे। ८ सुन्दरि। ९ बेकत। १० गुपुत। १२ करज। १३ विकसित। १५ बहल। १६ तिलक। १७ परिछल।

झा (पद-सं० १०६)—१ आलसे अरुण। २ चन्द। ५ रण।

शब्दार्थ—अरुण = लाल। लोचन = आँख। अमिञे = अमृत से। जीनि = जीत कर। लथा = लाथ, बहाना। उकुति = उक्ति। गुपुत = गुप्त। बेकत = व्यक्त। सिरी = (श्री—सं०) शोभा। केसु = (किंशुक—सं०) पलाश। कनक गिरी = सोने का पहाड़। अलक = केश।

अर्थ—आलस्य से तुम्हारी आँखें लाल हैं। (मालूम होता है, जैसे) चन्द्रमा के अमृत से मत्त चकोर हो।

भौँह अचल होकर विश्राम ले रहा है। (मालूम होता है,) जैसे कामदेव ने रण जीत करके धनुष त्याग दिया हो।

सं० अ०—१ अलसैँ अरुन। ३ भँउह। ४ जे। ८ सुन्दरि। १२ करज। १३ केसू विकसित। १५-१६ बहल तिलक उधसु केसे। १७ हँसि परीछल।

अरी राधे ! बहाना मत करो। (तुम्हारी) उक्ति से (ही) गुप्त बात व्यक्त (हो रही है)।

श्रीफल के समान कुच पर (नख की) शोभा (ऐसी जान पड़ती है, जैसे) कनकाचल पर पलाश फूले हों।

तिलक बह गया (और) केश अस्त-व्यस्त हो गये। (जान पड़ता है, जैसे) कामदेव ने हँस करके सन्देश का परीक्षण किया हो। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

धनछीरागे—

[१०८]

जति जति धमिश्र[1] अनल
अधिक विमल हेम।
रभस कोप[2] कए कहु नागर
अधिक करए पेम ॥ ध्रु० ॥
साजनि मने न करिअ रोस[3]
आरति जे किछु बोलए बालभु
तँ[4] नहि तन्हिक दोस[5] ॥
कत न तुअ अनाइति दरसि
कत कए नहि दीब।
ओ नहि अनङ्ग अथिक भुजङ्ग
पवन पीबि जे जीब ॥
सरस कवि विद्यापति गाओल
रस नहि अवसान।
राजा सिवसिंह[6] रूपनराएण[7]
लखिमा देवि रमान ॥

ने० पृ० ४०, प० ११३, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५०७)—४ तें। ७ रूपनरायन।

मि० म० (पद-सं० १३५)—२ कोप कोप। ६ सिवसिंघ। ७ रूपनराएन।

झा (पद-सं० १०७)—१ घमिश्र। ४ तेँ।

सं० अ०—३ रोष। ४ तञे। ५ दोष। ७ रूपनराञेन।

शब्दार्थ—जति = जितना। धमिअ = फूँका जाता है। अनल = आग। हेम = सोना। रभस = आवेश। पेम = प्रेम। आरति = आर्त्ति। अनाइति = (अनायत्ति—सं०) परवशता। दीब = (दिव्य—सं०) शपथ। अवसान = अन्त।

अर्थ—आग में जितना ही फूँका जाता है, सोना (उतना ही) अधिक विमल होता है।

नागर आवेश में (जितना अधिक) क्रोध करता है, (उतना ही) अधिक प्रेम करता है।

हे सखी! मन में रोष मत करो। स्वामी आर्त्त होकर जो कुछ बोलता है, उसमें उसका दोष नहीं।

तुम्हारी कितनी परवशता दिखलाई, कितनी शपथ की; (फिर भी, वह मानने-वाला नहीं। कारण,) वह अनङ्ग भुजङ्ग नहीं है, जो हवा पीकर जीता है। (अर्थात—अनङ्ग की तृप्ति के लिए तुम्हारा रूप आवश्यक है।)

सरस कवि विद्यापति कहते हैं कि रस का अन्त नहीं। लखिमा देवी के रमण रूपनारायण शिवसिंह (उसे जानते हैं।)

धनछीरागे—

[१०६]

से अति नागर गोकुल कान्ह
नगरहु नागरि तोहि सबे जान।
कत बेरि साजनि की कहब बुझाए
कएले धन्धे धरम दुर[1] जाए॥
सुन्दरि रूप गुणहु[2] सञो[3] सार
आदि अन्त लह[4] महघ पसार।
सरूप[5] निरुपि[6] बुझउलिसि तोहि
जनु परतारि पठाबसि मोहि॥
विद्यापति कह बुझ रसमन्त
सिरि सिवसिंह[7] लखिमा देवि कन्त॥

ने० पृ० ४१(क), प० ११४, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ९३)—१ दूर। २ गुनहु। ४ नहि। ६ निरूपि।

मि० म० (पद-सं० ४५)—२ गुनहु। ३ सभा। ४ नहि। ५ सरुप। ७ सिवसिंघ।

झा (पद-सं० १०८)—४ नहि। ६ निरूपि।

शब्दार्थ—धन्धे = छल से। महघ = (महार्घ—सं०) महँगा। पसार = (प्रसार—सं०) बाजार। सरूप = सत्य। परतारि = फुसलाकर।

अर्थ—कृष्ण गोकुल के महान् नागर हैं (और) नगर में सब लोग तुम्हें (भी) नागरी समझते हैं।

हे सखी! कितनी बार समझाकर कहूँगी? छल करने से धम दूर चला जाता है।

हे सुन्दरी! गुण से भी (बढ़कर) रूप सार है (और) बाजार आदि-अन्त में ही महँगा होता है।

(मैंने) सत्य का निरूपण करके तुम्हें समझाया। मुझे फुसला करके (वापस) मत भेजो।

विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के स्वामी रसज्ञ श्रीशिवसिंह (इसे) समझते हैं।

धनछीरागे—

[११०]

कोटि कोटि देल तुलना हेम
हीरा सओ हे हरदि भेल पेम।
अति परिमसने पिअर[1] रङ्ग
मुखमण्डन[2] केवल रहु सङ्ग॥ ध्रु०॥
साजनि की कहब कहहि न जाए
भलेओ मन्द होअ अवसर पाए।
नवल[3] बात छल[4] पहिलुक मोह
किछु दिन गेले[5] भेल पनिसोह॥
अबे नहि रहले निछ्छेओ[6] पानि
का(स)रि[7] नस[8] हे[9] कि करब जानि।
कपट बुझाए बढओलन्हि दन्द
बड़ाक[10] हृदय बडेओ हो मन्द[11]॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ४२(क), प० ११५, पं० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ४०६)—१ अति परिम सने पिअर। २ मुख मण्डन। ३-४ नव नव ऊछल। ६ निछ छेओ। ७-८ कारिनस। १० बड़ाकु।

झा (पद-सं० १०६)—२ मुखमण्डल। ७-८-६ कारि न सहे।

सं० अ०—१ अति परिमलने पीअर। ५ गेलैं। ११ बडाक हृदअ बडेओ होअ मन्द।

शब्दार्थ—हेम = सोना। हरदि = हल्दी। परिमसने = (परिमर्षण—सं०) पीसने से। पिअर = पीला। मुखमण्डन = मुँहदिखावा। पनिसोह = पानी-सा। निछछेओ = निछक्का = निरा। का (स)रि = (कासार—सं०) तालाब। नस = नष्ट हो गया।

अर्थ—सोने से (जिसकी) कोटि-कोटि तुलना दी, (वह) प्रेम हीरा से हल्दी हो गया। (अब) खूब पीसने से (ही) रंग पीला होगा। संग तो मुँहदिखावे (के लिए) है। हे सखी! (मैं) क्या कहूँ? (कुछ) कहा नहीं जाता। भला (आदमी) भी अवसर पाकर मन्द हो जाता है।

पहले का वह नया-नया (प्रेम) मोह था। कुछ दिन बीत जाने पर (वह) पनिसोह हो गया।

अब (तो) निछक्का पानी भी नहीं रहा। तालाब नष्ट हो गया। समझकर क्या करूँगी?

कपट से समझा-बुझाकर (पीछे) द्वन्द्व बढ़ाया। बड़े (लोगों) का हृदय बड़ा नीच होता है।

धनछीरागे—

[१११]

से अतिनागरि[१] तञे[२] सब[३] सार
पसरओ मल्ली[४] पेम पसार।
जौवन नगरि[५] बेसाहब[६] रूप
तते मुलइहह[७] जते सरूप ॥ ध्रु० ॥
साजनि रे[८] हरि रस बनिजार
गोप भरमे जनु बोलह गमार।
विधिबसे अधिक करह[९] जनु[१०] मान
सोरह[११] सहस गोपीपति कान्ह ॥
तोहँ हुनि उचित रहत नहि भेद
मनमथ मधथे[१२] करब परिछेद ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४१, प० ११६, पं० ४

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ४६)—१ अतिनागर।-३ रस। ४ वीथी। ५ नगरँ। ६ बेसाहत।

सं० अ०—१ अतिनागर। २ तोञ। ३ रस। ४ बीथी। ५ नगर। ८ हे। ११ सोड़ह। १२ मधथेँ।

छह पंक्तियों के बाद निम्नलिखित पाठ है—

विधिवसे अवे करव नहि मान
जइअओ सोलह सहसपति कान्ह ।
तन्हि तोहँ उचित बहुत जे भेद
मनमथ मधथे करव परिछेद ।
भन विद्यापति एहु रस जान
राए सिवसिंह लखिमा दे रमान ॥

न० गु० (पद-सं० ६२)—१ अतिनागर । २ तोजे । ७ मुल होइह । ६ कर ।

मि० म० (पद-सं० ५५)—१ अतिनागर । ७ मुल इहह । ६ कर ।

झा (पद-सं० ११०)—१ अतिनागर । १० जन ।

शब्दार्थ—पसरओ = फैल जाय । मल्ली = मल्लिका । बेसाहब = खरीदना । मुलइहह = मोल करना । सरूप = सत्य = उचित । बनिजार = व्यापारी । गमार = गँवार । मधथे = (मध्यस्थ—सं०) पंच । परिछेद = (परिच्छेद—सं०) निर्णय ।

अर्थ—वे श्रेष्ठ नागर हैं (और) तुम सब (नागरियों) में श्रेष्ठ हो । (इसलिए) वीथी-वीथी में प्रेम का बाजार फैल जाय । (अर्थ—संपादकीय अभिमत से ।)

यौवन-रूपी नगर में (अपने) रूप को बेचना । जितना उचित हो, उतना ही मोल-भाव करना ।

हे सखी ! कृष्ण रस के व्यापारी हैं । गोप के धोखे (उन्हें) गँवार मत कहो ।

संयोगवश अधिक मान मत करो ! (कारण,) कृष्ण सोलह हजार गोपियों के स्वामी हैं । (अर्थात्—अधिक मान करने से रूठकर वे दूसरी गोपी के पास चले जायेंगे, तो तुम्हें पछताना पड़ेगा ।)

वास्तव में उनके साथ तुम्हारा भेद नहीं रहेगा । (स्वयं) कामदेव पंच बनकर निर्णय कर देगा ।

धनछीरागे—

[११२]

मालति मधु मधुकर कर पाँन[१]
सुपुरुष[२] जञो हो गुणक[३] निधान[४] ॥ ध्रु० ॥
अबुझ न बुझए भलाहु बोल मन्द
भेँभ[५] न पिबए कुसुम मकरन्द ॥ ध्रु० ॥
ए सखि कि कहब अपनुक दन्द
सपनेहुँ जनु हो कुपुरुष[६] सङ्ग ।
दूधे[७] पटाइअ सीँचीअ नीत[८]
सहज न तेज करइला तीत ॥

सं० अ०—१ पान । ३ गुनक । ७ दूधे । ८ सीँचिअ नीत ।

कते जतने उपजाइअ गून
कहल न बुझए हृदयक[९] सून ।
मन्दा रतन भेद नहि जान
बान्दर[१०] मूह[११] न सोभए पान ॥
विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४२(क), प० ११७, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४३१)—१ पान । ३ गुनक । ५ भेक । ८ तीन । १० मन्दा बान्दर । ११ मुह ।

मि०म० (पद-सं० ४१८)—१ पान । २ सुपुरूस । ३ गुन । ५ भेक । ६ कुपुरूस । ८ नीत । १० मन्दा बान्दर ।

झा (पद-सं० १११)—१ पान । ४ निधान । ५ भेँभ । ८ नीत ।

शब्दार्थ—भेँभ = कीटविशेष । मकरन्द = पराग । नीत = नवनीत ।

अर्थ—(जिस प्रकार) मधुकर मालती का मधु पान करता है (उसी प्रकार) सुपुरुष यदि गुणनिधान है (तो वह भी मधु-पान कर सकता है) ।

निर्बुद्धि (कुछ भी) नहीं समझता । (वह) भले को भी बुरा कहता है । भेँभ फूलों का रस नहीं पीता ।

हे सखी ! (मैं) अपना द्वन्द्व क्या कहूँ ? (इतना ही कहती हूँ कि) स्वप्न में भी कुपुरुष का सङ्ग नहीं हो ।

दूध से पटाओ (या) नवनीत से सींचो; (किन्तु) करैला (अपना) स्वाभाविक तीतापन नहीं तजता ।

कितने (ही) यत्न से गुण उपजाओ; (लेकिन) हृदयशून्य कहना नहीं समझता ।

नीच (व्यक्ति) रत्नों का भेद नहीं जानता । (और अधिक क्या कहूँ ?) बन्दर के मुँह में पान नहीं सोहता ।

धनछीरागे—

[११३]

आसा दइए उपेखह आज
हृदय[१] विचारह कओनक लाज ।
हमे अबला थिक अलप गेँआन[२]
तोहर छैलपन[३] निन्दत आन[४] ॥ ध्रु० ॥

---

९ बूझए हृदअक । १० बानर । ११ मूँह ।

सं० अ०—१ हृदअ । २ गेआन । ३ छिएलपन । ४ आन ।

सुपहु जानि हमे सेश्रोल पाश्रो
श्राबे मोर प्राण[5] रहश्रो[6] कि जाश्रो।
कएल विचारि श्रमिञ के पान
होएत हलाहल इ[7] के जान ॥
कतहु न सुनले श्रइसन बात
साङ्कर[8] खाइते[9] भाङ्गए दात[10] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४२(क), प० ११८, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४८१)—२ गेश्रान। ६ रहत। ८ सांकर।

मि० म० (पद-सं० ४०३)—२ गेश्रान। ६ रहत। ८ सांकर। ६ खाइत।

झा (पद-सं० ११२)—७ ई।

शब्दार्थ—उपेखह = उपेक्षा करते हो। कञोनक = किसकी। सेश्रोल = सेवा की। पाश्रो = (पाद—सं०) पैर। श्रमिञ = श्रमृत। हलाहल = विष। साङ्कर = (शर्करा—सं०) शक्कर। भाङ्गए = टूटता है। दात = दाँत।

श्रर्थ—(पहले) श्राशा देकर श्राज उपेक्षा करते हो? किसकी लज्जा हृदय में विचारते हो? (श्रर्थात्—किससे लजाते हो?)

मैं श्रबला हूँ, (मेरा) ज्ञान श्रल्प है। (किन्तु) दूसरे तुम्हारी चतुराई की निन्दा करेंगे।

श्रच्छा प्रभु समझकर मैंने (तुम्हारे) चरणों की सेवा की (शरण ली)। (इसके लिए) श्रब मेरे प्राण रहें या जायँ।

(मैंने) विचार कर श्रमृत-पान किया। (किन्तु वह श्रमृत) विष हो जायगा—यह कौन जानता था?

ऐसी बात कहीं नहीं सुनी थी (कि) शक्कर खाने से दाँत टूट जाता है।

धनछीरागे—

[११४]

प्रथमहि कएलह नयनक[1] मेलि
श्रासा देलह हसि[2] कहु हेरि।
ते[3] हमे[4] श्राज श्रएलाहु तुश्र पास
वचनेहु[5] तोहे[6] श्रति भेलि हे उदास ॥ ध्रु० ॥

---

५ प्रान। ७ ई। ८ साँकर। १० दाँत।

सं० श्र०—१ नञनक। २ हँसि। ३ तञे। ५ बचनेहुँ। ६ तोहेँ।

साजनि तोहर सिनेह भल भेल
पहिला चुम्बनाक[7] दुर[8] गेल ।
आबहु करिअ रस परिहरि[9] लाज
अङ्गिरल ऋन[10] छड़ाबह आज ॥
अपना वचन नही[11] परकार
जे अगिरिअ[12] से देलहि नितार ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४२, प० ११६, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ४४६)—३-४ तेह से । ७ चुमुन कि । ८ दूर । ९ परिवैहरि । १० बाए ।
झा (पद-सं० ११३)—५ वचने । ७ चुम्बन कि । १० ऋण ।

शब्दार्थ—ते=इसीलिए । चुम्बनाक=चुम्बन के । परिहरि=त्यागकर । अङ्गिरल=अङ्गीकार किया हुआ । छड़ाबह=छुड़ाओ, चुकाओ । परकार=(प्रकार-सं०) उपाय । अगिरिअ=अंगीकार किया । नितार=निस्तार ।

अर्थ—पहले (तुमने) आँखों का सम्मिलन किया (आँखें लड़ाईं)। हँसती हुई देखकर आशा दी ।

इसीलिए, आज मैं तुम्हारे पास आई; (लेकिन) तुम तो बात (करने) में भी अत्यन्त उदास हो गई ।

हे सखी ! तुम्हारा स्नेह भला रहा, (जो कि) पहले चुम्बन में ही दूर चला गया ।

अब भी लज्जा त्यागकर रस (शृङ्गारिक व्यवहार) करो । अंगीकृत ऋण को आज चुकाओ ।

अपने वचन में (अर्थात्—वचनबद्ध हो जाने पर) कोई उपाय नहीं । जो अंगीकार किया, उसे देकर ही निस्तार हो सकता है ।

धनछीरागे—

[११५]

तोरा अधर अमिञे लेल बास
भल जन नेञोतल दिअ[1] बिसबास ।
अमर होइअ जदि कएले पान
की जीवन जञो ख(ा)ण्डत[2] मान ॥ ध्रु० ॥

---

१० रीन । ११ वचने नहि । १२ अँगिरिअ ।

सं० अ०—१ दए । २ खण्डित ।

नागरि करबए[3] कर[4] गए[5] झाट।
दिवसक भोजने वर्ष न आट[6] ॥
बथु उपजाए करिअ जे काज।
जे नहि जेमञे तकरा लाज॥
तञे नहि[7] करबए परमुह[8] सून।
पर उपकारे[9] परम होअ पून॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ४३, प० १२०, पं २

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ४०५)—२ खराइत। ४-५ करइ ए। ७ महि।

झा (पद-सं० ११४)—३-४ करब एकर।

शब्दार्थ—अधर = ओष्ठ। अमिञ = अमृत। नेओतल = न्योता दिया। करबए कर = अवश्य करो। झाट = झट। आट = अँटता है, पोसाता है। बथु = वस्तु। काज = भोज-काज। जेमञे = खाए। परमुह = दूसरे के मुख को। सून = शून्य। पून = पुण्य।

अर्थ—तुम्हारे ओष्ठ में अमृत ने वास लिया है (और तुमने) भले आदमी को विश्वास देकर न्योता दिया है।

यदि (कोई इसका) पान कर ले (तो) अमर हो जाय। (किन्तु, इसके लिए विना बुलाये कोई कैसे आ सकता है। कारण,) यदि मान खण्डित हो गया, तो जीवन क्या?

हे नागरी! (यद्यपि एक) दिन के भोजन से वर्ष नहीं पोसाता है (वर्ष-भर का काम नहीं चलता है, तथापि) झट जाकर (यह काम) अवश्य करो।

वस्तु (खाद्य-पदार्थ) उपजा करके यदि कार्य (भोज) किया जाय (तो उसमें) जो नहीं खाता, उसीको लज्जा होती है।

तुम दूसरे के मुख को शून्य मत करो। (अर्थात्—दूसरे को निराश मत करो।) परोपकार में बड़ा पुण्य होता है।

धनछीरागे—

[११६]

जलधि (न) मागए रतन भँडार
चान्द[1] अमिञ[2] दे सब[3] रस[4] सार[5]।
नागर जे होअ कि करत चाहि
जकरा जे रह से दे ताहि॥ ध्रु०॥

---

६ आँट। ७ तोञ नहि। ८ पर मुँह। ९ उपकारेँ।

सं० अ०—३-४-५ सगर संसार।

साजनि कि कहब अपन[६] गेआन[७]।
पर अनुरोधे[८] कतए रह मान ॥
बिनु पओले[९] तकराहु दुर जाए।
दुहु दिस पाए[१०] अनुताप जनाए ॥
पओले[११] अमर होए दहु कोए।
काठ कठिन कुलिसहु[१२] सत होए ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४३(क), प० १२१, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४३२)—१ चाँद। २ अमिअ। ३-४-५ सगर संसार। ७ गेआँन। १० पए।

मि० म० (पद-सं० ४१६)—१ चाँद। २ अमिय। ३-४-५ सबर ससार। ६ आपन। ७ गेआँन।

झा (पद-सं० ११५)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—जलधि = समुद्र। चाहि = चाहकर। तकराहु = उसके भी। अनुताप = पश्चात्ताप। कुलिसहु = वज्र से भी।

अर्थ—समुद्र (किसी से) रत्न-भांडार नहीं माँगता। चन्द्रमा (स्वयं) सब रसों में श्रेष्ठ अमृत देता है।

जो नागर होता है, (वह किसी से कुछ) चाहकर क्या करेगा? जिसको जो रहता है, वह (स्वयं) उसे देता है।

हे सखी! (मैं) अपना ज्ञान क्या कहूँ? दूसरे के अनुरोध से कहीं मान रहता है?

(और) विना (मान) पाये उस (मान नहीं करनेवाले) से भी दूर (हो) जाना पड़ता है। दोनों ओर केवल पश्चात्ताप रह जाता है।

(मान) पाने से ही कौन अमर होता है? (जिसके लिए गई, वह तो) काठ से (भी) कठिन (और) सैकड़ों वज्र (के समान) हो गया।

धनछीरागे—

[११७]

कुच कोरी फल नखखत रेह
नव ससि छन्दे अङ्कुरल नव रेह[१]।
जिव जञो[२] जनि निरधने निधि पाए
षने[३] हेरए खने[४] राष[५] झपाए ॥ ध्रु० ॥

---

७ गेआन। ८ अनुरोधेँ। ९ पओलेँ। १० पए। ११ पओलेँ। १२ कुलिसहुँ।

सं० अ०-१ नव ससि छन्दे अङ्कुरल नव नेह। २ जञो-जन। ३ खने। ५ राखए।

नवि अभिसारिणि[६] प्रथमक सङ्ग
पुलकित होए सुमरि रतिरङ्ग।
गुरुजन परिजन नयन[७] निवारि
हाथ रतन धरि वदन निहारि ॥
अवनत मुख कर पर[८] जनु[९] देख
अधर दरस खत निररि[१०] निरेखि ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४३, प० १२२, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १८५)—१ नेह। ३ खने। ६ अभिसारिनि। ८-९ परजन। १० निरवि।

मि० म० (पद-सं० २६७)—२ जयँ। ३ खने। ६ अभिसारिनि। ८-९ परजन। १० निरवि।

झा (पद-सं० ११६)—१ नेह। ४ घने। १० निवरि।

शब्दार्थ—कुच=स्तन। कोरी फल=बदरी-फल। नख खत=नखक्षत। रेह=रेखा। छन्दे=आकार से। जओ=जैसे। जनि=व्यक्ति। निधि=खजाना। दरस=(दृश्य—सं०) प्रकट। निररि=आँखें फाड़कर।

अर्थ—स्तन-रूपी बदरी-फल में नखक्षत की रेखा (ऐसी जान पड़ती है, जैसे) अभिनव प्रेम नव चन्द्राकार होकर अङ्कुरित हुआ हो।

जिस प्रकार निर्धन व्यक्ति प्राण के सदृश निधि को पाकर उसे (निधि को) देखता है, (फिर दूसरे ही) क्षण में छिपाकर रखता है। (उसी प्रकार नायिका अपने स्तन में लगे नखक्षत को कभी देखती है और कभी छिपाती है।)

नई अभिसारिका है (और) पहला संग है। (इसीलिए) रतिरंग का स्मरण करके वह पुलकित हो रही है।

गुरुजन और परिजन की आँखें बचाकर, हाथ में रत्न लेकर, मुँह को गौर से देखकर—

अधर में प्रकट क्षत को आँखें फाड़कर निरखती हुई मुख को अवनत कर लेती है (कि (कोई) दूसरा देख न ले।

धनछीरागे—

[११८]

तोहे[१] कुलठाकुर हमे कुलनारि
अधिपक अनुचिते[२] किछु न गोहारि।
पिसुने हसब[३] पुतु माथ डोलाए
बडाक[४] कहिनी बडि[५] दुर जाए ॥ ध्रु० ॥

---

६ अभिसारिनि। ७ नअन।

सं० अ०—१ तोहेँ। २ अनुचितेँ। ३ हँसब।

वि० प०—२०

सुन सुन साजनि[6] वचन हमार
अपद न अगिरिअ[7] अपजस भार।
परतह परतिति आबिअ पास
बड[8] बोलि हमहु[9] कएल बिसबास ॥
से आबे मने गुनि भल नहि काज
बाजू[10] राखए[11] आँखिक[12] लाज ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४४, प० १२३, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४८०)—१ तोहें। ४ बड़ाक। ५ बड़ि। ६ साजना। ७ अंगिरिअ। ८ बड़। १० बाजु।

मि० म० (पद-सं० २६६)—१ तोहेँ। ४ बराक। ५ बड़ि। ६ साजन। ७ अंगिरिअ। ८ बड़। ११ बाजु।

झा (पद-सं० ११७)—४ बड़ाक। ८ बड़। ११ राषए।

शब्दार्थ—अधिपक = राजा के। गोहारि = सुनवाई, फरियाद। पिसुने = चुगलखोर। अपद = अस्थान, अनवसर। अगिरिअ = अंगीकार करना। परतह = (प्रत्यह—सं०) प्रतिदिन। परतिति = (प्रतीति—सं०) विश्वास।

अर्थ—तुम कुल-ठाकुर हो (और) मैं कुल-नारी हूँ। यदि राजा ही अनुचित (करने) लगे, तो सुनवाई (फरियाद) नहीं होती।

फिर (भी) चुगलखोर माथा डुलाकर हँसेंगे। (कारण,) बड़ों की बात बहुत दूर तक जाती है।

हे प्रिय! मेरा कहना सुनो। विना अवसर के अयश का भार अंगीकार नहीं करना चाहिए।

प्रतिदिन विश्वास (करके) पास आती थी। बड़ा कहकर (समझकर ही) मैंने तुम्हारा विश्वास किया था।

सो, अब मन में गुनती हूँ (कि मैंने वह) भला काम नहीं (किया)। बड़े आदमी आँख की लाज रखते हैं। (किन्तु तुमने आँख की लाज भी नहीं रखी।)

---

६ साजन। ७ अँगिरिअ। ९ हमहुँ। १० बड़ जन। १२ आखिक।

धनछीरागे—

[११६]

सबे सबतहु कह सहले[१] लहिग्र[२]
जिव जञो जतने[३] जोगग्रोले[४] रहिग्र ॥
परसि हलह जनु पिसुनक बोल
सुपुरुष[५] पेम जीव रह ग्रोल ॥ ध्रु० ॥
मञे सपनेहु[६] नहि सुम(र)ञो[७] देग्रों
ग्रइसन पेम तोंा हल जनु केग्रो ॥
रहिग्र लुकग्रोले[८] ग्रपना गेह
खड[९] कौसले[१०] टुटि जाएत सिनेह ॥
विमुख बुझाए न करिग्रए बोल
मुखसुखें[११] धेङ्गुर[१२] काट पटोर ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४४(क), प० १२४, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६६)—२ नहिग्र। ८ नुकग्रोले। ९ खल। ११ मुखसुखे।

मि० म० (पद-सं० ४६७)—२ नहिग्र। ५ सुपुरुस। ७ सुमञो। ८ नुकग्रोले। ९ खल। ११ मुख सुखे।

झा (पद-सं० ११८)—१२ भेङ्गर।

शब्दार्थ—सबतहु = सबसे। सहले = सहन करने से। लहिग्र = लहता है। जोगग्रोले = जुगाकर। परसि = स्पर्श करके। ग्रोल = ग्रन्त। देग्रो = देव। तोढ़िहल = तोड़े। केग्रो = कोई। गेह = घर। खड कौसले = खल के कौशल (छल) से। धेङ्गुर = झिङ्गुर। पटोर = रेशमी कपड़ा।

ग्रर्थ—सभी सर्वत्र (यही) कहते हैं (कि) सहन करने से ही लाभ होता है। (इसीलिए प्रेम को) प्राण के समान यत्न से जुगाकर रखना चाहिए।

(जिससे) चुगलखोरों की बात (उसका) स्पर्श नहीं कर सके। (कारण,) सज्जनों का प्रेम जीवन-पर्यन्त रहता है।

मैं स्वप्न में भी (दूसरे) देवता का स्मरण नहीं करती। (इसलिए) ऐसे (विशुद्ध) प्रेम को कोई नहीं तोड़े।

सं० ग्र०—१ सहलैं। ३ जतनैं। ४ लुकग्रोलैं। ६ मोञ सपनेहुँ। ९ खल। १० कौसलैं।

(मैं उसे) अपने घर में छिपाकर रखे रहती हूँ। (संभव है, बाहर निकलने से) दुष्ट जनों के कौशल से (वह) स्नेह टूट जायगा।

(जो) विमुख बुझाता है, मैं (उससे) बातें नहीं करती। (विना प्रयोजन क्यों कोई प्रेम तोड़ने की कोशिश करेगा—ऐसा नहीं समझना चाहिए। कारण,) झींगुर (विना प्रयोजन) मुँह के सुख के लिए रेशमी वस्त्र को काट डालता है।

धनछीरागे—

[१२०]

प्रथम सिरीफल[१] गरवे[२] गमग्रोलह
जे[३] गुणगाहक[४] ग्राबे।
गेल जौवन[५] पुनु पलटि न ग्राबए
किछु[६] दिन[७] जा[८] पचताबे[९] ॥ ध्रु० ॥
सुन्दरि, मोरे[१०] बोले[११] करब[१२] ग्रवधाने[१३]।
तोह सनि नारि दोसरि[१४] हमे[१५] ग्रछलिहुँ[१६]
ग्रइसन[१७] उपजु हम[१८] भाने ॥
जौवन[१९] सिरी[२०] ताबे रह[२१] सुन्दरि[२२]
जाबे मदन ग्रधिकारी।
दिन दस गेले छाडि[२३] पलाएत[२४]
सकल जगत परचारी ॥
विद्यापति कह[२५] जुवति लाख[२६] लह
पळल[२७] पयोधर[२८] तूले।
दिने[२९] दिने[३०] ग्राबे[३१] तोहे[३२] तैसनि[३३] होएबह[३४]
घोसिना[३५] घोरक मूले ॥

ने० पृ० ४४, प० १२५, पं० ३

सं० अ०—२ गरबे। ४ गुनगाहक। ५ जउबन। ६-७-८ केवल रह। १०...१३ वचने करह समधाने। १४-१५ दिवस दस। १८ मोहि। १९-२० जउवन रूप। २१-२२ धरि छाजत। २३ सेहग्रो। २४ पळाएत। २८ पग्रोधर। ३१ ग्रागे। ३२ सखि। ३३ ग्रइसनि। ३५ घोसिनि।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६१)—३ जौं। ४ गुनगाहक। ५ जउवन। ६-७-८ केवल रह। १०-११ वचने। १२ करह। १३ समधाने। १४ दिवस। १५ दस। १६ अछलिहु। १७ ऐसन। १८ मोहि। १९ जउवन। २० रूप। २१ धरि। २२ छाजत। २३ सेहओ। २४ पड़ाएत। २५ मन्न। २६ लाखे। २७ पड़ल। ३१ आगे। ३२ सखि। ३३ ऐसनि। ३४ होयवह। ३५ घोसिनी।

मि० म० (पद-सं० २६०)—१ सिरिफल। ३ जौँ। ४ गुनगाहक। ६-७-८-९ केवल रह पछतावे। १०-११-१२-१३ वचने करह समधाने। १४-१५-१६ दिवस दस अछलिहु। १७ ऐसन। १८ मोहि। २० रूप। २१-२२ धरि छाजत। २३-२४ सखि सेहओ पड़ाएत। २७ पड़ल। २९—३४ दिन दिन अगे सखि ऐसनि होयबह। ३५ घोसिनी।

झा (पद-सं० ११९)—२ गरब। ११ बोलब। २३ छाड़ि। ३२ (पाठाभाव)। ३५ घोसिनी।

शब्दार्थ—सिरीफल=(श्रीफल—सं०) वेल। जौवन,सिरी=यौवन-श्री। घोसिना= ग्वालिन का। घोर=मट्ठा।

अर्थ—(जिसके) गुण से ग्राहक आते हैं, (तुमने उस) प्रथम श्रीफल (नवयौवन) को गर्व से गँवा दिया।

गया यौवन फिर लौटकर नहीं आता। कुछ समय के वाद केवल पछतावा रह जाता है।

हे सुन्दरी! (मेरे) वचन पर ध्यान दो। मुझे ऐसा भान हो रहा है (कि मैं भी) तुम्हारी ही तरह एक नारी (अर्थात्—युवती) थी।

यौवन की शोभा तभी तक रहती है, जबतक मदन अधिकारी (रहता है)।

दस दिन (कुछ दिन) बीत जाने पर, वह भी संपूर्ण संसार को जनाकर भाग जायगा।

विद्यापति कहते हैं—लाखों (सभी) युवतियों ने पयोधर लाभ किये; (किन्तु सबके) पयोधर तूल (रूई) के समान (ढीले) पड़ गये।

हे सखी! दिन-प्रतिदिन (तुम भी) वैसी ही हो जाओगी (तुम्हारा भी ऐसा ही मूल्य हो जायगा, जैसा कि) ग्वालिन के मट्ठे का मूल्य (होता है)।

धनछीरागे—

[१२१]

जाबे सरस पिआ[1] बोलए हसी[2]
ताबे से बालभु तञे[3] पेअसी[4] ॥
जञो पए बोलए बोल निठूर[5]
तञो पुनु सकल पेम जा दूर ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—२ हँसी। ३ तोञे।

ए सखि अपुरुब रीती[६]
काहु[७] न देखिअ अइसनि पिरीती[८] ॥
जे पिआ[९] मानए दोसरि[१०] परान
तकराहु वचन अइसन अभिमान ॥
तैसन[११] सिनेह जे थिर उपताप
के नहि बस हो मधुर अलाप ॥
हठे[१२] परिहर निअ[१३] दोसहि[१४] जानि
हसि[१५] न बोलह मधुरिम दुइ बानि ॥
सुरत निठुर मिलि भजसि न नाह
का लागि बढाबसि[१६] पिसुन उछाह ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४५(क), प० १२६, पं० २

पाठभेद—

न० गु०—(पद-सं० ३८६) १ पिया। ३ तोञे। ५ निठुर। ६ रीति। ७ कँहाहु। ८ पिरीति। १२ निअ। १६ बढ़ावसि।

मि० म० (पद-सं० ३८९)—१ पिया। ३ तञो। ४ पेयसी। ६ रीति। ७ कँहाहु। ८ पिरीति। ९ पिया। १३ निअ। १६ बढ़ावसि।

झा (पद-सं० १२०)—७ कबहु।

शब्दार्थ—तञे = तुम। पेअसी = प्रेयसी। उपताप = क्लेश। अलाप = वचन। पिसुन = चुगलखोर।

अर्थ—जबतक स्वामी हँसकर सरस (वचन) बोलते हैं, (क्या) तभी तक वे वल्लभ (और) तुम प्रेयसी हो?

यदि (वे) निष्ठुर वचन बोलते हैं, तो फिर, सारा प्रेम दूर चला जाता है?

हे सखी! यह अपूर्व रीति है। कहीं भी ऐसी प्रीति नहीं देखी।

जो स्वामी दूसरे प्राण (की तरह) मानते हैं, उनके वचन में (कुछ बोल देने पर) भी ऐसा अभिमान?

स्नेह वैसा ही (रहना चाहिए कि वह) क्लेश में भी स्थिर रहे। मधुर आलाप से कौन नहीं वश होता है?

---

३ रीति। ७ कहाँहु। ८ पिरीति। १० दोसर। ११ तइसन। १२ हठ। १४ दोषहि। १५ हँसि।

अपना दोष समझकर हठ छोड़ दो। हँसकर दो मीठी बातें (क्यों) नहीं करती हो!

अरी सुरत-निष्ठुरे! मिलकर स्वामी की सेवा (क्यों) नहीं करती हो? चुगलखोरों का उत्साह किसलिए बढ़ाती हो?

धनछीरागे—

[१२२]

अवधि बहिए हे अधिक दिन गेल[१]
बालभु पररत परदेस भेल।
कओने परि खेपब वसन्तक[२] राति
जानल पुरुष निठुर थी(क)[३] जाति॥ ध्रु०॥
साजनि आबे मोर अइसन गेँआन[४]
जीवन चाहि मरण भेल[५] भान।
कलिजुग एहे अथिक परमाद
दुरजन दुर लए बोल अपवाद॥
ते[६] हमे एहे हलल अवधारि
पुरुष बिहूनि[७] जीबए[८] जनु नारि।
सुन्दर कह सब धैरज सार
तेज उपताप होएत परकार॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ४५, प० १२७, पं० १

पाठभेद—

सि० म० (पद-सं० ५०७)—२ वसन्त कल। ३ थीजा।

झा (पद-सं० १२१)—१ भेल। ७ बिहुनि।

शब्दार्थ—बहिए = बीत गई। पररत = अन्यासक्त। अथिक = है। परमाद = (प्रमाद—सं०) अनवधानता। दुरजन = दुर्जन। दुर लए = दूर तक। बिहूनि = विना। परकार = प्रकार, उपाय।

अर्थ—अवधि बीतकर अधिक दिन हो गये (अर्थात्—अवधि को बीते बहुत दिन हो गये।) स्वामी परदेश में पररत हो गये।

सं० अ०—४ गेआन। ५ भल। ६ तञे। ८ जिबए।

(स्वामी के विना मैं) वसन्त की रात कैसे खेपूँगी ? (हाँ,) समझ गई (कि) पुरुष की जाति निष्ठुर होती है।

हे सखी ! अब मुझे ऐसा बोध होता है कि जीवन की अपेक्षा मरण ही अच्छा है।

कलियुग में यही अनवधानता है (कि प्रोषितभर्तृका के लिए) दुर्जन दूर तक अपवाद बोलते हैं (फैलाते हैं। अर्थात्--कलङ्क लगाने लगते हैं।)

इसीलिए मैंने निश्चय किया है (कि) विना पुरुष की नारी जिये (ही) नहीं।

धैर्य को सब (लोग) सुन्दर (और) सार (कहते) हैं। (इसीलिए धैर्य धारण करके) उपताप का त्याग करो। (कोई-न-कोई) उपाय होगा।

धनछीरागे—

[१२३]

सोळह[१] सहस गोपि मह राबि[२]
पाट महादेवि करबि हे आनि[३] ॥
बोलि पठओलन्हि जत अतिरेक
उचितहुँ[४] न रहल तन्हिक विवेक ॥ ध्रु० ॥
साजनि की[५] कहब कान्ह परोष[६]
बोलि न करिअ बडाकाँ[७] दोष[८] ॥
अब नित मति जदि[९] हरलन्हि मोरि
जनला[१०] चोरे करब की चोरि ॥
पुरबापरे नागर का[११] बोल
दूती[१२] मति पाओल गए ओल ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४५, प० १२८, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४२२)—१ सोलह। २ रानि। ४ उचितहु। ६ परोख। ७ बड़ाकाँ। ८ दोख। ११ काँ।

मि० म० (पद-सं० ४१७)—१ सोलह। २ राणि। ४ उचितहु। ६ परोख। ७ बड़ाकाँ। ८ दोख। १० जानला। ११ काँ। १२ दूति।

झा (पद-सं० १२२)—९ यदि।

सं० अ०—२ महँ रानि। ३ करब हे आनि। ५ किं। ११ काँ।

शब्दार्थ—बारि = अलग करके। पाट महादेवि = पट्टमहादेवी, पट्टमहिषी, प्रधान रानी। अतिरेक = अतिशयोक्ति। परोष = परोक्ष। नित = (नित्य—सं०) सदा। ओल = अन्त।

अर्थ—(तुम्हें) लाकर, सोलह सहस्र गोपियों में रानी—पट्टमहिषी करूँगा (बनाऊँगा)। (उन्होंने) जितनी अतिशयोक्तियाँ कहला भेजीं, (उनमें) उचित का भी उन्हें विवेक नहीं रहा।

हे सखी! मैं कृष्ण के परोक्ष में क्या कहूँ? (परोक्ष में) बोलकर बड़ों को दोष नहीं देना चाहिए।

अब यदि (उन्होंने) सदा के लिए मेरी बुद्धि हर ली (तो फिर वे) पहचाने चोर हैं, चोरी क्या करेंगे? (अर्थात्—कृष्ण ने मेरी बुद्धि ही हर ली। अब क्या बाकी बचा है, जो लेंगे।)

पूर्वापर से नागर का कथन है कि अन्त में दूती को सबुद्धि होती है।

धनछीरागे—

[१२४]

गाए चराबए[1] गोकुल वास
गोपक सङ्गम[2] कर[3] परिहास।
अपनहु[4] गोप गरुअ की काज
गुपुतहु[5] बोलसि मोहि बडि[6] लाज॥ ध्रु०॥
साजनि बोलह[7] कान्ह सञो मेळि[8]
गोपबधू सञो जन्हिका[9] केळि[10]।
गामक[11] बसले[12] बोलिअ गमार
नगरहु[13] नागर बोलिअ असार[14]॥
बस[15] बथान झाळि[16] दुह गाए
तन्हि[17] की बिलसब नागरि पाए॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ४६(क), प० १२६, पं० ३

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ३०)—१ चराबह। २ सङ्गे। ३ जन्हिक। ४ अपनेहुँ। ५ गुपुतेँ। ७ दूती बोलसि। ८ केलि। ९ जनिका। १० मेलि। ११ गामहिँ। १२ बसलेँ। १३ नगरहुँ। १४ सार। १५ बसथि। १६ झालि। १७ तेँ।

सं० अ०—२ सङ्गे। ३ जन्हिक। ४ अपनेहुँ। ५ गुपतहुँ। ७ बोलसि। ८ केलि। ९ जन्हिकाँ। १० मेलि। ११ गामहिँ। १२ बसलेँ। १३ नगरहुँ। १४ सँसार। १५ बसथि। अन्त में भणिता—आदि अन्त दुहुँ देलक गारि। विद्यापति भन बुझथि मुरारि॥

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

आदि अन्तँ दुहुँ देलक गारि
विद्यापति भन बुझथि मुरारि ॥

न० गु० (पद-सं० २१८)—४ अपनहि। ५ गुपुतहि। ६ बड़ि। १४ सँसार। १६ सालि।

मि० म० (पद-सं० ३४६)—५ गुपुतहि। ६ बड़ि। १६ सालि।

झा (पद-सं० १२३)—६ बड़ि।

शब्दार्थ—गरुअ = (गुरु—सं०) कठिन। गुपुतहुँ = एकान्त में भी। झाठि = झाड़-पोंछकर।

अर्थ—(जो) गाय चराता है (और) गोकुल में रहता है, गोपों के साथ जिसका परिहास (होता है।)

स्वयं भी गोप है, (उसके लिए) क्या (कोई) कार्य कठिन है? (तुम) एकान्त में भी कहती हो (तो) मुझे बड़ी लज्जा (होती है।)

हे सखी! गोपवधुओं से जिसका मेल है, (उस) कृष्ण से केलि (करने को) कहती हो!

दुनिया गाँव में बसने से गँवार (और) नगर में बसने से नागर कहती है। (अर्थात्—मैं नागरी हूँ और कृष्ण गँवार हैं। फिर दोनों का मेल कैसा?)

(कृष्ण) बथान में बसते हैं (और) गाय को झाड़-पोंछकर दुहते हैं। वे नागरी को पाकर क्या विलास करेंगे?

(उसने) आदि और अन्त—दोनों में गालियाँ दीं। विद्यापति कहते हैं (कि) कृष्ण (सब-कुछ) समझते हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

धनछीरागे—

[१२५]

चरित चातर[1] चिते बेआकुल
मोर मोर अनुबन्धे।
पूत कलत्त[2] सहोदर बन्धब
सेष दसा सब धन्धे ना[3] ॥

सं० अ०—चरित चातर चिते बेआकुल,
मोर-मोर अनुबन्धे।
पूत कलत्त सहोदर बन्धब,
सेख दसा सब धन्धे ॥ ध्रु० ॥

ए हर गोसञे नाह मो जनु[४] देह[५] उपेषि[६] ।
जम[७] अगा[८] मूह उत्तर डर छाडत[९]
जबे बुझाओत लेखी ॥
अपथ पथ चरण चलाओल
भगति[१०] मति न देला ।
पर धन धनि मानस लाओल
मिथ्या जनम दुर गेला ॥
कपट (नरि[११]) पलु[१२] कलेवर
गीडल मदन गोहे ।
भल मन्द हमे कीछु न गूनल
समय बहल मोहे ॥
कएल मञे उचित भेल अनुचित
आबे मन पचताबे ।
आबे[१३] की करब सीर पए धूनब[१४]
गेल[१५] दीन नहि[१६] आबे ॥

ए हर गोसाञि नाह !
मोहे जनु देह उपेखी ।
जम-आगाँ मुँह उतर डरेँ छाडत
जबे बुझाओत लेखी ॥
अपथ पथ चरन चलाओल,
भगति मति न देला ।
पर-धनि-धने मानस लाओल,
जनम निफले गेला ।
कपट (नरि) पळु कलेवर
गीड़ल मजन गोहे ।
भल मन्द हम किछु न गूनल
जनम बहल मोहे ॥
कएल उचित—भेल अनुचित
मने-मन पचताबे ।
आबे कि करब-सिर पए धुनब,
गेल दिना नहि आबे ॥

भने[१७] विद्यापति सून महेसर
तैलोक आन न देवा ।
चन्दल[१८] देवि पति वैद्यनाथ गति
चरण शरण[१९] मोहि देवा ॥

ने० पृ० ४७, प० १३५, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४४)—

ए हर गोसाञे नाथ
तोहर सरन कएलञो ।
किछु न करब सबे बिसरब
पछाँ जे जत कएलञो ॥
कपट मह पड़ु कलेवर
गिड़ल मअन गोहे
भल मन्द सबे किछु न गुनल
जनम बहल मोहे ॥
कएल उचित भेल अनउचित
मने मने पचतावे ।
आवे कि करब सिरे पए धुनब
गेल दिना नहि आवे ॥
अपथ पथ चरन चलाओल
भगति मन न देला ।
परधनि धन मानस बाढ़ल
जनम निफले गेला ॥
चरित चातर मन बेआकुल
मोर मोर अनुबन्धा ।
पुत कलत्त सहोदर बन्धव
अन्त काल सबे धन्धा ॥
भन विद्यापति सुनह शङ्कर
कइलि तोहरि सेवा ।
एतए जे बरु से बरु करब
ओतए सरन देवा ॥

मि० म० (पद-सं० ६०६)—१ चाउर । २ कलत्र । ३ पाठाभाव । ४-५ देह नु । ६ उपेखि । ७ गम । ९ ऊरछाऊत । १० उगति । ११-१२ पाठाभाव । १३ तावे । १४ धूल राग । १५ न । १६ नाही । १७ भणे । १८ चन्दन । १९ सरण ।

झा (पद-सं० १२४)—१ चातुर । ३ पाठाभाव । ८ आगा ।

भनइ विद्यापति सुनह महेसर
तइलोक आन न देवा ।
एतए जे बरु से बरु करब
ओतए सरन देवा ॥

शब्दार्थ—चातर = महाजाल । मोर-मोर = मेरा-मेरा । अनुबन्धे = बन्धन । पूत = पुत्र । कलत्त = (कलत्र—सं०) स्त्री । सेष दसा = अन्त समय में । धन्धे = झंझट । गोसाञे = गोस्वामी । नाह = नाथ । लेखी = लेखा करके, हिसाब करके । अपथ पथ = कुमार्ग । भगति = भक्ति । परधनि = परस्त्री । (नरि = नदी) । गीडल = ग्रस लिया । गोह = ग्राह । तैलोक = त्रिलोकी में ।

अर्थ—चरित-रूपी महाजाल में (भटकता हुआ) चित्त व्याकुल (हो रहा है) । मेरा-मेरा—(यह) बन्धन है । पुत्र, कलत्र, सहोदर और बान्धव—अन्त समय में सभी झंझट हैं ।

हे हर ! हे गोस्वामी ! हे नाथ ! मेरी उपेक्षा मत कर दो । यम के आगे, जब वह हिसाब करके बुझारत करेगा, डर के मारे (मेरा) मुँह उत्तर नहीं दे सकेगा ।

कुमार्ग में मैंने पैर बढ़ाये (और तुम्हारी) भक्ति में बुद्धि नहीं दी । पराये धन (और) पराई स्त्री में मन लगाया । (मेरा) जन्म व्यर्थ ही बीत गया ।

कपट-रूपी नदी में शरीर पड़ गया । (उसे) मदन-रूपी ग्राह निगल गया । मैंने भले-बुरे का कुछ भी विचार नहीं किया । (पुत्र-कलत्रादि के) मोह में ही जन्म बीत गया ।

(मैंने अपने जानते) उचित किया; (लेकिन) अनुचित ही हुआ । अब मन पछता रहा है । अब क्या करूँगा, केवल सिर धुनूँगा । (कारण,) बीते दिन (लौटकर) नहीं आते ।

विद्यापति कहते हैं—हे महेश्वर ! सुनो । त्रिभुवन में (तुम्हें छोड़कर मुझे पार करने-वाला) दूसरा देवता नहीं । (इसलिए) यहाँ जो भी (चाहो), वही करना; (किन्तु) वहाँ (मरने के बाद) शरण देना । (अर्थ—संपादकीय अभिमत से ।)

धनछीरागे—

[१२६]

लुबुधल[१] नयन निरखि[२] रहु ठाम
भरमहु कबहु लेब नहि नाम ।
अपने अपन करब अवधान
जओं परचारिअ तओ पर जान ॥ ध्रु० ॥
एरे नागरि मन दए सून
जे रस जान[३] तकर[४] बड[५] पून ।
जइअओ हृदय रह मिलिए समाज
अधिकेओ रहब[६] (अ)सुधि[७] भए[८] लाज[९] ॥

कठे घटी अनुगत केम[१०] ॥
नागर लखत हृदयगत[११] पेम[१२] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४८(क), प० १३६, पं० ५

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० २८)—(आरम्भ से यह पद खंडित है। 'सेओ रहब अञुधि भए लाजे' से आरम्भ है।) ७ अञुधि। ९ लाजेँ। १० काच घाटी अनुगत जल जेम। ११ हृदअगत।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

विद्यापति भन सुन बरनारि ।
कते रङ्गे रसे सुरङ्ग मुरारि ॥
रूपनराअन एह रस जान ।
राए सिवसिंह लखिमा दे रमान ॥

मि० म० (पद-सं० २४३)—१ लुबधल। २ निरलि। ३ जानत। ४ करब। ५ ऊ। ६-७-८ बहबञ विमए। १२ प्रेम।

झा (पद-सं० १२५)—६-७ रह रञुधि।

शब्दार्थ—निरळि=फैलकर। ठाम=स्थान। भरमहु=भ्रम से भी। समाज=सङ्ग। (अ)ञुधि=औँधी होकर। घटी=घड़ा। जेम=जैसा। अनुगत=अनुगामी।

अर्थ—लुब्ध आँखें टकटकी लगाये (भले ही अपनी) जगह रह जायँ। (पर)भ्रम से भी कभी (मैं उनका) नाम नहीं लूँगी।

सं० अ०—लुबुधल नअन निरळि रहु ठाम ।
भरमहुँ कबहुँ लेब नहि नाम ॥
अपने अपन करब अवधान ।
जञो परचारिअ तञो पर जान ॥ ध्रु० ॥
एरे नागरि! मन दए सून ।
जे रस जान तकर बड पून ॥
जइअओ हृदअ रह मिलिए समाज ।
अधिकेओ रहब अञुधि भए लाज ॥
काच घटी अनुगत जल जेम ।
नागर लखत हृदअगत पेम ॥
विद्यापति भन सुन वरनारि ।
कते रङ्गे-रसेँ सुरङ्ग मुरारि ॥
रूपनराञेन एहु रस जान ।
सिवसिंह लखिमा देइ रमान ॥

स्वयं ही अपना समाधान कर लूँगी। यदि प्रचार करूँगी, तो दूसरे जान जायेंगे।

अरी नागरी! मन देकर सुनो। जो रस जानता है, उसका बड़ा पुण्य (समझो।)

यद्यपि हृदय में रहता है (कि कृष्ण के) समाज में मिलना चाहिए (अर्थात्—कृष्ण का संग करना चाहिए, तथापि) लज्जा से आँधी होकर रहूँगी।

काच के घड़े का अनुगामी जल जैसे (देखा जाता है, वैसे ही) नागर हृदयगत प्रेम को देखता है।

विद्यापति कहते हैं—हे वरनारी! सुनो। कृष्ण कितने ही रस-रङ्गों से सराबोर हैं।

लखिमा देवी के रमण शिवसिंह रूपनारायण इस रस को जानते हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

धनछीरागे—

[१२७]

ताल[१] तळाग[२] फुलल अरविन्द
भूषल[३] भमरा पिब मकरन्द॥
अविरल[४] खतन[५] खमण्डल[६] भास
से सुनि कोकिल मने भउ[७] हास॥ ध्रु०॥
एरे मानिनि पलटि निहार
अरुण[८] पिबए लागल अन्धकार।
मानिनि मान महघ धन तोर
चोराबए अएलाहु[९] अनुचित मोर॥
तेँ[१०] अपराधे मार[११] पँचबान
धनि धरहरि[१२] कए[१३] राष[१४] परान॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ४८, प० १३७, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३६३)—१ तनिहि। २ लागि। ३ भूखल। ४ विरल। ५ नखत। ६ नभमण्डल। ७ मने उठ। ८ अरुन। १२-१३ धर हरिकए।

मि० म० (पद-सं० ३८५)—१ तनित। २ लागि। ३ भूखल। ४ विरल। ५ नखत। ६ नभमण्डल। ७ मने उठ। ८ अरुन। ९ चोराबए चाहि। १० तौं। १२-१३ धर हरिकए। १४ राख।

झा (पद-सं० १२६)—१ तुलित। २ लागि। ५ खत। ६ नखमण्डल। ७ भने भउ। ११ मोरा। १२ धर हरि।

सं० अ०—३ भूखल। ४-५-६ विरल नखत नभमण्डल भास। ७ उठ। ८ अरुन। ९ चोरबए अएलाहुँ। १०-११ ते अपराधेँ मार। १४ राख।

शब्दार्थ--अरविन्द = कमल। मकरन्द = मधु। महघ = (महार्घ—सं०) महँगा। धरहरि = बीच-बचाव।

अर्थ—ताल और तड़ाग में कमल खिल गये। भूखे भौंरे मधु पीने लगे।

आकाश में विरल नक्षत्र दिखाई पड़ते हैं। सो (सब देख) सुनकर कोकिल के मन में हँसी आ रही है। (अर्थात्—कोकिल प्रसन्न होकर गा रहे हैं।)

अरी मानिनी! लौटकर देखो! अरुण अन्धकार पी रहा है (अर्थात्—रात बीत गई। भोर हो गया।)

हे मानिनी! मान तुम्हारा महँगा धन है। (मैं उसे) चुराने आया—(यह) मेरा अनुचित (कार्य) है।

इसी अपराध से कामदेव (मुझे) मार रहा है। हे धन्ये! बीच-बचाव करके (मेरे) प्राणों की रक्षा करो। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

धनछीरागे—

[१२८]

कत खन वचन विलासे
सुपुरुष राखिअ आसापासे[१]।
आबे हमे गेलिहु[२] फेदाई
अथिरक आतर[३] मधथ लजाइ[४] ॥ ध्रु०॥
बोलि बिसरलह रामा
सखि अस चौलि हे कह कत[५] ठामा।
पर[६] वित्त[७] पति[८] न रह रङ्गे
कुसुमित कानन मधुकर सङ्गे॥
समय[९] खेपसि कति भाँति[१०]
बडि[११] छोटि भेलि मधुमासक राति[१२]॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ४९(क), प० १३८, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४४७)—१ सुपुरख राखिअ आशापासे। ४ लजाई। ५ बौलि हे। ६ पाठाभाव। ७-८ विपते। १० भाँती। १२ राती।

मि० म० (पद-सं० ४३३)—४ लजाई। ५ बौलि हे। ७-८ विपति। १० भाँती। ११ बड़ि। १२ राती।

झा (पद-१२७)—४ लजाई। ५ बौलिहे। ७-८ विपते।

सं० अ०—२ गेलिहुँ। ३ आँतर। ४ लजाई। ७ पाठाभाव। ९ समअ।

शब्दार्थ—फेदाई = थक गई। आतर = अन्तर = बीच। मधथ = मध्यस्थ। चौलि = काकु-वचन। खेपसि = बिताती हो। मधुमासक = चैत्र मास की।

अर्थ—कबतक वाग्विलास से आशा-पाश में (बाँधकर) सुपुरुष को रखोगी?

अब मैं थक गई। अस्थिर (जिसकी बात का कोई ठिकाना नहीं) के बीच में (पड़ने से) मध्यस्थ लज्जित होता (ही) है।

हे रामा! (तुम) कहकर भूल गई। सखियाँ कई जगह ऐसा काकु-वचन बोलती हैं।

पराये पति (पर सब दिन) रंग नहीं रहता। (कारण, जबतक) कानन कुसुमित (रहता है, तभीतक) मधुकर का संग रहता है।

नाना प्रकार से (व्यर्थ क्यों) समय बिता रही हो? वसन्त की रात बहुत छोटी हो गई है।

धनछीरागे—

[१२६]

तोर[1] साजनि पहिल पसार
हमरे[2] वचने करिअ बेबहार।
अमिअक[3] सागर अधरक पास
पओले नागरे[4] करब गरास ॥ ध्रु० ॥
नहु नहु[5] कहिनी कहब बुझाए
पिउत कुगआ[6] गोमुख लाए।
पहिल पढओक[7] भला के हाथ
ते उपहस[8] नहि गोपी साथ ॥
मन्दा काज मन्दे कर रोस[9]
भल पओलेहि[10] अलपहि कर तोस[11] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ४६(क), प० १३६, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १३३)—१ तोहर। ३ अमिअक। ४ नागर। ५ लहु लहु। ६ कुगयाँ। ७ पढ़ओंक। ८ उपहास। १० पओलहि।

मि० म० (पद-सं० २७१)—१ तोहर। २ हमर। ५ लहु लहु। ६ कुगयाँ। ७ पढ़ओक। ८ उपहास।

झा (पद-सं० १२८)—५ लहु लहु।

सं० अ०—१ तोहर। ४ नागरें। ७ पहिलुक पढ़ओक। ८ तञे उपहस। ९ रोष। ११ तोष।

शब्दार्थ—पसार = (प्रसार—सं०) बाजार। अमिअक = अमृत का। गरास = ग्रास। नहु नहु = (लघु-लघु—सं०) धीरे-धीरे। कहिनी = (कथानक—सं०) बात। कुगआ = कुग्रामवासी = गँवार। गोमुख = गौ की तरह मुख। लाए = लगाकर। ते = इसलिए। रोस = जोर।

अर्थ—हे सखी! (यह) तुम्हारा पहला बाजार है। (अतः) मेरे वचन (के अनुसार) व्यवहार करो।

(तुम्हारे) अधर के पास अमृत का सागर है। (यदि) नागर पा जायगा (तो) ग्रास कर लेगा।

धीरे-धीरे समझाकर बातें कहना। (अन्यथा) गौ की तरह मुँह लगाकर (वह) गँवार पी जायगा।

पहली बोहनी भला (आदमी) के हाथ (होनी चाहिए।) इससे साथ की गोपियाँ (भी) नहीं हँसेंगी।

नीच आदमी नीच काम में जोर करता है। भला (आदमी) तो थोड़ा पाकर भी सन्तोष कर लेता है।

धनछीरागे—

[१३०]

अवधि बढाओलन्हि[1] पुछिहह[2] कान्ह
जीवहु तह हे गरुअ छल मान।
भलाहुक वचन मन्द आवे लाग
कुम्भी जल हे भेल अनुराग ॥ ध्रु० ॥
साजनि[3] कि कहब टुटल समाद
परक दरब हो पर सओ वाद।
ओहि धन्ध भेलि आसा हानि
कत पतिआएब झूठी[4] बानि[5] ॥
बहलि पेन्द टेढ[6] सम बोल
कतएक नागर आओ चौछोल[7]।
विरहक बोलए नागरि बोल
विद्यापति[8] कहए अमोल ॥

ने० पृ० ४९, प० १४०, पं० ३

सं० अ०—१ बढ़ओलन्हि। ६ टेढ़। ८ विद्यापति कवि।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५५६)—१ बढ़ाग्रोलन्हि। २ पुछि इह। ३ साजानी। ४ सुधी। ६ टेढ़। ७ आग्रोगे छोल।

झा (पद-सं० १२६)—१ बढ़ाग्रोलन्हि। ५ वाणि।

शब्दार्थ—कुम्भी = तृणविशेष, जो कि पानी के ऊपर तैरता रहता है। समाद = संवाद। दरब = द्रव्य। वाद = झगड़ा। बानि = बातें। बहलि = विना। चौछोल = चतुर छैला।

अर्थ—कृष्ण को पूछना कि (क्या उन्होंने) अवधि बढ़ा दी? (भूल गये कि) प्राणों से भी मेरा मान गुरु था। (अर्थात्—कृष्ण नहीं आयेंगे, तो मैं फिर मान कर लूँगी।)

भले (आदमी) का वचन भी अब मन्द लगता है। (मालूम होता है कि) कुम्भी और पानी की तरह (उनका) अनुराग हो गया। (अर्थात्—जैसे कुम्भी पानी के ऊपर तैरती रहती है, उसी तरह कृष्ण का अनुराग भी ऊपर-ही-ऊपर है।)

हे सखी! क्या कहूँ? संवाद टूट गया। (अर्थात्—संवाद की जो परिपाटी थी, वह टूट गई।) दूसरे के धन के लिए कहीं दूसरे से झगड़ा हो!

उसी झमेले में आशा की हानि हो गई। (उनकी) झूठी बातों का कितना विश्वास करूँ?

विना पेंदे की तरह (उनकी) टेढ़ी (और) सीधी बोली (होती है।) कहाँ नागर और कहाँ चतुर छैला? (अर्थात्, वे नागरपन और छैलपन भूल गये। उनकी बोली विना पेंदे की तरह कभी टेढ़ी और कभी सीधी होती है।)

नागरी विरह की बोली बोल रही है। विद्यापति कहते हैं कि (नागरी की ये बोलियाँ) अनमोल हैं।

धनछीरागे—

[१३१]

खेत कएल रषवारे[१] लूटल[२]
ठाकुर सेवा भोर।
बनिजा[३] कएल लाभ नहि पओले[४]
अलप निकट भेल थोळ[५] ॥ ध्रु० ॥
रामधन[६] बनिजहु[७]
बेज अछ[८] लाभ अनेक ॥

सं० अ०—१ रखवारे। ७ बनिजहु रे।

मोति मजीठ कनक हमे बनिजल
पोसल मनमथ चोर।
जोषि[9] परेषि[10] मनहि हमे निरसल
धन्ध लागल मन मोर॥
इ[11] संसार हाट कए मानह
सबो नेक[12] बनिजेआर[13]।
जो जस बनिजए लाभ तस पाबए
मुरुष[14] मरहि गमार॥
विद्यापति कह सुनह महाजन
राम भगति अछ[15] लाभ॥

ने० पृ० ५०(क), प० १४१, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ८४०)—१ रखवारे। २ लुटल। ३ बणिजा। ५ थोर। ९ जोखि। १० परेखि। १२ वनिक। १३ वनिजार। १४ सुपुरुष।

मि० म० (पद-सं० ६०८)—१ रखवारे। २ लुटल। ४ पाओल। ५ थोर। ६ माधव धन। ९ जोखि। १० परेखि। १३ वणिज आर। १४ सुपुरुष।

झा (पद-सं० १३०)—८ अछ (ए)। ११ ई। १३ बनिजए आर। १५ अछि।

शब्दार्थ—रषवारे = रखवाला। ठाकुर = धनी। भोर = व्यर्थ। बनिजा = वाणिज्य। वेज = व्याज। निरसल = त्याग दिया। नेक = चतुर। बनिजेआर = व्यापारी।

अर्थ—(मैंने) खेती की (तो उसे) रखवाले ने लूट लिया। धनियों की सेवा (भी) व्यर्थ हुई। वाणिज्य किया; (पर) लाभ नहीं पाया। निकट (जो कुछ) अल्प था, (वह और भी) थोड़ा हो गया।

अरे! राम-धन का वाणिज्य करो। (उसके) व्याज में अनेक लाभ हैं।

(मैंने) मोती, मजीठ (और) सोने का वाणिज्य किया। कामदेव-रूपी चोर का पोषण किया। (किन्तु) मैंने (अपने) मन में तोल-जोखकर (सबका) त्याग कर दिया। (किसी से कुछ लाभ नहीं हुआ।) मेरे मन में फिक्र लगी रही।

इस संसार को हाट समझो। (यहाँ) सभी चतुर व्यापारी हैं। जो जैसा व्यापार करता है, वैसा लाभ पाता है। मूर्ख (और) गँवार (व्यर्थ ही) मर जाते हैं (लाभ नहीं पाते)।

विद्यापति कहते हैं—हे महाजनो! सुनो। राम की भक्ति में (ही) लाभ है।

विशेष—भणिता के पहले और अन्त में दो-दो पंक्तियाँ खण्डित प्रतीत होती हैं।

९-१० जोखि-परेखि। ११ ई। १३ सबो नेक बनिजार। १४ मूरुख।

धनछीरागे—

[१३२]

जलधर अम्बर रुचि परिहाउलि[१]
सेत सारङ्ग कर वामा।
सारङ्ग वदन[२] दाहिन कर मण्डित
सारङ्ग गति चलु रामा॥ ध्रु०॥
माधव तोरे बोले आनलि[३] राही
सारङ्ग भास पास सओ[४] आनलि।
तुरित[५] पठाबह ताही
शम्भु घरिणि[६] बेरि आनि मेराउलि॥
हरि सुत सुत धुनि भेला।
अरुणक[७] जोति तिमिर पिडि[८] उगल[९]
चान्द[१०] मलिन भए गेला॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ५०(क), प० १४२, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३१८)—१ जलधर रुचि अम्बर पहिराउलि। २ अदन। ३ आनल ५ तोरित। ६ सम्भू घरिनि। ७ अरुनक। ८ पिबि। १० चन्द।

मि० म० (पद-सं० ३२५)—१ पहिराउलि। २ अदन। ३ आनल। ४ सयँ। ६ सम्भु घरिनि। ७ अरुनक। ८ पिड़ि। ९ ऊगल। १० चाँद।

झा (पद-सं० १३१)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—अम्बर=वस्त्र। परिहाउलि=पिन्हा दिया। सेत=श्वेत। सारङ्ग= दीपक। सारङ्ग=पाँच (संख्या), सारङ्ग वदन=पंचमुख=शिव। सारङ्ग वदन दाहिन कर= अभय मुद्रा। सारङ्ग=हाथी। सारङ्ग=कोयल, सारङ्ग भास=कोकिलकण्ठी। तुरित= त्वरित (सं०)=शीघ्र। शम्भु घरिणि=संध्या। हरि=इन्द्र, हरि सुत=जयन्त, हरि सुत सुत=काक-समूह।

अर्थ—मेघ के समान (काला) वस्त्र पिन्हाकर बायें हाथ में श्वेत (प्रकाशमय) दीपक लेकर गजगामिनी रामा (रमणोत्सुका) चली।

हे माधव! (मैं) तुम्हारे कहने से राधा को ले आई। कोकिलकण्ठी (राधा) को (मैं गुरुजनों के) समीप से ले आई हूँ। (इसलिए) उसे शीघ्र (वापस) भेज दो।

संध्या समय (मैंने) उसे ला मिलाया, (अब तो) कौए बोल रहे हैं, अंधकार का नाश कर अरुणोदय हो चुका (और) चन्द्रमा (भी) म्लान हो गया। (अर्थात्—भोर हो गया। अब भी तो इसे घर जाने दो।)

सं० अ०—८ पिबि। ९ ऊगल।

धनछीरागे—

[१३३]

जौवन रतन[१] अछल दिन चारि
ताबे[२] से[३] आदर कएल[४] मुरारि ।
आबे[५] भेल झाल कुसुम रस[६] छूछ[७]
वारि बिहुन सर[८] केओ नहि पूछ[९] ॥ ध्रु० ॥
हमरिओ[१०] विनति[११] कहब सखि गोए[१२]
सुपुरुष सिनेह[१३] अन्त[१४] नहि होए[१५] ।
जाबे से[१६] धन[१७] रह[१८] अपना हाथ
ताबे से आदर कर सङ्ग साथ ॥
धनिकक[१९] आदर सबका[२०] होए[२१]
निरधन बापुळ[२२] पुछ[२३] नहि[२४] कोए[२५] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५०, प० १४३, पं० ३

पाठभेद—

रा० त० (पृ० ७६)—१ रूप। २ से। ३ देखि। ५ अब। ६ सबे। १२ रोए। १३ वचन। १४ अफल। १६ रहए। १८ पाठाभाव। २० सवतहु। २२ वापुर।

सं० अ०— जौवन रूप अछल दिन चारि ।
से देखि आदर कएल मुरारि ॥
आबे भेल झाल कुसुम रस-छूछ ।
वारि-बिहुन सर केओ नहि पूछ ॥ ध्रु० ॥
हमरिओ विनति कहब सखि रोए ।
सुपुरुष वचन अफल नहि होए ॥
जाबे रहए धन अपना हाथ ।
ताबे से आदर कर संग-साथ ॥
धनिकक आदर सबतहु होए ।
निरधन बापुर पुछ नहि कोए ॥
भनइ विद्यापति राखब सील ।
जओ जग जिबिअ नबउ निधि मील ॥

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति राखब सील[1]
जञो[2] जग जिविअ[3] नवो[4] निधि मील[5] ॥

न० गु० (पद-सं० ६६७)—१ रूप। २ से। ३ देखि। ४ कयल। ५ आव। ६ सवे। ७ छुछ। ८ सब। ९ पुछ। १० हमरिए। १२ रोय। १३ वचन। १४ अफल। १५ होय। १६-१७-१८ रहइ धन। १९ धनीकक। २० सब तँह। २१ होय। २२ बापुर। २३ पुछय। २४ न। २५ कोय। अन्त में उपर्युक्त भणिता है, जिसमें निम्नलिखित पाठभेद है—

१ शील। २ जो। ३ जीविय। ४ नवउ। ५ मिल।

मि० म० (पद-सं० ४५५)—१० हमरि तु। ११ विनती। १४ अनु। २२ बापुन।

झा (पद-सं० १३२)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—झाल = शुष्क। छूछ = खाली = हीन। वारि = जल। विहुन = विना। सर = तालाब। गोए = गुप्तरूप से। सङ्ग साथ = दोस्त-मित्र। बापुळ = बेचारा।

अर्थ—चार दिनों तक यौवन-रूपी रत्न थे। तवतक कृष्ण ने उस प्रकार का आदर किया।

अब (वह यौवन) रसहीन पुष्प के सदृश शुष्क हो गया। विना पानी के तालाब को कोई नहीं पूछता।

हे सखी! गुप्त रूप से मेरी विनती कहना (कि) सुपुरुष के स्नेह का कभी अन्त नहीं होता।

जभी तक अपने हाथ में धन रहता है, तभी तक दोस्त-मित्र आदर करते हैं।

धनियों का आदर सब जगह होता है। बेचारे निर्धन को कोई नहीं पूछता।

[विद्यापति कहते हैं (कि) शील की रक्षा करनी चाहिए। (फिर) यदि संसार में जीवित रहेंगे, तो नवो निधियाँ मिल जायेंगी।]

आसावरीरागे—

[१३४]

जाबे रहिअ तुअ लोचन आगे
ताबे बुझाबह दिढ[1] अनुरागे।
नयन ओत भेले सब किछु आन[2]
कपट हेम[3] धर[4] कति षन[5] बान[6] ॥ ध्रु० ॥
बुझल मधुरपति[7] भलि तुअ रीति
हृदय[8] कपट मुखे करह पिरीति।
विनय[9] वचन जत[10] रस परिहास
अनुभवे[11] बुझल हमे सेओ परिहास ॥

सं० अ०—२ नअन ओत भेले सब किछु आन। ५ खन। ८ हृदअ। ९ विनअ। ११ अनुभवेँ।

हसि हसि[१२] करह कि सब परिहार
मधु विषे[१३] माषल[१४] सर परहार ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५१(क), प० १४४, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३४१)—१ दिढ़। २ आने। ३-४ हे माधव। ५ खन। ६ वाने। १३ बिखे। १४ माखल।

मि० म० (पद-सं० ३८०)—१ दिढ़। २ आने। ६ वाने। ७ मथुरापति। १३ बिखे। १४ माखल।

झा (पद-सं० १३३)—१० यत।

शब्दार्थ—लोचन = आँख। ओत = ओट। भेले = होने पर। हेम = सोना। बान = वर्ण = रंग। माखल = मिला हुआ। परिहार = मार्जन।

अर्थ—जभी तक (मैं) तेरी आँखों के आगे रहती हूँ, तभी तक (तुम) दृढ अनुराग दिखलाते हो।

आँखों से ओट होते ही सब-कुछ दूसरा हो जाता है। नकली सोना कबतक रंग धारण कर सकता है?

हे मथुरापति! (मैंने) तुम्हारी रीति को अच्छी तरह समझ लिया। (तुम्हारे) हृदय में कपट है। (तुम केवल) मुख से प्रीति करते हो।

(तुम्हारे) जितने विनय-वचन (और) सरस परिहास हैं, मैंने अनुभव करके समझ लिया, वे सभी मजाक हैं।

(अब) हँस-हँसकर क्या सबका मार्जन कर रहे हो? (तुम्हारा हँसना) मधु (और) विष से लिप्त शर का प्रहार है।

आसावरीरागे—

[१३५]

बारिस निसा मञे चलि अइलुहु[१]
सुन्दर मन्दिर तोर।
कत अहि मही देहे दमसल
चरणे[२] तिमिर घोर ॥ ध्रु० ॥

---

१२ हँसि हँसि। १३ बिखेँ। १४ माखल।

सं० अ०— बारिस निसा मोञ चलि अइलिहुँ
सुन्दर मन्दिर तोर।
कत महि अहि-देहे दमसल—
चरने तिमिर घोर ॥ ध्रु० ॥

निज सखि मुख सुनि सुनि कहु[४]
बसि[५] पेम तोहार।
हमे अबला सहए न पारल
पचसर परहार ॥
नागर मोहि मने अनुताप।
कएलाहु साहस सिद्धि[६] न पाबिअ
अइसन हमर पाप ॥
तोह सन पहु गुननिकेतन
कएल मोर निकार।
हमहु नागरि सबे सिषाउबि[७]
जनु कर अभिसार ॥
केलि कुतुहर[८] दुरहि रहओ
दरसनहुँ[९] सन्देह।

निज सखि-मुख सुनि-सुनि कह
बसि पेम तोहार।
हमे अबला सहए न पारल
पंचसर - परहार ॥
नागर। मोहि मने अनुताप।
कएलाहु साहस सिधि न पाबिअ
अइसन हमर पाप ॥
तोह सन पहु गुननिकेतन
कएल मोर निकार।
हमहु नागरि सबे सिखाउबि
जनु कर अभिसार ॥
कत न नागर गुनक सागर
सबे न गुनक गेह।
तोह सन जग दोसर नाही
तजे हमे लाओल नेह ॥
केलि-कुतूहल दूरहि रहओ
दरसनहुँ सन्देह।

जामिनि चारिम पहर पाओल
बरु[१०] जाओ[११] निज गेह ॥
मोरिओ सह[१२] सहचरि जानति
होइति इ बडि[१३] साति[१४] ।
बिहि निकारुण[१५] परम दारुण[१६]
मरओ[१७] हृदय फाटी[१८] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५१, प० १४५, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४८२)—१ अएलिहु। ३ कत महि अहि। ४-५ कहवसि। ६ सिधि ७ सिखाउवि। ८ कुतूहल। ९ दरशनहु। १० आवे। ११ जाओं। १२ सब। १३ वड़ि। १४ साटि १५ निकारुन। १६ दारुन। १७ मरओ। १८ फाटि।

१५वीं पंक्ति के वाद निम्नलिखित ४ पंक्तियाँ हैं—

कत न नागर गुनक सागर
सबे न गुनक गेह ।
तोह सन जग दोसर नाहि[१९] ।
तें[२०] हमे लाओल नेह ॥

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भने[२१] विद्यापति सुनह जुवति
आसा न अवसान ।
सुचिरे जीवओ राए सिवसिंह[२२]
लखिमा देवि[२३] रमान ॥

जामिनि चारिम पहर पाओल
बरु जाओ निज गेह ॥
मोरिओ सह-सहचरि जानति
होइति ई बडि साति ।
बिहि निकारुन परम दारुन
मरओ हृदअ फाटि ॥
भनइ विद्यापति सुनह जुवति !
आसा नहि अवसान ।
सुचिरे जीवओ राए सिवसिंह
लखिमा देइ रमान ॥

मि० म० (पद-सं० १०८)—१ अएलिहु। २ कत महि अहि। ३ चरने। ४-५ कहबसि। ६ सिधि। ७ सिखाउबि। ८ कुतूहल। १० आब। ११ जाओ ँ। १२ सब। १३ बड़ि। १४ साटि। १५ निकारुन। १६ दारुन। १७ मरओ। १८ फाटि।

इसमें भी उपर्युक्त पंक्तियाँ हैं, जिनमें निम्नलिखित पाठभेद हैं—

१९ नाहि। २० ते ँ। २१ मन। २२ सिवसिंघ। २३ देइ।

झा (पद-सं० १३४)—८ कुतुहल। १२ स(ा)हस। १३ ई बडि।

शब्दार्थ—बारिस = बरसात। निसा = रात। महि = धरती। अहि = साँप। दमसल = रौंद दिया। चरणे = पैरों से। तिमिर = अंधकार। बसि = वशीभूत। पंचसर = कामदेव। अनुताप = दुःख। निकार = अनादर। सह = साथ। साति = (शास्ति—सं०) दण्ड।

अर्थ—हे सुन्दर! मैं बरसात की रात में तुम्हारे घर चली आई। (मैंने) घोर अन्धकार में पृथ्वी पर (पड़े) कितने साँपों के शरीर को (अपने) पैरों से रौंद डाला।

अपनी सखियों के मुख से (तुम्हारा गुण) सुन-सुनकर (मैं) तुम्हारे प्रेम के वश हो गई। मैं अबला हूँ, (इसलिए) कामदेव का प्रहार नहीं सह सकी।

हे नागर! मेरे मन में दुःख है। (कारण,) मेरा ऐसा पाप है कि साहस करने पर भी सिद्धि नहीं मिली।

तुम्हारे समान गुणनिकेतन स्वामी ने भी मेरा अनादर किया। (अब) मैं सभी नागरिकाओं को सिखाऊँगी (कि कोई) अभिसार नहीं करे।

कितने ही नागर गुणसागर हैं, (किन्तु) सभी गुणगेह (अर्थात्—गुणग्राहक) नहीं हैं। संसार में तुम्हारे समान दूसरा (कोई) नहीं है। इसीलिए मैंने स्नेह किया।

केलि-कौतुक दूर रहे—दर्शन में भी सन्देह हो गया। रात का चौथा प्रहर प्राप्त हुआ। अच्छा है कि अपने घर जा रही हूँ।

मेरी, साथ की सहचरियाँ भी जान जायेंगी—यह बड़ा दण्ड होगा। विधाता निष्करुण (और) परम दारुण है। (मेरा) हृदय फट जायगा, (मैं) मर जाऊँगी।

विद्यापति कहते हैं—हे युवती! सुनो। आशा का अन्त नहीं होता। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह चिरकाल तक जीवें! (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

आसावरीरागे—

[१३९]

दहए बुलिए बुलि भमरि करुणा[1] कर
आहा दइआ इ की भेल।
कोर सुतल पिआ[2] आन्तरो न देल[3] हिआ[4]
केँ[5] जान[6] कओन दिग गेल ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—१ करुना। ५ के।

अबे[७] कैसे[८] जीउब मञे[९] रे
सुमरि बालभु नव नेह ॥
एकहि मन्दिर बसि पिआ[१०] न पुछए हसि[११]
मोरे लेखे[१२] समुदक पार ।
इ[१३] दुइ जौवना तरुण[१४] लाख लह
से आबे परस गमार ॥
पटसुति बुनि बुनि मोतिसरि किनि किनि
मोरे पिआञे[१५] गाथल हार ।
लाख[१६] लेखि[१७] तन्हि[१८] हरबा गाथल[१९]
से आबे तोलत[२०] गमार ॥
अरेरे पथिक भइआ समाद लए जइहह[२१]
जाहि देस बस मोर नाह ।
हमर से दुखसुख तन्हि पिआ[२२] कहिहह[२३]
सुन्दरि समाइलि वाह ॥
भनइ विद्यापति अरेरे जुवति[२४]
अबे चिते करह उछाह ।
राजा सिवसिंह[२५] रूपनराए(न)[२६]
लखिमा[२७] देवि वर नाह ॥

ने० पृ० ५२(क), प० १४७, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६२८)—१ करुना । ३ देअ । ४ हिया । ५ के । ६ जाने । ७ अरे । १४ तरुन । १५ पियाञे । १६ लाखे । १८ तन्हि हम । २१ जइह । २३ कहिह । २७ लखि ।

मि० म० (पद-सं० १५६)—१ करुना । २ पिया । ३ देअ । ४ हिया । ७ अरे । १० पिया । १४ तरुना । १५ पियाञे । १८ तन्हि हम । २१ जइह । २२ पिया । २३ कहिह । २५ सिबसिंघ । २६ रूपनरायन ।

झा (पद-सं० १३५)—१७ लिखि । १८ तन्हि हम (ह)रवा ।

---

८ कइसे । ९ जिउब मोञ । ११ हँसि । १२ मोरा लेखेँ । १३ ई । १४ तरुन । १५ पिआञे गाँथल । १९ गाँथल । २० तोळत । २४ अरे वर जउवति । २६ रूपनराञेन ।

शब्दार्थ—दहए = दह में, ह्रद में। बुलिए बुलि = घूम-घूमकर। आहा दइआ = हाय दैव। इ = यह। आन्तरो = अन्तर भी। हिआ = हृदय। दिग = दिशा। वालभु = वल्लभ। नेह = स्नेह। समुदक = समुद्र का। लह = लभ्य, अर्थात्—स्पृहणीय। परस = स्पर्श करेगा। गमार = गँवार। पटसुति = रेशम का धागा। मोतिसरि = मोतियों की लड़ियाँ। किनि किनि = खरीद-खरीदकर। लाख लेखि = बारंबार देख-भालकर। समाद = संवाद। नाह = नाथ। वाह = प्रवाह। उछाह = उत्सव।

अर्थ—ह्रद में घूम-घूमकर भ्रमरी विलाप करती है (कि) हाय दैव! यह क्या हो गया? प्रिय गोद में सोया था, हृदय में अन्तर भी नहीं दिया था; (फिर भी) कौन जानता है (कि) वह किस दिशा को चला गया!

वल्लभ के नूतन स्नेह का स्मरण करके अब मैं कैसे जीऊँगी?

एक ही घर में रहकर भी प्रियतम हँसकर नहीं पूछता। (मालूम होता है,) मेरे लिए (वह) समुद्र के पार है। लाखों तरुणों के लिए स्पृहणीय जो ये दोनों स्तन हैं, उन्हें अब गँवार स्पर्श करेगा।

रेशम के धागे से बुन-बुनकर, मोतियों की लड़ियाँ खरीद-खरीदकर मेरे प्रिय ने हार गूँथा। उन्होंने बारंबार देखभालकर हार गूँथा। उस (हार) को अब गँवार तोड़ेगा।

अरे भैया बटोही! जिस देश में मेरे स्वामी रहते हैं, (वहाँ मेरा) संवाद ले जाना। मेरा दुःख-सुख उस प्रियतम से कहना (और कहना कि) सुन्दरी (आँसू के) प्रवाह में (डूबने को) पैठ चुकी है।

विद्यापति कहते हैं—हे वरयुवती! अब चित्त में उत्साह करो। (कारण,) लखिमा देवी के श्रेष्ठ स्वामी राजा शिवसिंह रूपनारायण (तो हैं)।

मलारीरागे—

[१३७]

सरोवर घाट निकट सङ्कट तरु[१]
हेरहि न पारले आगु।
साङ्कळि बाट उबटि चलि भेलिहु
ते कुच कण्ठक[२] लागु ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—सरोवर-घाट-निकट कण्टक-तरु
हेरहि न पारल आगू।
साङ्कड़ि बाट उबटि चलि भेलिहुँ
तञे कुच कण्टक लागू ॥ ध्रु० ॥

ननन्द हे सरूप निरुपिअ[३] रोस ।
बिनु विचारे बिहुचार बुझओलह
सासु करओलह रोस ॥
कौतुके कमल नाल सञो तोळल
करए चाहल अवतंस ।
रोषे कोष सञो मधुकर धाओल
तेहि अधर करु दंस ॥
गरुअ कुम्भ सिर थिर नहि थाकए
ते उधसल केसपास ।
आतप दोसे रोसे चलि अइलिहु
खरतर भेल निसास ॥
बेकत विलास कओने तव छापब
विद्यापति कवि भान ।
राजा सिवसिंह रूपनराएण[४]
लखिमा देवि रमान ॥

ने० पृ० ५२, प० १४८, पं० ५

ननदी ! सरुप निरूपह दोषे ।
बिनु विचारेँ बेभिचार बुझओबह
सासु करओबह रोषे ॥
कउतुकेँ कमल-नाल हमे तोळल
करए चाहल अवतंसे ।
रोषेँ कोष सञो मधुकर धाओल
तेहि अधर करु दंसे ॥
गरुअ कुम्भ सिर थिर नहि थाकए
तञे उधसल केसपासे ।
आतप-दोषेँ रोषेँ चलि अइलिहुँ
खरतर भेल निसासे ॥
पथ अपवाद पिसुने परचारल
तथिहु उतर हमे देला ।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३२८)—

ननदी सरुप निरुपह दोसे ।
विनु विचारे[1] वेभिचार बुझओबह
साझु करओह[2] रोसे ॥
कउतुके[3] कमलनाल सञो[4] तोरल
करए चाहल अवतंसे ।
रोखे[5] कोख[6] सञो[7] मधुकर धाओल[8]
तेंहि[9] अधर करु दंसे ॥
सरोवर[10] घाट बाट कएटक तरु
देखहि न पारल आगू ।
साँकरि बाट उवटि कहु चललाहु
तें[11] कुच कएटक लागू ॥
गरुअ कुम्भ सिर थिर नहि[12] थाकए
तें[13] उधसल केशपाशे[14] ।
सखि सञो[15] हमे[16] पाछु[17]पड़लिहु
तें[18] भेल दीघ निसासे[19] ॥
पथ अपवाद पिसुने[20] परचारल
तथिहु उतर हम देला ।
अमरख चाहि धैरज नहि रहले
तें[21] गदगद सर भेला ॥
भनइ विद्यापति सुन वर जउवति[22]
इ[23] सबे[24] राखइ[25] गोइ[26] ।
ननदी सञो[27] रस रीति बढ़ाओब[28]
गुपुत वेकत नहि होई ॥

मि० म० (पद-सं० ७०, न० गु० से)—१ विचार । २ करतन्हि । ३ कौतुक । ४ सयँ । ५ रोस । ६ कोस । ७ सयँ । ८ आओल । ९ तेँहि । १० सरवर । ११ तेँ । १२ नहिँ । १३ तेँ । १४ केसपास । १५ जन । १६ सयँ हम । १७ पाछे । १८ तेँ । १९ निसास । २० पिसुन । २१ तेँ । २२ जौवति । २३ ई । २४ सम । २५ राखह । २६ गोई । २७ सयँ । २८ बढ़ाबह ।

झा (पद-सं० १३६)—१ तह । २ कएटक । ३ निरुपिअ । ४ रूपनराएन ।

अमरख चाहि धइरज नहि रहलै
तञे गदगद सर भेला ॥
भनइ विद्यापति सुन वरजउवति !
ई सबे राखह गोई ।
ननदी सञो रस-रीति बढ़ओबह
गुपुत बेकत नहि होई ॥

शब्दार्थ—तरु=पेड़। बाट=रास्ता। उबटि=तिरछी होकर। सरुप=सच। अवतंसे=आभूषण। गरुअ=भारी। कुम्भ=घड़ा। थाकए=रहता। आतप=धूप। रोषे=वेग से। खरतर=अत्यन्त तेज। पिसुने=चुगलखोर। तथिहु=वहाँ भी। अमरख चाहि=अमर्षवश। सर=स्वर। गोई=छिपाकर। गुपुत=गुप्त। बेकत=व्यक्त।

अर्थ—सरोवर के घाट के समीप कँटीला पेड़ था, (मैं) आगे देख नहीं सकी। रास्ता संकीर्ण था, तिरछी होकर चलने लगी, इसीलिए स्तन में काँटे लग गये।

हे ननदी! मेरे दोष का सच-सच निरूपण करो। विना विचारे ही व्यभिचार बुझाओगी (तो व्यर्थ ही) सास से रोष कराओगी।

कौतुकवश मैंने कमल-नाल को तोड़ा (और) आभूषण बनाना चाहा; (किन्तु) क्रुद्ध होकर (कमल) कोष से भौंरे दौड़ पड़े। उन्होंने अधर में डँस लिया।

सिर पर भारी घड़ा स्थिर होकर नहीं रहता था, इसीलिए केशपाश बिखर गये। आतप के दोष से (अर्थात्—कड़ी धूप के कारण) वेग से चली आई। (इसीलिए) साँस तेज हो गई।

विद्यापति कहते हैं—अरी वरयुवती! सुनो। इन सब (बातों) को छिपाकर रखो। ननद से रस-रीति वढ़ाओगी, (तो) गुप्त (बातें) व्यक्त नहीं होंगी। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

मलारीरागे—

[१३८]

सुरत परिश्रम[1] सरोवर तीर
अरु अरुणोदय[2] सिसिर समीर।
मधु निसा रे[3] बएरनि[4] भेलि नीन्द
पुछिओ न गेले मोहि निठुर गोविन्द॥ ध्रु०॥
जाए खने दितहु आलिङ्गन गाढ[5]
जनि जुआर परुसे[6] खेल पाढ[7]॥
जत[8] जत[9] करितहु[10] तत मन जाग
अनुसए हीन भेल अनुराग।
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ५३(क), प० १४६, पं० ५

सं० अ०—१ परिस्रम। २ अरुनोदअ। ५ दितहुँ आलिङ्गन गाढ़। ६ पउरुषेँ। ७ पाढ़। १० करितहुँ।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६१७)--२ सुरु अरुनोदय। ३-४ वेली धनि। ५ गाढ़। ६ परु से। ७ पाढ़। ८-६ जत।

मि० म० (पद-सं० ५००)--१ परिस्रम। २ सुरु अरुनोदय। ३-४ वेवत धनि। ५ गाढ़। ६ परु से। ७ पाढ़।

झा (पद-सं० १३७)--२ सुरु अरुणोदय। ३-४ बेर ए धनि। ६ परु से।

शब्दार्थ—अरु = और। सिसिर = शीतल। समीर = वायु। मधु-निसा = वसन्त की रात। निठुर = निष्ठुर। अनुसए = (अनुशय—सं०) पश्चात्ताप। जुआर = जुआड़ी। पाढ़ = पाशा।

अर्थ—सुरत का परिश्रम, सरोवर का तट और अरुणोदय (का समय) तथा शीतल समीर!

(इतना ही नहीं,) वसन्त की रात्रि! (फिर क्या पूछना?) नींद बैरिन हो गई। निष्ठुर कृष्ण मुझे विना पूछे ही चले गये।

(अगर मैं जगी रहती तो) जाने के समय गाढ आलिङ्गन देती, जैसे जुआड़ी अपना पाशा उत्साह के साथ खेलता है।

जितना जो करती, वे सब मन में जग रहे हैं। (यही) पश्चात्ताप है कि (कृष्ण का) अनुराग हीन हो गया।

मालवीरागे—

[१३६]

सहजहि आनन अछल अमूल
अलकेँ तिलकेँ[१] ससधर तूल।
का लागि अइसन पसाहन[२] देल
जे छल रूप सेहओ दुर[३] गेल॥ ध्रु०॥

अछल सोहाँओन[४] की[५] भए[६] गेल
भूषण[७] कएले दूषण[८] भेल
दरसि जगाबए[९] मुनि जन आधि
नागर का[१०] ओ[११] सहज बेआधि[१२]॥

लिहले उषळल[१३] अओछा[१४] भार
भेटले मेटत अछ परकार॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ५३, प० १५०, पं० ३

सं० अ०—४ सोहाओन। ६-८ भूखन कएलेँ दूखन। १० काँ। १३ उखड़ल।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २४७)—१ अलके तिलके। ३ दूर। ४ सोहाओन। ५-६ कतय। ९ जनावए। १० काँ। ११ हो। १२ बेयाधि। १३ उधलल। १४ अवइत।

मि० म० (पद-सं० ३८)—२ पसारल। ४ सोहाओन। ५-६ कितए। ७ भूसन। ८ दूसन। ९ जपावए। १२ वेयाधि। १४ अओछाड़।

झा (पद-सं० १३८)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—आनन = मुख। अछल = था। अमूल = अमूल्य। अलकैँ = केश से। ससधर = चन्द्रमा। तूल = तुल्य। का लागि = किसलिए। पसाहन = प्रसाधन—सं०। दुर गेल = बिगड़ गया। आधि = मनोव्यथा। अओछा = ओछा। लिहले = लिखने से।

अर्थ—स्वभावतः मुख अनमोल था। अलक-तिलक से (वह) चन्द्र-तुल्य हो गया। (अर्थात्, स्वभावतः निष्कलङ्क मुख केश-प्रसाधन और तिलक से सकलङ्क हो गया।)

किसलिए ऐसा प्रसाधन दिया? जो रूप था, वह भी बिगड़ गया।

(मुख स्वत:) शोभायमान था। (प्रसाधन करने से) क्या हो गया? अलंकृत करने से (उसमें) दोष (ही) हो गया।

दर्शन देकर (वह) मुनिजन की मनोव्यथा जगा देती है। नागर के लिए तो वह सहज व्याधि है।

लिखने से (अर्थात्—चन्दन, कस्तूरी आदि के आलेखन से) ओछा भार उखड़ गया (प्रकाश में आ गया)। (लेकिन) उपाय है—मिल जाने से (सहवास से प्रसाधन) मिट जायगा। (फिर मुख-चन्द्र निष्कलङ्क हो जायगा।)

धनछीरागे—

[१४०]

केस कुसुम छिडिआएल[१] फूजि
ताराँए[२] तिमिर छाडि[३] हलु पूजि।
हेरि पयोधर[४] मनसिज आधि
सम्भु अधोगति धएल[५] समाधि॥
विपरित रमण[६] रमए वर नारि
रतिरस लालसे[७] मुगुध मुरारि।
चुम्बने करए कलामति केलि
लोचन नाह निमिलित[८] हेरि॥

सं० अ०—१ छिड़िआएल। २ ताराजे। ३ छाड़ि। ४ पओधर। ७ लालसैँ। ८ निमीलित।

ता दुहु रूप ताहि परथाब
उदयवान दुहु जैसन[१] सभाव ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५४(क), प० १५१, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५८८)—१ छिरिआएल। २ ताराएँ। ३ छाड़ि। ५ धए। ६ रमन।

मि० म० (पद-सं० ४६५)—१ छिरिआएल। २ ताराएँ। ३ छाड़ि। ५ धए। ६ रमन।

झा (पद-सं० १३६)—२ ताराँएँ। ६ रमण।

शब्दार्थ—कुसुम = फूल। छिळिआएल = बिखर गये। फूजि = खुलकर। तिमिर = अन्धकार। छाड़ि हलु = हटा दिया हो। पयोधर = स्तन। मनसिज आधि = काम-वेदना। रमण = स्वामी। अधोगति = अधोमुख। नाह = नाथ। निमिलित = मुदे हुए। परथाव = प्रस्ताव। उदयवान = उदीयमान।

अर्थ—केश के फूल खुलकर बिखर गये। (जान पड़ता है,) ताराओं से अन्धकार को पूजकर (फिर उन्हें) हटा दिया गया हो।

स्तन को देखकर काम-वेदना होती है। (ऐसा जान पड़ता है, जैसे) महादेव ने अधोगति (अधोमुख) होकर समाधि ली हो।

वरनारी प्रिय के साथ विपरीत रमण करती है। कृष्ण रति-रस की लालसा से मुग्ध हो रहे हैं।

स्वामी के निमीलित लोचन को देखकर कलावती चुम्बन (करके) केलि करती है।

दोनों उदीयमानों (युवक-युवती) का जैसा स्वभाव, (वैसा ही) उन दोनों का रूप (और) वैसा ही प्रस्ताव।

मलारीरागे—

[१४१]

नागर हो से[१] हेरितहि जान
चौसठि[२] कलाक[३] जाहि गेआन।
सरुप[४] निरूपिअ कए अनुबन्ध
काठेओ रस दे नाना बन्ध ॥ ध्रु० ॥
केओ बोल माधव केओ बोल कान्ह
मञे[५] अनुमापल निछछ पखान।

---

१. जइसन।

सं० अ०—२ चउसठि। ३ कलाकेरि। ५ मोञ।

वर्ष द्वादस[६] तुअ अनुराग
दूती[७] तह तकरा मन जाग।

नें० पृ० ५४(क), प० १५२, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४३५)—२ चौसटि। ४ सरूप। ६ दादस।

मि० म० (पद-सं० ४२०)—१ जे सइ। २ चौसटि। ४ सरूप। ६ दादस।

झा (पद-सं० १४०)—४ सरूप। ७ दुती।

शब्दार्थ—अनुबन्ध = सम्बन्ध। बन्ध = उपाय। अनुमापल = अनुमान किया। निछछ = निछक्का। पखान = पाषाण।

अर्थ—जिसे चौंसठ कलाओं का ज्ञान है, ऐसा नागर देखकर ही समझ जाता है।

सम्बन्ध करके ही सत्य का निरूपण किया जाता है। नाना प्रकार के उपाय से तो काठ भी रस देता है।

कोई (उन्हें) माधव कहता है, कोई कृष्ण कहता है; (किन्तु) मैंने अनुमान किया (कि वे) निछक्का पाषाण (निष्ठुर) हैं।

बारह वर्षों से दूती के द्वारा उनके मन में तुम्हारा अनुराग जग रहा है।

विशेष—नेपाल-पदावली में उपयुर्क्त पद के साथ अग्रिम पद संयुक्त है। रामभद्रपुर की पदावली में उपयुर्क्त पद उपलब्ध नहीं है। केवल अग्रिम पद ही है। इससे दो भिन्न पद होने की संभावना है।

मलारीरागे—

[१४२]

कतएक[१] हमे धनि कतए गोआला
जल थल कुसुम कैसन होअ माला।
पवन न[२] सहए दीप[३] के[४] जोति
छुइले काच मलिन होअ मोति।
इ[५] सबे कहि कहु कहिहह सेवा
अवसर पाए उतर हमे देवा॥

---

६ दोआदस।

सं० अ०—कतएक हमे धनि कतए गोआला।
जल-थल-कुसुम कइसनि होअ माला॥
पवन न सहए दीपक-जोती।
छुइनेहु काल मलिन होअ मोती॥ ध्रु०॥

परधन लोभ करए सब कोइ
करिअ पेम जञो आइति होइ
नागरि जन के[६] बहुल विलास
काखेहु[७] वचने राखि गेलि आस ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५४, प० १५२, पं० २

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ८४)—

कतएक हमे धनि कतए गोआडा ।
जले थरे कुसुम कैसनि हो माला ॥
पवन न सह दीपक जोती ।
छुइनेहु काल मलिनि हो मोती ॥ ध्रु० ॥
कि बोलिवो अरे सखि कि वोलिबो (लाजे) ।
जनु आवह पुनु ऐसना कासे ॥
काञि निवेदसि कुमति सआनी ।
सरभन मधुर तीन्ति वडि वानी ॥
परधन लोभ करए सब कोई ।
करिअ पेम जञो विर(ह) न होई ॥
नागरि जन के बाङ्क विलासा ।
रूषेहु वचने राखि गेलि आसा ॥
भणइ विद्यापति एहु रस जाने ।
राए सिवसिंह लखिमा दे रमाने ॥

कि बोलिबो अरे सखि ! कि बोलिबो (लाजे) ।
जनु आबह पुनु अइसना काजे ॥
काजि निवदेसि कुमति सआनी ।
सरबन मधुर तीन्ति बड़ि बानी ॥
परधन-लोभ करए सब कोई ।
करिअ पेम जञो आइति होई ॥
ई सबे कहि कहुँ कहिहह सेबा ।
अवसर पाए उतर हमे देबा ॥
नागरि जन के बाङ्क विलासा ।
रूखेहु वचने राखि गेलि आसा ॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने ।
राए सिवसिंह लखिमा दे रमाने ॥

न० गु० (पद-सं० ४३५)—२ नहि। ३-४ दीपक। ५ ई। ६ ककेह।

मि० म० (पद-सं० ४२०)—१ कत एक। २ नहि। ३-४ दीपक। ५ ई।

झा (पद-सं० १४० का शेषार्द्ध)—१ कत एक। ७ केर।

शब्दार्थ—कतएक = कहाँ। आइति = (आयत्ति—सं०) अधिकार। काञि = किसलिए। सरभन = श्रवण। बाङ्क = बक्र।

अर्थ—कहाँ मैं धन्या (और) कहाँ ग्वाला! जल (और) स्थल के फूलों से (अर्थात्—दोनों को एक साथ गूँथने से) कैसी माला होगी?

दीपक की ज्योति हवा नहीं सहती। मोती छूते ही मलिन हो जाता है।

अरी सखी! (मैं) क्या कहूँ? लज्जावश (मैं) क्या कहूँ? इस प्रकार के कार्य्य को लेकर फिर मत आना।

हे सयानी! किसलिए कुमति का निवेदन कर रही हो? (तुम्हारी) बात सुनने में मधुर है; (किन्तु) बड़ी तीती है।

सभी दूसरे के धन का लोभ करते हैं। (इसीलिए वे मेरा लोभ करते हैं, किन्तु) यदि अधिकार हो, तभी प्रेम करना चाहिए।

यह सब कहकर (तब) कहीं मेरी सेवा कहना। अवसर पाकर मुझे उत्तर (भी) देना।

नागरिकाओं का विलास वक्र होता है। रूखे वचन से भी (वह) आशा दे गई।

विद्यापति कहते हैं (कि) इस रस को लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह जानते हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

मलारीरागे—

[१४३]

हृदय[1] कुसुम सम मधुरिम बानी
निअर अएलाहु[2] तुअ सुपुरुष[3] जानी।
अबे कके जतन करह इथि लागी
कओन[4] मुगुधि आलिङ्गति आगी॥ ध्रु०॥
चल चल दूती को[5] बोलिबो[6] लाजे
पुनु पुनु जनु आबह अइसना[7] काजे॥

सं० अ०—१ हृदअ। २ अएलाहुँ। ५ की। ७ पुनु जनु आबह अइसना।

नयन तरङ्गे[८] अनङ्ग जगाइ[९]
अबला मारन जान उपाइ[१०] ॥
दिढ[११] आसा दए मन बिघटाबे
गेले[१२] अचिरहि[१३] लाघव पाबे ॥
भनइ विद्यापति सुनह सयानी[१४]
नागर लाघव न[१५] करिअ जानी ॥

ने० पृ० ५४, प० १५३, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३६१)—५ की। ६ बोलव। ७ अइसन। ९ जगाई। १० उपाई। ११ दिढ़।

मि० म० (पद-सं० ४००)—३ सुपुरुस। ४ कओन। ५ वोलब। ७ अइसन। ९ जगाई। १० उपाई। ११ दिढ़।

झा (पद-सं० १४१)—४ कि। १० उपाई।। ११ दिढ़। १५ पाठाभाव।

शब्दार्थ—निअर = निकट। जानी = जानकर। कके = क्यों। इथि लागी = इसके लिए। मुगुधि = मूढ। लाघव = अनादर।

अर्थ—कुसुम के समान (कोमल) हृदय (और) मधुर वचन (के कारण उन्हें) सुपुरुष समझकर (मैं) तुम्हारे पास आई।

अब (फिर) इसके लिए क्यों यत्न करती हो? (अर्थात्—एक बार जाकर मैं फल भोग चुकी। अब दूसरी बार जाने का आग्रह क्यों करती हो?) कौन मूढ आग का आलिङ्गन करेगी?

अरी ती! चलो जा, चली जा। मैं लज्जावश क्या कहूँ? (इतना ही कहती हूँ कि) फिर इस प्रकार के कार्य के लिए मत आना।

(वे) आँखों के इशारे से कामदेव को जगाकर अबलाओं के मारने का उपाय जानते हैं।

(वे) दृढ आशा देकर मन को चंचल कर देते हैं। (किन्तु) उनके पास जाने पर झट अनादर मिलता है।

विद्यापति कहते हैं—हे सयानी! सुनो। जान-बूझकर नागर का अनादर नहीं करना चाहिए।

---

८ नअन तरङ्गे। ९ जगाई। १० उपाई। १२ गेलें। १३ अचिरहिँ। १४ सआनी।

मलारीरागे—

[१४४]

तोहे[1] कुलमति रति कुलमति नारि
बाङ्क[2] दरसने[3] भुलल मुरारि ।
उचितहु[4] बोलइते अबे[5] अवधान
संसय मेललह[6] तन्हिक परान ॥ ध्रु० ॥
सुन्दरि की[7] कहब कहइते[8] लाज
तोरे[9] नामे[10] परहु सञो बाज ।
थावर जङ्गम मनहि[11] अनुमान
सबहिक विषय[12] तोहर होअ भान ॥
आओर कहि[13] की[14] बुझओबिसि तोहि
जनि उधमति उमताबए मोहि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५५(क), प० १५४, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १०३)—२ बाँके। ३ दरशने। ५ आबे। ६ मेललहु। ७ कि। ९-१० मोर भेला से। १४ कि।

मि० म० (पद-सं० २५७)—६ मेलतहु। ८ कहइते। ९-१० मोर भेला से। १२ बिसय। १३ अरु कहिअ।

झा (पद-सं० १४२)—९-१० (तोर विलासे)।

विशेष—७वीं पंक्ति के 'मनहि' में 'म' अधिक प्रतीत होता है।

शब्दार्थ—रति = अनुराग। बाङ्के = वक्र। अवधान = सावधान। मेललह = डाल दिया। बाज = बोलते हैं। थावर = स्थावर। जङ्गम = चलने-फिरनेवाला। उधमति = पगली। उमताबए = पागल बनाओ।

अर्थ—तुम (स्वयं) कुलकामिनी स्त्री हो। इसलिए कुलकामिनी के समान तुम्हारा अनुराग है। (तुम्हारे) कुटिल कटाक्ष से कृष्ण भुला गये।

अब उचित बोलने में भी सावधान रहना पड़ता है। (कारण, तुमने) उनके प्राण को संशय में डाल दिया।

हे सुन्दरी! क्या कहूँ? कहते लज्जा होती है। तुम्हारे नाम से ही (अर्थात्—तुम्हारा नाम लेकर ही वे) दूसरों से भी बोलते हैं।

स्थावर (और) जङ्गम का भी (उन्हें) अनुमान नहीं है। सबके विषय में तुम्हारा ही भान होता है।

और क्या कहकर तुम्हें समझाया जाय। अरी पगली! मुझे पागल मत बनाओ।

सं० अ०—१ तोहँ। ४ उचितहुँ। ६ संसअ मेललह। ७ कि। ९ तोहरे। ११ नहि। १२ विपअ। १४ कि

मलारीरागे—

[१४५]

सयन[१] चराबहि[२] पारे[३]
दुर कर सैसब[४] सकल सभारे[५] ।
मुख अवनत तेज लाजे
कत महि लिखसि चरण[६] महि[७] के[८] आगे[९] ॥ ध्रु० ॥
रामा रह पिआ पासे
अभिनव सङ्गम तेजहि[१०] तरासे ।
पिआ सओ[११] पहिलुकि[१२] मेली
होउ कमल को(र)क[१३] अलि केली ॥
तरतम तञे[१४] कर दूरे
छैल इछहि छोडहि[१५] मोर चीरे ।
विद्यापति कवि भासा
अभिनव सङ्गम तेजहि[१६] तरासा ॥

ने० पृ० १५५, प० १५, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १३८)—२ सीम रहि । ३ आवे । ४ से सब । ६ चरन । ७-८-६ वेआजे । १० तेजह । १३ के । १५ छोड़ह । १६ तेजह ।

मि० म० (पद-सं०२७२)—४ से सब । ६ चरन । ६ आसे । ११ सयँ । १२ पहिलकि । १३ के । १५ छोड़ह । १६ तेजह ।

झा (पद-सं० १४३)—२ ठवा रहि । ५ सभावे । १६ तेज ।

शब्दार्थ—सभारे (संभार—सं०)=उपकरण । व्याजे=बहाना । तरासे=त्रास । पहिलुकि=प्रथम । मेली=मिलन । को(र)क=कली । तरतम=तारतम्य ।

अर्थ—(तुम्हें) शय्या की रचना करनी ही होगी । बचपन के सभी स्वभावों को (तुम) दूर करो ।

(तुम्हारा) मुख अवनत (क्यों है ?) लज्जा का त्याग करो । बहाना करके पैरों से पृथ्वी पर कितना लिखती हो ?

हे रामा ! प्रिय के समीप में रहो । अभिनव संगम है, (तथापि) भय का त्याग करो ।

सं० अ०—१ सजन । २ रचाबहि । ५ सँभारे । ६ चरणे । ७ पाठाभाव । ८ कए । ६ व्याजे । १४ तोज ।

(जिस प्रकार) कमल-कोरक के साथ भ्रमर की केलि होती है, (उसी प्रकार) प्रिय से प्रथम मिलन होगा।

तुम तारतम्य दूर करो। छैले की इच्छा करो (और) मेरे वस्त्र को छोड़ दो।

विद्यापति कवि कहते हैं—अभिनव संगम है, (फिर भी) भय का त्याग करो। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

मलारीरागे—

[१४६]

कानन कोटि कुसुम[१] परिमल
भमर भोगए जान ।
सहस गोपी मधु मधुमुख
मधुप एके[२] पए[३] कान्ह ॥ ध्रु० ॥
चम्पक चीन्हि[४] भमर न भावए[५]
मो सञो कान्हक कोप ।
आन्तर कार गमार मधुकर
गमले[६] गोविन्द गोप ॥
साजनि आबहु कान्ह बुझाओ ।
विरहि[७] वध बेआधि पचसर
जानि न जम जुडाओ ॥
कओन कुलबहु... बान[८] हो[९] अनङ्ग
जाबे से बालभु वाम[१०] ।
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५६(क), प० १५६, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५६०)—२-३ केपए। ४ चिन्हि। ६ गमने। ८-९ वानहो। १० धाम।

झा (पद-सं० १४४)—५ आवए। ८ बाल।

शब्दार्थ—कानन = जंगल। कुसुम = फूल। परिमल = पराग। आन्तर = (अन्तर—सं०) भीतर। कार = काला। गमार = गँवार। गमले = परिचय होने पर। बेआधि = व्याधि। पंचसर = कामदेव। कुलबहु = कुलवधू।

सं० अ०—१ कुसुमे। ७ विरहिनि। ८-९ कओन कुलबहु पञ्चबान सह।

अर्थ—भ्रमर जंगल के करोड़ों फूलों के परिमल का उपभोग करना जानता है।

हजारों गोपियों में मधु है—(सभी) मधुमुखी हैं; (किन्तु) एक ही कृष्ण मधुप (मधुपान करनेवाले) हैं।

(जिस प्रकार) परिचित होकर भी चम्पक भ्रमर को नहीं भाता; (उसी प्रकार परिचित होने पर भी) मुझसे कृष्ण का रोष है। (अर्थात्–जिस प्रकार चम्पा के गुण को जानते हुए भी भ्रमर उसका अनादर करता है, उसी प्रकार गुण जानते हुए भी कृष्ण मेरा अनादर करते हैं।)

(जिस प्रकार) भ्रमर भीतर से काला (कुटिल) (और) गँवार है, (उसी प्रकार) परिचय होने पर कृष्ण (भी) गोप (ही ठहरे)।

हे सखी! अब भी तो कृष्ण को समझाओ (कि) विरहिणी के वध के लिए कामदेव व्याधि हो रहा है। जान-बूझकर यम को खुश मत करें।

जबतक वल्लभ वाम है, (तबतक) कौन कुलवधू कामदेव का सहन कर सकती है? (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

मलारीरागे—

[१४७]

दारुण[१] कन्त निठुर हिअ[२]
सखि रहल विदेस।
केओ नहि हित मझु सञ्चरए[३]
जे कह[४] उपदेस[५] ॥ ध्रु० ॥
ए सखि हरि[६] परिहरि गेल
निञ[७] न बुझीअ[८] दोस[९]।
करम विगति[१०] गति माइ हे
काहि करबो[११] रोस[१२] ॥
मोहि छल दिने दिने बाढत
देव[१३] हरि सञो[१४] नेह।
अब[१५] निञ[१६] मने अवधारल
पहु कपटक गेह ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५६(क), प० १५७, पं० ४

सं० अ०—१ दारुन। ३ संचर। ८ बुझिअ। ९ दोष। ११ करब मोञ। १२ रोष।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६३३)—१ दारुन। ४ कहत। ५ ऊपदेस। ७ निज। ८ बुझीय। १३ देख। १४ सचे। १५ आवे। १६ निअ।

मि० म० (पद-सं० ५१६)—१ दारुन। २ हिय। ६ पाठाभाव। ७ निअ। ११ करव। १३ देख। १५ आबे। १६ निअ।

झा (पद-सं० १४५)—१० विगत। १३ देप। १५ आबे।

शब्दार्थ—दारुण = निर्दय। हिअ = हृदय। सञ्चर = जाता है। परिहरि = त्याग कर। करम-विगति = कर्म-विपाक = किये हुए कर्म का परिणाम। गति = दशा। नेह = स्नेह। अवधारल = निश्चय किया।

अर्थ—हे सखी! (मेरे) स्वामी निर्दय हैं। (उनका) हृदय कठोर है। (इसीलिए) विदेश में रह गये।

कोई भी मेरा हितू नहीं जाता-आता, जो (उन्हें) उपदेश करता।

ऐ सखी! कृष्ण छोड़कर चले गये; (किन्तु मैं उनके जाने में) अपना दोष नहीं समझती।

हाय मैया! (यह) दशा (तो मेरे) किये हुए कर्म का परिणाम है। किससे (मैं) रोष करूँगी?

मुझे (विश्वास) था कि दिन-दिन भगवान् कृष्ण से स्नेह बढ़ेगा।

(किन्तु) अब (मैंने) मन में निश्चय किया (कि) प्रभु कपट के आगार (बड़े कपटी) हैं।

मलारीरागे—

[१४८]

प्रथमहि सिनेह[1] बढाओल[2]
जे विधि उपजाए[3]।
से आबे हठे[4] बिघटाओल[5]
दुषण[6] कओन[7] मोर पाए ॥ ध्रु० ॥
ए सखि हरि सुमझाओब[8]
कए मोर परथाब।
तन्हिके विरहे[9] मरि जाएब
तिरिबध कओन[10] आब ॥

सं० अ०—४ हठेँ। ५ बिघटाओल। ६ दूखन। ८ समुझाओब। ९ विरहेँ।

जीवन थिर नहि अथिकए
जौवन तहु थोल[11] ।
वचन अप(न) निरबाहिअ
नहि करिअए ओल[12] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५६, प० १५८, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६८४)—१ विहि सिनेह। २ वढ़ाओल। ३ ऊपजाए। ५ विघटाओल। ६ दूषन। ७ कओन। ८ समुझाओब। १० कओन।

मि० म० (पद-सं० ५२८)—२ बढ़ाओल। ५ बिघटाओ। ६ दूसन। ७ कओन। १० कओन।

झा (पद-सं० १४६)—२ वढ़ाओल। ८ समुझाओब।

शब्दार्थ—सिनेह = स्नेह। बिघटाओल = विघटित कर दिया। दुषण = दोष। मोर = मेरा। परथाब = प्रस्ताव। तिरिवध = स्त्रीवध। अथिकए = है। तहु = उससे। थोल = थोड़ा। ओल = ओर = अन्त।

अर्थ—पहले जो विधि पैदा करके (अर्थात्—नाना प्रकार के विधि-विधान से) स्नेह बढ़ाया, उसे अब मेरा कौन दोष पाकर हठात् विघटित कर दिया?

ऐ सखी! मेरा प्रस्ताव करके (अर्थात्—मेरी ओर से) कृष्ण को समझाना। (मैं) उनके विरह में मर जाऊँगी। स्त्रीवध (का पाप) किसपर आयेगा?

(पहले तो) जीवन ही स्थिर नहीं है, यौवन (तो) उससे (भी) थोड़ा है। (इसलिए) अपने वचन का निर्वाह करना चाहिए। (उसका) अन्त नहीं करना चाहिए।

मलारीरागे—

[१४६]

तोह[1] जलधर सभ[2] जलधर राज
हमे चातक जलबिन्दुक काज ।
धरओ[3] परान आस कए तोर
समय[4] न बरिससि[5] असमय[6] मोर ॥ ध्रु० ॥
जल दए जलद जीव मोर राख
देले सहस अवस(र) हो लाष[7] ।

---

११ थोळ। १२ ओळ।

सं० अ०—१ तोहें। २ सहजहि जलराज। ४ समअ। ६ असमअ। ७ अवसर देले सहस हो लाख।

जषने[८] क(ला)निधि[९] निञ[१०] तनु पाब[११]
तहि षने[१२] राहु[१३] पिम्रासल आब[१४] ॥
ओहओ[१५] देअ[१६] तनु से कर पान
तैअओ[१७] सराहिअ[१८] न[१९] होअ[२०] मलान[२१] ।
वैभव गेला[२२] रहत[२३] विवेक
तैसन[२४] पुरुष लाख[२५] मह[२६] एक ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५६, प० १५६, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं०-नाना १३)—

तोहें जलधर सहजहि जलराज ।
हमे चातक जलविन्दुक काज ॥
जल दए जलद जीव मोर राख ।
अवसर देले सहस हो लाख ॥
तनु देअ चाँद राहु कर पान।
कबहु कला नहि होअ मलान ॥
वैभव गेले रहए विवेक ।
तइसन पुरुख लाख थिक एक ॥
भनइ विद्यापति दूती से ।
दुइ मन मेल करावए जे ॥

मि० म० (पद-सं० ४५६ ख)—२ सउ। ३ वरजो। ५ बरिसखि। ७ लाख। ८ जखनेक। ९-१० निधिनिञ। ११ पार। १२ खने। १३ वहु। १४ आर। १५ तुहओ। १६ देस। १७ ते अओ। १८ सराहि। १९-२० अनहो। २१ अमलान। २४ तेसन। २५ लाखे। २६ माहे।

झा (पद-सं० १४७)—१ तोहे। २४ तसन।

शब्दार्थ—असमय = बुरा दिन। कलानिधि = चन्द्रमा। पिआसल = प्यासा। तनु = शरीर। तैअओ = तथापि = फिर भी।

अर्थ—हे जलधर! तुम सब मेघों के राजा हो (और) मैं चातक हूँ। (मुझे) जल-बिन्दु का (ही) काम है।

तुम्हारी आशा करके (मैं) प्राण धारण कर रही हूँ। मेरे (ये) बुरे दिन हैं। समय पर वर्षा (क्यों) नहीं करते हो?

हे जलद! जल देकर मेरे जीव की रक्षा करो। समय पर हजार देने से लाख का (काम) होता है।

---

८ जखने। ९ कलानिधि। १२ खने। १५-१६ तनु देअ चान्द राहु कर पान। १७ तइअओ। १८ कला। १९ नहि। २२ गेले। २३ रहए। २४ तइसन। २६ महँ।

जिस समय चन्द्रमा अपना शरीर पाता है (अर्थात्, पूर्ण होता है), उसी समय प्यासा राहु आ जाता है।

वह (चन्द्रमा अपना) शरीर दे देता है (और) राहु पान कर लेता है। फिर भी (उसकी) सराहना करनी चाहिए कि वह म्लान नहीं होता।

वैभव के जाने (भी) विवेक रह जाय—ऐसा पुरुष लाख में (कोई) एक होता है।

अहिरानीरागे—

[१५०]

आजे मञे हरि समागम जाएब[१]
कथ[२] मनोरथ भेल।
घर गुरुजन नीन्द निरुपैते[३]
चन्दाञे उदय देल॥ ध्रु०॥
चन्दा कठिन तोहरि[४] रीति।
ञेहि मति तोहि कलङ्क लागल
तैंअओ न मानसि[५] भीति॥
जगत नागरि मुह जिनइते[६]।
गेला हे गगन हारि।
ततहु राहु गरास पळलाह
देब तोहि की गारि॥
एके मासे ताहि[७] बिहि सिरिजए[८]
कतन जतन बले[९]।
दोसर दिना रहए न पारह[१०]
तही[११] पापक फले॥
भनइ विद्यापतीत्यादि[१२]॥

ने० पृ० ५७, प० १६१, पं० १

सं० अ०—१ आज मोञ जाएब हरि समागमे। २ कत। ३ निन्द निरुपइते। ४ चन्दा भलि नाह तुअ। ५ तइअओ न मानसि। ६ जगत नागरि मुखेँ जिनला हे। ७-८ बिहि तोहि सिरिजए। ९ बलेँ। १० दोसर दिन पुनु पुर न रहसि। ११ एही पापक फलेँ। १२ भन विद्यापति सुन तोञ जुवति, चान्दक न कर साति। दिना सोलह चान्दक आइति, ताहि पर भलि राति।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २८७)—

आज मोञे[१] जाएब हरि समागमे[२]
कत मनोरथ भेल ।
घर गुरुजन निन्द निरुपइते[३]
चन्दाए[४] उदय देल ॥
चन्दा भलि नहि तुअ रीति ।
एहि मति तोहि[५] कलङ्क लागल
किछु न गुनह भीति ॥
जगत नागरी[६] मुखे[७] जिनला[८] हे[९]
गेला हे गगन हारि[१०] ।
ताहाँहु[११] राहु गरास पड़ला
देब तोह की[१२] गारि ॥
एके[१३] मास बिहि तोह[१४] सिरीजए[१५]
दए सकलेओ[१६] बल ।
दोसर दिन पुर[१७] न रहसि[१८]
एही पापक फल ॥
भन विद्यापति शुन[१९] तोञे[२०] जुवति[२१]
चाँदक न कर साति[२२] ।
दिना सोड़ह[२३] चाँदक आइति
ताहितर[२४] भलि राति ॥

मि० म० (पद-सं० ३१८ ख, न० गु० से)—१ मोय। २ समागम। ३ निरुपइत। ४ चन्द। ५ तोह। ६ नागर। ७ मुख। ८ जितल। ९ जब। १० गगन गेला हारि। ११ तहँओ। १२ कि। १३ एक। १४ तोहि। १५ सिरिजए। १६ सकलओ। १७ पुनु पुर। १८ रेहसी। १९ सुन। २० तोयँ। २१ जुवती। २२ न कर चाँदक साति। २३ सोरह। २४ ताहि पर।

झा (पद-सं० १४८)—७ तोहि। ८ सिरजए। ११ ओही।

शब्दार्थ—कथ = कत = कितना। अेहि मति = इसी बुद्धि के कारण। जिनइते = विजित होकर। ततहु = वहाँ भी।

अर्थ—आज मैं कृष्ण के साथ समागम के लिए जाऊँगी। (मेरे मन में) कितना मनोरथ हो रहा था?

(किन्तु) घर में गुरुजनों की नींद का निरूपण करते (अर्थात्—नींद की टोह लेते) चन्द्रमा ने उदय दिया (अर्थात्—चन्द्रमा उग आया।)

अरे चन्द्रमा! तेरी यह रीति अच्छी नहीं है। इसी बुद्धि के कारण तुझे कलङ्क लगा, फिर भी (तू) डर नहीं मानता?

संसार में नागरियों के मुख से विजित होकर, हारकर (विवश होकर तू) आकाश गया। वहाँ भी राहु के ग्रास में पड़ा। (अब इससे अधिक) तुझे क्या गालियाँ दूँगी?

विधाता (अपना) समूचा बल देकर एक महीने में तुझे सिरजता है (अर्थात्, महीना-भर परिश्रम करके तेरा निर्माण करता है), फिर (भी) इसी पाप का फल है कि (तू) दूसरे दिन पूरा नहीं रहता।

विद्यापति कहते हैं—हे युवती ! तुम सुनो। चन्द्रमा की निन्दा मत करो। (अधिक-से-अधिक) सोलह दिन ही चन्द्रमा का अधिकार है। उसके बाद (अभिसार के लिए) अच्छी रात होती है। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

अहिरानीरागे—

[१५१]

जमुना तीर युवति[1] केलि कर[2]
ऊठि[3] उगल सानन्दा ।
चिकुर सेमार हार अरुझाएल[4]
जूथे जूथे उग चन्दा ॥ ध्रु० ॥
मानिनि अपरुब तुअ निरमाने ।
पाँचेबाने जनि सेना साजलि
अइसन उपजु मोहि भाने ॥
आनि[5] पुनिम ससिकनकथोए कसि
सिरिजल तुअ मुख सारा ।
जे सबे उबरल काटि नडाओल[6]
से सबे उपजल तारा ॥
उबरल कनक औटि[7] बटुराओल
सिरिजल दुइ आरम्भा ।
सीतल छाह छैले[8] छुइ छाडल[9]
छाडि[10] गेल सबे दम्भा ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५७, प० १६२, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४०५)—३ उठि। ४ अरुझायल। ६ नड़ाओल। ५ छैल। ६ छाड़ल। ७ छाड़ि।

मि० म० (पद-सं० २२६)—१ युवती। ३ उठि। ६ नड़ाओल। ८ छैल। ९ छाड़ल। १० छाड़ि।

झा (पद-सं० १४९)—३ उठि। ८ छैलि।

सं० अ०—१ तीरे जुवति। २ कए। ५ आनि। ७ औंटि। ९ छाड़ल। १० छाड़ि।

शब्दार्थ—ऊठि = उठकर। उगल = उदित हुई। चिकुर = केश। सेमार = शैवाल—सं०। अरुझाएल = उलझ गया। जूथे जूथे = (यूथ—सं०) समूह-के-समूह। पाँचेबाने = (पञ्चबाण—सं०) कामदेव। जनि = जैसे। आनि = लाकर। पुनिम ससि = पूर्णिमा का चन्द्रमा। कनक = सोना। थोए = (स्तोम—सं०) पिण्ड। कसि = कसकर। सिरिजल = सर्जन किया। उवरल = बच गया। नडाओल = रख छोड़ा। औटि = औंटकर। बटुराओल = इकट्ठा किया। आरम्भा = अङ्कुर। छाह = छाँह। छैले = रसिक। छुइ = छूकर। छाडल = छोड़ दिया। छाडि गेल = छोड़ गया।

अर्थ—यमुना के तीर पर केलि करके युवती आनन्दविह्वल हो, उठकर उग आई।

केश-रूपी सेँवार में (उसका) हार उलझ गया। (वह हार ऐसा मालूम होता है, जैसे) समूह-के-समूह चन्द्रमा उग आये हों।

हे मानिनी! तुम्हारा निर्माण अपूर्व है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, (जैसे) कामदेव ने सेना सजाई है!

पूर्णिमा के चन्द्रमा को लाकर (या) स्वर्ण-पिण्ड को (कसौटी पर) कसकर तुम्हारे मुख के सार का सर्जन किया है।

(मुख-निर्माण के बाद) जो सब (सुवर्ण) बच गये, उन्हें काटकर रख छोड़ा; वे सभी तारे बन गये।

फिर भी जो (सोना) बच गया, उसे औंटकर इकट्ठा किया (और उससे) दो अङ्कुरों का सर्जन किया।

रसिक ने (उसकी) शीतल छाया को छूकर छोड़ दिया। (कारण, उसके) सभी दम्भ चले गये (चूर्ण हो गये)।

अहिरानीरागे—

[१५२]

मधु रजनी सङ्गहि खेपबि
कत कति छलि आस।
बिहि विपरिते[1] सबे बिघटल
रहु रिपु जन हास ॥ ध्रु० ॥
हे[2] सुन्दरि कान्हु[3] न बूझ[4] विसेष[5]।
पिसुन[6] वचने उचित बिसरि
अपद हो निरपेष[7] ॥

सं० अ०—१ विपरीतेँ। २ पाठाभाव। ३ कान्ह। ५ बिसेख। ७ निरपेख।

कत गुरुजन कत परिजन
कत पहरी जाग।
एतहु साहसे मञे चलि अइलिहु[८]
हेन[९] छल अनुराग ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ५८ (क), प० १६३, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६६)—३ कन्त। ४ बुझ। ५ विसेख। ६ पिशुन। ७ निरपेख। ८ अहलिहु। ९ एहन।

मि० म० (पद-सं० ३५८)—३ कान्त। ४ बुभा। ५ विसेख। ७ निरपेख। ९ ये हेन।

झा (पद-सं० १५०)—४ बुझ। ७ अपदहि निरपेष।

शब्दार्थ—मधुरजनी = मधु ऋतु की रात। खेपबि = बिताऊँगी। कत कति = कितनी। बिहि = विधि। पिसुन = चुगलखोर। विसरि = भुलाकर। अपद = अनवसर में। निरपेष = निरपेक्ष। हेन = ऐसा।

अर्थ—कितनी आशा थी कि मधु ऋतु की रात साथ ही बिताऊँगी। (किन्तु) विधाता के विपरीत होने के कारण सब नष्ट हो गये। (केवल) शत्रुजनों का हास रह गया।

हे सुन्दरी! कृष्ण ने विशेष (अच्छी तरह) नहीं समझा। चुगलखोरों के वचन से उचित को भूलकर विना अवसर के ही निरपेक्ष हो गये।

कितने गुरुजन, कितने परिजन (और) कितने प्रहरी जाग रहे हैं। इतना होते हुए भी साहस करके मैं चली आई। ऐसा (मेरा) अनुराग था।

अहिरानीरागे—

[१५३]

विधिबसे[१] तुअ सङ्गम तेजल
दरसन[२] भेल साध।
समयबसे[३] मधु न मिलए
सौरभ के कर बाध ॥ ध्रु० ॥
माधव कठिन तोहर नेह।
तुअ बिरह बेआधि मुरुछलि[४]
जीवन तासु सन्देह ॥

---

८ मोञ चल्लि अइलिहुँ।

सं० अ०—१ विधिबसेँ। २ दरसने। ३ समयबसेँ। ४ मुरुछलि।

जगत नागरि कत न आगरि
तथुहु[५] गुपुत पेम ।
से रस बएस पुनु[६] पाबिअ
देलहु[७] सहस हेम ।।
भने विद्यापतीत्यादि ।।

ने० पृ० ५८, प० १६४, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७८३)—४ मुरछलि ।
मि० म० (पद-सं० ५५२)—४ मुरछलि ।
झा (पद-सं० १५१)—४ मुरुछलि ।

शब्दार्थ—बिधिबसे = दैवयोग से । सङ्गम = सम्मिलन । साध = अभिलाषा । समयबसे = समय के फेर से । सौरभ = सुगन्धि । तासु = उसके । आगरि = चतुरा । तथुहु = उनमें । रस बएस = यौवन । हेम = सोना ।

अर्थ—दैवयोग से (उसने) तुम्हारा सम्मिलन त्याग दिया, (फिर भी) दर्शन की अभिलाषा थी । (कारण,) समय के फेर से मधु नहीं मिलने पर भी सौरभ (मिलने) में कौन बाधा दे सकता है ?

हे माधव ! तुम्हारा स्नेह कठिन है । तुम्हारी विरह-रूपी व्याधि से (वह) मूर्च्छित है । उसके जीवन में भी सन्देह है ।

संसार में कितनी चतुरा नागरिकाएँ नहीं हैं. उनमें कितना गुप्त प्रेम नहीं है, (अर्थात्—बहुतेरी चतुरा नागरिकाएँ हैं और उनमें गुप्त प्रेम भी है । किन्तु) वे फिर (अर्थात्—समय बीत जाने पर) क्या हजार सोना देने पर भी (अर्थात्—हजारों खरचने पर भी) यौवन पाती हैं ?

अहिरानीरागे—

[१५४]

द्विज आहर आहर सुत
न पुन आर[१] सुकामा[२] ।
वनज बन्धु सुत सुत दए सुन्दरि
चललि सकेतक ठामा ।। ध्रु० ।।

---

५ तथिहु । ६ पुनु न । ७ देलहुँ ।

सं० अ०—द्विज-आहर-आहर - सुत - नन्दन
सुत - आहर - सुत - कामा ।
वनज-बन्धु-सुत-सुत दए सुन्दरि
चललि संकेतक ठामा ।। ध्रु० ।।

माधव बुझह विसेषी
माधव आइलि उपेषी ॥
हरि हरि अरि अरि पति तातक वाहन
जुवति नामे से होइ।
गोपति अरि वाहन दस मिलि
विरमति कबहु न सोइ ॥
सायक जोगे नाम तसु नायक
हरि अरि अरि पति जाने ।
नवओ कला एक पुरवासी
सुकवि विद्यापति भाने ॥

ने० पृ० ५८, प० १६५, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १२ प्र०)—

द्विज आहर आहर सुत नन्दन
सुत आहर सुत रामा ।
वनज बन्धु सुत सुत दए सुन्दरि
चललि सङ्केतक ठामा ॥
माधव बूझल कला विशेखी[१] ।
तुअ गुण[२] लुबुधलि पेम[३] पिआसलि
माधव[४] आइलि उपेखी ॥

माधव। बूझल कला विसेखी।
तुअ गुण लुबुधलि पेम पिआसलि
मा-धव आइलि उपेखी ॥
हरि-अरि-अरि-पति-तातक वाहन
जुवति-नामे से होई ।
गोपति-पति-अरि-वाहन दस मिलि
विरमति कबहुँ न सोई ॥
सायक जोगे नाम तसु नायक
हरि - अरि - अरि - पति जाने ।
नउमि दसा हे एके मिलु कामिनि
सुकवि विद्यापति भाने ॥

हरि अरि पति[५] ता सुअ[६] वाहन
जुवति नाम तसु होइ[७]।
गोपति पति अरि सह मिलु वाहन
विरमति कबहु न होइ[८] ॥
नागरि नाम जोग धनि आब[९]
हरि अरि अरिपति जाने ।
नउमि दसाहे[१०] एके[११] मिलु कामिनि
सुकवि विद्यापति भाने ॥

मि० म० (पद-सं० ५७१, न० गु० से)—१ विसेखी। २ गुन। ३ प्रेम। ४ साधस। ५ अरि पति। ६ सुत। ७ होई। ८ होई। ९ आबए। १० दसाह। ११ एक।

झा (पद-सं० १५२)—१-२ आरम्भ कामा।

शब्दार्थ—द्विज = गरुड। द्विज आहर = सर्प। द्विज आहर आहर = वायु। द्विज ......सुत = भीम। द्विज......नन्दन = घटोत्कच, (नामैकदेशे नामग्रहणम्—न्याय से) घट। द्विज......सुत = अगस्त्य। द्विज......आहर = समुद्र। द्विज......सुत = अमृत = अभीष्ट। वनज = कमल। वनज बन्धु = सूर्य। वनज...सुत = कर्ण। वनज......सुत सुत = वृषसेन = (उपर्युक्त न्याय से) सेन = इशारा। मा = मान। धव = स्वामी। हरि = मेढक। हरि अरि = साँप। हरि अरि अरि = गरुड। हरि......पति = विष्णु। हरि...... तात = (सखा) महादेव। (महादेव का) वाहन = वृषभ। गोपति = नन्दी। गोपति पति = शिव। गोपति......अरि = कामदेव। गोपति......वाहन = मन। दस = दस इन्द्रियाँ। सायक जोगे नाम = पञ्चसायक = कामदेव। तसु (कामदेव का) नायक = मन। हरि = मेढक। हरि अरि = साँप। हरि अरि अरि = गरुड। हरि......पति = कृष्ण। नउमि दसा हे एके = एक के साथ नवमी दशा, अर्थात् दशमी दशा = मृत्यु।

अर्थ—अभीष्ट की कामना से, इशारा देकर सुन्दरी संकेत-स्थान को चली।

हे माधव! (उसकी) विशेष (काम-) कला को (मैंने) समझा। तुम्हारे गुणों से लुब्ध होकर प्रेम की प्यासी (वह अपने) मान (और) स्वामी की उपेक्षा करके आई।

(दूती नायिका का परिचय देती हुई कहती है—) युवती के नाम में महादेव का वाहन—वृषभ है। (अर्थात्, नायिका का नाम वृषभानुजा है।)

दसो इन्द्रियों से मिलकर (उसका) मन कभी विराम नहीं लेता। (अर्थात्, तुम्हारे विना उसका मन और दसो इन्द्रियाँ चञ्चल हो रही हैं।)

हे कृष्ण! (आप उसके) मन को जानते ही हैं।

सुकवि विद्यापति कहते हैं कि कामिनी मृत्यु में मिल रही है। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

अहिरानीरागे—

[१५५]

हरि रिपु[१] रिपु[२] प्रभु तनय से घरिनी[३]
तुलना[४] रूप रमनी[५] ।
विबुधासन सम वचन सोहाओन[६]
कमलासन सम गमनी ॥ ध्रु० ॥
साए-साए[७] देषलि[८] जाइते[९] मग
जिनए आइलि जग
विबुधाधिपपुर गोरी ॥
घटज असन सुत देषिअ[१०] तैसन[११] मुख
चञ्चल नयन[१२] चकोरा ।
हेरितहि सुन्दरि हरि जनि लए गेलि
हर रिपु वाहन मोरा ॥
उदधि तनय सुत सिन्दुर[१३] लोटाओल[१४]
हासे देषलि[१५] रज[१६] कान्ती[१७] ।
खटपद[१८] वाहन कोष[१९] बइसाओल
बिहि लिहु सिखरक पान्ती[२०] ॥
रवि सुत तनय दइ[२१] गेलि सुन्दरि
विद्यापति कवि भाने[२२] ।

ने० पृ ५९(क), प० १६६, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १३ प्र०)—३ घरिनि । ५ (यह पंक्ति नहीं है) । ६ सोहाओन । ८-९ जाइते देखलि । १० ताहेरि । १३ सिन्दुरे । १४ लोटाएल । १५ देखलि । १६ रद । १७ काँती । २० पाँती । २१ तनअ दइए ।

अन्त में निम्नलिखित पंक्ति है—

राजा शिवसिंह[२३] रूपनराअन लखिमा देवि[२४] रमाने ॥

सं० अ०—७-८-९ जाइते देखलि मग । १२ नअन । १३ उदधि तनअ सुत सिन्दुर । १५ देखलि । १६ रद । १७ काँती । १८ षटपद । २० पाँती । २१ तनअ दइए । २२ राजा सिवसिंह रूपनराजेन लखिमादेइ रमाने ।

मि० म० (पद सं० १६६)—१-२ रिपु। ४ से तुलना। ६ सोहाओन। ८-९ जाइते देखलि। १० देखिअ। ११ तइसन। १३ सिन्दुरे। १४ लोटाएल। १५ देखलि। १७ कान्ति। १९ कोस। २० पाँती। २१ तनय दइए। २३ सिवसिंघ। २४ देइ।

झा (पद-सं० १५३)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—हरि=कोकिल। हरि रिपु=काक। हरि रिपु रिपु=उलूक। हरि रिपु रिपु प्रभु=लक्ष्मी। हरि रिपु रिपु प्रभु तनय=कामदेव। हरि······घारिनी=रति। विवुधासन=विवुध=देवता, असन=भोजन। विवुधासन=अमृत। कमलासन=कमल=एक फूल; असन=भोजन। कमलासन=हंस। मग=मार्ग। जिनए=जीतने के लिए। विवुधाधिप=इन्द्र, विवुधाधिप पुर=स्वर्ग। विवुधा···गोरी=अप्सरा। घटज=अगस्त्य। असन=भोजन। घटज असन=समुद्र। घटज······सुत=चन्द्रमा। हर=शिव। हर रिपु=कामदेव। हर रिपु वाहन=मन। उदधि=समुद्र, उदधि तनय=सीप, उदधि तनय सुत=मौक्तिक। रद=दाँत। खटपद=भ्रमर। खटपद-वाहन=कमल। खटपद वाहन कोष=कमल-कोष। विहि=विधि। सिखर=अनार के बीज के समान रूप-रंगवाली मणि, पद्मराग मणि। रवि=सूर्य। रवि सुत=किरण। रवि सुत तनय=ताप।

अर्थ—रति-तुल्य रूपवाली (वह) रमणी (थी)। (उसका) वचन अमृत के समान सुहावना (था)। हंस के समान (उसकी) गति (थी)।

मार्ग में जाते हुए (उसको) देखा। (मालूम होता था, जैसे) संसार को जीतने के लिए स्वर्ग की अप्सरा आई हो।

चन्द्रमा के समान (उसका) मुख देखकर चकोर (के समान मेरे) नयन चञ्चल हो गये। देखते ही, मानो, सुन्दरी मेरे मन को हरकर ले गई।

हँसने के कारण (उसके) दाँतों की कान्ति देखी। (जान पड़ता था, जैसे) मोती सिन्दूर में लोट रहा है (अथवा) विधाता ने कमल-कोष में पद्मराग मणि की पंक्ति लिखकर बैठा दी है।

कवि विद्यापति कहते हैं कि सुन्दरी ताप देकर चली गई। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इस रस के जाननेवाले हैं।)

धनछीरागे—

[१५६]

पहिलुकि[1] परिचय पेमक संसय[2]
रंजनी अधिक[3] समाजे।
सकल कलारस सभालि न हलबे[4]
बैरिनि भेलि मोरि लाजे[5] ॥ ध्रु०॥

सं० अ०—पहिलुक परिचअ पेमक संसअ
रजनी - आध समाजे।
सकल कलारस सँभारि न भेले
बइरिनि भेलि मोरि लाजे ॥ ध्रु०॥

हुनिहि[6] सुबन्धु के लिखिए[7] पठाओब[8]
भमरा[9] जञो[10] हो[11] दूते ॥
कबहु[12] हार[13] कर[14] कबहु[15] चिकुर गह
कबहु हृदय[16] कुच सङ्गे[17] ।
एकलि नारि हमे[18] कत अनुरञ्जब
एकहि बेरि[19] सबे रङ्गे ॥
आओर[20] विनय जत से सबे[21] कहब कत
बोलए चाहिअ[22] कर[23] जोली ।
नबए रङ्ग[24] सबे[25] भङ्ग[26] भैए गेल[27]
ओळ[28] धरि न भेले[29] बोली ॥
ओ नव नागर सुपहु सुचेत(न)
विद्यापति कवि भाने[30] ॥

ने० पृ० ५९, प० १६७, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २०६)—२ सञ्चय । ३ आध । ४ समरि भेले । ५ (ध्रु० के बाद) साए साए अनुसए रहलि बहूते । ६ तन्हिहि । ७ कहिए । ८ पठाइअ । ९-१०-११ जौं भमरा होअ । १२-१३-१४-१५

साए-साए । अनुसए रहल बहूते ।
तन्हिहि सुबन्धु के लिखिए पठाइअ
जञो भमरा होअ दूते ॥
खनहि चीर धर खनहि चिकुर गह
करए चाह कुच भङ्गे ।
एकलि नारि हमे कत अनुरञ्जब
एकहि बेरि सबे रङ्गे ॥
तखने विनअ जत से सबे कहब कत
कहए चाहल कर जोली ।
नवए रस-रङ्ग भइए गेल भङ्ग
ओळ धरि न भेले बोली ॥
भनइ विद्यापति सुन वर जउवति ।
पहु - अभिमत अभिमाने ।
राजा सिवसिंह रूपनराजेन
लखिमा देइ बिरमाने ॥

खनहि चीर धर खनहि। १६-१७ करय चाह कुच भङ्गे। १६ बेर। २० तखने। २२-२३ कहए चाहल करे। २४-२५-२६-२७ नबए रस रङ्ग भइए गेल भङ्ग। २८ ओड़। ३० (अन्तिम पंक्तियों के स्थान में--)

भनइ बिद्यापति सुन[३१] वर जौवति
पहु अभिमत अभिमाने।
राजा सिवसिंह[३२] रूपनरायन
लखिमा देइ बिरमाने॥

मि० म० (न० गु० के समान पाठ। निम्नलिखित भेद)—१ पहलुक। ४ सँभरि न हलवे। १८ हम। २० तखन। २१ सब। २४-२७ नव रस-रङ्ग भङ्ग भए गेल सखि। २८ ओर। २६ भेल न। ३१ सुनु। ३२ सिवसिंह।

झा (पद-सं० १५४)--२० आतुर।

शब्दार्थ—पहिलुक = पहला। रजनी = रात्रि। समाजे = मिलन। अनुसए = पश्चात्ताप। चीर = वस्त्र। चिकुर = केश। एकलि = अकेली। कत = कितना। अनुरञ्जब = सँभाल सकूँगी। कर जोली = हाथ जोड़कर। ओळ = अन्त। पहु = प्रभु। बिरमाने = विराम-स्थल।

अर्थ—पहला परिचय (था), प्रेम का संशय था (और) आधी रात में मिलन (हुआ)। (इसीलिए) सम्पूर्ण कलारसों को सँभाल नहीं सकी। मेरी लज्जा बैरिन हो गई।

हे सखी! बहुत पश्चात्ताप रह गया। यदि भौंरा दूत हो (तो) उस सुबन्धु को (लौट आने के लिए) लिख भेजना चाहिए।

क्षण में वस्त्र छूते थे, क्षण में केश पकड़कर कुच-भङ्ग करना चाहते थे। एक ही बार में सारे रङ्ग! अकेली नारी मैं कितना सँभाल पाती?

उस समय की जितनी विनय है, सो सब मैं कितना कहूँगी? (कृष्ण ने) हाथ जोड़-कर (कुछ) कहना चाहा (कि) नया रस-रङ्ग भङ्ग हो गया। (अर्थात्—हाथ जोड़कर कहने के समय हाथ से वस्त्र, केश और स्तन—सब-कुछ छूट गये। रस-रङ्ग भङ्ग हो गया। इसी उपक्रम में मैं) अन्त तक (कुछ) कह नहीं सकी।

विद्यापति कहते हैं कि हे वरयुवती! सुनो। प्रभु का अभिमत ही अभिमान (होना चाहिए)। राजा शिवसिंह रूपनरायण लखिमा देवी के विराम-स्थल हैं। (अर्थ— संपादकीय अभिमत से।)

केदाररागे—

[१५७]

छलिहु[१] पुरुब भोरे न[२] जाएब[३] पिआँ[४] मोरे
पालक[५] सुतलि[६] धनि[७] कल[८] हइ[९]।
खने[१०] एके जागलि रोअए लागलि
पिआ गेल निज कर मुदली दइ[११] ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—१ छलिहि। ४ पिआ। ५ पालंक। ९ हई। ११ मुँदरी दई।

दिने दिने तनु सेष[12] दिवस बरिस लेष[13]
सुन कान्ह[14] तोह बिनु जैसनि[15] रमनी ।
परक वेदन दुष[16] न बुझए मुरुख[17]
पुरुष[18] निरापन चपलमती ।
रभस पललि[19] बोल सत कए तन्हि[20] लेल
कि करति अनाइति पललि[21] जुवती[22] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६०(क), प० १६८, पं० २

पाठभेद—

न०गु० (पद-सं० ७७१)--४ पिआ। ५ पानिक। ६ सुता। ८-९ कलहइ। १० खने। ११ मुदरी हइ। १२ सेख। १३ लेख। १४ कन्हु। १६ दुख। १९ पड़लि। २१ पड़लि। २२ जुवति।

मि० म० (पद-सं० ४३८)--४ पिआ। ५ पानिक। । १२ सेख। १३ लेख। १६ दुख। १८ पुरुस। २२ जुवति।

झा (पद-सं० १५५)--२-३ जाएब। ६-७ सुतलि। ८ कलहई। ११ दई। १६ दुख।

शब्दार्थ—छलिहु = थी। भोरे = भ्रम में। पालंक (पल्यङ्क—सं०) पलंग। कल हइ = चैन होकर। खने = क्षण में। मुदली = (मुद्रिका—सं०) अँगूठी। दइ = देकर। सेष = (शेष—सं०) समाप्त। दिवस = दिन। लेष = बराबर। मुरुख = मूर्ख। निरापन = (निरापन्न—सं०) निरापद। रभस = हास्य। अनाइति = पराधीनता।

अर्थ—पहले के भ्रम में थी (कि) मेरे प्रिय नहीं जायेंगे। (इसीलिए) धन्या चैन होकर पलंग पर सो गई।

एक क्षण में जगी (तो) रोने लगी (कि) प्रिय अपने हाथ की अँगूठी देकर चले गये।

हे कृष्ण! तुम्हारे विना (वह) रमणी जैसी (हो गई है, सो) सुनो। दिन-दिन (उसका) शरीर समाप्त हो रहा है (और उसके लिए) दिन वर्ष के बरावर हो रहे हैं।

निरापद मूर्ख पुरुष चपलमति होता है। (अर्थात्—बिना ठोकर खाये मूर्ख की बुद्धि ठिकाने नहीं लगती।) (वह) दूसरे की वेदना का दुःख नहीं समझता।

हास्य में कही बात को उसने सच मान लिया। पराधीनता में पड़ी युवती क्या कर सकती है?

केदाररागे—

[१५८]

छलि[1] भरमे राहि[2] पिआओ जाएब कहि
कोप कइए नीन्द[3] गेली ।
जागि उठलि धनि देखि सेज सुनि
हरि बोलइते निन्द गेली ॥ ध्रु० ॥

---

१२ सेख। १३ लेख। १५ जइसनि। १६ दुख। १७ अमरुख। २० तोह।

सं० अ०—१ अछलि। ३ निन्द।

माधव इ[४] तोर कओन गेआने ।
सबे सबतहु बोल जे सह से बड[५]
परे बुझबहि[६] अगेआने ॥
भल न कएल तोहे पेअसि अलप कोहे
दुर कर छैलक[७] रीति[८] ।
ओछा सओ[९] हरि न करिअ सरिपरि[१०]
ते कर बर अनिसाति[११] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६०, प० १६६, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद सं०) ३६४)—१ पुनि । २ बहीहि । ६ बुझवाइ । ९ ओछासओ । १० सरि परि । ११ ते करव रसनि आति ।

झा (पद-सं० १५६)--२ निन्द । ४ ई । ५ वड़ । ५ बुझाबह । ११ ते करब रअनि(हु) साति ।

शब्दार्थ—राहि = राधा । सुनि = सूना । सबतहु = सबसे । अगेआने = अज्ञानी । पेअसि = प्रेयसी । कोहे = क्रोध से । सरिपरि = सरबरि = बराबरी । अनसाति = झुँझलाहट ।

अर्थ—राधा भ्रम में थी (कि) प्रिय कहकर जायेंगे । (इसीलिए) क्रोध करके (वह) सो गई ।

(जब) धन्या जगी (तो) सूनी सेज देखकर 'हरि' बोलती हुई फिर सो गई ।

हे माधव ! तुम्हारा यह कैसा ज्ञान है ? सभी सबसे कहते हैं (कि) वही बड़ा है, जो सहन करता है । अज्ञानी ही (अपनी बात) दूसरों को समझाते हैं ।

तुमने भला नहीं किया (कि) प्रेयसी के थोड़े क्रोध से ही रसिकों की रीति दूर कर दी ।

हे कृष्ण ! ओछे (व्यक्तियों) से बराबरी नहीं करनी चाहिए । वह (बराबरी) बड़ी झुँझलाहट पैदा करती है ।

केदाररागे—

[१५९]

नयनक[१] ओत होइते[२] होएत[३] भाने
विरह होएत नहि रहत पराने ।
से आबे देसान्तर आन्तर[४] भेला
मनमथ मदन रसातल गेला ॥ ध्रु० ॥

---

४ ई । ५ सबे सबतहु कह से बड जे सह । ६ बुझबसि । ७ छइलक । ८ रीती । ११ बड़ अनिसाती ।

सं० अ०—१ नअनक । ३ होअ ।

कओोन[5] देस बसल रतल कओोन[6] नारी
सपने न देखए निठुर मुरारी[7] ।
अमृत सिचलि सनि बोललन्हि बानी
मन पतिआएल मधुरपति जानी ॥
हम छल टुटत[8] न जाएत नेहा
दिने दिने बुझलक[9] कपट सिनेहा[10] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६१(क), प० १७१, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६३४)—२ होइते। ४ आतर। ५ कओोन। ७ मुरारि। ८ दुटुत।

मि० म० (पद-सं० ५३४)—२ होइत। ४ आँतर। ५ कओोन। ६ कओोन। ९ बुझल। १० सिनेह।

झा (पद-सं० १५७)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—ओत = ओट। होइतँ = होते ही। होएत = होगा। आन्तर = अन्तर। रसातल = पाताल। रतल = अनुरक्त हुए। पतिआएल = मान:गया।

अर्थ—आँख की ओट होते ही ऐसा भान होता था (कि यदि) विरह होगा तो प्राण नहीं बचेंगे।

(किन्तु) वही अब देशान्तर (चले गये), अन्तर हो गया (तो) मन को मथनेवाला कामदेव (भी) पाताल चला गया। (अर्थात्—कामदेव पृथ्वी पर रहता, तो कृष्ण देशान्तर नहीं जाते।)

किस देश में (जा) बसे? किस नारी में अनुरक्त हो गये? स्वप्न में भी निष्ठुर कृष्ण नहीं देखते।

(उन्होंने) अमृत से सींची हुई-सी बातें कहीं। मथुरापति समझकर (अर्थात्—ये मथुरापति की बातें हैं,—यह समझकर) मन (भी) मान गया।

मुझे (लगता था कि उनका) स्नेह न तो टूटेगा (और) न जायगा। (किन्तु) दिन-दिन (अर्थात्—ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, मैंने) कपट-स्नेह ही समझा।

---

८ हमे छल टुटत। ९ बूझल।

कानलरागे—

[१६०]

अरुण[1] लोचन घूमि घुमाओल[2]
जनि रतोपले पवन[3] पाओल[4] ।
आकुल चिकुर[5] आनन[6] झापल
जनि तमचाओे[7] चान्द[8] चापल[9] ॥ ध्रु० ॥
माधव कैसे[10] जाइति वासा
देषि[11] सखीजन हो उपहासा ॥
नख दोष[12] देषल[13] कुच करतल[14]
कमले झापि[15] कि हो कनकाचल ॥
फूजलि[16] नीवी आनि मेराउलि
जनि सुरसरि उतरे[17] धाउलि ॥
सुकवि भने विद्यापति गाओल[18]
इ रस रूपनराएए पाओल ॥

ने० पृ० ६१, प० १७३, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २६६)—१ अरुन । २ घूमि घुमाएल । ३ रतोपल पवने । ५ चिकुरे । ६ वदन । ७ तमाचञे । ८ चाँद । १० ककें । ११ देखि । १२ खत । १३ देल । १४ सिरीफल । १५ झाँपि । १६ फुजलि ।

१८ भने विद्यापति कौतुक गाओल ।
इ रस राए सिवसिंह पाओल ॥

मि० म० (पद-सं० ६६)—१ अरुन । २ घुमि घुमाएल । ३ रतोपल पवने । ५ चिकुरे । ६ वदन । ७ तमाचञे । ८ चाँद । १० ककेँ । ११ देखि । १२ खत । १३ देल । १४ सिरीफल । १५ झाँपि १६ फुजलि ।

१८ मन विद्यापति कौतुक गाओल ।
इ रस राए सिवसिंह पाओल ॥

झा (पद-सं० १५८)—४ पालोल । ७ तमठाञे ।

सं० अ०—१ अरुन । ३ रतोपल पवने । ५ चिकुरेँ । ६ आनन झाँपल । ७ तमाचञे । ९ चाँपल । १० कइसे । ११ देखि । १२ नखखत । १३ देखल । १४ सिरीफल । १५ कमले झाँपि । १७ उपरे । १८ सुकवि विद्यापति कउतुक गाओल । इ रस राए सिवसिंह पाओल ।

शब्दार्थ—अरुन = लाल। घूमि = निद्रा से। रतोपल = रक्तोत्पल = कोकनद। पवन = वायु। आकुल = अस्त-व्यस्त। चिकुर = केश। तमचाञे = (तमश्चय—सं०) अन्धकार-समूह।

अर्थ—निद्रा से (नायिका की) लाल आँखें घूम रही हैं। (मालू होताम है, जैसे) हवा ने कोकनद पाया हो। (अर्थात्—हवा से कोकनद डोल रहा हो।)

अस्त-व्यस्त केशों से (उसका) मुख ढँका है। (जान पड़ता है,) जैसे अन्धकार-समूह ने चन्द्रमा को दवा रखा हो।

हे कृष्ण ! (वह) घर कैसे जायगी ? देखकर सखियाँ उपहास करेंगी।

(उसके) स्तन-रूपी श्रीफल पर नख-क्षत दिखलाई पड़ता है। (इसका क्या उपाय होगा ? हाथ से तो स्तन ढका नहीं जा सकता। कारण,) हाथ से कहीं सुमेरु ढका जाता है ?

खुली हुई नीवी को (नायिका ने) लाकर मिला दिया। (जान पड़ता है,) जैसे गङ्गा ऊपर की ओर दौड़ पड़ी हो। (अर्थात्—नीचे गिरी साड़ी इस तरह ऊपर आई, जिस तरह गंगा ऊपर की ओर दौड़ आई हो।)

सुकवि विद्यापति ने कोहवर गाया। राजा शिवसिंह ने यह रस पाया। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से)

कानलरागे—

[१६१]

आकुल चिकुर बेढल मुख सोभ।
राहु कएल ससिमण्डल लोभ॥
उभरल चिकुर माल कर रङ्ग।
जनि जमुना जल गाङ्ग तरङ्ग॥
बड अपरुब दुहु चेतन मेलि।
विपरित रति कामिनि कर केलि॥
हास सोहाओन सम जल विन्दु।
मदन मोति दए पूजल इन्दु॥
पिआ मुख समुखि चुम्ब तेजि ओज।
चान्द अधोमुख पिबए सरोज॥
कुच विपरीत विलम्बित हार।
कनक कलश जनि दूधक धार॥

किङ्किणि रणित नितम्बहि छाज ।
मदन महासिधि बाजन बाज ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६२(क), प० १७४, पं० २

पाठभेद—

झा (पद-सं० १५९)—पाठभेद नहीं है ।

गीत-संख्या ६३ द्रष्टव्य ।

कानलरागे—

[१६२]

नारङ्गि छोलङ्गि कोरि कि बेली
कामे पसाहलि आचर[1] फेली ।
आबे[2] भेलि ताल फल तूले
कँहा[3] लए जाइति अलप मूले ॥ ध्रु० ॥
से कान्ह से हमे से धनि राधा
पुरुब पेम न[4] करिअ[5] बाधा ॥
जातकि केतकि सरसि(ज) माला
तुअ गुन गहि गाथए[6] हारा ।
सरस निरसि[7] तोह के बुझाबे[8]
कहा लए बूलति[9] भेलि विमाने[10] ।
सरस कवि विद्यापति गाबे
नागर नेह पुनमत[11] पावे ॥

ने० पृ० ६३ (क), प० १७६, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४०८)—७ निरस । ८ बुझ आने । ९ चलति । ११ पुनमति ।

मि० म० (पद-सं० ४१३)—४ ना । ७ निरस । ९ चलति ।

झा (पद-सं० १६०)—९ बलति । १० विमाने ।

शब्दार्थ—नारङ्गि=संतरा । छोलङ्गि = (छोलङ्ग – सं०) नीबू । कोरि = (कोली—सं०) बेर । बेली = छोटा बेल, जिसकी नसदानी मिथिला में बनती है । कामे = कामदेव ने । पसाहलि = सजाया । फेली = फैलाकर । बूलति = घूमेगी । विमाने = मानहीना ।

सं० अ०—१ आँचर । २ से आबे । ३ कहाँ । ४-५ न करिअए । ६ गाँथए । ८ सरस निरस के बुझ तोह आने । ९ कहाँ लए बूलति । ११ नागरि नेहा पुनमत ।

अर्थ—कामदेव ने आँचल फैलाकर सन्तरा, नीबू, बैर (या) छोटा बेल सजाया।

वह अब (बढ़कर) तालफल के समान हो गया। (नायिका उसे) मूल्य घट जाने के कारण कहाँ ले जायगी?

(तुम) वही कृष्ण हो, मैं (भी) वही हूँ (और) धन्या राधा (भी) वही है। (इसलिए) पहले के प्रेम में बाधा मत करो।

तुम्हारे गुण को ग्रहण कर (अर्थात्—तुम्हारे गुणों का बखान कर वह) जातकी, केतकी और कमल की माला गूँथती है।

(वह माला) सरस है या नीरस है—तुमसे दूसरा इसे कौन समझ सकता है? (और,) मानहीना होकर (अर्थात्—अपना मान गँवाकर वह माला लिये) कहाँ घूमेगी?

सरस कवि विद्यापति गाते हैं कि पुण्यवान् ही नागरी का स्नेह पाता है। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

कानलरागे—

[१६३]

निसि निसिअर[१] भम भीम भुअङ्गम
जलधरे[२] बिजुरि[३] उजोर।
तरुण[४] तिमिर राति[५] तैंअओ[६] चलि[७] जासि
बड सखि साहस तोर॥ ध्रु०॥
साजनि[८] कमन[९] पुरुष[१०] धन जे तोर हरल मन
जाहेरि उदेसे[११] अभिसार॥
अँगा तञो जञुन[१२] नरि से कइसे जएबह[१३] तरि
आरति देबह[१४] झापे[१५]।
तोरा अछ[१६] पचसर[१७] तेँ[१८] तोहि नहि डर
मोर हृदय[१९] बरु[२०] कापे[२१]॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ६३(क), प० १७७, पं० ४

सं० अ०—४ तरुन। ५ निसि। ६ तइअओ। ७ चललि। ८ सुन्दरि। ९ कओन। १४-१५ आरति न करिअ झाँप। १७ पँचसर। १८ तञे। २० बड। २१ काँप। अन्त में रामभद्रपुर की भणिता।

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० १००)—१ निसिअ्रे। २ जलधर। ३ बोजु। ४ तरुन। ५ निसि। ६ तइअो। ७ चललि। ८ सुन्दरि। ११ ताहेरि उदेसे। १२-१३ आगे तञो जौन नरि से कैसे जाएब। १४ न करिअ। १५ झाप। १६ अछि। १७ पंचसर। १८ तें। १९ हृदअ। २० बड। २१ काप। अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

> भनइ विद्यापति अरे वर जउवति
>
> साहस कहहि न जाए।
>
> अछए जुवति गति कमला देवि पति
>
> मन बस अरजुन राए॥

न० गु० (पद-सं० ३००)—२ जलधर। ४ तरुन। ५ निसि। ६ तइअओ। ७ चललि। ८ सुन्दरि। ९ कओन। ११ जसु लोभे चलु। १२ आतर दुतर। १४ न करिअ। १५ झाप। १८ ते। २१ काँप। अन्त में उपर्युक्त भणिता है।

मि० म० (पद-सं० ३३१)—२ जलधर। ४ तरुन। ५ निसि। ६ तइअओ। ७ चललि। ८ सुन्दरि। ९ कओन। १० पुरुस। ११ जसु लोभे चलु। १२ आतर दुतर। १४ न करिअ। १५ झाप। १८ ते। २१ काँप। अन्त में उपर्युक्त भणिता है। केवल 'देवि' के स्थान में 'देइ' है।

झा (पद-सं० १६१)—१५ आपे।

शब्दार्थ—निसि = रात। निसिअर = निशिचर—सं०। भम = भ्रमण करते हैं। भीम = भयानक। भुअङ्गम = (भुजङ्गम—सं०) साँप। उजोर = (उद्योत—सं०) प्रकाश। तिमिर = अन्धकार। धन = धन्य। अँगा = आगे। जउन = यमुना। नरि = नदी। तरि = तैरकर। आरति = आर्त्त होकर। झापे = (झम्प—सं०) पानी में कूदना (डूबना)। गति = अवलम्ब।

अर्थ—रात में भयानक निशिचर साँप घूम रहे हैं, मेघ में बिजलियाँ कौंध रही हैं, अत्यन्त अँधेरी रात है; फिर भी चली जा रही हो! हे सखी! तुम्हारा बड़ा साहस है।

हे सुन्दरी! (ऐसा) कौन पुरुष धन्य है, जिसने तुम्हारे मन को हर लिया है (और) जिसके उद्देश्य से (तुम्हारा) अभिसार है?

आगे तो यमुना नदी है। उसे तैरकर कैसे पार जाओगी? आर्त्त होकर पानी में कूद पड़ोगी। तुम्हें पंचशर है (अर्थात्—तुम्हारा सहायक पंचशर है।) इसीलिए तुम्हें डर नहीं लगता; (किन्तु) मेरा हृदय जोरों से काँप रहा है।

विद्यापति कहते हैं—अरी वरयुवती! (तुम्हारे) साहस के विषय में (कुछ) कहा नहीं जाता। कमला देवी के पति अर्जुन राय युवतियों के अवलम्ब हैं। (वही तुम्हारे) मन में वास करें। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

कानलरागे—

[१६४]

चरण[1] नूपुर उपर[2] सारी
मुखर मेखल करे[3] निबारी
अम्बरे[4] समरि[5] देह झपाइ[6]
चलहि तिमिर पथ समाइ[7] ।
समुद कुमुद[8] रभस रसी[9]
अबहि उगत कुगत ससी ।
आएल चाहिअ सुमुखि तोरा
पिसुन लोचन भम चकोरा ॥
अलक तिलक न कर[10] राधे
आङ्ग[11] विलेपन करहि बाधे।
तञे[12] अनुरागिणि[13] ओ अनुरागी
दूषण[14] लागत भूषण[15] लागी ॥
भने[16] विद्यापति सरस कवि[17]
नृपति कुल सरोरुह रवि[18] ॥

ने० पृ० ६३, प० १७८, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २४३)—८ कुसुम। ११ अङ्गे। १२ तजे। १३ अनुरागिनि। १७ कवी। १८ रवी।

मि० म० (पद-सं० ३२०)—५ सामर। ६ झपाई। ७ समाई। ८ कुसुम। ६ बसी। ११ अङ्गे। १२ तयँ। १३ अनुरागिनि।

झा (पद-सं० १६२)—१० करव।

शब्दार्थ—सारी = साड़ी। मुखर = बोलनेवाली। करे = हाथ से। अम्बरे = कपड़े से। समरि = श्यामा। तिमिर = अन्धकार। समुद = प्रसन्न, खिले हुए। कुगत = पापी। ससी = चन्द्रमा। भम = घूमते हैं। अलक = केश। सरोरुह = कमल। रवि = सूर्य।

अर्थ—पैरों में नूपुर (और) ऊपर (शरीर में) साड़ी! (और अधिक कुछ नहीं।) मुँहजोर मेखला को (भी) हाथों से निवारण करके—

सं० अ०—१ चरन। २ ऊपर। ३ कों। ४ अम्बरें। ५ सामरि। ७ पन्थ समाइ। १२ तोञ। १३ अनुरागिनि। १४-१५ भूषण लागत दूषण लागी। १६ भनइ।

हे श्यामे ! वस्त्र से देह को ढँककर अँधेरी राह में छिपकर चलो।

खिले हुए कुमुद के रंग-रभस का रसिया पापी चन्द्रमा अभी उगेगा।

(यद्यपि) चुगलखोरों की आँखें चकोर की तरह घूम रही हैं, (तथापि) हे सुमुखि ! तुम्हें आना चाहिए।

हे राधे ! अलक-तिलक मत करो। शरीर में (अङ्गराग आदि का) विलेपन (भी) छोड़ दो। (अर्थात्—साज-सज्जा में देर हो जायगी। अतः, उसे छोड़ दो।)

तुम अनुरागिणी हो (और) वे (कृष्ण) अनुरागी हैं। (फिर भला साज-सज्जा का क्या प्रयोजन ?) भूषण तो दूषण के लिए ही हो जायगा !

नृपति-कुल-कमल के लिए सूर्य के समान (अर्थात्—राजवंश को प्रसन्न करनेवाले) सरस कवि विद्यापति यह कहते हैं।

कोलाररागे—

[१६५]

हिमकर हेरि अवनत कर आनन
कए करुणा[1] पथ हेरी।
नयन[2] काजर लए लिखए विधुन्तुद
कए[3] रहु ताहेरि सेरी ॥ ध्रु० ॥
माधव कठिन हृदय[4] परवासी।
तुअ पेअसि मञे देषलि वराकी[5]
अबहु पलटि घर जासी ॥
मीनकेतन भँञे[6] शिव शिव शिव कए
धरणि[7] लोटाबए देहा।
करज[8] कमल लए कुच सिरिफल दए
शिव पूजए निज गेहा ॥
दाहिन[9] पवन बह से कैसे[10] जुवति सह
करे[11] कवलित तसु अङ्गे।
गेल परान आस दए राखए
दस नखे[12] लिहए[13] भुअङ्गे ॥

सं० अ०—१ कर करुना। २ नअन। ३ भए। ४ हृदअ। ५ मोञ देखलि बराकिनि। ६ भए। ७ धरनि। ८ करे रे। । ९ दखिन। १० कइसे। ११ कर। १२ नखेँ। १३ लिखए।

दुतर पयोधि फेने नहि सन्तरि[१४]
विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंह रूपनराएण
लखिमा देवि रमाने ॥[१५]

ने० पृ० ६४(क), प० १८०, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७४८)—

माधव कठिन हृदय परवासी ।
तुअ[१] पेयसि मोञे[२] देखलि वराकिनि[३]
अबहु पलटि घर जासी ॥
हिमकर हेरि अवनत कर आनन
कर करुणा[४] पथ हेरी ।
नयन काजर लए लिखए विधुन्तुद
भए[५] रह ताहेरि सेरी ॥
दखिण[६] पवन वह से कइसे[७] जुवति सह
कर कवलित तसु अनङ्गे[८]
गेल पराए आश[९] दए राखए[१०]
दश[११] नखे लिखए भुअङ्गे[१२] ॥
मीनकेतन भए शिव शिव कए[१३]
धरनि लोटावए गेहा[१४] ।
कर रे कमल लए कुच सिरिफल दए
शिव[१५] पूजए निज देहा ॥
परभृत के डरे[१६] पाअस लए करे
वाएस[१७] निकट पुकारे ।
राजा शिवसिंह[१८] रूपनरायन
करथु विरह उपचारे ॥

न० गु० (पद-सं० ७६५, न० गु० से)—१ तुय। २ पेअसि मोयेँ। ४ करु करुना। ६ दखिन। ८ तसु अङ्गे। ९ परान आस। १० राखय। ११ दस। १३ भए शिव शिव शिव कए। १४ देहा। १६ डरें। १८ सिवसिंह।

मि० म० (पद-सं० १७७, न० गु० से)—२ मोयँ। ३ देखल वियोगिनि। ४ करु करुना। ५ भय। ६ दखिन। ७ कैसे। ८ तनु अनङ्गे। ९ परान आस। ११ दस। १२ नख लिखइ भुजङ्गे। १३ मय सिव सिव सिव कय। १४ देहा। १५ सिव। १७ वायस। १८ सिवसिंघ।

झा (पद-सं० १६३)—६ भञे। ७ धरनि। १२-१३ दसन खेलि हए।

शब्दार्थ—हिमकर = चन्द्रमा। आनन = मुख। पथ = मार्ग। विधुन्तुद = राहु। ताहेरि = उसका। सेरी = आश्रय। परवासी = (प्रवासी-सं०) परदेशी। पेअसि = (प्रेयसी-सं०)

सं० अ०—१४-१५ परभृतहुँक डर पाअस लए कर बाअस निअर पुकारे।
राजा सिवसिंह रूपनराञेन करथु विरह-उपचारे॥

प्रियतमा । वराकी = दुखिया । मीनकेतन = कामदेव । भँजे = भय से । धरणि = (धरणी—सं०) धरती । कुच = स्तन । सिरिफल = (श्रीफल—सं०) बेल । गेहा = घर में । परभृतहुँक = कोकिल के । पाअस = (पायस—सं०) खीर । वाअस = (वायस—सं०) काक ।

अर्थ—(विरहिणी) चन्द्रमा को देखकर मुख को नीचे कर लेती है । (स्वामी की) बाट देखती हुई करुणा करती है ।

आँखों का काजल लेकर राहु लिखती है (और चन्द्रमा के) डर से उसके आश्रय में रहती है ।

हे माधव ! परदेशी कठिन-हृदय होता है । तुम्हारी दुखिया प्रियतमा को मैंने देखा है । अब भी तो लौटकर घर जाओ ।

कामदेव के डर से 'शिव-शिव-शिव !' करती हुई (वह) शरीर को धरती पर लोटा रही है ।

(और) कर-रूपी कमल लेकर तथा स्तन-रूपी श्रीफल देकर (वह अपने) घर में शिव को पूजती है ।

दक्षिण वायु बह रही है । युवती कैसे उसका सहन कर सकती है । वह वायु उसके अङ्ग को ग्रास बना रही है ।

(विरहिणी) गये हुए प्राण को आशा देकर रख रही है (और) दस नखों से सर्प लिखती है । (अर्थात्—सर्प दक्षिण पवन को पी लेगा, तो उसके प्राण बच जायँगे ।)

कोकिल के डर से हाथ में खीर लेकर काक को निकट बुलाती है । (अर्थात्—सहज वैर के कारण काक कोकिल को खदेड़ देगा, तो कोकिल की कूक नहीं सालेगी ।)

(कवि कहता है कि) राजा शिवसिंह रूपनारायण विरह का उपचार करें । (अर्थ—संपादकीय अभिमत से ।)

कोलाररागे—

[१६६]

प्रथमहि हृदय पेम उपजाए ।
पेमक आङ्कुर गेलाह बढ़ाए ॥
से आबे तरुअर सिरिफल भास ।
तहि तल' बले मनमथे लेल वास ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०— प्रथमहि रङ्ग-रभस उपजाए ।
प्रेमक आँकुर गेला हे बढाए ॥
से आबे दिन-दिन तरुनत भास ।
ताँ तरुवर मनमथे लेल वास ॥ ध्रु० ॥

माधव कके बिसरलि वर नारि।
बड परिहर गुण दोस विचारि॥
नयन सरोज दुहू बह नीर।
काजर पखरि पखरि पल चीर॥
तेहि तिमित भेल उरज सुबेस।
मृगमदे पूजल कनक महेश॥
काजरे राहु[2] उरग लिख[3] काग।
बिस मलयज पुनु मलयज पाङ्क॥
चान्द पवन पिक मदन तरास।
सर गदगद घन छाड निसास॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ६४, प० १८१, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७६८)—

प्रथमहि रङ्ग रभस उपजाए[1]।
प्रेमक आँकुर गेलाहे बढ़ाय॥
से आवे[2] दिन दिन तरुनत भास।
ताँ तरवर मनमथे लेल वास॥
माधव ककें[3] बिसरलि वर नारि।
वड़ परिहर गुन दोस विचारि॥

माधव! ककेँ बिसरलि वर नारि।
बड परिहर गुन-दोष विचारि॥
चान्द - पवन - पिक - मदन - तरास।
सर गदगद घन तेज निसास॥
काजरेँ राहु उरग लिख काक।
विष मलअज पुनु मलअज पाँक॥
नअन-सरोज दुहू बह नीर।
काजर पखरि-पखरि पळ चीर॥
तेँहि तिमित भेल उरज सुबेस।
मृगमदें पूजल कनक-महेस॥
सुपुरुष - वाचा सुपहु - सिनेह।
कबहुँ न बिचल पखानक रेह॥
भनइ बिद्यापति सुन वर नारि।
धर मन धइरज मिलत मुरारि॥

पिक पञ्चम डरे मदन तरास ।
सर गदगद घन तेज निसास ॥
नयन सरोज दुहू बह नीर ।
काजर पधरि[४] पधरि[५] पर चीर ॥
तेंहि[६] तिमित भेल उरज सुबेस ।
मृगमदे पूजल कनक महेस ॥
सुपुरुष[७] वाचा सुपहु सिनेह ।
कबहु न बिचल पखानक रेह ॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि ।
धरु मन धीरज मिलत मुरारि ॥

मि० म० (पद-सं० ५५१, न० गु० से)—१ उपजाय। २ अब। ३ ककें। ४-५ पखरि पखरि। ६ तेंहि। ७ सुपुरुस।

झा (पद-सं० १६४)—१ तजे। २ बाहु। ३ लिप।

शब्दार्थ—आङ्कुर = अङ्कुर। तल = नीचे। मनमथे = कामदेव। ककें = क्यों। परिहर = त्याग करता है। तरास = त्रास। सर = स्वर। घन = अनवरत। उरग = साँप। मलअज = चन्दन। सरोज = कमल। पखरि-पखरि = धुल-धुलकर। चीर = कपड़ा। तेहि = उससे। तिमित = (अस्तमित—सं०) डूब गया। उरज = स्तन। सुबेस = सुन्दर। मृगमदे = कस्तूरी से। बिचल = विचलित होता है। पखानक = पत्थर की। रेह = रेखा।

अर्थ—पहले रंग-रभस उपजाकर, प्रेम का अंकुर बढ़ाकर चले गये।

वह (अङ्कुर) अब दिन-दिन (क्रमशः) तरुण हो गया (और) उस तरुवर पर कामदेव ने बसेरा लिया।

हे माधव ! (तुमने उस) वर नारी को क्यों भुला दिया ? बड़ा (आदमी) गुण-दोष का विचार करके त्याग करता है।

चन्द्रमा, (मलय) पवन और कोकिल के (कारण वह) कामदेव से डर रही है। (उसका) स्वर गद्गद (हो गया और वह) निरन्तर निश्वास त्याग करती है।

(वह) काजल से राहु, सर्प (और) काक लिखती है। (अर्थात्—सहज शत्रुता के कारण राहु चन्द्रमा को ग्रस लेगा, सर्प मलय पवन को पी लेगा और काक कोकिल को खदेड़ देगा।) (उसके लिए) विष (ही) चन्दन है (और) चन्दन (तो) पङ्क है। (अर्थात्—विष ही अब उसे शान्ति दे सकता है। चन्दन तो पङ्क की तरह व्यर्थ ही है।)

(उसके) दोनों नयन-कमल से नीर (आँसू) बह रहे हैं। काजल धुल-धुलकर कपड़े पर पड़ रहा है। उससे (उसके) सुन्दर स्तन भींग गये हैं। (मालूम होता है, जैसे) कस्तूरी से सोने के शिव पूजे गये हों।

सुपुरुष का वचन (और) सुपहु का स्नेह पत्थर पर की रेखा की तरह कभी टस-से-मस नहीं होते।

(इसीलिए) विद्यापति कहते हैं—हे वरनारी ! सुनो। मन में धैर्य धारण करो। कृष्ण अवश्य मिलेंगे। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

कोलाररागे—

[१६७]

कुसुमे रचित[१] सेज मलयज पङ्कज
पेश्रसि[२] सुमुखि समाजे ।
कत मधुमास विलासे गमाबह[३]
श्राबे कहितहु पर लाजे[४] ॥ ध्रु० ॥
माधव काहु जनु दिन श्रवगाहे[५] ।
सुरतरु तर सुखे जनम गमाश्रोल
धुथुरा तर निरबाहे ॥
दखिन पवन सौरभे[६] उपभोगल[७]
पीउल[८] श्रमिश्र[९] रस सारे ।
कोकिल कलरव उपवन[१०] पूरल
तहु[११] कत कएल[१२] विकारे ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६५ (क), प० १८२, पं० ५

सं० श्र०— कुसुमे रचल सेज मलश्रज पङ्कज
पेश्रसि सुमुखि - समाजे ।
कत मधुमास विलासे गमाश्रोल
श्राबे कहितहु पर लाजे ॥ ध्रु० ॥
माधव ! दिन जनु काहु श्रवगाहे ।
सुरतरु तर सुखेँ जनम गमाश्रोल
धुथुरा तर निरबाहे ॥
दखिन पवन सउरभ उपभोगल
पिउल श्रमिश्र - रस - सारे ।
कोकिल-कलरव उपवन पूरल
तन्हि कत कएल विकारे ॥
पातहि सनो फुल भमर श्रगोरल
तरु तर लेलन्हि वासे ।
से फुल काटि कीट उपभोगल
भमरा भेल उदासे ॥

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६५२)—१ रचल। २ पेयसि। ३ गमाओल। ४ अब पर कहइते लाजे। ५ सखि हे दिन जनु काहु अवगाहे। ६ सऊरभ। ७ अपभोगल। ८ पिऊल। ९ अमिय। १० ऊपवन। ११ तन्हि। १२ कयल। आगे निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

पातहि सञो फुल भमरे अगोरल
तरुतर लेलन्हि वासे।
से फल काटि कीटे ऊपभोगल
भमरा भेल ऊदासे॥
भनइ विद्यापति कलिजुग परिनति
चिन्ता जनु कर कोइ।
अपन करम अपने पए भुञ्जिय
जञो जनमान्तर होइ॥

मि० म० (पद-सं० ५२४, न० गु० से)—६ सउरभ। ७ उपभोगल। ८ पिउल।

झा (पद-सं० १६५)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—कुसुमे=फूलों से। मलयज=चन्दन। पङ्कज=कमल। पेअसि=प्रेयसी। कत=कितने। अवगाहे=विलोडित। सुरतरु=कल्पवृक्ष। तन्हि=वे। परिनति=परिणाम। भुञ्जिअ=भोगते हैं।

अर्थ—फूलों की बनी शय्या, चन्दन, कमल के फूल (और) सुमुखी प्रेयसी का समाज! (इस तरह) कितने ही मधुमास विलास करके बिता दिये। दूसरे को कहने में भी अब लज्जा होती है।

हे माधव! किसी को भी समय विलोडित नहीं करे। (अर्थात्—किसी के भी बुरे दिन न हों।) सुरतरु के नीचे सुख से जन्म बिताया, (अब) धथूरे के नीचे निर्वाह कर रहा हूँ।

दक्षिण पवन के सौरभ का उपभोग किया (और) अमृत-रस के सार का पान किया। कोकिल के कलरव से उपवन भरा था। उसने कितने विकार पैदा किये!

भ्रमर ने पत्र से (अंकुर से) ही पुष्प को अगोर रखा। (इसके लिए उसने) पेड़ पर बसेरा लिया। (किन्तु) कुतरकर कीट ने उस फूल का उपभोग किया। भ्रमर उदास हो गया।

विद्यापति कहते हैं—(यही) कलियुग का परिणाम है। (इसलिए) कोई चिन्ता नहीं करे। यदि जन्मान्तर हो जाय, तो भी अपने किये हुए कर्मों का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

भनइ विद्यापति कलिजुग-परिनति
चिन्ता जनु कर कोई।
अपन करम अपने पए भुञ्जिअ
जञो जनमान्तर होई॥

कोलाररागे—

[१६८]

हमे एकसरि पिअतम नहि गाम
तेँ तरतम अछइते एहि ठाम।
अनतहु कतहु करैतहु वास
दोसर न देषिअ पळउसिआओ पास॥ ध्रु०॥
चल चल पथिक करिअ प...[1] काह[2]
वास नगर भमि अनतहु चाह।
सात प(ाँ)च घर तन्हि सजि देल
पिआ देसान्तर आन्तर भेल॥
बारह वर्ष अवधि कए गेल
चारि वर्ष तन्हि गेला भेल।
मोरो[3] मन हे खनहि खने[4] भाङ्ग
गमन[5] गो(प)ब[6] कत मनसिज जाग॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ६५, प० १८३, पं० ३

सं० अ०— हमे एकसरि पिअतम नहि गाम।
तञे मोहि तरतम देइते ठाम॥
अनतहु कतहु देअइतहुँ वास।
जञो केओ दोसरि पड़उसिनि पास॥ ध्रु०॥
चल चल पथुक। चलह पथ माह।
वास नगर भमि अनतहु चाह॥
आँतर पाँतर साँझक बेरि।
परदेस बसिअ अनागत हेरि॥
घोर पओधर जामिनि भेद।
जे करबह ता कर परिछेद॥
भनइ विद्यापति नागरि-रीति।
व्याज-वचने उपजाब० पिरीति॥

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० पर० ६)—

हमे एकसरि पिअतम नहि गाम ।
तेँ[1] मोहि तरतम देइते ठाम ॥
अनतहु कतहु देअइतहु वास ।
जौँ[2] केओ दोसरि पड़उसिनि पास ॥
चल चल पथुक चलह पथ माह ।
वास नगर वोलि अनतहु याह ॥
आँतर पाँतर साँझक वेरि ।
परदेस वसिअ अनागत हेरि ॥
घोर पयोधर जामिनि भेद ।
जेकर रह[3] ताकर परिछेद ॥
भनइ विद्यापति नागरि रीति ।
व्याज वचने उपजाव पिरीति ॥

मि० म० (पद-सं० ५८४, न० गु० से)—१ तेँ । २ जौँ । ३ वह ।

झा (पद-सं० १६६)—१-२ पकाह । ३ मोरा । ४ खन । ५ गमल । ६ गोर ।

विशेष—इस पद की अन्तिम छह पंक्तियाँ ७३ संख्यक पद की हैं । वहीं इनके अर्थ दिये गये हैं ।

शब्दार्थ—एकसरि = अकेली । तरतम = तारतम्य । ठाम = स्थान, जगह । अनतहु = अन्यत्र भी । पथुक = पथिक । भमि = भ्रमण करके, घूम-फिरकर । आँतर = अन्तर में । पाँतर = प्रान्तर । बेरि = समय । अनागत = भविष्य । हेरि = देखकर । पओधर = मेघ । जामिनि = रात । भेद = रहस्य । परिछेद = निर्णय । व्याज वचने = वक्रोक्ति से ।

अर्थ—मैं अकेली हूँ, स्वामी (भी) गाँव में नहीं हैं । इसीलिए (रात बिताने को) जगह देते मुझे तारतम्य (संशय) हो रहा है ।

यदि कोई पड़ोसिन पास रहती (तो) अन्यत्र भी कहीं वास दिला देती ।

हे पथिक ! जाओ-जाओ । (अपनी) राह जाओ । नगर में घूम-फिरकर अन्यत्र (कहीं) ठौर करो ।

(आगे तो बढ़ नहीं सकते । कारण,) बीच में प्रान्तर है, शाम का समय है, (और) परदेश में भविष्य को देखकर (अर्थात्—आगे सोचकर) रहना चाहिए ।

भयावने मेघ हैं, रात का रहस्य है (अर्थात्—रात की बात है, इसलिए) जो करोगे, उसका निर्णय कर लो ।

विद्यापति कहते हैं (कि यही) नागरी की रीति है । वक्रोक्ति से वह प्रीति उपजाती है । (अर्थ—संपादकीय अभिमत से ।)

कोलाररागे—

[१६६]

रसिकक सरबस नागरि बानि
भल परिहर न आदरि आँनि[1] ।
हृदयक कपटी[2] वचन[3] पिआर[4]
अपने रसे उकठ[5] कुसिआर[6] ॥ ध्रु० ॥
आबे कि बोलब सखि बिसरल जे ओ[7]
तुअ रुपे[8] लुबुध मही नहि के ओ ।
पएर पखाल रोषे[9] नहि खाए
अन्धरा हाथ भेटल दुर[10] जाए ॥
तञे जे कलामति ओ अविवेक
न पिब सरोज अमिअ[11] रस भेक ।
अकुलिन सञो[12] यदि[13] कए सदभाव
तत कए कतए चतुरपन फाब ॥
ओकरा हृदय रहए नहि लागि[14]
सुनलछ कतहु जूड होअ आगि[15] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६६(क), प० १८४, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५१२)—१ आनि । २ कपटि । ३ वचने । ४ पियार । ५ उकट । ६ कुसियार । ७ देओ । १० हर । ११ अमिय । १३ जदि । १४ ओकरा हृदय न रहले खागि । १५ कतए सुनल अछ जुड़ि हो आगी । अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति सह कत साति ।
से नहि विचल जकरि जे जाति ॥

मि० म० (पद सं० ४५३)—१ आनि । ३ वचने । ४ पियार । ५ उकट । ६ कुसियार । ७ देओ । ९ रोसे । १० हर । ११ अमिय । १२ सयँ । १३ जदि । १४ ओकरा हृदय न रहले खागि । १५ कतए सुनय अछ जुड़ि हो आगि । अन्त में उपयुक्त भणिता है ।

झा (पद-सं० १६७)—पाठभेद नहीं है ।

सं० अ०—१ जानि । २ हृदअक कपटा । ३ वचने । ५ रसेँ उकठ । ८ रुपेँ । ९ पखारि रोपे । १४ ओकरा हृदअ न रहले लागि ।

शब्दार्थ—सरबस = सर्वस्व । बानि = स्वभाव । परिहर = त्याग करता है । आदरि= आदर के साथ । आँनि = लाकर । पिआर = प्रिय । उकठ = उत्कट । जे ओ = वह जो । मही = पृथ्वी । के ओ = वह कौन है । पखाल = प्रक्षालन करके = धोकर । भेक = मेढक । फाब = फबती है । लागि = अपेक्षा । जूड = शीतल ।

अर्थ—भला (आदमी) आदर के साथ लाकर त्याग नहीं करता । (यही) रसिक का सर्वस्व (और) नागरी का स्वभाव है ।

हृदय का कपटी (और) वचन का प्रिय (व्यक्ति) अपने में रस रहते भी ऊख की तरह उत्कट होता है ।

हे सखी ! उन्होंने जो (तुम्हें) भुला दिया, अतः अब क्या कहूँ ? तुम्हारे रूप से संसार में कौन है जो लुब्ध नहीं हो सकता ।

(वे) पैर धोकर (भी) ईर्ष्यावश खा नहीं रहे हैं । (मालूम होता है, जैसे) अन्धे का (राह दिखलानेवाला) हाथ दूर जा पड़ा । (अर्थात्—जैसे अन्धे का राह दिखलानेवाला हाथ छूट जाय, तो वह जहाँ का तहाँ खड़ा रह जाता है, टस-से-मस नहीं होता, उसी तरह वे भी टस-से-मस नहीं होते ।)

तुम कलावती हो (और) वे (प्रिय) विवेकहीन हैं । (मैं क्या करूँ ?) मेढक कमल का अमृत-रस नहीं पीता ।

यदि अकुलीन से सद्भाव किया जाय (तो) सद्भाव करने के बाद क्या चतुरता फबती है ?

उसके (अकुलीन के) हृदय में अपेक्षा नहीं रहती । आग शीतल होती है—(ऐसा) कहीं सुना है ?

कोलाररागे—

[१७०]

जलधि सुमेरु दुअओ थिक सार
सबतह गुनिअ[1] अधिक बेबहार ।
मालति तोहे यदि[2] अधिक उदास
भमर गओ[3] सओ[4] आबे कमलिनि पास ॥ ध्रु० ॥
लाथ करसि कत अवसर पाए
देउब[5] न होअए हाथ[6] भपाए ।
कुचयुग कन्चन कलश[7] समान
मुनिजन दरसने उगए गेआन[8] ॥

सं० अ०—२ तोहें जदि । ६ हाथे । ७ कुचजुग कञ्चन कलस ।

तञे[9] वरनागरि अपने गून
कञोनक[10] देले[11] हो बड[12] पून ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६६, प० १८५, पं० ६

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४४१)--१ गनिअ। २ जदि। ३-४ जाव। ५ देहरि। ६ हाथे। ७ कलस। ८ गेआन। १२ वड़।

मि० म० (पद-सं० ४३६)—१ गनिअ। २ जदि। ५ देहरि। ६ हाथे। ७ कुचजुग कञ्चन कलस। ८ गेआन। १० कओनक। १२ वड़।

झा (पद-सं० १६८)--१ गनिअ। ५ देउर। १२ वड़।

शब्दार्थ—जलधि=समुद्र। सार=श्रेष्ठ। गञो सञो=धीरे से। आवे=आ जाएगा। लाथ=वहाना। देउब=देना। गून=विचार करो। कञोनक=किसको। पून=पुण्य।

अर्थ—समुद्र (और) सुमेरु—दोनों ही श्रेष्ठ हैं। (किन्तु) व्यवहार को सबसे अधिक (श्रेष्ठ) समझना चाहिए।

हे मालती! यदि तुम अधिक उदास हो जाओगी, तो भ्रमर धीरे से कमलिनी के पास आ जायगा।

अवसर पा करके (भी) कितना बहाना करती हो? (अरे!) हाथ ढककर दिया नहीं जाता। (अर्थात्—बहाना करके प्रेम नहीं किया जाता।)

(तुम्हारे) दोनों स्तन कञ्चन-कलश के समान हैं। (इनके) दर्शन से मुनियों का (भी) ज्ञानोदय होता है। (यह वक्रोक्ति है। अतः अर्थ हुआ—मुनियों का भी ज्ञान लुप्त होता है।)

तुम श्रेष्ठ नागरी हो, स्वयं विचार करो कि (वह स्वर्ण-कलश) किसे देने से अधिक पुण्य होगा?

कोलाररागे—

[१७१]

साकर सूध दुधे[1] परिपूरल
सानल अमिअक सारे।
सेहे वदन तोर अइसन करम मोर
खारे पए बरिसए धारे ॥ ध्रु० ॥

---

९ तोञ। ११ देलेँ।

सं० अ०—१ साँकर सूध दुधेँ।

साजनि पिसुन[२] वचन देहे काने ।
दे(ह)[३] विभिन्न[४] विधाता आइति
तोरा मोरा एके पराने ॥
कोपहु सओ[५] यदि[६] समदि पठाबह
वचने न बोलह मन्दा ।
तोर वदन सन[७] तोरे[८] वदन पए
खार न बरिसए[९] चन्दा ॥
चौदिस लोचन चमकि चलाबसि
न मानसि काहुक शङ्का[१०] ।
तोरा[११] मुह सओ[१२] किछु भेद कराओब
ते[१३] देल[१४] चान्द[१५] कलङ्का ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६६, प० १८६, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३६१)—२ पिशुन । ३ देहे । ४ विभिन । ६ जदि । ९ बरिसय । १३-१४ देल ।

मि० म० (पद-सं० ३८४)—३ देह । ५ सयँ । ९ बरिसय । १० सङ्का । ११ तोर । १२ सयँ । १५ चाँद ।

झा (पद-सं० १६९)—७ सम । ८ तोर ।

शब्दार्थ—साकर = शक्कर । सूध = शुद्ध । अमिअक = अमृत के । खारे = क्षार । पिसुन = चुगलखोर । आइति = आयत्त । समदि = संवाद । सन = सम ।

अर्थ—शक्कर (और) शुद्ध दूध से भरा-पूरा (एवं) अमृत से सना तुम्हारा मुख है । (फिर भी) मेरा ऐसा कर्म है (कि वह) खार की धारा बरसा रहा है ।

हे सखी ! (तुम) चुगलखोरों की बात पर कान दे रही हो ? देह भिन्न है—(यह तो) विधाता के अधीन है; (किन्तु) हम दोनों के प्राण एक ही हैं ।

यदि (तुम) क्रोध करके भी संवाद भेजो (तो) मन्द वचन नहीं बोलो । (कारण,) तुम्हारे मुख के समान तुम्हारा ही मुख है । चन्द्रमा (कभी) खार नहीं बरसता ।

चारों ओर चमककर आँखें चला रही हो । किसी की शङ्का नहीं मानती । तुम्हारे मुख से कुछ भेद कराना था । इसीलिए (विधाता ने) चन्द्रमा को कलङ्क दिया ।

---

६ जदि । १० सङ्का ।

कोलाररागे—

[१७२]

आएल पाउस निबिड[1] अन्धार
सघन नीर बरिसए जलधार ।
घनहन देषिअ[2] विघटित रङ्ग
पथ चलइते[3] पथिकहु मन भङ्ग ॥ ध्रु० ॥
कओने[4] परि आओत बालभु मोर[5]
आगु न चन[6] अभिसारिनि पार ।
गुरुगृह तेजि सयनगृह[7] जाथि
तिथिहु[8] वधूजन[9] शङ्का[10] याथि[11] ॥
नदिआ जोरा भअउ[12] अथाह
भीम भुअङ्गम[13] पथ चलताह ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६७(क), प० १८७, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २६३)—१ निविड़ । ४ कओने । ५ हमार । ८ तथिहु । ६ वधुजन । ११ आथि । १२ भउ । १३ भुजङ्गम ।

मि० म० (पद-सं० ३२८)—१ निविड़ । ३ चलइत । ४ कओने । ६ चलइ । ८ तिथिकु । १० सङ्का । ११ आथि । १२ भउ । १३ भुजङ्गम ।

झा (पद-सं० १७०)—१ निविड़ ।

शब्दार्थ—पाउस = पावस । निविड = सघन । जलधार = जलधर, मेघ । घनहन = भरा-पूरा । रङ्ग = क्रीडा । याथि = (अस्ति—सं०) है । जोरा = जोरों पर । भीम = भयानक । भुअङ्गम = (भुजङ्गम—सं०) साँप ।

अर्थ—पावस आया । अन्धकार घना हो गया । मेघ जोरों से बरसने लगे ।

भरा-पूरा रंग (ही) विघटित दिखलाई पड़ता है । रास्ता चलते बटोहियों का मन भी विचलित हो रहा है ।

किस तरह मेरे स्वामी आयेंगे ? अभिसारिणी (भी) आगे नहीं जा सकती है ।

(वधुएँ) माँ-बाप के घर को त्याग कर शयन-गृह जाती हैं; (किन्तु) वहाँ (तक जाने में) भी शङ्का है ।

नदी जोरों पर है—अथाह हो गई है । भयावने सर्प रास्ते में चल रहे हैं ।

सं० अ०—२ देखिअ । ५ हमार । ७ सअनगृह । ८ तथिहु । ११ आथि ।

कोलाररागे—

[१७३]

प्रथमहि हृदय[1] बुझओलह मोहि
बडे[2] पुने[3] बडे[4] तपे[5] पौलिसि[6] तोहि ।
काम कला रस दैव अधीन
मञे[7] बिकाएब तञे[8] वचनहु[9] कीन ॥ ध्रु० ॥
दूति[10] दयावति कहहि विशेषि[11]
पुनु बेरा[12] एक कैसे[13] होएत देषि[14] ॥
दुर दूरे देषलि[15] जाइते आज
मन छल मदने साहि देब काज ॥
ताहि लए गेल विधाता वाम
पलटलि डीठि[16] सून भेल ठाम ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६७, प० १८८, पं० २.

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७३)—२ वड़े । ४ वड़े । ६ पौलिस । ११ विसेखि । १३ कइसे । १४ देखि । १५ देखलि ।

मि० म० (पद-सं० २४७)—२ वड़े । ४ वड़े । ११ विसेखि । १३ कइसे । १४ देखि । १५ देखलि । १६ दीठि ।

झा (पद-सं० १७१)—१० दुति ।

शब्दार्थ—पौलिसि = पाया । कीन = खरीदो । बेरा एक = एक वार । साहि देब = सिद्ध कर देगा । डीठि = दृष्टि । ठाम = स्थान ।

अर्थ—पहले (तुमने मेरे) हृदय को मोहकर समझा दिया (अर्थात्—मेरे हृदय को मोह लिया । मैंने समझा कि) वड़े पुण्य से—वड़े तप से तुम्हें पाया ।

(यद्यपि) काम-कला-रस दैवाधीन है (तथापि) मैं बिकूँगी । तुम वचन से भी खरीद लो ।

सं० अ०—१ हृदअ । ३ पुनेँ । ५ तपेँ । ७ मोञ । ८ तोञ । ९ वचनहुँ । ११ बिसेखि । १२ बेराँ । १३ कइसे । १४ देखि । १५ देखलि ।

हे दूती ! हे दयावती ! विशेष करके (समझाकर) कहो कि फिर एक बार कैसे दर्शन होंगे ?

आज (मैंने) बहुत दूर से (उन्हें) जाते देखा। मन में था कि कामदेव कार्य सिद्ध कर देगा।

(किन्तु) वाम विधाता उन्हें ले गया। आँख पलटते ही स्थान सूना हो गया। (अर्थात्—पलक गिरते ही कृष्ण ओझल हो गये। फिर देखा, तो स्थान सूना था।)

कोलाररागे—

[१७४]

दिवस मन्द भल न रहए सब षन[१]
बिहि[२] न दाहिन रह[३] वाम लो।
सेहे[४] पुरुष वर जेहे धैरज[५] कर
सम्पद विपदक ठाम लो ॥ ध्रु० ॥
माधव, बुझल सबे अवधारि लो।
जस अपजस दुअओ[६] चिरे थाकए
आओर दिवस[७] दुइ चारि लो ॥
अपन करम अपनहि[८] भूजिअ[९]
बिहिक चरित नहि बाध लो।
काएर[१०] पुरुष हृदय[११] हारि मर
सुपुरुष सह अवसाद लो ॥
तीनि भुवन मही[१२] अइसन दोसर नही[१३]
विद्यापति कवि भाने[१४]।
राजा सिवसिंह रूपनराएण[१५]
लखिमा देवि[१६] रमाने[१७] ॥

ने० पृ० ६८(क), प० १९०, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५०४)—१ खन। ३ पाठाभाव। ७ दिन। ९ भूँजिय। १० कातर। १४ मान लो। १५ रूपनराएन। १७ रमान लो।

सं० अ०—१ खन। ५ धइरज। ६ दूअओ। ८ अपनहिँ पए। ९ भुञ्जिअ। ११ पुरुषा हृदअ। १२ महि। १३ नहि। १४ भान लो। १५ रूपनराजेन। १७ रमान लो।

मि० म० (पद-सं० ५०)—१ खन। ४ सोह। ९ भुँजिश्र। १५ रुप नराएन।
झा (पद-सं० १७२)—२ विधि। १५ रूपनरायण। १६ देखि।

शब्दार्थ—थाकए = रहता है। काएर = (कातर—सं०) कायर। मही = महँ = में।

अर्थ—बुरा (या) भला दिन सदा नहीं रहता। विधाता (भी) सदा दायें (या) बायें नहीं रहते। (इसलिए) सम्पत्ति (या) विपत्ति की घड़ी में जो पुरुष धैर्य धारण करता है, वही श्रेष्ठ है।

हे माधव! (मैंने) सोच-विचारकर सब समझ लिया। यश-अपयश—(ये) दोनों (ही) चिर-काल तक रहते हैं और (सभी) दो-चार दिन ही रहते हैं।

अपना कर्म स्वयं ही भोगना पड़ता है। विधाता के चरित्र में बाधा नहीं होती। कायर पुरुष हृदय हारकर मर जाता है; (किन्तु) सुपुरुष दुःख सहन करता है।

कवि विद्यापति कहते हैं कि त्रिभुवन में ऐसा (कोई) दूसरा नहीं है, (जैसा) लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण हैं।

कोलाररागे--

[१७५]

खने सन्ताप सीत जल जाड[1]
की उपचरब[2] सन्देह न छाड[3]।
उचितओ भूषण[4] मानए भार
देह रहल अछ सोभा सार ॥ ध्रु० ॥
ए सखि तुरित[5] कहहि[6] अवधारि
जे किछु समदलि ते[7] वरनारि[8]।
भेद न[9] मानए चान्दन[10] आगि
बाट हेरए ओ[11] अहनिसि जागि ॥

सं० अ०—खने सन्ताप सीत जर जाड़।
की उपचरब सन्देह न छाड़ ॥
उचितओ भूषन मानए भार।
देह रहल अछ सोभा-सार ॥ ध्रु० ॥
ए हरि! तुरित कहहि अवधारि।
जे किछु समदलि ते वरनारि ॥
भेद न मानए चान्दन आगि।
बाट हेरए ओ अहनिसि जागि ॥

जिनल[१२] इन्दु[१३] वदन[१४] ते[१५] ताब
होएत[१६] किदहु[१७] एहि परथाब ।
नव आखर गदगद सर रोए
जे किछु सुन्दरि समदल गोए ॥
कहहि[१८] न पारिअ तसु अवसाद
दोसरा पद अछ[१९] सकल समाद ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६८, प० १६१, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७६०)—१ जर जाड़। ३ छाड़। ४ भूषन। ५ तोरित। ६ करिअ। ७-८ सुन्दरि नारि। ९ वेदन। ११ तुअ। १२-१३-१४-१५ जीनल वदन इन्दु तें। १६-१७ कीदहु होइति। १८ कहए।

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति एहो रस भान ।
अबुझ न बुझए बुझए मतिमान ॥
राजा सिवसिंह[२०] परतख देओ ।
लखिमा देइ पति पुनमत सेओ ॥

मि० म० (पद-सं० १८०)—१ जर जाड़। ३ छाड़। ४ भूसन। ५ ए हरि तोरित। ६ करिअ। ७-८ सुन्दरि नारि। ९ वेदन। १० चानन। ११ तुअ। १२-१३-१४-१५ जीनल वदन इन्दु तें। १६-१७ कीदहु होइति। १८ कहए। अन्त में उपर्युक्त भणिता है, जिसका पाठभेद—२० सिवसिंघ।

झा (पद-सं० १७३)—२ उचचरव। १९ अछि।

जीनल वदन इन्दु तजे ताब ।
होएत कीदहुँ एहि परथाब ॥
नव आखर गदगद सर रोए ।
जे किछु सुन्दरि समदलि गोए ॥
कहइ न पारिअ तसु अवसाद ।
दोसरा पद अछ सकल समाद ॥
सुकवि विद्यापति एहो रस भान ।
अबुझ न बुझए बुझए मतिमान ॥
राजा सिवसिंह परतख देओ ।
लखिमा देइ पति पुनमत सेओ ॥

शब्दार्थ—सोभासार=शोभा को धारण किये हुए। जिनल=जीत लिया। ताव=ताप दे रहा है। किदहु=क्या। परथाव=प्रस्ताव। रोए=रोकर। गोए=चुप-चोरी। अवसाद=दुःख। समाद=संवाद। परतख=प्रत्यक्ष। देओ=देव, देवता। सेओ=वह।

अर्थ—क्षण में शीत, क्षण में ज्वर (और) क्षण में जाड़ा सन्ताप दे रहा है। क्या उपचार करूँगी? सन्देह नहीं छोड़ रहा है। (अर्थात्—क्षण में शीत, क्षण में ज्वर और क्षण में जाड़ा होने के कारण सन्देह बना ही रहता है कि क्या उपचार करूँ?)

आवश्यक आभूषण को भी (वह) भार मानती है। (उसका) शरीर (मात्र) शोभा को धारण किये है।

हे हरि! उस वर नारी ने जो संवाद दिया है, सोच-विचार कर (उसका उत्तर) शीघ्र कहो।

वह चन्दन और अग्नि में भेद नहीं मानती। दिन-रात जगकर (तुम्हारी) बाट जोहती है।

(उसके) मुख ने चन्द्रमा को जीत लिया। इसीलिए (वह) ताप दे रहा है। (किन्तु) इस प्रस्ताव से क्या होगा। (अर्थात्—ये सब बातें कहकर अब क्या होगा?)

सुन्दरी ने गद्‌गद स्वर से रोकर चुप-चोरी जो कुछ संवाद दिया है, वह नौ अक्षर (मात्र) है।

उसका दुःख मैं कह नहीं सकती। दूसरे पद में ही सारा संवाद है। (अर्थात्—नायिका ने 'आब मरब विष खाए' ये नौ अक्षर कहला भेजे, जिनमें दूसरे पद 'मरब' में ही सारा संवाद है।)

सुकवि विद्यापति यह रस कहते हैं। अज्ञ (इसे) नहीं समझता। बुद्धिमान (ही इसे) समझते हैं।

लखिमा देवी के पति पुण्यवान् राजा शिवसिंह प्रत्यक्ष देवता हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

कोलाररागे—

[१७६]

उधकल केसपास लाजे गुपुत हास
रयनि उजागरि मुख न उजरा।
पीन पयोधर नखखत सुन्दर
कनक कलस जनि केसु पूजला ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०— उधसल केसपास लाजेँ गुपुत हास
रजनि-उजागरेँ मुख न उजला।
पीन पओधर नखखत सुन्दर
कनक-कलस जनि केसु पुजला ॥ ध्रु० ॥

न न न न कर सखि सारद ससिमुखि
सकल चरित तुअ बुझल विसेषि ॥
बसा[1] पिधु विपरित तिलके तिरोहित
अधर काजर मिलु कमने परी ।
एत सबे लखन सङ्ग विचखन
कपटे रहत कति खन जे धरी ॥
अलस गमन तोर वचन बोलसि भोर
मदन मनोहर मोहगता ।
जम्भसि[2] पुनु पुनु ज(ा)सि अबस तनु
अतापे छुइल मृणाल लता ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६६(क), प० १९२, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २६६)—

उधसल केसपास लाजे गुपुत हास
रजनि उजागरे मुख न उजला ।

न-न-न-न कर सखि ! परिनत-ससिमुखि !
सकल चरित तोर बुझल बिसेखी ॥
अलस गमन तोर वचन बोलसि भोर
मदन - मनोरथ - मोह - गता ।
जृम्भसि पुनु-पुनु जासि अबस तनु
आतपे छुइलि मृणाल-लता ॥
वास पिन्धु विपरित तिलक तिरोहित
नअन-काजर जलेँ अधर भरू ।
एत सव लक्खन सङ्ग बिचक्खन—
कपट रहत कति खन जे धरू ॥
भने कवि विद्यापति अरे वरजउवति !
मधुकरेँ पाउलि मालति फुललि ।
हासिनि देवि-पति देवसिंह नरपति
गरुडनरायेन - रङ्गे भुलली ॥

नख पद सुन्दर पीन पयोधर
कनक सम्भु जनि केसु पुजला ॥
न न न न कर सखि परिनत ससिमुखि
सकल चरित तोर बुझल विसेखो ॥
अलस गमन तोर वचन बोलसि भोर
मदन मनोरथ मोहगता ।
जृम्भसि पुनु पुनु जासि अरस तनु
आतपे छूइलि मृणाल लता ॥
वास पिन्धु विपरित तिलक तिरोहित
नयन कज्जर जले अधर मरु।
एत सबे लछन[१] सङ्ग बिचच्छन
कपट रहत कति खन जे धरु ॥
भने कवि विद्यापति ओ वर जौवति
मधुकेर पाउलि मालति फुललि[२] ।
हासिनि देविपति देवसिंह नरपति
गरुड़नरायन रङ्गे भूललि[३] ॥

मि० म० (पद-सं० ३, न० गु० से)—१ लच्छन । २ फुलली । ३ भुलली ।

झा (पद-सं० १७४)—१ वस(न) २ जम्मसि ।

विशेष—ध्रुपद के वाद एक पंक्ति की छूट प्रतीत होती है।

शब्दार्थ—उधकल = उधसल = अस्त-व्यस्त। उजागरि = जागरण से। उजरा = उज्ज्वल, प्रशस्त। पीन = पुष्ट। पयोधर = स्तन। नखखत = नखक्षत। केसु = (किंशुक—सं०) पलाश। परिनत = अन्त समय के, अस्त-कालीन। भोर = भ्रान्तिपूर्ण। जम्भसि = जँभाई लेती हो। जासि = जाती हो। तनु = शरीर। अतापे = घाम से। मृणाललता = कमलिनी। वसा = वस्त्र। पिधु = पहने हुई हो। तिरोहित = मिटा हुआ। अधर = ओष्ठ। लखन = लक्षण। बिचखन = विचक्षण। कति खन = कबतक।

अर्थ—(तुम्हारा) केशपाश अस्त-व्यस्त है, लज्जावश हास्य गुप्त है (और) रात्रि-जागरण के कारण मुख उज्ज्वल नहीं है।

तुम्हारे) पीन पयोधर पर सुन्दर नखक्षत हैं। (जान पड़ता है; जैसे) पलाश के फूलों से सोने का कलश पूजा गया हो।

हे अस्तकालीन चन्द्रमा की तरह मुखवाली सखी! (तुम) 'न-न-न-न' करती हो; (किन्तु) तुम्हारा सम्पूर्ण चरित्र (मैंने) अच्छी तरह समझ लिया।

तुम्हारी चाल अलसाई है, (तुम) भ्रान्तिपूर्ण बातें बोलती हो। (मालूम होता है, तुम) कामदेव के मनोरथ-रूपी मोह में खो गई हो।

(तुम) बार-बार जँभाई लेती हो, लड़खड़ाती हुई चलती हो। (जान पड़ता है, जैसे तुम) घाम से छुई-मुई कमलिनी हो।

(तुमने) उलटा कपड़ा पहन लिया है। (तुम्हारा) तिलक मिट गया है। (तुम्हारी) आँखों का काजल आँसू से (धुलकर) ओष्ठ को आच्छन्न कर रहा है।

इतने लक्षणों के रहते विचक्षण के साथ (तुम्हारा) कपट कबतक रह सकता है, जो (तुम) धारण कर रही हो। (अर्थात्—उपर्युक्त लक्षणों के रहते तुम कपट नहीं कर सकती हो।)

कवि विद्यापति कहते हैं—अरी वरयुवती! भ्रमर को पाकर मालती फूल उठी। हासिनी देवी के पति राजा देवसिंह गरुडनारायण के रङ्ग में (वह) भुला गई।

कोलाररागे—

[१७७]

बरिसए लागल गरजि पयोधर
धरणी[१] ... ... दि[२] भेलि[३] ।
नबि नागरि[४] रत परदेस[५] बालभु
आओत आसा गेलि[६] ॥ ध्रु० ॥
साजनि आबे हमे मदन असार[७] ।
सून मन्दि(र)[८] पाउस के जामिनि
कामिनि[९] की परकार[१०] ॥
लघु गुरु भए सरि[११] पए[१२] भरे[१३] लागलि[१४]
निचिन्त[१५] भयो[१६] अगाधे ।
कओन[१७] परि पथिके अपन घर आओब
सहजहि सबका बाधे ॥

सं० अ०—बरिसए लागल गरजि पओधर
धरणी दन्तुरि भेली ।
नबि नागरि-रत परदेस बालभु
आओत—आसा गेली ॥ ध्रु० ॥
साजनि! आबे हमे मदन असारे ।
सून मन्दिर पाउस के जामिनि
कामिनि की परकारे ॥
लघु गुरु भए सरि पए-भरेँ बाढलि
नीचेओ भअउ अगाधे ।
कओन परि पथिके अपन घर आओब
सहजहि सबकाँ बाधे ॥

मोहि बरु अतनु अतनु कए छाडथु
से सुखे भूजथु राजे ॥
तुअ गुन सुमरि कान्हे पुनु आओब
विद्यापति कवि भाने ॥

ने० पृ० ६६, प० १९३, पं० १

पाठभेद—

ने० (पद-संख्या २०७ से)—२ दन्तुदि। ३ भेली। ६ गेली। ७ अधारे। ११ परकारे। १५ वादलि। १५ नीचेओ। १६ मअउ। १७ कओने। 'कओन…बाधे' के बाद निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

एहे बेआज कइए पिआ गेला
आओब समय समाजे ।

न० गु० (पद-सं० ७१०)—२ दन्तुदि। ३ भेली। ६ गेली। ७ अधारे। १० परकारे। ११ सबि। १४ बादलि। १५ नीचेओ। १६ मउ। १७ कओने। इसमें भी उपर्युक्त पंक्तियाँ हैं—अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

राजा सिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देवि रमाने ॥

मि० म० (पद-सं० ५१०)—१ धरनी। २ दन्तुदि। ३ भेली। ४ नागरी। ५ परदेश। ६ गेली। ७ अधारे। ८ मन्दिरो। ९ कामिनी। १० परकारे। १५ नीचेओ। १६ मउ। १७ कओने। इसमें भी उपर्युक्त पंक्तियाँ और भणिता हैं।

झा (पद-सं० १७५)—२(दम्भ)दि। ५ परदेश।

शब्दार्थ—पयोधर = वादल। धरणी = धरती। दन्तुरि = पङ्किल। मदन = कामदेव। पाउस = पावस। जामिनि = रात। परकार = प्रकार, उपाय। लघु = छोटी। गुरु = बड़ी। सरि = नदी। पएभरे = पानी के भर जाने से। नीचेओ = निम्न कओन परि = किस तरह। बेआज = व्याज। अतनु = कामदेव। अतनु = शरीरान्त = मृत्यु। भूजथु = भोग करें।

एहे बेआज कइए पिआ गेला
आओब समअ समाजे ।
मोहि बरु अतनु अतनु कए छाडथु
से सुखेँ भुञथु राजे ॥
तुअ गुन सुमरि कान्हे पुनु आओब
विद्यापति कवि भाने ।
राजा सिवसिंह रूपनराजेन
लखिमा देवि रमाने ॥

अर्थ—बादल गरज-गरजकर बरसने लगे। धरती पङ्किल हो गई।

परदेश में नवेली नागरिकाओं में आसक्त वल्लभ आयेंगे—(यह) आशा चली गई।

हे सखी, अब कामदेव मेरे लिए सारहीन हो गया। घर सूना है (अर्थात्—दूसरा कोई सहायक नहीं है), पावस की रात है। (इस अवस्था में) कामिनी कौन-सा उपाय कर सकती है ?

पानी भर जाने से छोटी नदियाँ बड़ी होकर बढ़ आईं। निम्न (भूमि) अथाह हो गई।

पथिक अपने घर किस प्रकार आयेगा ? स्वभावतः सबको बाधा पहुँच गई।

समय पर (तुम्हारे) समाज में आ जाऊँगा—यही व्यांज करके प्रियतम चले गये।

कामदेव भले ही मुझे मार डालें; (किन्तु) वे सुख से राज्य भोग करें।

कवि विद्यापति कहते हैं (कि) कृष्ण तुम्हारे गुणों का स्मरण करके (अवश्य) आयेंगे।

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते हैं।) (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

कोलाररागे—

[१७८]

नयन[1] काजर अधरे[2] चोराओल
नयने[3] चोराओल रागे।
वदन वसन[4] तुकाओब[5] कति खन
तिला एक कैतव लागे॥ ध्रु०॥
माधव कि आबे बोलब[6] अस[7] ताहे[8]।
जाहि रमणी[9] सङ्गे[10] रयनि[11] गमओलह
ततहि पलटि पुनु जाहे॥
सगर गोकुल जिनि से पुनमति धनि
कि कहब ताहेरि[12] विभागे[13]।

सं० अ०—१ नअनक। २ अधरँ। ३ नअने। ४ वसनँ वदन। ६ रमनि। १० सङ्गेँ। ११ रअनि। १३ भागे।

पद यावक[१४] रस जाहेरि हृदय[१५] अछ[१६]
आओ कि कहब अनुरागे ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६६, प० १६४, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३४०)—

सहस रमनि सौं भरल तोहर हिय
करु तनि परसि न त्यागे ।
सकल गोकुल जनि से पुनमत धनि
कि कहव ताहेरि भागे ॥ २ ॥
पद जावक हृदय भिन अछ
अओर करज खत ताहे ।
जाहि जुवति सङ्गे रअनि गमौलह
ततहि पलटि वरु जाहे ॥ ४ ॥
नयनक काजर अधरें चोराओल
नयन अधर कहु रागे ।
वदलल बसन नुकाओव कत खन
तिला एक कैतब लागे ॥ ६ ॥
बड़ अपराध उतर नहि सम्भव
विद्यापति कवि भाने ।
राजा शिवसिंह रूपनरायन
सकल कलारस जाने ॥ ८ ॥

मि० म० (पद-सं० ३७२)—२ अधर। ५ लुकाओब। ६-७-८ वोलवअ सताहे। १२ ता हेरि।

झा (पद-सं० १७६)—७-८ असताहे। ११ रयणि।

शब्दार्थ—रागे = लाली। वसन = वस्त्र से। तिला एक = तिलमात्र, क्षण-भर। कैतव = छल। अस = ऐसा = ये सब। ताहे = उसको। रयनि = रात। गमओलह = बिताई। जिनि = जीतकर। ताहेरि = उसका। जाहेरि = जिसका। आओ = और।

अर्थ—ओठों ने (तुम्हारी) आँखों का काजल चुरा लिया (और) आँखों ने (तुम्हारे ओठों की) लाली चुरा ली।

कबतक कपड़े से मुख को ढकोगे? कपट क्षण भर (ही) रहता है।

हे माधव! अब उसको ये सब क्या कहूँगी? (तुमने) जिस रमणी के साथ रात बिताई, फिर लौटकर उसी के पास जाओ।

सम्पूर्ण गोकुल को जीतकर वह पुण्यवती धन्य हो गई। उसके भाग्य का क्या कहूँ?

जिसके पैर का आलक्तक (तुम्हारे) हृदय में वास करता है, (अर्थात्—जिसके पैर का आलक्तक तुम्हारे हृदय में लगा है, उसके) अनुराग का और क्या कहूँ?

---

१४ जावक। १५ हृदअ। १६ बस।

कोलाररागे—

[१७६]

फूजलि कवरि[१] अवनत[२] आनन
कुच परसए परचारि ।
कामे कमल लए कनक संभु जनि
पूजल[३] चामर ढारि ॥ ध्रु० ॥
पिउ[४] पिउ[५]
पलटि हेरि हल पेअसि[६] बयना
मदन-सपथ तोहि रे ।
सामर[७] लोमलता कालिन्दी
हारा सुरसरि धारा ॥
मज्जन कए माधवे वर मागल[८]
पुनु दस्सन[९] एक बेरा ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७०(क), प० १६२, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २८)—३ पूजलि । ४-५ पाठाभाव । ६ पेयसि ।
मि० म० (पद-सं० ४६२)—७ सामरा ।
झा (पद-सं० १७७)—२ अवनत कर ।

शब्दार्थ—कवरि = केश । आनन = मुख । कुच = स्तन । परचारि = प्रचार करके, विना रोक-टोक के । ढारि = डुलाकर । पिउ-पिउ = प्रिय-प्रिय । पेअसि = प्रेयसी । बयना = वदन, मुख । सामर = साँवली । कालिन्दी = यमुना । सुरसरि = गङ्गा ।

अर्थ—मुख अवनत (रहने के कारण) खुली हुई कवरी विना रोक-टोक के स्तन का स्पर्श कर रही है ।

(जान पड़ता है,) जैसे कामदेव ने कमल लेकर (और) चँवर डुलाकर सोने के शिव की पूजा की हो ।

हे प्रिय ! तुम्हें कामदेव की शपथ है । लौटकर (अपनी) प्रेयसी का मुख (तो) देखो ।

(प्रेयसी की) साँवली रोमावली यमुना है (और) हार (ही) गंगा की धारा है ।

(उसमें) मज्जन करके माधव ने वर माँगा (कि) फिर एक बार दर्शन हो ।

सं० अ०—१ कवरी । ७ सामरि । ८ माँगल । ९ दरसन ।

कोलारराग़े—

[१८०]

की परवचन कन्ते[1] देल कान
की मन[2] पललि कलामति आन[3] ।
कि दिनदोसे[4] दैव भेल वाम
कओने कारणे पिआ नहि ले[5] नाम ॥ ध्रु० ॥
ए सखि ए सखि देहे उपदेस
एक पुर कान्ह[6] बस मो पति विदेस ।
आसा[7] पासे मदने करु बन्ध
जिबइते जुवति न तेज अनुबन्ध ॥
अवधि दिवस नहि पाबिअ ओल[8]
अनिअत जौवन जीवन थोल[9] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७०, प० १६६, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ३५८)—१ कान्ते ।

झा (पद-सं० १७८)—२(पुनु) । ६ काँन्ह । ७ आसे । ८ ओळ । ९ थोळ ।

शब्दार्थ—दिनदो से = समय के फेर से । दैव = विधाता । मो पति = मेरे लिए ! आसा पासे = आशा-जाल में । अनुबन्ध = सम्बन्ध । ओल = अन्त ।

अर्थ—क्या स्वामी ने दूसरे की बात पर कान दिया ? (अर्थात्—दूसरे की बात में आ गये ?) क्या दूसरी कलावती याद आ गई ?

क्या समय के फेर से विधाता वाम हो गया ? किस कारण से स्वामी (आने का) नाम नहीं ले रहे हैं ?

हे सखी ! हे सखी !! (तुम उन्हें) उपदेश दो । कृष्ण एक नगर में वसते हैं (अर्थात्—मैं जिस नगर में हूँ, उसी में कृष्ण हैं, फिर भी) मेरे लिए विदेश में हैं ।

कामदेव ने आश-जाल में बाँध रखा है । (इसलिए) युवती जीते-जी (उस) सम्बन्ध को त्याग नहीं सकती ।

(एक तो) यौवन अनियत है, जीवन थोड़ा है, (फिर भी) अवधि के दिन का अन्त नहीं पा रही हूँ । (अर्थात्—अनियत यौवन और अल्प जीवन में अवधि का अन्त नहीं पा रही हूँ ।)

सं० अ०—१ कन्त । ३ आन । ४ दिनदोषँ । ५ लेअ । ८ ओळ । ९ थोळ ।

कोलाररागे—

[१८१]

काहु दिस काहल कोकिल रावे
मातल मधुकर दहदिस[1] धावे ।
केओ नहि छुअए[2] धएल धन[3] आने
भमि भमि लुनए[4] मानिनि जन माने ॥ ध्रु० ॥
कि कहिबो अगे सखि अपनरि[5] भाला[6]
बिनु कारणे[7] मनमथे करु घाला[8] ।
किसलय[9] सोभित नव नव चूते
ध्वजका धोरणि[10] देषिअ[11] बहूते ॥
कसि कसि रङ्ग[12] कुसुमसर लेइ[13]
प्राण[14] न हरए विरह पए देइ[15] ।
दाहिन पवन कओने[16] धरु[17] नामे
अनुभव पाए सेहओ भेल वामे ॥
मन्द समीर विरहि वध लागि[18]
विकच पराग पजारए आगि[19] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७०, प० १९७, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७१८)—२ बुझए । ३ निधन । ४ लुटए । ५ अपन । ६ विमाला । ७ कारने । ८ धाला । १० धजका धरल । ११ देखिअ । १२ गन । १४ प्रान । १४ कओने ।

मि० म० (पद-सं० ५०६)—२ बुझए । ४ लुलए । ५ अपन । ६ विमाला । ७ कारन । ८ धाला । १० न धजका धोरलि । ११ देखिअ । १४ प्रान । १६ कओने । १७ धर ।

झा (पद-सं० १७६)—२ बुझए । ५ अपन । ६ विमाला । ८ धाला ।

शब्दार्थ—काहु दिस = किसी ओर । काहल = वाद्य-विशेष । रावे = बोलता है । दह दिस = दसो दिशाओं में । छुअए = छूता है । लुनए = नाश करता है । अपनरि = अपना । भाला = कपाल, तकदीर । मनमथे = कामदेव । घाला = प्रहार । किसलय = नव

सं० अ०—१ दहोदिस । ३ धन जाने । ५ अपनेरि । ७ कारने । ९ किसलअ । १० धोरनि । ११ देखिअ । १३ लेई । १४ प्रान । १५ देई । १८ लागी । १९ आगी ।

पल्लव। चूते = आम्र वृक्ष। ध्वजका = ध्वजाएँ। धोरणि = (धरणी—सं०) पृथ्वी (पर)। रंग = आनन्द। वध लागि = वध के लिए। विकच = विस्तृत।

अर्थ—किसी ओर काहल (और) किसी ओर कोकिल बोल रहे हैं। मत्त मधुकर दसो दिशाओं में दौड़ रहे हैं।

कोई भी दूसरे का रखा धन नहीं छूता; (किन्तु) घूम-घूमकर मानिनी जनों के मान का नाश करता है।

अरी सखी! (मैं) अपनी तकदीर का क्या कहूँ? अकारण ही कामदेव प्रहार कर रहा है।

नव पल्लवों से आम्र-वृक्ष शोभित हैं। (जान पड़ता है, जैसे कामदेव की) बहुत-सी ध्वजाएँ पृथ्वी पर दिखाई पड़ती हों।

कामदेव कस-कसकर (अर्थात्—जी भर) आनन्द ले रहा है। (वह) प्राण नहीं ले रहा है; (किन्तु) विरह दे रहा है।

(विरहिणी दक्षिण पवन को लक्ष्य करके कहती है—अरे!) किसने (इसका) नाम 'दक्षिण पवन' रख दिया? अनुभव से तो यह भी 'वाम' ही (साबित) हुआ।

मन्द पवन विरहियों के वध के लिए विस्तृत पराग-रूपी अग्नि को प्रज्वलित कर रहा है।

कोलाररागे—

[१८२]

बाढलि[१] पिरिति हठहि दुर गेलि
नयनक[२] काजर मुह मसि भेलि।
ते अवसादे[३] अवसिन भेल देह
खड कुमढा[४] सन बुझल सिनेह ॥ ध्रु० ॥
साजनि (आबे) की[५] पुछसि मोहि
अपद पेम अपदहि पिड[६] मोहि।
जञो अवधानिञ पर जनु जान
कण्टक सम भेल रहए परान ॥
विरहानल कोइल(ा)[७] कर जारि[८]
बाढलि[९] हवि[१०] जनि सीचिअ[११] वारि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७१(क), प० १९८, पं० ४

सं० अ०—२ नजनक। ३ तजे अवसादें। ४ खड़ कुमढ़ा।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं०,५५७)—१ बाढ़लि। २ नयन। ४ खत कुमेढ़ा। ५ कि। ६ पड। ९ बाढ़लि। १० हरि। ११ सीचिता

झा (पद-सं० १८०)—६ पिउ। ७ कोइलि। ८ जोरि। ९ हरि।

शब्दार्थ—मुँह मसि=मुँह की स्याही, मुँह का दाग। अवसादे=दुःख से। अवसिन=(अवसन्न—सं०) खिन्न। कुमढा=(कूष्माण्ड—सं०) भतुआ। अपदहि=अनवसर में ही। पिड=पीड़ा दे रहा है। अवधानिअ=यत्न करती हूँ। जारि=जलाकर। बाढलि=वढ़ी हुई। हवि=आहुति। जनि=मत। वारि=पानी।

अर्थ—वढ़ा हुआ प्रेम हठात् दूर चला गया। आँख का काजल मुँह का दाग हो गया। (अर्थात्, प्रेम के विना आँख का काजल भी मुँह का दाग-सा लगता है।)

उसी दुःख से शरीर खिन्न हो गया। खर (और) भतुए की तरह (मैंने) स्नेह को समझा। (अर्थात्, छप्पर पर का भतुआ जैसे अपने नीचे के खर (फूस) को खिन्न कर देता है, उसी तरह प्रेम ने मेरे शरीर को खिन्न कर दिया।)

हे सखी! अब मुझसे क्या पूछती हो? विना अधिकार का किया हुआ प्रेम विना अवसर के ही मुझे पीड़ा दे रहा है।

यदि यत्न करती हूँ (कि इस प्रेम को) दूसरा नहीं जाने (तो वह) प्राण (के लिए) काँटे की तरह बना रहता है। (अर्थात्, काँटा की तरह चुभता है।)

विरहानल (मुझे) जलाकर कोयला कर रहा है। आहुतियाँ वढ़ गईं, (अब) पानी मत सींचो। (अर्थात्, विरहानल ने मुझे जला डाला, उसमें बहुत-सी आहुतियाँ पड़ चुकीं, अब उपदेश-रूपी वारि के सेचन से क्या लाभ?)

कोलाररागे—

[१८३]

तेहँ[१] हुँनि[२] लागल उचित सिनेह
हम[३] अपमानि पठओलह गेह।
हमरिओ[४] मति अपथे चलि गेलि
दूधक[५] माछी दूती भेलि ॥ ध्रु० ॥
माधव कि कहब इ[६] भल भेला
हमर गतागत इ[७] दुर गेला ॥

सं० अ०—१ तोँह। २ हुनि। ३ हमे। ६ ई। ७ ई।

पहिलहि बोललह मधुरिम बानी[८]
तोहहि सुचेतन तोहहि सयानी[९] ।
भेला काज बुझग्रोल(ह)[१०] रोसे[११]
कहि की[१२] बुझग्रोबह ग्रपनुक दोसे[१३] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७१, प० १६६, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २१६)—१ तोंह । २ हुनि । ५ दुधक । ८ वाणी । १० बुझाग्रोल ।
मि० म० (पद-सं० ४५८)—२ हुनि । ५ दुधक । १० बुझाग्रोल । १३ दोषे ।
झा (पद-सं० १८१)—४ हमरिउ । ६ ई । ७ ई ।

शब्दार्थ—तँह = तुम्हारा । हुँनि = उनका । गेह = घर । हमरिग्रो = मेरी । ग्रपथे = कुपथ में । माछी = मक्खी । गतागत = यातायात । मधुरिम = मीठी । बानी = बात । सयानी = सज्ञाना ।

ग्रर्थ—तुम्हारा (ग्रौर) उनका उचित स्नेह हो गया । (उसके बाद) मुझे ग्रपमानित करके घर भेज दिया ।

मेरी बुद्धि भी कुपथ में चली गई । (इसीलिए) दूती (मैं) दूध की मक्खी हो गई । हे माधव ! क्या कहूँ ? यह ग्रच्छा ही हुग्रा । मेरा यह यातायात तो दूर हो गया । तुम्हीं सुचेतन हो, तुम्हीं सयानी हो—पहले (तुमने ये सब) मीठी बातें कहीं ।

(लेकिन) कार्य हो जाने पर रोष प्रकट किया । (ग्रब) कहकर क्या समझाग्रोगे ? (सब-कुछ मेरा) ग्रपना (ही) दोष है ।

कोलाररागे—

[१८४]

कमलिनि एडि[१] केतकि गेला
सौरभे रहु वूरि ।
कंटके कबलु कलेवर
मुख माषल[२] धूरि ॥ ध्रु० ॥

---

९ तोहहिँ सुचेतनि तोहहिँ सयानी । १० बुझग्रोलह । ११ रोषे । १२ कि । १३ दोषे ।

सं० ग्र०—कमलिनि एड़ि केतकि गेला हे
सौरभेँ रहु घूरि ।
कण्टकेँ कवलु कलेवर हे
मुख माखल धूरि ॥ ध्रु० ॥

अबे सखि[३] भमरा[४] भेल हे
रति रभसे सुजान ॥
परिमल के लोभे धाओल
पाओल नहि पास ।
मधु पुनु डिठिहु न देषल[५] हे
आबे जन उपहास ॥
भल भेल भमि आबथु
पाबथु मन खेद ।
एकरस पुरुषा[६] न[७] बुझ[८]
गुण[९] दूषण[१०] भेद ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७१, प० २००, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४३०)—

परिमल लोभे धाओल हे
पाओल नहि पास ।
मधुसिन्धु विन्दु न देखल
अब जन उपहास ॥
अब सखि भमरा भेल परवश
केहो न करय विचार ।
भले भले बुझल अलपे चीन्हल
हिया तसु कुलिशक सार ॥

अबे सखि! भमरा भेल हे
रति-रभसे सुजान ॥
परिमल के लोभेँ धाओल हे
पाओल नहि पास ।
मधु पुनु डिठिहुँ न देखल हे
आबे जन-उपहास ॥
भल भेल (जग) भमि आबथु हे
पाबथु मन खेद ।
एकरस पुरुषा नहि बुझ हे
गुण - दूषण भेद ॥

कमलिनी एड़ि केतकी गेला
बहु सौरभे हेरि ।
कण्टके पिड़ल कलेवर
मुख माखल धूरि ॥
भिन भिन अनुभवि आवथु
जनि पावथु खेद ।
एक रस पुरुष बुझल नहि
गुण दूषण भेद ॥
भनइ विद्यापति सुन गुनमति
रस बुझइ रसमन्ता ।
राजा शिवसिंह सब गुन गाहक
रानि लखिमा देवि कन्ता ।

मि० म०—१ एड़ि । २ माखल । ३-४ सखि । ५ देखल । ६-७-८ पुरुष निबुझ । ९-१० दूषण ।

झा—८ बुझए ।

विशेष—ध्रुपद के बाद एक पंक्ति की छूट प्रतीत होती है ।

शब्दार्थ—एडि = एड़िया करके, अपमानित करके । केतकी = केवड़ा । कंटके = काँटों से । कवलु = कवलित हो गया, छिन्न-भिन्न हो गया । कलेवर = शरीर । माषल = भर गया । डिठिहु = दृष्टि से । भमि = घूमकर ।

अर्थ—(भौंरा) कमलिनी को अपमानित करके केतकी (के समीप) गया (और) सौरभ के कारण मँड़राने लगा ।

(फल यही हुआ कि) काँटों से (उसका) शरीर छिन्न-भिन्न हो गया (और) धूलि से मुख भर गया ।

हे सखी ! भौंरा अब रति-रङ्ग में चतुर हो गया ।

परिमल के लोभ से (वह) दौड़ा गया, (किन्तु) सामीप्य नहीं पा सका ।

फिर, मधु को तो आँखों से देख भी नहीं सका । (इसलिए) अब (केवल) जन-उपहास (ही रह गया) ।

भला हुआ, (दुनिया भर) घूम-फिर आवें (और) मन में ग्लानि पावें ।

(कारण,) एकरस पुरुष गुण-दोष का भेद नहीं समझता ।

कोलाररागे—

[१८५]

तारापति[1] रिपु खण्डन कामिनि
गृहवर[2] वदन सुशोभे[3]
राज[4] मराल ललित गति सुन्दर
से देखि मुनि जन मोहे ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—२ सुलोहे ।

पिअतम समन्दु सजनी।
सारङ्गवदन तात[5] रिपु अतिसख[6]
ता तह[7] महघि रजनी ॥
दिति सुत रति सुत अति बड[8] दारुण
ता तह वेदन होइ[9]।
परक पीडाए जे जन पारिअ[10]
तैसन[11] न देषिअ[12] कोइ[13] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७२(क), प० २०१. पं० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५५६)—१ हसु तारापति। २ लुहवर। ३ सुशोहे। ५ सारङ्गरङ्ग-वदन ताते। ६ अति सुख। ७ ततेह। ८ बड़। ११ तेसन। १२ देखिअ।

नेपाल-पदावली में निम्नलिखित खण्डित पद इसके पहले है, जिसे मित्र-मजूमदार ने इसके आरम्भ में जोड़ दिया है—

हाथिक दसन पुरुष वचन
कठिने वाहर होए।
ओ नहि लुकए वचन चुकए
कतो करओ कोए ॥ ध्रु०॥
साजनि अपद गौरव गेल।
पुरुब करमे दिवस दुखणे
सबे विपरित भेल ॥
जानल सुनल ओ नहि कुजन
ते हमे लाओल रीति।
हसु…।

ने० पृ० ७२(क), प० २०१, पं० ३

झा (पद-सं० १८३)—१ हसु तारापति। ४ वाज। ५ सारङ्ग-रङ्गवदन तात। १० पाविअ।

विशेष—मि० म० और झा ने उपर्युक्त खण्डित पद का 'हसु' इस पद के आरंभ में जोड़ दिया है। 'सारङ्गवदन' के बीच में (रङ्ग) शब्द कोष्ठीकृत है, जिसे मि० म० और झा ने अपने पाठ में रख लिया है, जो अनुपयुक्त है। इससे अर्थ-संगति नहीं होती और छन्दोभङ्ग भी हो जाता है।

---

८ अति बल। ९ होई। १० पर पीडा जे जानए पारिअ। ११ तइसन। १२ देखिअ। १३ कोई।

शब्दार्थ—तारापति = चन्द्रमा। तारापति रिपु = राहु। तारा⋯खण्डन = विष्णु। तारा⋯कामिनि = लक्ष्मी। तारा⋯⋯गृहवर = कमल। राजमराल = राजहंस। सारंग = हाथी। सारङ्गवदन = गणेश। सारङ्ग⋯तात = शिव। सारङ्ग⋯रिपु = कामदेव। सारङ्ग⋯अतिसख = वसन्त। दिति सुत = पवन। रति सुत = अनिरुद्ध (अर्थात्—अनियंत्रित)।

अर्थ—कमल के समान मुख सोह रहा है (और) राजहंस के समान सुन्दर गति है, जिसे देखकर मुनि-जन मोहित हो रहे हैं।

हे सखी! प्रियतम को संवाद दो है कि वसन्त है, इसी से रात्रि महँगी है।

अत्यन्त बलवान् और भयानक तथा अनियंत्रित (दक्षिण) पवन है। उससे दुःख हो रहा है। दूसरे की पीड़ा जो जान सके, ऐसा कोई दिखाई नहीं देता। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

कोलाररागे—

[१८६]

हरि पति हित रिपु नन्दन बैरी
वाहन ललित[१] गमनी।
दिति नन्दन रिपु नन्दन[२] नन्दन
नागरि रुपे से अधिक[३] रमणी ॥ ध्रु० ॥
सिव सिव तम रिपु बन्धव जनी[४]।
रितु पति मित वैरि[५] चूडामणि[६]
मित्र समान रजनी ॥
हरि रिपु रिपु प्रभु तसु रजनी
तात सरिस[७] कुचसिरी[८]।

सं० अ०—हरि - पति - हित- रिपु - नन्दन - वैरी -
वाहन ललित गमनी।
दिति - नन्दन - रिपु - नन्दन - नागरि
रूपेँ अधिक रमणी ॥ ध्रु० ॥
सिव! सिव!! तम-रिपु-बन्धव-जनी।
रितुपति - मित - वैरी - चूडामणि -
मित - समान रजनी ॥
हरि-रिपु-रिपु-प्रभु तसु रमनी तसु
तात सरिस कुचसिरी।

सिन्धु तनय रिपु रिपु[९] रिपु बैरिनि[१०]
वाहन[११] माझ[१२] उदरी ॥
पन्थ तनय हित सुत पुने पाबिअ
विद्यापति कवि भाने ॥

ने० पृ० ७२, प० २०२, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५७७)—१ ललिल । २ विनन्द । ३ अधकि । ४ बन्ध रजनी । ५ वेरि । ६ चूड़ामले । ७ कुसरि । ८ सङ्कचसिरी । ९ विप्र । १० वैरि । ११ निवाहन । १२ मास ।

झा (पद-सं० १८४) - पाठभेद नहीं है ।

विशेष—-अन्त में एक पंक्ति की छूट प्रतीत होती है ।

शब्दार्थ—हरि = बन्दर । हरि पति = सुग्रीव । हरि पति हित = रामचन्द्र । हरि पति हित रिपु = रावण । हरि···नन्दन = मेघनाद । हरि · वैरी = इन्द्र । हरि···वाहन = गजराज । दिति नन्दन = दैत्य । दिति नन्दन रिपु = विष्णु । दिति···नन्दन = कामदेव । दिति···नागरि = रति । तम = अन्धकार । तम रिपु = चन्द्रमा । तम···बन्धव = कुमुदिनी । तम ··जनी = शरद् ऋतु । रितुपति = वसन्त । रितुपति मित = कामदेव । रितुपति···वैरि = महादेव । रितुपति···चूड़ामणि = चन्द्रमा । रितुपति···चूड़ामणि मित्र = पूर्णिमा । हरि = मेढक । हरि रिपु = सर्प । हरि रिपु रिपु = गरुड । हरि···प्रभु = विष्णु । तसु (विष्णु की) रमनी = लक्ष्मी । (उनका) तात = प्रिय = विल्व । सिन्धु = समुद्र । सिन्धु तनय = चन्द्रमा । सिन्धु··· रिपु = राहु । सिन्धु···रिपु रिपु = विष्णु । सिन्धु ··रिपु रिपु रिपु = मधु-कैटभ । सिन्धु··· बैरिनि = दुर्गा । सिन्धु···वाहन = सिंह । पञ्चतनय = कुन्ती । पञ्चतनय हित = कृष्ण । पञ्च···सुत = प्रद्युम्न, (कामदेव) । पुने = पुण्य से, प्रसाद से ।

अर्थ गजराज के समान ललितगमना (और) रूप में रति से भी बढ़कर (वह) रमणी है ।

शिव ! शिव !! शरद् ऋतु है (और) पूर्णिमा के समान रात्रि है ।

विल्व (फल) के समान (उसके) स्तनों की शोभा है ।

सिंह के मध्य भाग के समान (क्षीण उसका) उदर है ।

कवि विद्यापति कहते हैं कि कामदेव के प्रसाद से ही (उसे) पा सकते हैं । (अर्थ— संपादकीय अभिमत से ।)

सिन्धु - तनय - रिपु - रिपु - रिपु- बैरिनि
वाहन माझ उदरी ॥
पञ्चतनय - हित - सुत - गुने पाबिअ
विद्यापति कवि भाने ॥

कोलारराग—

[१८७]

सपनेहु न पुरले[1] मन के[2] साधे ।
नयने देषल[3] हरि एत अपराधे ॥
बाङ्क[4] मनोभव मन जर आगी ।
दुलभ लोभे[5] भेल परिभव[6] भागी[7] ॥ ध्रु० ॥
चान्दवदनि[8] धनि चकोरनयनी ।
विरह वेदने भेल चतुर रमनी[9] ॥
कि मोरा[10] चान्दने[11] की अरविन्दे ।
नेह[12] बिसर जओ सूतिअ नीन्दे[13] ॥
अबुझ[14] सखीजन न बुझए आधी ।
आन औषध कर आन बेआधी[15] ॥
मदन[16] बानके[17] मन्दि बेबथा ।
छाडि[18] कलेवर मानस बेथा ॥
चिन्ताए विकल हृदय नहि थीरे ।
वद(न)[19] निहारि नयन बह नीरे ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७३(क), प० २०३,पं० २

सं० अ०—सपनेहुँ न पुरले मनके साधे ।
नअने देखल हरि एत अपराधे ॥
बाङ्क मनोभव मन जर आगी ।
दुलभ लोभेँ भेल परिभव भागी ॥ ध्रु० ॥
चान्दवदनि धनि चकोरनअनी ।
विरह वेदने भेलि चउगुन मलिनी ॥
कि करति चान्दने की अरविन्दे ।
विरह बिसर जओ सूतिअ निन्दे ॥
अबुझ सखीजन न बुझए आधी ।
आन अउषध कर आन बेआधी ॥
मदन-बान के मन्दि बेबथा ।
छाडि कलेवर मानस बेथा ॥
चिन्ताए विकल हृदअ नहि थीरे ।
वदन निहारि नअन बह नीरे ॥

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७९)—१ पुरल। २ मनक। ३ देखल। ४ मन्द। ५ पेम। ६ पराभव। ७ लागी। ८ चांद वदनी। ९ दिवसे दिवसे भेलि चउगुन मलिनी। १० करति। ११ चाँदने। १२ विरह। १३ निन्दे। १४ अबुध। १६ मनसिज। १७ मनके। १८ छाड़ि। १९ वदन।

मि० म० (पद-सं० २४४)—१ पुरल। २ मनक। ३ देखल। ४ मन्द। ५ पेम। ६ पराभव। ७ लागी। ८ चाँदवदना। ९ दिवसे-दिवसे भेलि चउगुन मलिनो। १० करति। ११ चाँदने। १२ विरह। १३ निन्दे। १४ अबुध। १५ बेयाधि। १६ मनसिज। १७ मनक। १८ छाड़ि। १९ वदन।

झा (पद-सं० ८५)—२ मन लोभे मेल परिभव भागी एक।

विशेष-ने० पा० में 'मन' और 'के' के मध्य में इसी गीत के चतुर्थ पद का कुछ अंश भ्रमवश लिखा हुआ है, जो कोष्ठक में रखा गया है। डा० झा ने विना विचार किये ही उसे भी अपने पाठ में सम्मिलित कर लिया है।

शब्दार्थ—साधे = अभिलाषा। वाङ्क = वक्र, टेढ़ा। आगी = आग। परिभव = अनादर। लागी = लिए। अरविन्दे = कमल। विसर = भूलती है। अबुझ = नहीं बूझनेवाली। आधी = (आधि—सं०) मन की व्यथा। मन्दि = खोटी। बेवथा = व्यवस्था। कलेवर = शरीर। बेथा = व्यथा।

अर्थ—स्वप्न में भी मन की अभिलाषा पूरी नहीं हुई। (अपनी) आँखों कृष्ण को देखा, इतना ही (उसका) अपराध था। (अर्थात्, कृष्ण के दर्शनमात्र से ही वह पीड़ित हो गई।)

कामदेव (बड़ा) टेढ़ा है। (इसीलिए) मन में आग जल रही है। दुर्लभ लोभ के कारण ही (उसे) अनादर मिला।

चन्द्रवदनी (और) चकोरनयनी नायिका विरह की वेदना से चतुर्गुण मलिन हो गई। (वह) चन्दन (और) कमल से क्या करेगी (अर्थात्, चन्दन और कमल से उसकी विरहाग्नि शान्त नहीं होगी।) यदि सोती है (तो) विरह भुलाती है।

अबोध सखियाँ मन की व्यथा नहीं समझतीं। रोग दूसरा है (और) वे दवा दूसरी करता है।

कामदेव के वाण की व्यवस्था बुरी होती है। (वह) शरीर को छोड़कर मन में व्यथा करती है।

चिन्ता से (उसका) विकल हृदय स्थिर नहीं होता। (दूसरे का) मुँह देखते ही (उसकी) आँखों से आँसू झरने लगते हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

कोलाररागे—

[१८८]

निसि निसिअर[1] भम भीम भुअङ्गम[2]
गगन गरज घन मेह[3]।
दुतर जौउन[4] नरि से आइलि बाहु पैरि[5]
एतबाए[6] तोहर सिनेह[7] ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—४ जउन। ५ तरि।

हेरि हल हसि समुह उगओ[८] ससि
बरिसओ अमिअक[९] धारा[१०] ।
कतनहि[११] दुरजन कत जामिक जन
परिपन्तिअ[१२] अनुरागे ॥
किछु न काहुक डर गुनल[१३] जुवति वर
एहि पर[१४] कि ओ अभागे[१५] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७३, प० २०५, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५२२)—४ जञुन । ५ तरि । ६ एतबा । ७ नेह । ९ अमिअक । १० धार । ११ कत नहि । १२ परिपन्थिअ । १४-१५ परकिओ अभागे ।

मि० म० (पद-सं० ३३१)—२ भुजङ्गम । ३ मेघह । ४ जञुन । ५ तरि । ८ उगय । ९ अमिअक । १० धार । ११ कत नहि । १२ परिपन्थिअ । १३ सुनल । १४-१५ परकिओ अभावे ।

झा (पद-सं० १८६)—१ निसि अर । ३ मेघह ।

विशेष—'ध्रुपद' के बाद एक पंक्ति की छूट प्रतीत होती है ।

शब्दार्थ—निसि = रात में । निसिअर = निशिचर । भम = घूमते हैं । भुअङ्गम = (भुजङ्गम—सं०) साँप । घन = जोरों से । मेह = मेघ । दुतर = दुस्तर । जौअुन = यमुना । नरि = नदी । पैरि = तैरकर । हेरि हल = देखो । समुह = सम्मुख । कतनहि = कितने ही । जामिक = (यामिक—सं०) पहरेदार । परिपन्तिअ = (परिपन्थी—सं०) शत्रु ।

अर्थ—रात का समय है, निशिचर भयावने साँप घूम रहे हैं । आकाश में मेघ जोरों से गरज रहा है ।

दुस्तर यमुना नदी है । उसे बाँहों से तैरकर (वह) आई है । इतना ही तुम्हारा स्नेह है ।

अब हँसकर (इस तरह) देखो (कि) सम्मुख चन्द्रमा उग जाय (और) अमृत की धार बरसने लगे ।

कितने ही अनुराग के शत्रु दुर्जन (और) कितने ही पहरेदार थे !

(फिर भी) वरयुवती ने किसी का कुछ भी भय नहीं किया । इसपर भी क्या उसका यही अभाग्य ?

---

८ आबे हेरि हल हसि समुह उगओ । १२ परिपन्थिअ ।

कोलाररागे—

[१८९]

जञो प्रभु हम पाए[1] बेदा[2] लेब
हमहु[3] सुजने दोसराइत[4] देब ॥ ध्रु० ॥
सुभ हो सामि कहब की रोए
परतह तिल लए हम[5] देब तोए[6] ।
आइलि जगत जुवति के अन्ध
सामि समिहित[7] कर प्रतिबन्ध ॥
दिन दस चातर[8] हलिअ[9] विचारि[10]
तते होएत जत लिहल कपाल[11] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७४ (क), प० २०६, पं० ३

पाठभेद—

सि० म० (पद-सं० ५५५)—१ पए । ४ दोस राइत । ६ गोए । ८ चोत । ६ रहलि । १० अवि-चारि । ११ कपालि ।

झा (पद-सं० १८७)—२ रे दा ।

शब्दार्थ—वेदा = विदा । दोसराइत = साथी । सामि = स्वामी । परतह = (प्रत्यह—सं०) प्रतिदिन । तोए = (तोय—सं०) जल । समिहित = अभीप्सित । प्रतिबन्ध = बाधा । चातर = चतुरस्र । हलिअ = रहता है ।

अर्थ—हे प्रभो ! यदि (आप) मुझसे विदा लेंगे (तो) मैं भी भले आदमी को (अर्थात्—आपको) साथी दूँगी । (अर्थात्, मैं आपके विरह में जी नहीं सकती । मेरे प्राण आपके साथ ही विदा हो जायेंगे ।)

हे स्वामी ! (आपका) भला हो । मैं रोकर क्या कहूँगी ? (बस एक बात कहती हूँ कि) मुझे प्रतिदिन तिल लेकर जल दीजिएगा । (अर्थात्—तिलाञ्जलि दीजिएगा ।)

संसार में कौन अंधी युवती आई है (अर्थात्. पैदा हुई है), जो स्वामी के अभीप्सित (कार्य) में बाधा करे ? (अर्थात्, आपकी अभीप्सित यात्रा में मैं बाधा नहीं डाल सकती ।)

दस दिनों तक (कुछ दिनों तक) विचार चतुरस्र रहता है । (उसके बाद तो) उतना ही होगा, जितना माथे में लिखा रहेगा ।

सं० अ०—१ पए । ३ हमहुँ । ५ हमे । ७ समीहित । १० विचार । ११ कपार ।

कोलाररागे—

[१६०]

दुइ मन मेलि सिनेह अङ्कुर
दोपत[१] तेपत भेला।
साखा पल्लव फूले[२] बेआपल
सौरभ दह दिस[३] गेला ॥ ध्रु० ॥
सखि हे आबे कि आओत कन्हाइ[४]।
पेम मनोरथ हठे बिघटओलन्हि
कपटिहि[५] के पतिआइ[६] ॥
जानि सुपहु तोहे[७] आनि मेराओल[८]
सोना गाथलि[९] मोती।
कैतव[१०] कञ्चन अन्ध विधाता
छायाहु छाडलि[११] मोन्ति[१२] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७५, प० २०६, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६८)—२ फुले। ५ कपटहि। ६ पतियाइ। ११ छाड़लि। १२ सोती।

मि० म० (पद-सं० ४२३)—२ फुले। ५ कपटहि। ६ पतियाई। ११ छाछाड़नि।

झा (पद-सं० १८६)—१ दोपद। ४ कन्हाई। ६ पतिआई। ८ मरोओल।

शब्दार्थ—मेराओल = मिलाया। कैतव = छल। सोती (सं० अ०) = (स्रोत-सं०) जड़।

अर्थ— दो मन के मेल से प्रेम का अङ्कुर (पैदा हुआ और वह बढ़कर) दुपत्ता-तिपत्ता हो गया।

फिर वह शाखा, पल्लव (और) फूल से व्याप्त हो गया। (उसका) सौरभ दसों दिशाओं में (फैल) गया।

हे सखी! अब कृष्ण क्या आवेंगे (उन्होंने) प्रेम (और) मनोरथ को बरजोरी तोड़ डाला। (ऐसे) कपटी का कौन विश्वास करेगा?

(उन्हें) सुपहु समझकर तुमने (मुझसे) ला मिलाया; मानों, मोती को सोने में गूँथ दिया।

(किन्तु वह) सोना छल था। विधाता (भी) अन्धे हैं। (यदि आँखें होतीं, तो ऐसा संयोग नहीं होने देते, जिससे कि) छाया ने (अपनी) जड़ छोड़ दी। (अर्थात्, जैसे छाया कभी अपनी जड़ नहीं छोड़ती, सदा उसके साथ रहती है; वैसे मैं भी कृष्ण के साथ रहती थी। किन्तु, कृष्ण के चले जाने से उनका साथ छूट गया।) (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—२ फूलेँ। ३ सउरभ दहोदिस। ४ कन्हाई। ५ कपटिहिँ। ६ पतिआई। ७ तोहेँ। ९ गाँथलि। १० कइतव। १२ सोती।

कोलाररागे—

[१६१]

दारुण[1] सुनि दुरजन बोल
जनि कम कम[2] लागए[3] गून[4]।
के जान कओने[5] सिखाओल गोप
ते नहि हृदय[6] बिसरए[7] कोप ॥ ध्रु० ॥
ए सखि ऐसन[8] मोर अभाग
परक कान्ह कहला लाग ॥
एत दिन अछल अइसन भान
हम छाडि पेअसि नहि आन ॥
जगत भमि सुपुरुष जोही[9]
आसा साहसे भजलि तोही[10]॥
दिवस दूषने[11] तोहे[12] उदास
पिसुन वचनेहु[13] तात[14] तरास ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७५, प० २१०, पं० ४

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ४०८)—१ दारुन। ४ गूए। ५ कचेने। १० तोहि। २१ दूषणे। १२ तोहो। १४ तते।

झा (पद-सं० १६०)—२-३ कमला गए। ६-७ विसरए हृदय(क)।

शब्दार्थ—कम कम = बहुत थोड़ा। कहला = कहने में। पेअसि = प्रेयसी। जोही = ढूँढ़कर। पिसुन = (पिशुन—सं०) चुगलखोर। तात = प्रिय।

अर्थ—दुर्जन का दारुण वचन सुनकर (कृष्ण को मेरा) गुण जैसे बहुत थोड़ा जान पड़ा।

कौन जानता है कि किसने गोप (कृष्ण) को सिखलाया, जिससे (वे अपने) हृदय के क्रोध को नहीं भूलते।

हे सखी! मेरा ऐसा अभाग्य है कि कृष्ण दूसरे के कहने में आ गये।

इतने दिनों तक ऐसा विश्वास था (कि) मुझे छोड़कर (उनकी) दूसरी प्रेयसी नहीं है।

सं० अ०—६ हृदअ। ८ अइसन। ९ जोहि। १० तोहि। १२ तोहेँ। १३ वचनेहुँ।

संसार में घूम-फिरकर (और) सुपुरुष को ढूँढ़कर (मैंने) आशा (तथा) साहस से तुम्हें भजा। (अर्थात्, संसार में एक तुम्हीं को सुपुरुष समझकर बड़ी आशा से साहस के साथ तुम्हारा भजन किया।)

(किन्तु) दिन के दोष से तुम उदास हो गये। हे प्रिय! (तुम्हें) चुगलखोरों के वचन से भी भय हो गया!

कोलाररागे—

[१६२]

जातकि केतकि कुन्द सहार
गरुअ ताहेरि पुन जाहि निहार।
सब फुल परिमल सब मकरन्द
अनुभवे बिनु न बुझिअ भल मन्द॥ ध्रु०॥
तुअ सखि वचन अमिअ अवगाह
भमर बेआजे[1] बुझाओब[2] नाह।
एतबा विनति[3] अनाइति मोरि
निरस कुसुम नहि रहिअ अगोरि॥
वैभव गेले भलाहु मति[4] भास
अपन[5] पराभव पर उपहास॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ७६ (क), प० २११, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६७)—४ मंदि।

मि० म० (पद-सं० ४५६)—२ बुझाओब। ४ मँदि। ५ आपन।

झा (पद-सं० १६१)—३ विनती।

शब्दार्थ—सहार=(सहकार—सं०) आम्रवृक्ष। गरुअ=(गुरुक—सं०) बड़ा। ताहेरि= उसका। पुन = पुण्य। परिमल = सुवास। मकरन्द=मधु। अवगाह = निमज्जित हो। बेआजे = व्याज से। अनाइति (अनायत्त—सं०) अनिवारित। भास=भस जाती है= भ्रष्ट हो जाती है।

अर्थ—जातकी, केतकी, कुन्द (और) सहकार—(इनमें) उसका पुण्य बड़ा है, जिसे (भ्रमर) देखता है। (अर्थात्, जिसकी ओर भ्रमर की आँखें लगी रहें, वही पुण्यवान् है।)

सं० अ०—१ बेआजें।

सब फूलों में सुवास है, सबमें मधु है, (फिर भी) विना अनुभव के भला (या) बुरा नहीं समझा जाता।

हे सखी ! तुम्हारा वचन अमृत में अवगाहन करता है (अर्थात्—अमृत-तुल्य है)। भ्रमर के व्याज से (तुम) स्वामी को समझना।

मेरी इतनी ही अनिवारित विनती है कि (वे) नीरस कुसुम को अगोरकर नहीं रहें।

वैभव चले जाने से भद्र (व्यक्ति) की भी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अपने को (तो) दुःख होता ही है, दूसरे भी हँसते हैं।

कोलाररागे--

[१६३]

कोमल तनु पराभवे पाओब
तेजि न हलबि तेहुँ[१]।
भमर भरे कि माजरि भागए[२]
देषल[३] कतहुँ[४] केँहुँ[५] ॥ ध्रु० ॥
माधव वचन धरब मोर।
नही[६] नहि कए[७] न[८] पतिआएब[९]
अपद लागत भोर ॥
अधर निरसि[१०] धुसर[११] करब
भाव उपजत भला।
भने[१२] खने[१३] रति रभस अधिक
दिने दिने ससिकला ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७६(क), प० २१२, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १४४)—१ तेंहु। २ भाँगए। ३ देखल। ४ कतहु। ५ केहु। ७ कय। १२ खने।

मि० म० (पद-सं० २७६)—१ तेँहु। २ भाँगए। ३ देखल। ४ कतहु। ५ केहु। ७ कय। १२ उने। १३ खन।

झा (पद-सं० १९२)—६ नहि। ९ पतिआओब।

सं० अ०—१ तेहु। २ भमर भरेँ कि माँजरि भाँगए। ३ देखल। ५ केहु। ६-७-८-९ नहि नहि कएने नहि पतिआएब। १० नीरसि। ११ धूसर। १२ खने।

शब्दार्थ—तेहुँ = उसे। भागए = टूटती है। केहु = किसी ने। पतिश्राएब = विश्वास कीजिएगा। श्रपद = बिना श्रवसर के। भोर = भ्रम। धुसर = मटमैला।

श्रर्थ—कोमल शरीर को कष्ट होगा, (यह सोचकर) उसे त्याग मत दीजिएगा। भ्रमर के भार से मंजरी टूट जाती है, (इसे) किसी ने कहीं देखा है ?

हे माधव ! मेरा वचन रखिएगा। 'नहीं-नहीं' करने से विश्वास नहीं कीजिएगा। (विश्वास करने से) विना श्रवसर के ही (श्रापको) भ्रम हो जायगा।

श्रधर को रसहीन करके मटमैला कर दीजिएगा। (तब) श्रच्छा भाव पैदा होगा। (जैसे) दिन-दिन चन्द्रमा की कला बढ़ती है, (वैसे ही) चण-चण रति-रभस बढ़ता है। (श्रर्थ—संपादकीय श्रभिमत से।)

कोलाररागे—

[१६४]

प्रणयि[१] मनमथ करहि[२] पाएत
मनक पाछे देह जाएत।
भूमि कमलिनि गगन सूर
पेम पन्था कतए दूर ॥ ध्रु० ॥
बाध न करहि रामा
पुर विलासिनि पिश्रतम[३] कामा ॥
वदने[४] जीनि[५] कहु करसि मन्दा।
लग न श्राश्रोत लाजे[६] चन्दा
तेहि[७] संकिश्र[८] पथ उजोर
गमन तिमिरहि होएत तोर ॥
काज संशय[९] हृदय[१०] बङ्का
कत न उपजए विरह शङ्का[११]।
सबहि सुन्दरि[१२] साहस सार
तोहि[१३] तेजि के करए पार ॥
सकल श्रभिमत[१४] सिद्धिदायक
रूपे[१५] श्रभिनव कुसुमसायक।
राए सिवसिंह[१६] रस श्रधार
सरस कह कवि कण्ठहार ॥

ने० पृ० ७६, प० २१३, पं० २

सं० श्र०—६ लाजेँ। ८ न संकिश्र। ६ संसश्र। १० हृदश्र। ११ सङ्का।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २४५)—४ वदन। ५ जिनि। ८ सङ्किय। ११ सङ्का। १३ तेहि। १४ अभिसार।

मि० म० (पद-सं० ६३)-१ प्रणमि। ३ पियतम। ७ तोहि। ८ सङ्किय। ११ सङ्का। १२ सुन्दरी। १५ रुपे। १६ सिवसिंघ।

झा (पद-सं० १६३)—१ प्रणमि।

शब्दार्थ—प्रणयि=(प्रणयी—सं०) अनुरागी। मनमथ=कामदेव। सूर=सूर्य। पेम=प्रेम। पन्था=मार्ग। पुर=पूर्ण करो। कामा=मनोरथ। जीनिकहु=जीतकर। लग= समीप। तेहि=इसी से। उजोर=(उद्योत—सं०) प्रकाश। तिमिरहि=अन्धकार में ही। बङ्का=वक्र। कुसुमसायक=कामदेव।

अर्थ—कामदेव (तुम्हें) अनुरागिणी बना देगा। (तब) मन के पीछे (तुम्हारा) शरीर (भी) जायगा।

पृथ्वी पर कमलिनी है (और) आकाश में सूर्य है; (किन्तु) प्रेम का मार्ग कहाँ दूर है?

हे रामा! बाधा मत करो। हे विलासिनी! प्रियतम का मनोरथ पूर्ण करो।

(तुमने अपने) मुख से जीतकर (चन्द्रमा को) मन्द कर डाला। (इसलिए) लज्जा से चन्द्रमा समीप नहीं आवेगा।

इसीलिए, मार्ग में प्रकाश की शङ्का मत करो। अँधेरे में ही तुम्हारा गमन होगा।

(तुम्हारा) हृदय वक्र है। (अतः) कार्य में संदेह हो रहा है। विरह में कितनी शङ्काएँ नहीं होतीं? (अर्थात्—तुम्हारा हृदय वक्र है। इसलिए, संदेह होता है कि कहीं कार्यसिद्धि नहीं हो, तो फिर विरह बना ही रह जायगा।)

हे सुन्दरी! सबसे श्रेष्ठ साहस है। (और) तुम्हें छोड़कर कौन (साहस) कर सकती है? (अर्थात्, साहस करके कृष्ण के पास चलो।)

सरस कवि कण्ठहार (विद्यापति) कहते हैं कि सम्पूर्ण अभिमत सिद्ध करनेवाले (और) रूप में अभिनव कामदेव राजा शिवसिंह रस के आधार हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

कोलाररागे—

[१६५]

एहि मही अधि अथिर जीवन
जौवन अलप काल।
ईँथी जत जत न बिलसिअ
से रह हृदय साल ॥ ध्रु० ॥

सं अ०—तिन तूल अरु तातह भए लहु
मानिअ गरुबि आहि।
अछइते जे बोल नही अञए
से लहु सबहुँ चाहि ॥ ध्रु० ॥

साजनि कइसन तोर गेञान ।
जौवन सम्पद तोर सोआधिन
कके न करसि दान ॥
तोर धन धनि तोराहि रहत
निधन होएत आन ।
दानक धरम तोहहि पाओब
कवि विद्यापति भान ॥

ने० पृ० ७७ (क), प० २१४, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४४३)—

तिन तुल अरु ता तह भए लहु
मानिअ गरुवि आहि ।
अछइते[1] जे वोल नही अछए
से लहु सबहु चाहि ॥

साजनि ! कइसन तोर गेञान ।
जउबन सम्पद तोर सोआधिन
कके न करसि दान ॥
जाबे से जउबन तोर सो आधिन
ताबे पर बस होए ।
जउबन गेलेँ—बिपद भेलेँ
पूछि न पूछत कोए ॥
एहि मही आध अथिर जीवन
जउबन अलप काल ।
इथीँ जत-जत न बिलसिअ
से रह हृदअ साल ॥
तोर धन धनि तोराहि रहत
निधन होएत आन ।
दानक धरम तोराहि होएत
कवि विद्यापति भान ॥

साजनि कइसन तोर गेंयान[२]।
जउवन रतन तोर सोआधिन
कके न करसि दान ॥
जाबे से जउवन तोर सोआधिन
ताबे परवस होए ।
जउवन गेले विपद भेले
पुछि न पुछत कोए ॥
एहि मही आध अथिर जीवन
जउवन अलप काल ।
इथी जत जत न विलसिअ
से रह हृदय साल ॥
तोर धन धनि तोराहि रहत
निधन होएत आन ।
दानक धरम तोराहि होएत
कवि विद्यापति भान ॥

मि० म० (पद-सं० २६२, न० गु० से)—१ अछइत। २ गेआन।

झा (पद-सं० १६४)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—तिन = तृण। तातह = उनसे। लहु = लघु। गरुवि = गुरु = श्रेष्ठ। आहि = हाय। सोआधीन = स्वाधीन। मही = पृथ्वी। अथिर = अस्थिर। इथीं = यहाँ। साल = काँटा। आन = दूसरा। तोराहि = तुम्हें ही।

अर्थ—हाय! तृण और तूल—उनसे भी लघु होकर (तुम अपने को) श्रेष्ठ मानती हो? (किसी वस्तु के) रहते हुए भी जो कहता है (कि) नहीं है, वह सभी से लघु है।

हे सखी! तुम्हारा ज्ञान कैसा है? यौवन-रूपी सम्पत्ति तुम्हारे अधीन है, (फिर) क्यों नहीं दान करती हो?

जभी तक यह यौवन तुम्हारे अधीन है, तभी तक दूसरे वश होते हैं। यौवन बीत जाने पर—विपत्ति आ जाने पर—चाहने पर भी कोई नहीं पूछेगा।

इस पृथ्वी पर जीवन ही आधा है, (अर्थात्—आधा जीवन सोने में ही बीत जाता है। काम के लिए आधा जीवन ही बचता है।) वह भी अस्थिर है (और) यौवन तो बहुत कम समय के लिए है। यहाँ जो-जो विलास नहीं किये जायँ, वे सब हृदय के काँटे बनकर रहते हैं।

कवि विद्यापति कहते हैं—हे धन्ये! तुम्हारा धन तुम्हारा ही रहेगा। दूसरे ही निर्धन होंगे। (किन्तु) दान का धर्म तुम्हें ही होगा। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

सारङ्गीरागे—

[१६६]

सामर सुन्दर ञे[१] बाटे[२] आएल
तँ[३] मोरि लागलि आँखी[४] ।
आरति आँचर साजि न भेले
सबे सखी जन साखी[५] ॥ ध्रु० ॥
कहहि मो सखि कहहि मो
कथा[६] ताहेरि वासा ।
दूरहु दुगुण[७] एडि[८] मञे[९] आबओ[१०]
पुनु दरसन आसा ॥
कि मोरा जीवने कि मोरा जौवने[११]
कि मोरा चतुरपने[१२] ।
मदन बाएे[१३] मुरुछलि अछओ
सहओ[१४] जीव अपने ॥
आध पदेयोधर[१५] ते[१६] मोर देखल
नागर जन समाजे ।
कठिन हृदय[१७] भेदि न भेले
जाओ[१८] रसातल लाजे ॥
सुरपति पाए लोचन मागओ[१९]
गरुड[२०] मागओ[२१] पाखी[२२] ।
नादेरि[२३] नन्दन मञे[२४] देषि[२५] आबओ[२६]
मन मनोरथ राखी ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७७(क), प० २१५, पं० ५

सं० अ०—२ बाटैं । ३ तैं । ४ आखी । ६ कथाँ । ७ दूगुन । ९ मोज । १० आबओ । ११ जउवने । १३ बाने । १५ पओधर । १७ हृदअ । १८ जाओ । २२ पाँखी । २३ नन्देरि । २४ मोञे । २५ देखि ।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६२)—१ एँ। ३ तें। ६ कतए। ७ दुगुन। ८ एड़ि। १३ बाने। १५-१६ पदे यो धरते। २० गरूड़ा। २३ नन्देरि।

मि० म० (पद-सं० २३८)—१ एँ। २ वाट। ३ ताँ। ४ आँखि। ५ साखि। ७ दुगुन। ८ एड़ि। ९ मैं। १० आस्रो॑। ११ जौबन। १२ चतुरपाने। १३ बाने। १४ सहस्रो॑। १५-१६ पदेयो घरइते। १७ हिरदय। १९ मागस्रो॑। २० गरुड़। २१ मागस्रो॑। २२ पाँखो। २३ नन्देरि। २४ मैं॑। २५ देखि। २६ आवस्रो।

झा (पद-सं० १६५)—१५ पदे (प) योधर।

विशेष—'पदेयोधर' में 'दे' अधिक प्रतीत होता है।

शब्दार्थ—सामर सुन्दर = श्यामसुन्दर। एँ = इस। आरति = जल्दीबाजी। साजि = सम्हाल। साखी = (साक्षी—सं०) गवाह। मो = मुझे। कथा = कहाँ। ताहेरि = उनका। एडि = चलकर। अछओ = हूँ। भेदि = फटना। रसातल = पाताल। सुरपति = इन्द्र।

अर्थ—श्यामसुन्दर इसी मार्ग से आये। उनसे मेरी आँखें लग गईं। सभी सखियाँ साक्षी हैं (कि) जल्दबाजी में (मैं) आँचल भी नहीं सँभाल सकी।

हे सखी! मुझसे कहो, मुझसे कहो (कि) कहाँ उनका निवास है? पुनः दर्शन की आशा से दूनी दूरी चलकर भी मैं (उनके समीप) आऊँगी।

मेरे जीवन से क्या? मेरे यौवन से क्या? मेरी चतुराई से क्या? (मैं) मदन-बाण से मूर्च्छित हूँ। (किसी तरह) अपने जीवन का सहन करती हूँ। (अर्थात्—किसी तरह अपने प्राण को धारण किये हुई हूँ।)

नागरजनों के बीच उन्होंने मेरे आधे स्तन को देख लिया। (हाय! मेरा) कठिन हृदय फट नहीं गया! (मैं) लज्जा से रसातल जा रही हूँ।

(मैं) इन्द्र से (सहस्राक्ष होने के कारण) आँखें माँगती हूँ (और) गरुड़ से पङ्ख माँगती हूँ। मन में (अनेक) मनोरथ रखकर मैं नन्द-नन्दन को देख आऊंगी।

सारङ्गीरागे—

[१६७]

नीन्दे भरल अछ लोचन तोर
नोनुअ' वदन कमलरुचि चोर॥
कओने कुबुधि कुच नखखत देल
हा हा शम्भु भगन भए गेल॥ ध्रु०॥

सं० अ०—सामरि हे! झामर तोर देह।
कह-कह—का सओ लाउलि नेह॥
निन्दे॑ भरल अछ लोचन तोर।
अमिअ-भरमे जनि लुबुध चकोर॥ ध्रु०॥

केस कुसुम झरु सिरक सिन्दुर
अलक तिलक हे सेहओ गेल दुर ॥
निरसि धुसर भेल अधर पवार
कओने लुलल सखि मदन भँडार ॥
भनइ विद्यापति रसमति नारि
करए पेम पुनु पलटि निहारि ॥

ने० पृ० ७७, प० २१६, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १६१)—

सामरि हे झामर[1] तोर देह
की कह कइसे[2] लावलि[3] नेह ॥
नीन्दे[4] भरल अछ लोचन तोर।
अमिय भरमे जनि लुबुध चकोर ॥
निरसि[5] धुसर करु अधर पवार[6]।
कोने[7] कुबुधि लुटु[8] मदन भण्डार[9] ॥
कोने[10] कुमति कुच नखखत देल।
हाए हाए[11] सम्भु भगन भए गेल ॥
दमन लता सम तनु सुकुमार ।
फूटल बलय टूटल[12] गृमहार ॥
केस कुसुम तोर सिरक सिन्दूर ।
अलक तिलक हे सेहओ[13] गेल दूर ॥
भनइ विद्यापति रति अवसान ।
राजा सिवसिंह[14] ई रस जान ॥

निरसि धुसर करु अधर-पबार ।
कओने कुबुधि लुटु मदन-भण्डार ॥
कओने कुमति कुच नख-खत देल ।
हा-हा ! सम्भु भगन भए गेल ॥
दमन-लता सम तनु सुकुमार ।
फूटल बलअ टुटल ग्रिमहार ॥
केस-कुसुम झरु सिरक सिन्दूर ।
अलक-तिलक हे—सेहओ गेल दूर ॥
भनइ विद्यापति रति-अवसान ।
राजा सिवसिंह ई रस जान ॥

मि० म० (पद-सं० ६८, न० गु० से)—१ झामरि। २ के सयँ। ३ लएलि। ४ नीन्द। ५ निरस। ६ पँवार। ७ कौन। ८ लुट्ठ। ९ भँडार। १० कोन। ११ हाय हाय। १२ टुटल। १३ सेऊ। १४ सिवसिंघ।

झा (पद-सं० १९६)—१ लोनुअ।

विशेष—यद्यपि नेपाल-पदावली की उपर्युक्त भणिता अधिक व्यञ्जनामय है, तथापि पद के साथ उसकी संगति नहीं होती।

शब्दार्थ—सामरि = श्यामा ('तप्तकाञ्चनवर्णाभा श्यामा षोडशवार्षिकी')। झामर = कुम्हलाया। पवार = (प्रवाल—सं०) मूँगा। दमनलता = कुन्दलता (देखिए—शब्दकल्पद्रुम, भाग २, पृष्ठ ६८५—दमनः पुष्पविशेषः, कुन्दपुष्पम्—इति राजनिघण्टुः।) वलअ = वलय—सं०।

अर्थ—हे श्यामे! तुम्हारा शरीर कुम्हलाया हुआ है। कहो, कहो—(तुमने) किसके साथ प्रेम किया है?

तुम्हारी आँखें नींद से माती हैं। (मालूम होता है,) जैसे चकोर अमृत के धोखे (कहीं) लुभा गया है।

किसने (तुम्हारे) अधर-प्रवाल को नीरस करके मटमैला कर डाला? किस कुबुद्धि ने (तुम्हारे) मदन-भाण्डार को लूट लिया?

किस कुमति ने (तुम्हारे) स्तन पर नख-क्षत दिया? हाय-हाय! (स्तन-रूपी) शिव भग्न हो गया।

(कहाँ) कुन्द-लता के समान तुम्हारा सुकुमार शरीर (और कहाँ) फूटा हुआ वलय (एवं) टूटा हुआ ग्रिमहार?

(तुम्हारे) केशों के फूल (और) सिर के सिन्दूर झड़ गये। अलक, तिलक (सभी) दूर हो गये।

विद्यापति रति-अवसान कहते हैं (अर्थात्—रति-अवसान का वर्णन करते है। और) राजा शिवसिंह इस रस को समझते हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

सारङ्गीरागे—

[१९८]

कामिनि करए सनाने
हेरइते हृदय हरए पचबाने।
चिकुर गलए जलधारा
मुख शशि डरे जनि रोअए अँधारा॥ ध्रु०॥

सं० अ०—कामिनि करए सनाने।
हेरितहिँ हृदअ हनए पँचबाने॥
चिकुर गरए जलधारा।
जनि मुखससि-डरेँ रोअए अन्धारा॥

तितल वसन तनु लागू
मुनिहुक मानस मनमथ जागू ।
ते शङ्काए भुजपाशे
बान्धि धरिअ पुनु ऊड तरासे ॥
कुचयुग चारु चकेबा
निअ कुल मिलत आनि कओने देबा ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७८(क), प० २१७, पं० ३

पाठभेद—

रा० त० (पृ० ७३)—

कामिनि करए सनाने
हेरितहिँ हृदय हन पँचवाने ।
चिकुर गरए झलधारा
मुखससि तरें जनि रोअए अधारा ॥
तितल वसन तनु लागू
मुनिहुँक मानस मनमथ जागू ।
कुचयुग चारु चकेवा
निज कुल मिलत आनि कोने देवा ॥
तें सङ्काजे भुजपासे
बान्धि धरिअ उड़ि जाएत अकाशे ॥
इति विद्यापतेः ॥

न० गु० (पद-सं० ३७)—

कामिनि करए सनाने ।
हेरितहि हृदअ हनए पचबाने ॥
चिकुर गरए जलधारा ।
जनि मुखससि डरे रोअए अन्धारा ॥

कुचजुग चारु चकेबा ।
निज कुल मिलत आनि कओने देबा ॥
तेँ सङ्काजे भुजपासे ।
बान्धि धएल उडि जाएत अकासे ॥
तितल वसन तनु लागु ।
मुनिहुक मानस मनमथ जागू ॥
सुकवि विद्यापति गाबे ।
गुनमति धनि पुनमत जन पावे ॥

कुच जुग चारु चकेवा ।
निश्र कुल मिलत श्रानि कौने देवा ॥
तें संकाञे भुज पासे ।
बाँधि धयल उड़ि जाएत श्रकासे ॥
तितल बसन तनु लागू ।
मुनिहुक मानस मनमथ जागू ॥
भनइ विद्यापति गावे ॥
गुनमति धनि पुनमत जनि पावे ॥

मि॰ म॰ (पद-सं॰ २२८(ख)—न॰ गु॰ की भाँति।

झा (पद-सं॰ १९७)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—सनाने = स्नान। हनए = आघात करता है। चिकुर = केश। गरए = चूता है। अँधारा = अन्धकार। मनमथ = कामदेव। चारु = सुन्दर। चकेबा = चक्रवाक। निश्र = निज। श्रानि = लाकर। देवा = देगा।

अर्थ—कामिनी स्नान करती है। (उसे) देखते ही कामदेव हृदय में आघात करता है।

केश से जलधार चूती है। (जान पड़ता है,) जैसे मुखचन्द्र के डर से अन्धकार रोता हो।

(उसके) दोनों स्तनरूपी चक्रवाक (यदि) अपने समूह में जा मिलेंगे (तो) कौन ला देगा?

इसी शङ्का से (उन्हें) भुजपाश से बाँध रखा है (कि वे) आकाश में उड़ जायेंगे।

भींगा वस्त्र शरीर से चिपक गया है, (जिसे देखकर) मुनियों के मन में भी कामदेव जागरित होता है।

कवि विद्यापति कहते हैं कि पुण्यवान् आदमी ही गुणवती स्त्री पाता है। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

सारङ्गीरागे—

[१९९]

भौँहँ[1] भागि[2] लोचन भेल आड[3]
तैंश्रश्रो न शैशव[4] सीमा छाड[5] ।
आबे हसि[6] हृदय[7] चिर[8] लए[9] थोए
कुच कञ्चन अङ्कुरए[10] गोए ॥ ध्रु॰ ॥
हेरि हल माधव कए अवधान
जौवन परसे[11] सुमुखि आबे आन[12] ।

सं॰ अ॰—१ भौंह २। भाङ्गि। ४ सैसव। ६ हँसि। ७ हृदश्र। ८ चीर। १० अङ्कुर पए। ११ जउवन परसेँ। १२ जान।

मधुर हासे[13] मुख मण्डित[14]......[15]
अमिअक लोने कुशेशय... ...[16] ॥
सखि पुछइते[17] आबे दरसए लाज
सीञ्चि[18] सुधाए[19] अधबोली[20] बाज ।
एत दिन सैसबे[21] लाओल साठ
आबे सबे मदने पढाउलि[22] पाठ ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७८, प० २१८, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ११)—१ भोंह । २ भाङ्गि । ३ आड़ । ५ छाड़ । ८ चीर । १६ लोले कुशेशय । १७ पूछइते । १८ सीचि । २० अधबोलिअ । २१ शैशवे । २२ पढ़ाउलि ।

मि० म० (पद-सं० २२६)—१ भौंह । २ भाङ्गि । ३ आड़ । ४ सैसव । ५ छाड़ । ८ चीर । १७ पुछइत । १८ सीँचि । १९ सुधाओ । २० अध बोलिअ । २२ पढ़ाउलि ।

झा (पद-सं० १९८)—२ भागि गेल । ९ लय । १४ मुण्डित । १५ (लागु) । १६ लोले कुशेशय लागु ।

विशेष—न० गु० और मि० म० की पदावली में ७वीं और ८वीं पंक्तियाँ नहीं हैं ।

शब्दार्थ—भागि = (भङ्गी—सं०) वक्र । आड = आल, लाल रंग । शैशव = बचपन । चिर = (चीर—सं०) वस्त्र । थोए = रखती है । कुच = स्तन । गोए = छिपाती है । हेरि हल = देखो । लोने = लावण्य । कुशेशय = शतपत्र कमल । अधबोली = असम्पूर्ण वाक्य, यत्किञ्चित् । बाज = बोलती है । साठ = साट, साथ ।

अर्थ—(यद्यपि नायिका की) भौंहें वक्र हो गईं, आँखें लाल हो गईं, तथापि शैशव सीमा नहीं छोड़ रहा है । (अर्थात्—वीररस के अनुभाव होने पर भी शैशव डरकर भागता नहीं । वह सीमा पर अड़ा बैठा है ।)

अब (वह) हँसकर हृदय पर कपड़ा रखती है । स्तन-रूपी स्वर्णाङ्कुर को छिपाती है ।

हे माधव ! सावधान होकर (उसे) देखो । सुमुखी यौवन के स्पर्श से अब दूसरी (कुछ और) हो गई ।

मधुर हास्य से (उसका) मुख मण्डित हो गया । (मालूम होता है, जैसे) अमृत का लावण्य शतपत्र कमल में आ गया हो ।

सखी के पूछने पर अब लज्जा दरसाती है । अमृत से सींचकर यत्किञ्चित् कहती है ।

इतने दिनों तक शैशव ने साथ दिया; (किन्तु) अब कामदेव ने सारा पाठ पढ़ा दिया ।

---

१३ हासेँ । १५ भेल । १६ लोन कुसेसअ गेल । २० अधबोलिअ ।

सारङ्गीरागे—

[२००]

जलद बरिस जलधार।
सर जञो पलए[1] प्रहार ॥
का(ज)रे[2] राङ्गलि राति ॥[3] ध्रु० ॥
सखि हे[4]
अइसनाहु[5] निसि अभिसार।
तोहि तेजि करए के पार ॥
भमए भुअङ्गम भीम।
पङ्क[6] पुरल[7] चौसीम[8] ॥
दिग मग देषिअ[9] घोर।
पएर दिअए[10] बिजुरि उजोर[11] ॥
सुकवि विद्यापति गाब।
महघ मदन परथाब ॥

ने० पृ० ७८, प० २१९, पं० ५

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ३८)—

जलद बरिस जलधार।
सर जञो पलए पहार ॥
काजरे॑ राङ्गलि राति।
बाहर होइते॑ साति ॥ ध्रु० ॥
साजनि
अइसनी निसिँ अभिसार।
तोहि तेजि करए के पार॥
भमए भुअङ्ग(म) भीम।
पङ्के॑ पुरल चौसीम॥
जलधर वीजु उजोर।
तखने गरज घन घोर ॥
भनइ विद्यापति गाव।
महघ मदन परथाव ॥

सं० अ०—१ पळए। २ काजरेँ। ३ बाहर होइते साति। ४ साजनि। ५ अइसनिहुँ। ६ पङ्केँ। ८ चउसीम। ९ देखिअ।

न० गु० (पद-सं० २६६)—आरंभ की तीन पंक्तियाँ नहीं हैं। ५ अइसनि। ७ पूरल। १० दिश्र।
मि० म० (पद-सं० ३२६)—१० दिश्र।
झा (पद-सं० १६६)—१ पलय। ३-४ सखि।

शब्दार्थ—जलद = मेघ। साति = भय। अइसनाहु = इस तरह की। भमए = घूमता है। भुअङ्गम = (भुजङ्गम—सं०) साँप। भीम = भयानक। चौसीम = (चतुस्सीम—सं०) चारों सीमाएँ। मग = मार्ग। जलधर = मेघ। बिजुरि = विद्युत्। उजोर = प्रकाश। महघ = (महार्घ—सं०) महँगा। परथाब = प्रस्ताव।

अर्थ—जिस तरह प्रहार के लिए शर गिरता है, (उसी तरह) मेघ पानी की धारा बरसा रहा है।

(मालूम होता है, जैसे) रात काजल से रँग गई है। बाहर होते (भी) भय हो रहा है।

हे सखी! ऐसी रात में तुम्हें छोड़कर कौन अभिसार कर सकती है?

भयानक साँप घूम रहे हैं। कीचड़ से (नगर की) चारों सीमाएँ भर गई हैं।

दिशाएँ (और) मार्ग भयावने दिखलाई पड़ते हैं। विद्युत् के प्रकाश में ही (मार्ग में) पैर दिये जाते हैं।

सुकवि विद्यापति कहते हैं (कि) कामदेव का प्रस्ताव महँगा होता है। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से)

सारङ्गीरागे—

[२०१]

कुच कलश[1] लोटाइलि घन सामरि[2] वेणी।
कनय पर सुनलि जनि कारि सापिनी॥ ध्रु०॥
मदन सरे मुरुछलि चिरे चेतहि बाला॥
लम्बित अलके बेढला[3] मुख[4] कमल सोभे।
राहु कि बाहु पसारला ससिमण्डल लोभे॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ७९(क), प० २२०, पं० ३

सं० अ०—लम्बित अलकेँ बेढ़ला मुख कमल सोभे।
राहु कि बाहु पसारला ससिमण्डल लोभे॥
मदन-सरेँ मुरुछाइली चिर चेत न बाला।
देखलि से धनि बासि हे जनि मालति माला॥
कलस-कुच लोटाइली घन सामरि बेनी।
कनय पबय जनि सूतली कारी नागिनी॥
भनइ विद्यापति भामिनी थिर थाक न मने।
राजाहुँ रूपनरायना लखिमादेइ-रमने॥

पाठभेद—

रा० त० (पृ० सं० ६०)—

नमित अलकैं[1] वेढ़ला मुख कमल सोभे[2]
राहुक[3] बाहु परसला[4] शशिमण्डल लोभे ॥
मदन सरे[5] मुरुछलो[6] चिर चेत न बाला
देखलि से धनि हे बासि मालति[7] माला ॥
कलस कुच[8] लोटाइली घन सामरि बेनी
कनय पवय[9] सूतली जनि कारि नागिनी[10] ॥
भने[11] विद्यापति भाविनी[12] थिर थाकन[13] मने
राजाहुँ[14] सिवसिंह[15] रूपनरायन[16] लखिमादेइ रमने ॥

न० गु० (पद-सं० ६६१, रा० त० से)—१ अलके। २ शोभे। ३ राहु कि। ४ पसारला। ५ शरे। ६ मुरछली। ७ निमालिनी। ८ कुज। ९ परय। १० नगिनी। ११ भनइ। १२ भाविनि। १३ थाक न १४-१५-१६ राजा रूपनरायण।

मि० म० (पद-सं० १६८ और ४९६)—१ कलस। ३ वेढ़ला।

झा (पद-सं० २००)—२ सामर। ४ सुख।

शब्दार्थ—कुच = स्तन। सामरि = साँवली। वेणी = चोटी। कनय = (कनक—सं०) सोना। पबय = पर्वत। चिर = (चीर—सं०) वस्त्र। अलके = केश से। ससिमण्डल = चन्द्र-मण्डल। थाक = स्थिर।

अर्थ—लम्बे बालों से घिरा हुआ (उसका) मुख-कमल शोभित हो रहा है। (ऐसा जान पड़ता है कि) क्या राहु ने शशिमण्डल के लोभ से (अपनी) बाँह फैलाई है?

काम-बाण से मूर्च्छित बाला वस्त्र को भी नहीं सँभाल रही है। उस धन्या को (इस प्रकार) देखा, जैसे (वह) मालती की बासी माला हो।

(उसके) कुच-कलश पर सघन साँवली वेणी लोट रही है। (मालूम होता है, जैसे) कनकाचल पर काली नागिन सोई हो।

विद्यापति कहते हैं (कि) भामिनी का मन स्थिर नहीं है। लखिमा देवी के रमण राजाओं में रूपनरायण (शिवसिंह इसे जानते हैं)। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सारङ्गीरागे—

[२०२]

हास विलासिनि दसन देखिअ जनि[1]
तललित[2] जोती।
सार बिनी[3] बिनि[4] हार मञे गाथब
चान्दे[5] परिहब मोती ॥ ध्रु० ॥

दए गेलि दए गेलि दुइ[6] डिठि[7] मेरा[8]
पुनु मन कर ततहि जाइग्र
देषिग्र[9] दोसरि बेरा ॥
दिवस भमर कमल सुतल
सीसिरे[10] भिनलि[11] पाखी
खञ्जन यनि[12] ताहि परि[13] रह[14]
तैसनि लोनुमि[15] ग्राँषी[16] ॥
भने विद्यापति जे[17] जन नागर
ता पर रतलि नारि[18]
हासिनि देवि पति देवसिंह नरपति
परसन होथु मुरारि ॥

ने० पृ० ७६(क), प० २२१, पं० ५

सं० अ० — दए गेलि सुन्दरि दए गेलि रे—
दए गेलि दुइ दिठि मेरा ।
पूनु मन कर ततहि जाइग्र
देखिग्र दोसरि बेरा ॥ ध्रु० ॥
सार चुनि-चुनि हार जे गाँथल
केवल तारा - जोती ।
ग्रधर रूप ग्रनूपम सुन्दर
चान्दे परीहलि मोती ॥
भमर मधु पिबि पिबि मातल
सिसिरे भीजलि पाँखी ।
ग्रलपे काजरेँ नग्रन ग्राँजल
लोनुंमि देखिग्र ग्राँखी ॥
कते जतने दूती पठाग्रोल
ग्रानए गूग्रा - पान ।
सगरे रजनि बइसि गमाग्रोल
हृदग्र तसु पखान ॥
भन विद्यापति सुनह नागर
ग्रो नहि ग्रो रस जान ।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि-रमान ॥

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५४)

दए गेलि सुन्दरि दए गेली रे
दए गेलि दुइ दिठे मेरा ।
पुनु मन कर ततहि जाइश्र
देखिश्र दोसरि बेरा ॥
सार चुनि चुनि हार जे गाँथल
केवल तारा जोती ।
श्रधर रूप श्रनुपम सुन्दर
चान्दे परीहलि मोती ॥
भमर मधु पिबि पिबि मातल
शिशिरे भीजलि पाखी ।
श्रलपे काजरे नयन श्राँजल
ननुमि देखिय श्रांखी ॥
कते जतने दूती पठाश्रोल
श्रानय गुया पान ।
सगरे रजनी बइसि गमाश्रोल
हृदय तसु पखान ॥
भन विद्यापति सुनह नागर
श्रो नहि श्रो रस जान ।
राजा शिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देवि रमान ॥

मि० म० (पद-सं० ४)—१ देखि जनि । २ तरलित । ३-४ चुनि चुनि । ५ चान्द ६ दुइहि । ७-८ भोमरा । ९ देखिश्र । १० सीसि । ११ वेड़िलिलि । १२ नयनि । १३-१४ परिरह । १५ लोलुमि । १६ श्राँखी । १७ ये ।

झा (पद-सं० २०१)—१ देखिश्र जनित । २ ललित । १२(न) यनि । १३-१४ परिवह । १६ श्राँखी । १८ (वर) नारि ।

शब्दार्थ—डिठि = (दृष्टि—सं०) श्राँख । मेरा = मिलन । पुनु = पुनः, फिर । सार = सर्वोत्तम । परीहलि = पहना । सिसिरे = श्रोस से । लोनुमि = लावण्यमय । गूश्रा = सुपारी । पखान = (पाषाण—सं०) पत्थर ।

अर्थ—दे गई—सुन्दरी दे गई—दोनों श्राँखों का मिलन दे गई । फिर मन करता है कि वहीं जायँ—दूसरी बार भी (उसे) देखें ।

सर्वोत्तम चुन चुनकर—केवल ताराश्रों की ज्योति चुन-चुनकर गूँथा हुश्रा उसका हार है । (उसके) श्रधर का रूप श्रनुपम सुन्दर है । (मालूम होता है, जैसे) चन्द्रमा ने मोती पहना हो ।

मधु पी-पीकर मतवाला बना भौंरा, जिसके पंख श्रोस से भींग गये हैं, (उसी की तरह) श्रल्प काजल से श्रनुरंजित (उसकी) श्राँखें लावण्यमय दिखाई पड़ती हैं ।

पान-सुपारी लाने के लिए कितने यत्न से दूती को भेजा। बैठकर पूरी रात बिता दी। (किन्तु वह नहीं आई।) उसका हृदय पत्थर है।

विद्यापति कहते हैं—हे नागर ! सुनो। वह (नायिका) उस (शृङ्गार) रस को नहीं जानती; (किन्तु) लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह (जानते हैं।)

सारङ्गीरागे—

[२०३]

हृदयक[१] हार भुअङ्गम भेल
दारुण[२] दाढ़ मदनेरि स[३] देल।
नखसिख लहरि[४] पसर विष धाधि[५]
तुअ पएपङ्कज अइलिहु[६] कल बान्धि ॥ ध्रु० ॥
ए हरि त लागहि तञे गोहारि[७]
संशय[८] पललि[९] अछए वरनारि ॥
केओ सखि मन दए चरण पखाल[१०]
केओ सखि चिकुर चीर सम्भार।
केओ सखि ऊठि[११] निहारए सास[१२]
मञे[१३] सखि अएलाहु[१४] कहए तुअ पास ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ७६, प० २२२, पं० ४

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५४४)—२ दारुन। ३ मदने विस। ४ लखसि खन। ११ डीठि। १४ अगलिहु।

झा (पद-सं० २०२)—३ मदने रिस। ५ धाधी।

शब्दार्थ—भुअङ्गम = (भुजङ्गम—सं०) साँप। दारुण = भयंकर। दाढ़ = दंश = घाव। रिस = क्रोध। लहरि = लहर। धाधि = दाह, जलन। पएपङ्कज = पदपङ्कज। कल = कर, हाथ। गोहारि = त्राण। पखाल = प्रक्षालन। चिकुर = बाल। चीर = वस्त्र।

अर्थ—(विरहिणी के) हृदय का हार सर्प (तुल्य) हो गया। उसने कामदेव का भयानक घाव दिया।

विष की जलन की लहर नख से लेकर शिख तक फैल गई। (इसीलिए) हाथ बाँधकर तुम्हारे पद-पङ्कज में आई हूँ।

हे कृष्ण ! तुम रक्षा करो। वर नारी संशय में पड़ी हुई है।

सं० अ०—१ हृदअक। ३ से। ६ अइलिहुँ। ७ ए हरि लागहि तोञ गोहारि। ८ संसअ। ९ पळलि। १० पखार। १२ साँस। १३ मोञ। १४ अएलिहुँ।

कोई सखी मनोयोग से (उसके) पैर पखालती है। कोई सखी (उसके) केश और कपड़े सँभालती है।

कोई सखी उठकर (उसकी) साँस निहारती है। (एक) सखी मैं कहने के लिए तुम्हारे पास आई हूँ।

[२०४]

भौह[१] लता बड[२] देषिअ[३] कठोर
अञ्जने आँजि फासि[४] गुन जोळ[५] ।
सायक तीष[६] मदन[७] अति चोष[८]
व्याध मदन बध[९] ई[१०] बड[११] दोष ॥ ध्रु० ॥
सुन्दरि सुनह वचन मन लाए
मदन हाथ मोहि लेह छडाए[१२] ।
सहए के पार काम परहार
कत अभिभव हो की परकार ॥
एहि युग[१३] तिनिहु[१४] विमल जस लेह
कुचयुग[१५] शम्भु शरण[१६] मोहि देह ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८०, प० २२३, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १२१)—१ भौंह। २ बड़। ३ देखिअ। ४ हासि। ५ जोर। ६ तोर। ७ कटाख। ८ चोख। ९-१० बधइ। ११ बड़। १२ छड़ाए। १३ जग। १६ शरन।

मि० म० (पद-सं० ३३९)—१ भौँह। २ बड़। ३ देखिअ। ४ हासि। ५ जोर। ६ तीख। ७ कटाख। ८ चोख। ९-१० बधइ। ११ बड़। १२ छड़ाए। १३ जग। १५ कुचजुग। १६ सम्भु सरन।

झा (पद-सं० २०३)—४ हासि।

शब्दार्थ—भौहलता = भ्रूलता—सं०। आँजि = आँजकर। फासि-गुन = फाँसी की रस्सी। तीष = तीक्ष्ण। चोष = पैनी। लेह = लो। छडाए = छुड़ा। परकार = उपाय।

अर्थ—(तुम्हारी) भ्रूलता बड़ी कठोर दीखती है। अञ्जन से आँजकर (तुमने उसमें) फाँसी की रस्सी जोड़ दी है।

सं० अ०—१ भौँह। ३ देखिअ। ४ फाँसि। ६ साअक तीख। ७ नअन। ८ चोख। ११ बड दोख। १४ तिनिहुँ।

(तुम्हारी) पैनी आँखें तीक्ष्ण बाण हैं। मदनरूपी व्याध वध (कर रहा है,)—यही बड़ा दोष है।

हे सुन्दरी! मन देकर (मेरी) बातें सुनो। कामदेव के हाथ से मुझे छुड़ा लो।

कामदेव का प्रहार कौन सहन कर सकता है? कितना कष्ट होता है; (लेकिन) उपाय क्या है?

(अपने) कुचयुग-रूपी शम्भु की शरण मुझे दो (और) इस त्रिभुवन में उज्ज्वल यश लो। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

गुञ्जरीरागे—

[२०५]

नोनुअ वदनसिरि[1] धनि तोरि
जस[2] लागि मोहि[3] चान्दक[4] चोरि।
दरसि हलह जनु ..[5] काहु
चान्द[6] भरमे[7] मुख गरसत राहु॥ ध्रु०॥
धवल नयन[8] तोर काजरे[9] कार
तीख तरल........[10] धार।
निरलि[11] निहारि फास[12] गुण[13] जोलि[14]
बान्धि[15] हलत तोहि खञ्जन बोलि॥
सागर सार चोराओल चन्द
ता लागि राहु करए बड़ दन्द।
कतए लुकाओब चान्दक चोरि
जतहि लुकाइअ ततहि उजोर[16]॥
भनइ विद्यापतीत्यादि[17]॥

ने० पृ० ८०, प० २२५, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २२९)—१ लोलुअ वदन सिरि। २ जनु। ३ तोहि। ४ चाँदक। ५ हेरह। ६ चाँद। १० तँहि कटाख। ११ निरवि। १३ गुन। १५ बाँधि।

मि० म० (पद-सं० ३०५)—लोलुअ वदनसिरी अछि। २ जनु। ३ तोहि। ४ चाँदक। ५ हेरह। ६-७ चाँद-भरम। १० तँहि कटाख। ११ निरवि। १३ गुन। १५ बाँधि।

सं अ०—१ नोनुञ वदन-सिरी। ५ भरमहुँ। ८ नञन। ९ काजरेँ। १० सर मनमथ। ११ निरळि। १२ फाँस। १३ गुन। १४ जोळि। १६ उञोरि। १७ भनइ विद्यापति होउ निसङ्क। चान्दहु काँ किछु लागु कलङ्क॥

झा (पद-सं० २०४)—५ हेरह। १० (धनु व्याधा जनि)।

विशेष—न० गु० और मि० म० के संस्करणों में अन्त की दो पंक्तियाँ नहीं हैं। उनके स्थान में निम्नलिखित भणिता है —

मनइ विद्यापति होउ निसङ्क।
चाँदहु काँ किछु लागु कलङ्क॥

शब्दार्थ—नोनुअ = लावण्यमयी। वदन-सिरि = (वदनश्री—सं०) मुख की शोभा। जस = जैसे। काहु = किसी को। गरसत = ग्रस लेगा। धवल = उज्ज्वल। कार = काला। तीख = तीक्ष्ण। तरल = चञ्चल। निरलि = आँखें फैलाकर। फास = (पाश—सं०) फंदा। गुन = (गुण—सं०) डोरी। दंद = (द्वन्द्व—सं०) झगड़ा। उजोर = (उद्योत—सं०) प्रकाश।

अर्थ—हे धन्ये! तुम्हारी लावण्यमयी मुखश्री को देखकर मुझे लगता है कि जैसे चन्द्रमा की चोरी हुई है। (अर्थात्—तुम्हारे मुख को देखकर मुझे लगता है कि जैसे तुमने चन्द्रमा की चोरी की है।)

भ्रम से भी किसी को (अपना मुँह) मत दिखलाओ। (कारण, कहीं देख लिया गया, तो) चन्द्रमा के भ्रम से राहु (तुम्हारे) मुख को ग्रस लेगा।

तुम्हारी उज्ज्वल आँखें काजल से काली हैं। (जान पड़ता है, जैसे) कामदेव ने तीक्ष्ण (और) चंचल बाण धारण किया है।

(संभव है, व्याधा) आँखें फैलाकर देखेगा (और) रस्सी-फंदा जोड़ करके तुम्हें खञ्जन समझकर बाँध लेगा।

(तुमने) समुद्र के सार चन्द्रमा को चुरा लिया है। उसके लिए राहु बड़ा झगड़ा करता है।

(तुम) चन्द्रमा की चोरी कहाँ छिपाओगी? जहाँ छिपाओगी, वहीं प्रकाश हो जायगा।

विद्यापति कहते हैं—(हे धन्ये!) निःशङ्क हो जाओ। चन्द्रमा को थोड़ा कलङ्क लगा है। (अर्थात्, राहु तुम्हारे निष्कलङ्क मुख को चन्द्रमा के धोखे नहीं ग्रसेगा। तुम निःशङ्क रहो।)

गुञ्जरीरागे—

[२०६]

छलिहु[1] एकाकिनि गथइते हार
ससरि खसल कुच चीर हमार[2]।
तखने अकामिक आएल कन्त[3]
कुच की झापब निबिहुकँ[4] अन्त॥ ध्रु०॥

सं० अ०—१ छलिहुँ। २ गँथइते। ४ झाँपब निबिहुँक।

कि कहब सुन्दरि कौतुक[५] आज
पहु राखल मोर जाइते लाज ।
भेल भावभरे सकल सरीर
कतन[६] जतने बल[७] राखिअ थीर ॥

धसमस करए[८] धरिअ कुच जाति[९]
सगर सरीर धरए कत भान्ति[१०] ।

गोपहि न[११] पारिअ तखन हुलास
मुन्दला कमल बेकत होअ हास ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८१(क), प० २२६, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५६१)—१ माति ।

मि० म० (पद-सं० ४८४)—२ अ हामार । ३ कान्त । ६ कअ । ११ लोप लहि ।

झा (पद-सं० २०५)—४ झाँपब निविहुक ।

शब्दार्थ—एकाकिनि = अकेली । ससरि = खिसककर । अकामिक = (आकस्मिक—सं०) अचानक । कन्त = स्वामी । कुच = स्तन । निबिहुकँ = (नीवी = साड़ी की वह गाँठ, जिसे स्त्रियाँ नाभि के नीचे या बगल में बाँधती हैं ।) नीवी का । कौतुक = तमाशा । पहु = प्रभु, स्वामी । धसमस = तारतम्य । जाति = दबाकर । गोपहि न पारिअ = छिपा नहीं सकी । हुलास = उल्लास ।

अर्थ—अकेली हार गूँथ रही थी (कि) खिसककर मेरे स्तन पर का कपड़ा गिर पड़ा ।

उसी समय अचानक स्वामी आ गये । (फिर) स्तन क्या ढकती ? नीवी का भी अन्त हो गया ।

हे सुन्दरी ! आज का तमाशा क्या कहूँ ? स्वामी ने मेरी जाती हुई लज्जा को रख लिया । (अर्थात्—मेरे अनावृत स्तन को स्वामी ने अपने हाथों से ढँककर मेरी लज्जा रख ली ।)

समूचा शरीर भावपूर्ण हो गया । (अर्थात्, भावोद्रेक से सम्पूर्ण शरीर श्लथ हो गया ।) कितने यत्न से—बल से (मैंने अपने को) स्थिर रखा ।

(मेरे) तारतम्य करने पर (ननु-नच करने पर), स्तन को दबा रखने पर (उन्होंने) सम्पूर्ण शरीर को (ही) कई तरह से पकड़ लिया ।

उस समय (मैं) उल्लास को छिपा नहीं सकी । (कारण,) मुँदे हुए कमल का (भी) हास्य (सौन्दर्य) व्यक्त (हो ही) जाता है ।

---

५ कउतुक । ७ बलेँ । ८ करिअ । ९ जाँति । १० भाँति ।

गुञ्जरीरागे—

[२०७]

परक पेअसि[1] आनलि[2] चोरी
साति अङ्गिरलि आरति[3] तोरी ।
तोहि नही डर ओहि न[4] लाज
चाहसि सगरि निसि[5] समाज ॥ ध्रु० ॥
राख माधव राखहि[6] मोहि
तुरित[7] घर पठाबह ओहि ।
तोहे[8] न मानह हमर बाध
पुनु दरसन होइति साध ॥
ओहओ[9] मुगुधि जानि न जान
संशय[10] पंलल[11] पेम परान ।
तोहहु[12] नागर अति गमार
हठे[13] कि होइअ[14] समुद पार ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८१, प० २२७, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३१६)—५ निशि । ६ राखह । ७ तोरित । ११ पड़ल । १४ होइह ।

मि० म० (पद-सं० २६४)—१ पेयसि । २ आनल । ६ राखह । १० संसअ ।

झा (पद-सं० २०६)—३ आइति । ४ नहि । ९ ओहोओ ।

शब्दार्थ—पेअसि = प्रेयसी । आनलि = लाई । साति = (शास्ति—सं०) दण्ड । अङ्गिरलि = अङ्गीकार किया । आरति = (आर्त्ति—सं०) मनोव्यथा । निसि = रात्रि । समाज = सङ्ग । तुरित = (त्वरित—सं०) शीघ्र । ओहि = उसे । बाध = प्रतिरोध, रोक । साध = अभिलषित । मुगुधि = मुग्धा—सं०) भोली । पेम = प्रेम । गमार = गँवार । समुद = समुद्र ।

अर्थ—दूसरे की प्रेयसी (मैं चुप-चोरी ले आई । तुम्हारी मनोव्यथा के कारण ।मैंने) दण्ड (भी) अङ्गीकार किया।

सं० अ०—६ राखह माधव राखह । ८ तोहँ । १० संसअ । ११ पळल । १२ तोहहुँ । १३ हठँ ।

(किन्तु) न तुम्हें डर है (और) न उसे लज्जा है। (इसीलिए तुम दोनों) समूची रात सङ्ग चाहते हो।

हे माधव ! रक्षा करो, मेरी रक्षा करो। उसे शीघ्र घर भेज दो।

तुम मेरा प्रतिरोध नहीं मानते हो। (अरे ! सन्तोष करो,) फिर (उसके) अभिलषित दर्शन होंगे।

वह भोली है। जान-बूझकर भी कुछ नहीं जानती है। (उसके) प्रेम (और) प्राण—दोनों संशय में पड़ गये हैं। (अर्थात्, यहाँ से जाती है, तो उसका प्रेम टूटता है, और यहाँ रहती है, तो उसके प्राण पर संकट आता है।)

तुम नागर होकर भी बड़े गँवार हो। (अरे !) हठ करने से क्या समुद्र पार किया जाता है ?

गुञ्जरीरागे—

[२०८]

आदरि[१] आनलि[२] परेरि नारी
कता कठिन दुतर तारी।
गेले सम्भव तोहहु[३] तँहा[४]
एखने पलटि जाएब कँहा[५] ॥ ध्रु०॥
न कर माधव हेनि उकुती[६]
पुनु पठाबए चाहिअ दूती।
आनि[७] बिसरिअ[८] भावक भोरा
गरुअ नीलज मानस तोरा ॥
हाथक रतन तेजह कोहे[९]
के बोल नगर नागर तोहे[१०] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८१, प० २२८, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५१८)—६ उकती।

मि० म० (पद-सं० ४५७)—१ आदरे।

झा (पद-सं० २०७)—८ बिसारिअ।

सं० अ०—२ आनलि। ३ तोहहुँ। ४ तहाँ। ५ कहाँ। ७ आनि। ९ कोहेँ। १० तोहेँ।

शब्दार्थ—आदरि = आदर करके। आनलि = लाई। परेरि = दूसरे की। कता = कितना। दुतर = दुस्तर। तारी = संतरण। हेनि = ऐसी। उकुती = (उक्ति—सं०) बात। भावक भोरा = भाव का मूर्ख। गरुअ = (गुरु—सं०) बड़ा। नीलज = निर्लज्ज। मानस = हृदय। कोहे = क्रोध से। तोहे = तुम्हें।

अर्थ—(शठ नायक के प्रति दूती की उक्ति)—(मैं) पराई स्त्री को आदरपूर्वक ले आई थी। दुस्तर का संतरण कितना कठिन है। (अर्थात्, दुस्तर नदी का संतरण कितना कठिन है—इसे वही जानता है, जो कि संतरण करता है। पराई स्त्री का लाना कितना कठिन है—इसे मैं समझ सकती हूँ, तुम नहीं। इसलिए इसका अनादर मत करो।)

तुम्हें भी वहाँ जाना ही पड़ेगा। अभी लौटकर कहाँ जाओगे? (अर्थात्, उसे मनाने के लिए तुम्हें जाना ही पड़ेगा। कौन दूसरी प्रेयसी है, जहाँ लौटकर अभी जाओगे?)

हे माधव! ऐसी बात मत करो। (उसके पास) फिर दूती भेजना चाहिए। (अर्थात्, उसे रूठी मत रहने दो। मनाने के लिए उसके पास पुनः दूती भेजो।)

अरे भाव-मूर्ख! (उसे) लाकर (तुमने) भुला दिया? तुम्हारा हृदय बड़ा निर्लज्ज है।

क्रोध से (तुम अपने) हाथ का रत्न तजते हो। (ऐसा करने पर) नगर में कौन तुम्हें नागर कहेगा?

गुज्जरीरागे—

[२०६]

कुन्द भरम सम्भ्रम सम्भार
नयने जगाए अनङ्गे।
आसा दए अनुराग बढाओब
लङ्गिम अङ्ग विभङ्गे ॥ ध्रु०॥
कैतव कए कातरता दरसब
गाढ आलिङ्गन दाने।
कोप क(ए)ला पर रोष न मानब
अधिक न करबे माने ॥

सं० अ०—कुन्द - भमर - सङ्गम सम्भाषब
नअने जगाए अनङ्गे।
आसा दए अनुराग बढ़ाओब
लङ्गिम अङ्ग - विभङ्गे ॥ ध्रु०॥
सुन्दरि हे। उपदेस धरिए धरि
सुन-सुन सुललित वानी।

कामिनि तोहे उपदेस धरब जे
सुन सुन सुललित वानी ।
नागरपन किछु रहबा[1] चाहिअ
कहलेओ बुझए सयानी ॥
कोकिल कूजित कण्ठ बढाओ(ब)
... ... ।
मधुर हासे मुखमण्डल मण्डब
तिला एक तेजब लाजे ॥
समय[2] से[3] मनि[4] सह तनु दरसब
मुकुलित लोचन हेरी ।
नखे हरि पिआ मन ठाम छडाओब
सुरत बढाओब बेरी ॥
जूझल मनमथ पूतु[5] जुझाओब
केलि रभस परचारी ।

नागरिपन किछु कहबा चाहओ
कहलेओ बुझए सआनी ॥
कोकिल-कूजित कण्ठ बइसाओब
अनुरञ्जब रितुराजे ।
मधुर हासेँ मुखमण्डल मण्डब
तिला एक तेजब लाजे ॥
कइतब कए कातरता दरसब
गाढ़ आलिङ्गन - दाने ।
कोप कइए परबोधल मानब
अधिक न करबे माने ॥
समअबसे मनि-सह तनु दरसब
मुकुलित लोचन हेरी ।
नखेँ हनि पिआ-मनिधाम छड़ाओब
सुरत बढाओब बेरी ॥
जूझल मनमथ पुनु जे जुझाओब
केलि - रभस परचारी ।

गेल भाव जे पुनु पलटाबए[५]
सेहे कलामति नारी ॥
सुख सम्भोग सरस कवि गाबए
बूझ समय पचवाने ।
राजा सिवसिंह रूपनराएण
विद्यापति कवि भाने ॥

ने० पृ० ८२(क), प० २२९, पं० ३

पाठभेद—

रा० त० (पृष्ठ ६२)—

कुन्द भमर सङ्गम सम्भाषब[१]
नञेने[२] जगाओब अनङ्गे ।
आशा दय[३] अनुराग बढ़ाओब
नङ्गिम[४] अङ्ग विभङ्गे ॥
सुन्दरि[५] हे उपदेश धरिए धरि
सुन सुन[६] सुललित वानी ।
नागरिपन किछु कहवा चाहों[७]
कहलहुँ बुझय[८] सयानी ॥
कोकिल कूजित कण्ठ वैसाओब[९]
अनुरञ्जब रितुराजे ।
मधुर हास मुखमण्डल मण्डव
घड़िएक तेजब लाजे ॥
कैतव कए कातर नागर सव[१०]
गाढ़ आलिङ्गन दाने ।
कोप कैए[११] परबोधल मानब
घड़िएक न करब माने ॥
समय सेव[१२] निसह[१३] तनु चाँद[१४] न[१५]
मुकुलित लोचन हेरी ।
नखे हनि पिआ मनिधाम[१६] छडाओब[१७]
सुरत बढ़ाओब केली ॥

गेल भाव जे पुनु पलटाबए
सेहे कलामति नारी ॥
रस सिंगार सरस कवि गाओल
बुझए सकल रसमन्ता ।
राजा सिवसिंह रूपनराजेन
लखिमा देविक कन्ता ॥

जूझल मनमथ पुनु[१८] जे[१९] जुझाबए[२०]
बोलि वचन परचारी।
गेल भाव जे पुनु पलटाबए
सेहे कलावति नारी॥
रस सिंगार सरस कवि गाओल
बुझए सकल रसमन्ता।
राजा शिवसिंघ[२१] रूपनरायण[२२]
लखिमा देविक कन्ता॥

न० गु० (पद-सं० ५४२, रा० त० से)—१ सम्भाषन। २ नयने। ३ दए। ४ मझिम। ८ कहलहु बुझए। १० कातरता दरसब। ११ कइए। १२-१३ सम पसेवनि सह। १४-१५ दरसब। १६ मनिठाम। १७ छोड़ाओब। १८ पुन। २० जुआएब। २१ शिवसिंह। २२ रूपनरायन।

सि० म० (पद-सं० ८२, रा० त० से)—१ सम्मासन। २ नयने। ३ दए। ४ मझिम सुन्दरी। ६ सुनु-सुनु। ७ चाह। ८ कहलहु बुझए। ९ बइसाओब। १० कातरता दरसब। ११ कइए। १२-१३ सम पसेविन सह। १४-१५ दरसव। २७ पिया। १६ मनिठाम। १७ छोड़ाओब। १८ पुन। १९ ये। २० जुझाएब। अन्त में नेपाल-पदावली की भणिता है।

झा (पद-सं० २०९)—१ कहवा। २-३-४ सम पसेमनि। ५ पुनु।

शब्दार्थ—अनङ्ग = कामदेव। अनुराग = प्रेम। लङ्घिम = (लघिमा—सं०) थोड़ा-सा। विभङ्ग = भङ्गी, वक्रता। कूजित = मधुर शब्द। तिला एक = तिलभर, क्षणभर। कैतव = कपट। कातरता = दीनता। मनि = (मणि—सं०) कामगृह। मनिठाम = (मणिधाम—सं०) शिश्न का अग्रभाग। वेरी = समय पर। केलि-रभस = रंग-रभस।

अर्थ—आँखों से कामदेव को जगाकर कुन्द (और) भ्रमर की तरह संगम (तथा) संभाषण करना। (अर्थात्—जिस प्रकार भ्रमर कुन्द के चारों ओर मँड़राता हुआ—धीरे-धीरे गूँजता हुआ रसपान करता है, उसी प्रकार तुम भी पहले स्वामी को दूर ही रखना—दूर से ही रस देना, दूर से ही संभाषण करना।) आशा देकर, थोड़ी अङ्ग-भङ्गी करके, अनुराग बढ़ाना।

हे सुन्दरी! (मेरे) उपदेश को जुगाकर रखो। सुनो—(मेरी) सुललित वाणी (अच्छी सीख) सुनो। कुछ नागरीपन कहना चाहती हूँ। कहने से भी तो सयानी समझती है।

कोकिले की मीठी बोली कण्ठ में बैठाना (अर्थात्—कोकिल की तरह मीठी बोली वोलना), वसन्त ऋतु में (प्रिय को) प्रसन्न करना। मधुर हास्य से (अपने) मुख-मण्डल को मण्डित करना। क्षण भर लज्जा का त्याग कर देना।

गाढ़ आलिङ्गन-दान में कपट से कातरता दिखलाना। कोप करने पर (स्वामी का) प्रबोध मान लेना। अधिक मान नहीं करना।

अधमुँदी आँखों से देखकर, समय पाकर कामगृह के साथ (अपना) शरीर दिखलाना। नख से आघात करके (अर्थात्, चिकोटी काट-काटकर) प्रिय के काम-स्थल को छुड़ा देना। (इस तरह) अधिक समय तक सुरत बढ़ाना।

रंग-रभस का प्रचार करके जूझे हुए कामदेव को फिर जुझाना। (कारण,) जो गुजरे हुए भाव को पुनः पलटाती है, वही कलावती (चौंसठ कलाएँ जाननेवाली) नारी है।

सरस कवि (विद्यापति) ने शृङ्गार-रस का गान किया। समग्र रस के जाननेवाले, लखिमा देवी के स्वामी राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) समझते हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

गुञ्जरीरागे—

[२१०]

हसि निहारए[१] पलटि हेरि
लाजे[२] कि बोलब साझक[३] बेरि।
आरति[४] हठे[५] हरलन्हि[६] चीर
सून पयोधर[७] काप[८] शरीर[९] ॥ ध्रु० ॥
सखि कि कहब कहइते[१०] लाज
गोरु[११] चि(न्ह)ए[१२] के गोपक काज।
निवि निरासलि फूजलि वास[१३]
ततेओ देषि[१४] न आबए पास ॥
आओर[१५] की[१६] कहब सिनेह[१७] बानि
काजरे[१८] दूध[१९] पखालल आनि[२०]।

सं० अ०— हँसि निहारल पलटि हेरि।
लाजेँ कि बोलब साँझक बेरि ॥
हरखेँ आरति हरल चीर।
सून पओधर काँप सरीर ॥ ध्रु० ॥
सखि। कि कहब कहइतेँ लाज।
गोरू चिन्हए गोपक काज ॥
नीवि निरासलि फूजल वास।
ततेओ देखि न आबए पास ॥
अओ कत कहब मधुरि बानि।
काजर दूधेँ पखालल जानि ॥

सखि बुझाबए धरिए हाथ[२१]
गोप बोलाबए[२२] गोपी साथ[२३] ॥
तोहे[२४] न चिन्हह रसक भाव
बडे[२५] पुने[२६] पुनमत[२७] पाब ।
आबे कि कहह तन्हिकि बानी
कसि कसौटी अएलाहु जानी ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८२, प० २३०, पं० ४

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ३)—१ निहारल। २ लाजे॑। ३ साँझक। ४-५ हरखे॑ आरति। ६ हरल। ७ पओधर। ८ काम्प। ९ सरीर। १० कहइते॑। ११ गोरू। १२ चिन्हए। १३ आस। १४ देखि। १५ अओ। १६ कत। १७ मधुर। १८ काजर। १९ दूधे॑। २० जानि। २१ हाथँ। २२ बोलाबथि। २३ साथँ। २४ तोहे॑। २५ बड़े॑। २६ पुने॑। २७ पुनमति। अन्त की दो पंक्तियाँ नहीं हैं। उनके स्थान में निम्नलिखित भणिता है—

भन विद्यापति तञे[१] नारि
पहुक दूपन[२] दिअ विचारि।
राजा रूपनराजेन[३] जान
सिवसिंह लखिमा[४] दे[५] रमान॥

मि० म० (पद-सं० ८१)—१ निहारल। ३ साँझक। ४-५ हरखे॑ आरति। ६ हरल। ८ काँप। ९ सरीर। ११ गोरू। १२ चिन्हए। १३ आस। १४ देखि। १५ अओ। १६ कत। १७ मधुर। १८ काजर। १९ दूधे॑। २० जानि। २२ बोलाबथि। २४ तोहे॑। २५ बड़े। २६ पुणे॑। २७ पुणमति। अन्त की दो पंक्तियाँ नहीं हैं। उनके स्थान में राम० पुर की भणिता है, जिसके पाठभेद नीचे हैं—१ सुन तञे॑। २ दूषण। ३ रूपनराएन। ४ लखिम। ५ देवि।

झा (पद-सं० २१०)—३ साझक वेरी।

सखि बुझाबए धरिए हाथ ।
गोप बोलाबथि गोपी-साथ ॥
तोहँ न चिन्हह रसक भाव ।
बड़े॑ पुने॑ पुनमति पाव ॥
आबे कि कहब तन्हिकि बानि ।
कसि कसउटी अइलिहुँ जानि ॥
भन विद्यापति तोञ वर नारि ।
पहुक दूषन दिअ विचारि ॥
राजा रूपनराञेन जान ।
सिवसिंह लखिमादेवि-रमान ॥

शब्दार्थ—हेरि = देखकर। सून = (शून्य—सं०) अनावृत। गोरु = गौ। निरासलि = खोल दी। फूजलि = खुल गई। ततेओ = इन सबको। आओर = और। बानि = (वाणी—सं०) बात। पखालल = प्रक्षालन किया, धोया। गोप = ग्वाला, बुद्धिहीन। बानी = स्वभाव।

अर्थ—(सखी के प्रति उपेक्षिता की उक्ति—) लौटकर देखने के बाद (फिर) हँसकर देखा। लज्जा से क्या कहूँ? (अर्थात्—कहा नहीं जाता।) शाम का समय था।

हर्ष से आर्त्त होकर (मैंने) वस्त्र हरण कर लिया। (मेरे) स्तन अनावृत हो गये। (मेरा) शरीर काँपने लगा।

हे सखी! क्या कहूँ? कहते लज्जा होती है। गाय की पहचान करना ही ग्वाले का काम है। (अर्थात्—ग्वाला गाय की पहचान कर सकता है, आदमी की नहीं।)

(मैंने) नीवी हटा ली—कपड़ा खोल दिया; (किन्तु) इतना देखने पर भी वे पास नहीं आये।

और कितनी मीठी बातें कहूँगी? (अर्थात्—मैंने कितनी मीठी बातें कहीं—सो क्या कहूँगी? लेकिन लाभ कुछ भी नहीं हुआ।) मैंने जान-बूझकर दूध से काजल को धोया। (अर्थात्, जैसे काजल को दूध से धोने पर भी कुछ लाभ नहीं होता; वैसे ही लाख यत्न करने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ।)

सखियाँ हाथ पकड़कर समझातीं तो गोप (बुद्धिहीन कृष्ण) साथ की गोपियों को बुलाने लगते।

(हे सखी!) तुम रस-भाव को नहीं समझतीं। पुण्यवती बड़े पुण्य से (अवसर) प्राप्त करती है।

अब (और) उनका स्वभाव क्या कहूँ? कसौटी पर कसकर जान आई।

विद्यापति कहते हैं—तुम वर नारी हो। (इसलिए तुम्हें) सोच-विचारकर स्वामी को दोष देना चाहिए।

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनरायण (इसे) समझते हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

गुञ्जरीरागे—

[२११]

कतए गुजा कतए[१] फूल
कतए गुजा रतन तूल।
जे पुनु जानए मरम साच[२]
रतन तेजि न किनए काच[३]॥

सं० अ०—२ साँच। ३ काँच।

अरेरे[४] सुन्दर उतर देह
कओन[५] कओन[६] गुण[७] परेषि[८] लेह[९] ।
अनेके दिवसे[१०] कएल मान
मधु छाडि[११] आन[१२] न मागए[१३] दान ॥
ऐसन[१४] मुगुध थीक मुरारि[१५]
गबउ भषए[१६] अमिअ छाडि[१७] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८३(क), प० २३१, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३७०)—७ गुन । ८ परेखि । ११ छाड़ि । १६ भखए । १७ छारि ।

मि० म० (पद-सं० ४५२)—१ पाठाभाव । ४ अव रे । ५-६ कओन कओन । ७ गुन । ८ परेखि । ९ नेह । ११ छाड़ि । १६ भखए । १७ छारि ।

झा (पद-सं० २११)—१५ मुरारी ।

शब्दार्थ—गुजा = घुँघची । साच = सत्य । परेषि = परीक्षा करके । मुगुध = मुग्ध, भोला । गवउ = गो-सदृश पशुविशेष । अमिअ = अमृत ।

अर्थ—कहाँ घुँघची (और) कहाँ फूल ? (दोनों में समता क्या) कहीं घुंघची रत्न-तुल्य होती है ?

फिर जो सत्य के मर्म को समझता है, वह रत्न को छोड़कर काँच नहीं खरीदता ।

अरे सुन्दर ! उत्तर दो । कौन-कौन गुण (मेरे पास हैं, उनकी) परीक्षा कर लो ।

(तुमने) बहुत दिनों से मान कर लिया है । मधु छोड़कर दूसरी वस्तु दान नहीं माँगते ।

कृष्ण ऐसे भोले हैं । गवय ही अमृत को छोड़कर (दूसरी वस्तु) खाता है ।

बरलीरागे—

[२१२]

जखने जाइअ[१] सयन[२] पासे
मुख परेखए दरसि हासे ।
तखने उपजु अहेन[३] भाने
जगत भरल कुसुमवाने ॥ ध्रु० ॥
की सखि कहब केलि विलासे
निअ[४] अनाइति पिआ[५] हुलासे ।

---

८ परेखि । १० अनेके दिवसे । १२ आन । १३ माँगए । १४ अइसन । १६ भखए

सं० अ०—२ सअन । ३ अइसन ।

नीवि विघटए गहए हारे
सीमा लाघए[६] मन विकारे ॥
सिनेह जाल बढाबए[७] जीबे
सङ्गहि सुधा अधर पीबे[८] ।
हरषि[९] हृदय[१०] गहए चीरे
परसे अबस कर सरीरे ॥
तखने उपजु अइसन साधे
न दिअ समत न दिअ बाधे ।
भने विद्यापति ओहे[११] सआनी[१२]
अमिअ मिसल[१३] नागरि वानी ॥

ने० पृ० ८३, प० २३२, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३३५)—१ जाइ । ३ एहन । ६ लाँघए । ७ वढ़ावए । ८ पिवे । ९ हरखि । १२ सयानी । १३ मिझल ।

सि० म० (पद-सं० ४८०)—३ एहन । ४ निअ । ५ पिया । ६ लांघए । ७ वढ़ावए । ८ पित्रे ९ हरखि । ११ तु हे । १३ मिछल ।

झा (पद-सं० २१२)—१३ मिझल ।

शब्दार्थ—अहेन = ऐसा । भाने = ज्ञान । कुसुमवाने = कामदेव । अनाइति = विवशता । चीरे = वस्त्र । साधे = अभिलाषा । समत = सम्मति । मिसल = सनी हुई ।

अर्थ—जभी (मैं) हँसती हुई मुख परेखने के लिए (उनकी) शय्या के पास जाती हूँ । तभी ऐसा भान होता है (कि) कामदेव से संसार भर गया ।

हे सखी ! केलि-विलास क्या हूँ ? अपनी विवशता (और) प्रिय का उल्लास !

(वे कभी) नीवी खोलते हैं, (कभी) हार पकड़ते हैं । (मालूम होता है, जैसे) मनोविकार सीमा लाँघ रहा हो ।

(वे) प्राणों के ऊपर स्नेह-जाल फैलाते हैं । साथ ही अधरामृत (भी) पीते हैं ।

हर्षातिरेक से छाती पर का कपड़ा पकड़ते हैं । स्पर्श से (मेरे) शरीर को अवश कर देते हैं ।

उस समय ऐसी अभिलाषा होती है (कि) न मैं सम्मति दे सकती हूँ (और) न बाधा (ही) पहुँचा सकती हूँ ।

विद्यापति कहते हैं—अरी सयानी ! नागरिकाओं की बात अमृत-सनी होती है ।

---

६ लाँघए १० हृदअ । ३१ मिसलि ।

बरलीरागे--

[२१३]

कुटिल त्रिलोक तन्त नहि जान
मधुरहु[१] वचने देइ नहि कान ।
मनसिज भङ्गे रचल[२] मञे[३] जेश्रो
हृदय[४] बुझाए बुझए[५] नहि सेश्रो ॥ ध्रु० ॥
कि सखि करब कञोन परकार
मिलल कन्त मोहि गोप गमार ।
कपट गमन हमे लाउलि बेरि[६]
बाहुमूल दरसल[७] हसि हेरि[८] ॥
कुचजुग वसन सम्भरि कहु देल
तइअश्रो न मन तन्हिकर[९] हरि[१०] भेल ।
त्रिमुख होइते श्रावे पर उपहास
तन्हिके[११] सङ्गे क(ञो)ना[१२] सहवास ॥
कि कए कि करब हमे झखइते[१३] जाए
कह दहु अबे[१४] सखि जिवन उपाए ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८४ (क), प० २३३, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २२४)—२ वचन । ५ बुझाए । ६ वेरी । ७ दरसन । ८ हेरी । ९ तन्हिक । १० वहरि । १२ कला । १४ अरे ।

मि० म० (पद-सं० ३४७)—१ मधुरह । २ वचन । ७ दरसन । ९ तन्हिक । १० वहरि । १२ कला । १४ अरे ।

झा (पद-सं० २०८)—२ वचन । ७ दरसन । ११ तनिके । १२ कला । १४ अरे ।

शब्दार्थ—कुटिल विलोक = कटाक्ष । तन्त = (तन्त्र— सं०) नियम । मनसिज = कामदेव । भङ्गे = भय । जेश्रो = जो । सेश्रो = सो । परकार = (प्रकार—सं०) उपाय । गमार = गँवार । वेरि = अवसर । सम्भरि कहु = सम्हलकर ।

अर्थ—(वे) कटाक्ष का नियम नहीं जानते—मीठी बात पर भी कान नहीं देते ।

सं० अ०—१ मधुरहुँ । ३ मोञ । ४ हृदअ । १३ झँखइते ।

कामदेव के भय से मैंने जो कुछ किया, हृदय में होता है, उसे भी (वे) नहीं समझते।

हे सखी! (मैं) क्या करूँगी? कौन उपाय करूँगी? मुझे गोप-गँवार स्वामी मिला।

(यद्यपि) अवसर पाकर मैंने कपट-गमन किया। (अर्थात्, लौट चलने का बहाना किया।) हँस-हेरकर बाहुमूल दिखलाया।

सँभालकर कुचयुग पर वस्त्र दिया (अर्थात्, वस्त्र देने के बहाने कुचयुग दिखलाया) तथापि उनका मन (मैं) नहीं हर सकी।

अब विमुख होने पर (अर्थात्, विफल होकर लौट जाने पर) दूसरे उपहास करेंगे; (किन्तु) उनके साथ सहवास कैसे होगा?

क्या करके क्या करूँ—(यही) झँखते मैं बीती जा रही हूँ! हे सखी! अब (तुम्हीं) जीवन का उपाय कहो।

बरलीरागे—

[२१४]

जौवन[१] चाहि रूप नहि ऊन
धनि तुअ विषय[२] देषिअ[३] सबे गून।
एके प(ए)[४] भेल विधाता भोर
सम कए सामि न सिरिजल तोर॥ ध्रु०॥
कि कहब सुन्दरि कहइते लाज
से कहले[५] पुनु तोह हो काज।
मन्दाहु[६] काज उकुति[७] भलि भेलि
ते मञे[८] किछु अनुमति तोहि देलि॥
जञो तोहे[९] बोलह करञो इथि अङ्ग
चोरी पेम चारि गुण[१०] रङ्ग।
दुर[११] कर अगे सखि अइसनि बानि
अमिञ खोअउबिसि[१२] साङ्करे सानि॥
छैलक उकुति कहइते नहि ओर
अरथक[१३] गरुअ वचन कँ[१४] थोळ।

सं० अ०—१ जउवन। २ विषअ। ३ देखिअ। ८ मोञ। ९ तोहँ। १० गुन। १४ केर।

जीवन सार जौवन[१५] जग रङ्ग
जौवन[१६] तञो जञो सुपुरुष सङ्ग ॥
सुपुरुष पेम[१७] कबहु[१८] नहि छाड[१९]
दिने दिने चान्दकला जञो बाढ[२०] ।
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८४(क), प० २३४, पं० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ३१०)—२ विसय । ३ देखिअ । ४ एकेप । ५ कहसे । ६ मन्दाकु । ७ कुति । ८ मए । ११ दूर । १२ घोअउ बिसि । १७-१८ पेमक बहु । १९ छाड़ । २० बाढ़ ।

झा (पद-सं० २१३)—१३ अथरक ।

शब्दार्थ—चाहि=अपेक्षा । ऊन=कम । भोर=मूढ़ । कहले=कहने से ही । तोह=तेरा । इथि=इसे । अङ्ग=अङ्गीकार । चारि गुण=चतुर्गुण । रङ्ग=आनन्द । वानि=स्वभाव । अमिअ=अमृत । खोअउबिसि=खिलाऊँगी । साङ्करे=(शर्करा—सं०) शक्कर में । सानि=मिलाकर । छैलक=छैले की । उकुति=उक्ति । ओर=अन्त । गरुअ=गुरु । जग रङ्ग=संसार की शोभा ।

अर्थ—यौवन की अपेक्षा रूप भी कम नहीं । अरी धन्ये ! तुम्हारे विषय में सभी गुण ही दिखाई पड़ते हैं ।

एक (विषय) में ही विधाता मूढ़ हो गया (कि उसने) सम करके तुम्हारा स्वामी नहीं सिरजा । (अर्थात्, जैसी तुम हो, वैसा तुम्हें स्वामी नहीं मिला ।)

अरी सुन्दरी ! क्या कहूँ ? कहते लज्जा होती है । (किन्तु) सो सब कहने से ही फिर तुम्हारा काम होगा । (इसीलिए कहती हूँ ।)

बुरे कार्य में भी (छैले की) उक्ति अच्छी हुई । इसीलिए, मैंने तुम्हें कुछ (करने की) अनुमति दी ।

यदि तुम कहो (कि मैं) इसे अङ्गीकार करती हूँ (तो देखना—) चोरी के प्रेम में (कैसा) चतुर्गुण आनन्द होता है ।

अरी सखी ! ऐसे स्वभाव को दूर करो । (मैं तुम्हें) शक्कर में मिलाकर अमृत खिलाऊँगी ।

छैले की उक्ति कहते अन्त नहीं होता । (यद्यपि उसकी उक्ति के) शब्द थोड़े हैं (तथापि वे) अर्थ के गुरु हैं ।

जीवन का सार (और) संसार की शोभा यौवन है । (फिर वह) यौवन तभी (सार्थक है) जब सुपुरुष का संग हो ।

सुपुरुष कभी प्रेम को नहीं छोड़ता । दिन-दिन जैसे चन्द्रकला बढ़ती है (वैसे ही उसका प्रेम बढ़ता है ।)

---

१५ जउवन । १६ जउवन । १८ कबहुँ ।

[२१५]

अम्बरे वदन झपाबह गोरि
राज सुनइछि[१] चान्दक चोरि ।
घरे घरे पहरी गेल अछ जोहि
अबही दूषण[२] लागत तोहि ॥ ध्रु० ॥
सुन सुन सुन्दरि हित उपदेश[३]
सपनेहु जनु हो विपदक[४] लेश[५] ।
हास सुधारस[६] न कर उजोर
धनिके[७] बनिके[८] धन बोलब मोर ॥
अधर[९] समीप[१०] दसन कर जोति
सिन्दुर[११] सीम बैसाउलि मोति ।
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८५ (क), प० २३५, पं० १

पाठभेद—

रा० त० (पृष्ठ ५६)—

आंचरे वदन झपाबह गोरि,
राज सुनै छिअ चाँदक चोरि।
घरें घरें पेंहरि गलछ जोहि,
एपने दूषन लागत तोहि ॥

सं० अ०— अम्वरेँ वदन झँपाबह गोरि ।
राज सुनइ छिअ चान्दक चोरि ॥
घरेँ-घरेँ पहरी गेल अछ जोहि ।
अबही दूषन लागत तोहि ॥ ध्रु० ॥
कतए नुकाओब चान्दक चोरि ।
जतहि नुकाओब ततहि उजोरि ॥
सुन-सुन सुन्दरि। हित उपदेस।
सपनेहुँ जनु हो विपदक लेस ॥
हास-सुधारसेँ न कर उजोर ।
धनिकेँ बनिकेँ धन बोलब मोर ॥
अधर समीप दसन कर जोति ।
सिन्दुरक सीम बइसाउलि मोति ॥

बाहर सुतह हेरह जनु काहु,
चाँन भरमे मुख गरसत राहु।
निरमि निहारि फाँस गुन तोलि,
बान्हि हलत तोहँ खञ्जन बोलि।
भनहि विद्यापति होहु निशङ्क,
चाँन्दहुँ काँ किछु लागु कलङ्क।

न० गु० (पद-सं० २२८)—१ सुनइछिअ। २ दूखन। ३ कतए नुकाएब चाँदक चोर। ५ जतहि नुकाओब ततहि उजोर। ६ सुधारसे। ७-८ बनिके धनिके। ९ अधरक। १० सीम। ११ सिंदुरक। अन्त में निम्नलिखित भणिता है--

भनइ विद्यापति होहु निसङ्क।
चाँदहु काँ थिक भेद कलङ्क॥

मि० म० (पद-सं० २९ ख)—रागतरङ्गिणी का पाठ।

झा (पद-सं० २१४)--४-५ विपद-कलेश।

विशेष--रागतरंगिणी के उपर्युक्त पद में अन्त की छह पंक्तियाँ न० गु० के मिथिला से प्राप्त २२९ संख्यक पद में एवं चार पंक्तियाँ नेपाल-पदावली के २२५ संख्यक पद में उपलब्ध हैं। नेपाल-पदावली का उपर्युक्त पद संपूर्ण है, केवल न० गु० की पाँचवीं और छठी पंक्तियाँ उपादेय हैं। फिर, अन्य पदों की पंक्तियाँ इसमें ला रखना अनुपयुक्त प्रतीत होता है।

शब्दार्थ—अम्बरे=कपड़े से। सुनइछि=सुनती हूँ। उजोर=प्रकाश। दसन=दाँत। सीम=सीमा।

अर्थ—अरी गोरी! कपड़े से मुँह को ढँक लो। (कारण,) सुनती हूँ कि राज्य में चन्द्रमा की चोरी हो गई है।

प्रहरी घर-घर ढूँढ गया है। अभी तुम्हें दोष लग जायगा। (अर्थात्, तुम्हारे मुँह को चन्द्रमा समझकर तुमपर चन्द्रमा चुराने का दोष मढ़ दिया जायगा।)

चन्द्रमा की चोरी कहाँ छिपाओगी? जहाँ छिपाओगी, वहीं प्रकाश हो जायगा।

हे सुन्दरी! (मेरा) हितकारी उपदेश सुनो, जिससे तुम्हें स्वप्न में भी विपत्ति का लेश नहीं हो।

हास्य-रूपी सुधा-रस से प्रकाश मत फैलाओ। (कारण, उसे देखकर) धनी वणिक् अपना धन कहने लगेंगे।

(तुम्हारे) अधर के समीप में दाँत प्रकाश फैला रहे हैं। (जान पड़ता है, जैसे,) सिन्दूर की सीमा पर मोती बैठाये गये हैं। (अर्थात्, चोरी के सारे उपकरण वर्त्तमान हैं। इसलिए, अपने मुँह को ढँक लो।)

बरलीरागे—

[२१६]

कतन दिवस लए अछल मनोरथ
हरि सञो लाअोब[1] नेहा ।
से सबे[2] सुफल[3] भेल बिहि अभिमत[4]
सहजहि[5] आएल मोर[6] गेहा ॥ ध्रु० ॥
सखि हे[7] जनम कृतारथ भेला ।
वदन निहारि अधररस[8] पिउलन्हि[9]
हरि परिरम्भण[10] देला ॥
पीन पयोधर दरसि[11] परसलन्हि[12]
निविबन्ध फोएलन्हि[13] पाणी[14] ।
तखने उपजु रस भेलिहु परबस
बोंललन्हि सुललित बानी[15] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८५(क), प० २३६, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ८१६)—१ सञो वढ़ाओव। २ सब। ३ सफल। ४ अभिमत देल। ५ सहजे। ६ मझु। ७ माइ हे। ८ अधरमधु। ९ पिविकहु। १० परिरम्भन। ११ हरखि। १२ परसि करु।

सं० अ०— कतन दिवस लए अछल मनोरथ
हरि सञो लाओब नेहा ।
से सब सफल भेल बिहि अभिमत देल
सहजेँ आएल मझु गेहा ॥ ध्रु० ॥
सखि हे । जनम कृतारथ भेला ।
वदन निहारि अधर-मधु पिउलन्हि
हरि परिरम्भन देला ॥
पीन पओधर हरखि परसलन्हि
निबिबन्ध फोएलन्हि पानी ।
पुलक-पुरल तनु मुदित कुसुमधनु
गाबए सुललित बानी ॥
तोञ धनि । पुनमति सब गुन गुनमति
विद्यापति कवि भाने ।
राजा सिवसिंह रूपनराजेन
लखिमा देवि - रमाने ॥

१३ खोएलन्हि। १४ पानी। १५ पुलक पुरल तनु मुदित कुसुमधनु गावए सुललित वानी। अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

तोओ[१६] धनि[१७] पुनमति सब गुण[१८] गुणमति[१९]
विद्यापति कवि माने[२०]।
राजा शिवसिंह[२१] रूपनराएन
लखिमा देवि[२२] रमाने[२३] ॥

मि० म० (पद-सं० १६३)—१ सयँ बढ़ाओब। २ सब। ३ सफल। ४ अभिमत देल। ५ सहजे। ६ मझु। ७ माइ हे। ८ अधर मधु। ६ पिबिकहु। १० परिरम्भन। ११ पीन पओधर हरखि। १२ परसि करु। १३ खोएलन्हि। १४ पानी। १५ पुलकेँ पुरल तनु मुदित कुसुमधनु गावए सुललित वानी। १६ तोयँ। १७ धनी। १८ गुन। १६ गुनमति। २० भान। २१ सिवसिंघ। २४ देइ। २३ रमान।

झा (पद-सं० २१५)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—लाओव = लाऊँगी, करूँगी। अभिमत = मनोवाञ्छित। सहजहि = अनायास। मोर = मेरे। गेहा = घर। कृतारथ = कृतार्थ। पिउलन्हि = पी लिया। परिरम्भण = आलिङ्गन। पाणी = (पाणि—सं०) हाथ।

अर्थ—कितने दिनों से मनोरथ था कि कृष्ण से प्रेम करूँगी। सो सब सफल हुआ। विधाता ने मनोवाञ्छित (फल) दिया। (कृष्ण) अनायास मेरे घर आ गये।

हे सखी! जन्म कृतार्थ हो गया। कृष्ण ने मुँह देखकर अधरामृत पान किया (और) आलिङ्गन दिया।

हर्षित होकर पीन पयोधर का स्पर्श किया (और) हाथ से नीवी-बन्ध को खोल दिया। पुलक से (मेरा) शरीर भर गया। कामदेव प्रसन्न होकर मधुर वचन से गान करने लगा।

विद्यापति कहते हैं—हे धन्ये! तुम पुण्यवती (और) सर्वगुणसंपन्ना गुणवती हो। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते हैं।) (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

बरलीरागे—

[२१७]

वचनक रचने[१] दन्द पए बाढल
·········धरि गेला।
अबला गोप कओने की बोलब
झीसी[२] कादब[३] भेला ॥ ध्रु० ॥
नारि पुरुष हठसिल[४]।
दिने दिने पेम आबे तन्हि बिसरल
बिनु बाहले पह खील[५] ॥

सं० अ०—४ माइ हे। नारि पुरुष हठसील। ५ विनु बहले पह खील।

कत बोलब कत मञे जे सिषाउलि[6]
कत पळ्लाहु[7] मञे[8] पाश्रो ।
द(इ)बा बाङ्क[9] कञोने सरिश्राश्रोब[10]
तेतरि[11] न[12] मील कराश्रो ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८६, प० २३७, पं० २

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ४०४)—२ वचने। ३ की सीक दिव। ४ हटसि न। ५ घीन। ६ सिखाउलि। ७ पललाहु। ९ दबाबाङ्क। १० सवि आश्रोब। ११-१२ ते तबिन।

झा (पद-सं० २१६)—१ वचने। ५ खीन। ९ दबा बाङ्क। ११-१२ तेउ विन।

शब्दार्थ—दन्द=(द्वन्द्व—सं०) झगड़ा। अवला=स्त्री। गोप=ग्वाला, गँवार। झीसी=फुहार। कादब=कादो। पह=घाव। खील=कील। पाश्रो=पैर। दइबा=विधाता। बाङ्क=वक्र। सरिश्राश्रोब=सुलझावेगा। तेतरि=तीसरा। मील=मिलन।

अर्थ—बात बनाते-बनाते झगड़ा बढ़ गया। .... । (एक) अवला है, (दूसरा) गवार है। कौन क्या कहेगा? फुहार से कादो हो गया।

(अरी मैया!) स्त्री (और) पुरुष—(दोनों) हठशील हैं। उन्होंने दिन-दिन (क्रमशः) प्रेम को भुला दिया। घाव के नहीं बहने से (उसमें) कील पड़ गई। (अर्थात्, जैसे घाव के नहीं बहने से उसमें कील पड़ जाती है, वैसे ही प्रेम-प्रवाह के रुक जाने से उसमें कील पड़ गई।)

कितना कहूँ (कि) मैंने कितना सिखलाया, कितना पैर पड़ी; (किन्तु जब) विधाता ही वक्र है, (तब) कौन सुलझावेगा? तीसरा कोई मेल नहीं करा सकता।

बरलीरागे—

[२१८]

सौरभ[1] लोभे[2] भमर भमि आएल
पुरुब पेम बिसवासे[3] ।
बहुत कुसुम मधुपान पिआसल
जाएत तुअउ[4] पासे[5] ॥ ध्रु० ॥
मालति करिअ हृदय[6] परगासे।
कत दिन भमरे पराभव पाश्रोब
भल नहि अधिक उदासे ॥

६ मोञे जे सिखाउलि। ८ मोञ। ९ दइबा बाङ्क।

सं० अ०—१ सउरभ। २ लोभें। ३ बिसवासे। ६ हृदअ।

कओनक[7] अभिमत के नहि राखए
जीवओ दए जग हेरि ।
की करब ते[8] धन अध[9] जीवने
जे नहि बिलसए बेरि ॥
सबहि कुसुम मधुपान भमर कर
सुकवि विद्यापति भाने[10] ॥

ने० पृ० ८६(क), प० २३८, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४१७)—३ विसवासे । ८ तें । ९ अरु । अन्त में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमाने ॥

मि० म० (पद-सं० ४२१)—३ विसवासे । ७ कओनक । ९ अरु ।

झा (पद-सं० २१७)—४-५ तुअओ पासे ।

शब्दार्थ—भमि = घूम-फिरकर । परगासे = प्रकाश । पराभव = कष्ट । बेरि = समय पर ।

अर्थ—सौरभ के लोभ से पूर्व-प्रेम का विश्वास करके भौंरा घूम-फिरकर आ गया। बहुतेरे फूल हैं; (किन्तु) मधुपान का प्यासा (भौंरा) तुम्हारे ही समीप जायगा ।

हे मालती ! (अपने) हृदय में प्रकाश करो। कितने दिनों तक भ्रमर पराभव पायेगा ? अधिक उदास होना भला नहीं ।

संसार में (अपना) जीवन देकर भी किसका अभिमत कौन नहीं रखता ? (अर्थात्, अपना जीवन देकर भी दूसरे का अभिमत रखा जाता है।) (इसे) देखकर भी उस धन और जीवन से क्या करोगी, समय पर जिसका उपभोग नहीं किया जाय ?

सुकवि विद्यापति कहते हैं—भौंरा सभी फूलों का मधुपान करता है। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते हैं।) (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

बरलीरागे—

[२१९]

काजरे[1] राँङ्गलि[2] मञे[3] जनि राति
अइसना बाहर होइते[4] साति ।
तलितहु तेज[5] लिमित[6] अन्धकाल[7]
आसा[8] संशय[9] परु[10] अभिसार ॥ ध्रु० ॥

---

९ अरु । १० राजा सिवसिंह रूपनराञेन लखिमा देवि रमाने ।

सं० अ०—१-३ काजर रङ्ग बमए । ४ होइतहुँ । ५-७ तळितहु तेज मिलित अन्धकार । ९ संसअ । १० पळु ।

भल न कएल मञे[११] देल बिसवास
निकट जोएन[१२] सत कान्हक वास।
जलद भुअङ्गम[१३] दुहु भेल सङ्ग
निचल[१४] निशाचर कर[१५] रस भङ्ग[१६]॥
मन अवगाहए मनमथ रोस[१७]
जिवओ देले[१८] नहि[१९] होए[२०] भरोस।
अगमन[२१] गमन बुझए मतिमान
विद्यापति कवि एहु रस जान॥

ने० पृ० ८६, प० २३६, पं० ४

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ११)—१ काजर। २ रङ्ग। ३ बमए। ४ होइतहु। ६ मिलए। ७ अन्धकार। ८ आसाए। ६ संसअँ। १० पलु। १२ निकटँ जोवेन। १४ निचर। १५-१६ करए सङ्ग। १८ जीवओ देलेँ। १६ न। २१ अपगम।

न० गु० (पद-सं० ३९१)—२ राङ्गलि। ३ सञे। ५ तड़ितहु तेजलि। ६ मित। ७ अन्धकार। २० होएत।

मि० म० (पद-सं० ३२६)—२ राङ्गलि। ३ सञे। ५ तड़ितहु तेजलि। ६ मित। ९ संसय। १३ भुजङ्गम। २० होएत।

झा (पद-सं० २१८)—५ तलितहु तेजलि। ६ मित।

शब्दार्थ—बमए = वमन करती है। साति = (शास्ति—सं०) भय। तलितहु = (तडित्वतः—सं०) विद्युत् का। जोएन = योजन। जलद = मेघ। भुअङ्गम = (भुजङ्गम—सं०) साँप। निचल = घूम रहा है। निशाचर = राक्षस। अवगाहए = हलचल मचा रहा है। मनमथ = कामदेव।

अर्थ—(मालूम होता है,) जैसे, रात्रि काजल का रंग उगल रही है। ऐसे (समय) में बाहर होते भी भय हो रहा है।

विद्युत् का प्रकाश भी अन्धकार में मिल रहा है। (इसलिए) अभिसार की आशा संशय में पड़ गई।

मैंने (यह) अच्छा नहीं किया (कि कृष्ण को) विश्वास दिया। (कारण,) कृष्ण का वासस्थान निकट होते हुए भी योजनशत (जान पड़ता है)।

मेघ (और) साँप—दोनों साथ हैं। (अर्थात्, ऊपर मेघ हैं और नीचे साँप हैं।) निशिचर घूम-फिरकर रसभंग कर रहे हैं।

कामदेव का रोष मन में हलचल पैदा कर रहा है। भरोसा नहीं होता कि प्राण देने पर भी (कार्य सिद्ध होगा)।

---

११ मोज। १२ जोजन। १४ निचर। १७ रोष। १८ जिबओ देलेँ।

बुद्धिमान् ही अगमन (और) गमन समझते हैं। (अर्थात्, कब जाना चाहिए और कब नहीं जाना चाहिए—इसका ज्ञान बुद्धिमान् को ही होता है)। कवि विद्यापति इस रस को समझते हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

बरलीरागे—

[२२०]

अघट घट[१] घटाबए चाहसि
वचन बोलसि हसी[२]।
आनहि आनहि पेम रचना[३]
तञे[४] सखि रसल[५] रसी[६] ॥ ध्रु०॥
सुन्दर देहा बिजुरी रेहा
गगनमण्डल सोभे।
जतने[७] रतन[८] जे नहि पाबिअ[९]
तँ[१०] कके[११] करिअ लोभे॥
सुन्दरि तोके[१२] बोलओ पुनु पुनु।
बेरा[१३] एक[१४] परिहासे[१५] मञे[१६] खेँओल
ओ बोल बोलह जनु॥
कथा अमी[१७] कथा[१८] तुमी[१९]
पाबओ[२०] आबि(अ)[२१] वासा।
जे निरबाह[२२] करए[२३] नहि पारिअ
ता[२४] कके[२५] दीअए आसा॥
कामिनि कुलक धरम निआञे
कैसेँ[२६] अगिरति[२७] पास।
सुरत सुख निमेष[२८] बेरा[२९]
जाबे[३०] जीव उपहास॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ८६, प० २४०, पं० ३

सं० अ०—१ घटन। २ हँसी। ३ आनहि आनहि पेमक रचना। ४ तोञ। १० ता। १२ तोँ के। १५ परिहासेँ। १६ मोञ। २६ कइसेँ। २७ अँगिरति। २८ निमेषे।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० २५०)—३ वचना। ७ जतन। ८ लेबउ। ९ पारिश्र। १०-११ तकके। १३-१४ खेराएक। १७ असी। १८-१९ कथाश्रोसीं। २० पार श्रो। २१ आरि। २२ निरवाहक। २३ रए। २४ ताक। २५ के। २६ कैसे। २८ निमेषरे। २९-३० बाजाब।

झा (पद-सं० २१८)—३ वचना। ५ वसन। ६ वसी। २० पार। २१ ओआरि।

शब्दार्थ—अघट=न होने योग्य, अनहोनी। घट=घटना। रसल=आसक्त। रसी=रसिक। बिजुरी=बिजली। रेहा=रेखा। खेँओल=क्षमा कर दिया। कथा=कहाँ। अमी=मैं। तुमी=तुम। कके=कैसे। निआजे=न्याय से। अगिरति=अङ्गीकार करेगी। निमेष बेरा=क्षणमात्र।

अर्थ—(दूती के प्रति नायिका की उक्ति)—(तुम) अनहोनी घटना घटाना चाहती हो। (कारण,) हँस-हँसकर बातें करती हो, कई प्रकार से प्रेम की रचना करती हो। (मालूम होता है,) हे सखी ! तुम रसिक में आसक्त हो गई हो।

आकाश में सुन्दर शरीर धारण किये बिजली की रेखाएँ सोहती हैं। (पर, इससे क्या ?) यत्न करने पर भी जो रत्न प्राप्त नहीं हो सकता, उसके लिए लोभ कैसे किया जाय ?

हे सुन्दरी ! बार-बार तुम्हें कहती हूँ। मैंने एक बार (तुम्हें) हँसी में क्षमा कर दिया। (फिर) वह बात मत बोलो।

कहाँ मैं (और) कहाँ तुम ? (फिर भी तुम) आकर (मेरे समीप) स्थान पाती हो। (किन्तु) जो निर्वाह नहीं कर सकता (अर्थात्, प्रेम निभा नहीं सकता,) उसे कैसे आशा दी जाय ? (अर्थात्, कृष्ण प्रेम निभा नहीं सकते। इसलिए मैं आशा नहीं दे सकती।)

कामिनी कुलधर्म के न्याय से (अर्थात्, कुलधर्म का पालन करती हुई) किस प्रकार सामीप्य अङ्गीकार करेगी ? (कारण,) सुरत-सुख निमेषमात्र होगा; (किन्तु) उपहास आजीवन रहेगा।

बरलीरागे—

[२२१]

माधवे आए कबाळ[१] उबेळलि[२]
जाहि मन्दिर छलि राधा।
आलस कोपे आड[३] हसि हेरलन्हि
चान्द उगल जनि आधा ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—माधवे आए कबाळ उबेळलि
जाहि मन्दिर बस राधा।
चीर उघारि आध मुख हेरलन्हि
चान्द उगल जनि आधा ॥ ध्रु० ॥

माधव विलखि वचन बोल राही[४]।
जौवन रूप कला गुण आगरि
के नागरि हम चाही ॥

म(ा)धुर[५] नगर[६] बिलमु[७] हम[८] लागल[९]
कके न पठओलह दूती।
जन दुइ चारि बनिक[१०] हम भेटल[११]
त[१२] ठमाहि रहलाहु[१३] सूती ॥

तुअ चञ्चल[१४] चित[१५] थपना[१६] नहि थिर
महिमा धार[१७] न[१८] धीरे।
कुटिल कटाख मन्द हषि[१९] हेरलन्हि
भितरहु स्याम[२०] सरीरे ॥

भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८७(क), प० २४१, पं० ३

माधव बिलखि वचन बोल राही।
जउवन - रूप- कला- गुन- आगरि
के नागरि हमे चाही ॥

चीर- कपूर - पान हमे साजल
पाअस अओ पकमाने ।
सगरि रजनि हमे जागि गमाओल
खण्डित भेल मोर माने ॥

तुअ चञ्चल चित नहि थपना थित
महिमा भार - गभीरे ।
कुटिल कटाख मन्द हँसि हेरह
भितरहु स्याम सरीरे ॥

भनइ विद्यापति सुन वर जउवति
चिते जनु मानह आने ।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमाने ॥

पाठभेद—

ग्रियर्सन (मिथिला से प्राप्त)—

माधबे[1] आए कवाल[2] उबेरलि
जाहि मन्दिर बस राधा ।
चीर उघारि आध मुख हेरलन्हि
चाँद उगल जनि आधा ॥
माधव बिलखि[3] वचन बोल राही ।
जउवन - रूप - कला - गुने आगरिं
के नागरि हमे चाही ॥
चीर - कपूर - पान हमे साजल
पाअस अओ पकमाने ।
सगरि रअनि हमे जागि गमाओल
खण्डित भेल मोर माने ॥
तुअ चञ्चल चित नहि थपना[4] थित
महिमा भार गमीरे ।
कुटिल कटाख मन्द हसि हेरह
मितरहु स्याम सरीरे ॥

न० गु० (पद-सं० ५२८, ग्रि० से)—१ माधव । २ कवार । ३ बिलखि । ४ थपला । अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति सुन वर जउवति
चिते जनु मानह आने ।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देवि रमाने ॥

सि० म० (पद-सं० ४७२क, ४७२ख)—१ कवाल । २ उबेललि । ३ अति । ४ राधाही । ५ माधुर । ६ गेले । ७-८-९ बिलअह मतागल । १० वणिक । ११-१२ भेटलत । १३ रह लाहु । १४-१५ चञ्चलचित । १६ अपना । १७-१८ धारन । १९ हरि । २० श्याम ।

झा (पद-सं० २२०)—५ माधुर । ७ विलम्ब । १२-१३ तठमाहु रहलाहु । १४ तुम चञ्चल । २० श्याम ।

विशेष—नेपाल-पदावली के पाठ से मिथिला से प्राप्त डॉ० ग्रियर्सन का पाठ युक्तियुक्त प्रतीत होता है । अतः, उसी पाठ के आधार पर अर्थ लिखा गया है ।

शब्दार्थ—कवाळ = (कपाट—सं०) किवाड़ । उवेळलि = उद्वेलित किया, खोल दिया । मन्दिर = घर । राही = राधा । हम चाही = मुझसे बढ़कर । थपना = (स्थापना—सं०) ठहराव । थिर = (स्थित—सं०) निश्चय । गभीरे = गहन, दुर्बोध । आने = अन्यथा ।

अर्थ—जिस घर में राधा रहती थीं, कृष्ण ने आकर (उस घर का) किवाड़ खोल दिया (और) कपड़ा हटाकर आधे मुँह को देखा । (उस समय ऐसा जान पड़ा,) जैसे आधा चन्द्रमा उगा हो ।

राधा ने कृष्ण से बिलखकर यह वचन कहा—मुझसे बढ़कर यौवन, रूप, कला (और) गुण की खान (दूसरी) कौन नारी है ?

मैंने कपड़ा सजाया, कर्पूर के संग पान सजाया, पायस और पकवान सजाया, जागकर सारी रात बिताई; (पर तुम नहीं आये।) मेरा मान खण्डित हो गया।

तुम्हारा चित्त चञ्चल है, तुम्हारा ठहराव (कहीं) निश्चित नहीं है। तुम महिमा के भार से गंभीर हो। मन्द-मन्द हँसकर कुटिल कटाक्ष से देखते हो, (पर) भीतर के काले हो।

विद्यापति कहते हैं—अरी वरयुवती ! सुनो। मन में अन्यथा मत मानो। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इस रस को समझते हैं)।

बरलीरागे—

[२२२]

सुनि सिरिखँड[१] तरु ते[२] मञे[३] गमन करु
तेजत[४] विरहक[५] तापे।
आरति अएलाहु[६] मञे कुभिलएलाहु[७]
के जान पुरुब कओन[८] पापे ॥ ध्रु० ॥
माधव तुअ मुख दरसन लागी।
बेरि बेरि आबओ[९] उतर न पाबओ[१०]
भेलाहु[११] विरह रस भागी ॥
जतहि[१२] तेजल गेह सुमरि तोहर नेह
गुरुजने जानब[१३] ताबे।
एतए निठुर हरि जाएब कमने[१४] परि
ततहु अनादर आबे[१५] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८७, प० २४२, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४७१)—१ सिरिखण्ड। २ से। ३ सुनि। ४ छाड़त। ५ मदन तनु। ६ अइलिहु। ७ ते कुम्भिलइलिहु। ८ केर। ९ आबओं। १० पाबओं। १२ जखने। १३ गुरुजन जानल। १४-१५ तोहें सुपुरुस पहु हमे तञो भेलिहु लहु कतहु आदर नहिं आबे।

सं० अ०—१ सिरिखण्ड। ३ मोञ। ७ आरति अइलिहुँ ते कुम्भिलइलिहुँ। ८ केर। ११ भेलिहुँ। १२ जखने। १४ कओने।

मि० म० (पद-सं० ४४६) न० गु० का पाठ

झा (पद-सं० २२१)--५ विरह कलापे।

शब्दार्थ—सिरिखँड =श्रीखण्ड (चन्दन)। ते=इसीसे। तेजत=छूट जायगा। आरति=आर्त्त होकर। लागी=लिए। बेरि-बेरि=बार-बार। गेह=घर। तावे=तभी। कमने परि=किस तरह। आवे=अब।

अर्थ—सुनती थी (कि तुम) श्रीखण्ड चन्दन के पेड़ हो। इसी से मैं (तुम्हारे समीप) आई (कि) विरह का ताप छूट जायगा।

आर्त्त होकर आई—इसीसे कुम्हला गई। कौन जानता है कि पहले का कौन पाप था?

हे कृष्ण! तुम्हारे मुख के दर्शन के लिए बार-बार आती हूँ; (किन्तु) उत्तर नहीं पाती हूँ। (मैं) विरह-रस की भागिनी हो गई।

तुम्हारे स्नेह का स्मरण करके जभी (मैंने) घर छोड़ा, तभी गुरुजनों ने जान लिया।

हे कृष्ण! यहाँ तो (तुम) निष्ठुर हो गये। (मैं लौटकर) कैसे जाऊँगी? अब तो वहाँ भी अनादर होगा। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से)।

बरलीरागे—

[२२३]

गुञ्ज आनि[1] मुकुता हमे[2] गाथल[3]
बूझलि तुअ परिपाटी।
कञ्चन ताहि[4] अधिक कए कहलह
काचहु तह भेल घाटी ॥ ध्रु० ॥

दूती अइसन तोहर बेबहारे।
नगर सगर भमि जोहल नागर
भेटल निछछ गमारे ॥

बड[5] सुपुरुष बोलि सिनेह बढाओल
दिने दिने होइति बडाइ[6]।
तेली[7] बलद थान भल देषिअ
पालब नहि उजिआइ[8] ॥

सं० अ०—१ आनि। २ तोहें। ३ गाँथल। ४ चाहि। ६ बड़ाई। ८ उजिआई।

सब गुण आगर सबतहु[9] सुनिअ
ते भल[10] लाओल नेहे।
फल-कारणे[11] तरु(अर) अवलम्बल
छाहरि भेल सन्देहे॥
भनइ विद्यापतीत्यादि॥

ने० पृ० ८८(क), प० २४३, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३६०)—

जति नागर बोलि सिनेह बढ़ाओल अवसर बुझलि बड़ाइ।
तेलि बड़द थान भल देखिअ गाओंव नहि ढलिआइ॥
बूढ़ी कुटनी तोहर बेवहार।
नगर भगर भमि खोजल नागर भेटल निबुद्ध गमार॥
गुञ्ज जानि मुकुता तोहे गाँथल कएलह मन्दि परिपाटी।
काचन नाहि अधिक कए कएलह काचहु तह भेल घाटी॥
सब गुन आगर सब तहु सुनल हमे लाओल नेहे।
फल कारने तरु अवलम्बल[2] छाहरि[3] भेल सन्देहे॥

मि० म० (पद-सं० १८२, न० गु० से)—१ ते। २ अवलम्बन। ३ छाहरि।

झा (पद-सं० २२२)—५ बड़। ६ बड़ाई। ७ तेलो। ८ ढलिआई।

शब्दार्थ—गुञ्ज=गुञ्जा, घुँघची। मुकुता=मुक्ता, मोती। भमि=घूम-फिरकर। निबुद्ध=निकम्मा। गमारे=गँवार। बलद=बैल। थान=बथान। पालव=जुआ। ढलिआई=ढलता होता है, फलता है। लाओल=लाया, किया। छाहरि=छाँह। भेल=हुआ।

अर्थ—तुमने घुँघची लाकर मोती को गूँथ दिया। (मैंने) तुम्हारी रीति समझ ली; (तुमने) उन्हें सोने से भी बढ़कर कहा; (किन्तु वे) काँच से भी घटकर हुए।

हे दूती! ऐसा ही तुम्हारा व्यवहार है। समूचे नगर में घूम-फिरकर तुमने नागर को ढूँढ़ा; (किन्तु तुम्हें) निकम्मा गँवार ही मिला।

बड़ा सुपुरुष समझकर प्रेम बढ़ाया (कि) दिन-दिन बड़ाई होगी; (किन्तु) तेली का बैल बथान पर ही भला दीखता है; जुए के नीचे नहीं फबता। (अर्थात्, तेली के बैल के समान वे भी किसी काम के नहीं निकले।)

सबसे सुनती थी (कि वे) सर्वगुणागार हैं। इसीसे मैंने प्रेम किया। फल के कारण तरुवर का अवलम्बन किया; (किन्तु) छाया में भी संदेह हो गया। (अर्थ—रा० अ० से)।

९ सबतह। १० भोल। ११ कारने।

बरजीरागे—

[२२३]

प्रथमहि कतन[1] जतन उपजञोलह[2]
ते[3] ग्रानलि पररामा।
बोललह[4] ग्रान ग्रान परिणति[5] भेलि
ग्राबे परजन्तक ठामा ॥ ध्रु० ॥
माधव ग्राबे बुझलि तुग्र[6] रीती।
ञे[7] बेरि बले[8] चेतन भेलिहु[9]
पुनु न करब परतीती[10] ॥
बाट हेरि वरनागरि[11] रहलि
सून सङ्केत निसि जागी[12]।
जे नहि फले निरबाहए पारिग्र
सेहे[13] करिग्र का[14] लागी[15] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८८, प० २४४, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं ५१४)—१ कत। २ उपजञोल हे। ३ तें। ४ वोललहु। ५ परिनति। ६ तुय। ७ ए। १२ जागि। १३ से हे। १४ काँ। १५ जागि।

मि० म० (पद-सं० ३५५)—१ कत न। २ उपजञोल हे। ३ तेँ। ५ परिनति। ७ ए। ११ रव नागरि। १२ जागि। १३ सेहे। १४ काँ। १५ लागि।

झा (पद-सं० २२३)—१० पततीती।

शब्दार्थ—कतन = कितना। उपजञोलह = उपजाया, किया। ग्रान = (ग्रन्य—सं०) ग्रौर। परिणति = परिणाम, फल। परजन्तक = पर्यन्त का, ग्रन्तिम सीमा का, मरण का। ठामा = स्थान, ग्रवस्था। ञे बेरि = इस बार। चेतन = सचेत। परतीती = (प्रतीति—सं०) विश्वास। सङ्केत = प्रेमी ग्रौर प्रेमिका के मिलन का निर्दिष्ट स्थान। निसि = रात। निरवाहए पारिग्र = निबाह सकते। का लागी = किसलिए।

ग्रर्थ—पहले (तुमने) कितना यत्न किया, इसलिए मैं पराई स्त्री को ले ग्राई। (तुमने) कहा (कुछ) ग्रौर परिणाम (कुछ) ग्रौर हुग्रा। ग्रव तो मरण की ग्रवस्था ग्रा पहुँची।

सं० ग्र०—३ तञे। ५ जान जान परिनति। ८ भले। ९ भेलिहुँ।

हे माधव ! अब तुम्हारी रीति समझ पाई। इस बार (मैं) अच्छी तरह सचेत हो गई। फिर (कभी) तुम्हारा विश्वास नहीं करूँगी।

वरनागरी शून्य सङ्केत-स्थान में रात-भर जगकर (तुम्हारी) बाट जोहती रह गई। जिसे अन्त तक निबाह नहीं सकते, उसे (प्रारंभ ही) किसलिए किया जाय ?

बरलीरागे—

[२२४]

करतललीन दीन मुखचन्द
किसलय मिलु अभिनव अरविन्द ।
अहनिसि नयने गलए जलधार
खञ्जने गिलि उगिलल मोतिम हार ॥ ध्रु० ॥
कि करति ससिमुखि कि पुछसि आन
बिनु अपराधे विमुख भेल कान्ह ।
विरहे बिखिन तनु भेल हरास
कुसुम सुखाए रहल अछ बास ॥
झखइते संसए पळल परान
अबहु न उपसम कर पचबान ।
विद्यापति भन (कवि) कठहार
विरह पयोनिधि होएब पार ॥

ने० पृ० ८८, प० २४५, पं० ४

पाठभेद—

झा—(पद-सं० २२४)—पाठभेद नहीं है।

विशेष—पद-सं० १०० देखिए।

बरलीरागे—

[२२५]

हरि रिपु रिपु सुअ अरि बल भूषण
तसु भोअण अछ ठामा ।
पञ्चवदन अरि वाहन रिपु तसु
तसु अरि पए ले नामा ॥ ध्रु० ॥
माधव कत परबोधबि रामा ।
सुरभि तनय पति सिरोमणि दूषण
रहत जनम धरि ठामा ॥

खचर चरण नयनानल पैसति[१]
राषबि[२] कत दिन आसे ।
कि हर बान वेद गुनि[३] खाइति
जदि न आओब तोहें[४] पासे ॥
रवि सुअ तनय दैए[५] परबोधलि
बाढति कओन बडाइ[६] ।
अम्बर सेष लेख दए आसिष[७]
बिहि हलु झगल[८] छडाइ[९] ॥
विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८६(क), प० २४६, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १४)—

हरि रिपु रिपु सुअ अरि भूपन
ता भोअन अछ ठामे ।
पाँचवदन अरि वाहन ता प्रभु
ता प्रभु लेइअछ नामे ॥
माधव कत परबोधलि रामा ।
सुरभितनयपति भूपन सिरोमनि
रहत जनम भरि ठामा ॥
कत दिन राखति आसे ।
शङ्कर वान वेद गुनि खाइति
यदि न आओव तोहें पासे ॥
सुरतनया सुत दए परबोधलि
वाढ़ति कओन 'वड़ाइ ।
अम्वर सेख लेखि कए छाड़ति
विहि हलु भगर छड़ाइ ॥
भनइ विद्यापति सुन वर जउवति
तोहँ अछ जीवन अधारे ।
राजा शिवसिंह रूपनराएन
एकादस अवतारे ॥

सं० अ०—१ पइसति । २ राखति । ३ गनि । ४ तोहें । ५ दइए । ६ बडाई । ७ छाडति । ८ झगळ । ६ छडाई ।

मि० म० (पद-सं० १९८)—

हरि रिपु रिपु सुअ अविरल भूसन
तोसु मोअन अछ ठामे ।
पञ्चवदन अरि वाहन रिपु
तनु तसु पाएल नामा ॥
माधव कत परवोधी रामा ।
सुरभित तनय पति सिरोमनि
भूसन बहत जनम धरि ठामा ॥
कत दिन राखवि आसे ।
कि हर धाम वेद गुनि खाइति
जदि न आओब तोहेँ पासे ॥
सुरतनया सुत दए परबोधलि
बाढ़ति कओन बड़ाइ ।
अम्बर सेख लेख दए आशीप
विहि हलु भागर छड़ाइ ॥
भनइ विद्यापति सुन वर जउवति
तोँह अछ जीवन अधारे ।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
एकादस अवतारे ॥

झा (पद-सं० २२५)--६ बड़ाई । ८ छड़ाई ।

शब्दार्थ—हरि = सूर्य । हरि रिपु = राहु । हरि रिपु रिपु = विष्णु । हरि···रिपु-सुअ = कामदेव । हरि···सुअ अरि = महादेव । हरि···बलभूषण = वासुकि । तसु भोअन = वायु । पञ्चवदन = मृत्युंजय, शिव । पञ्चवदन अरि = (मृत्यु) यम । पञ्चवदन अरि वाहन = महिष । तसु रिपु = अश्व (केशी) । तसु रिपु = कृष्ण । सुरभि = कामधेनु । सुरभि तनय = नन्दी । सुरभि तनय पति = शिव । सुरभि तनय पति सिरोमणि = चन्द्रमा । सुरभि······ दूषण = कलङ्क । खचर = कामचारी, देवगण । खचर = सूर्य । नयनानल = (नयन = दो । अनल = तीन ।) पाँच, अर्थात् पाँचवीं राशि—सिंह । हर = ग्यारह । बान = पाँच । वेद = चार । रवि = सूर्य । रवि सुअ = रवि सुत = कर्ण । रवि···तनय = वृषसेन (नामैकदेशे नामग्रहणम्—न्याय से) सेन = संकेत । अम्बर = शून्य । सेष लेख = अन्तिम लेख ।

अर्थ—वायु (अपने) स्थान पर है । (अर्थात्, अभी तक विरहिणी की साँस चल रही है ।)

(विरहिणी) कृष्ण का नाम ले रही है ।

हे माधव ! रामा (रमणोत्सुका) को कितना प्रबोधूँगी ? (तुम्हें) जन्म-भर के लिए कलङ्क रह जायगा ।

सूर्य का चरण सिंह राशि में प्रवेश करेगा । (अर्थात्, 'सिंहे रविः' होने जा रहा है । वर्षा ऋतु वीतने पर है । अब वह) कितने दिनों तक आशा रखेगी ?

यदि तुम (उसके) समीप नहीं आओगे (तो वह) विष खा लेगी।

(उसे) संकेत देकर ढाढ़स बँधाया है। (अब भी नहीं जाने से तुम्हें) कौन बड़ाई होगी?

(वह) शून्य का अन्तिम लेख देकर छोड़ेगी (अर्थात्, मर जायगी)। विधाता झगड़ा छुड़ा देगा।

बरलीरागे—

[२२६]

गगन तील[1] हे तिलक अरि जुबनी[2]
तसु सम नागरि[3] बानी[4]।
सिन्धु बन्धु अरि वाहन गन सरि[5]
हरि हरि सुमर गोआली[6] ॥ ध्रु० ॥
माधव निरमति भुज[7] गिम[8] खाइ[9]।
अब्ज बन्धु तनया सहोदर
तसु पुर देति बसाइ[10] ॥
अचेतनि जुविनी बन्धु नहि[11] देहरि[12]
(हरि)तह[13] धरणि[14] लोटाइ।
हरि आरूढि[15] सेहओ नहि[16] परसए
दाहिन हरि न[17] सोहाइ[18] ॥

सं० अ०—गगन तिलक हे तिलक अरि जुवती
तसु सम नागरि बानी।
सिन्धु बन्धु अरि वाहन गन सरि
हरि हरि सुमर गोआली ॥ ध्रु० ॥
माधव! निरमति भुजगिम खाई।
अब्ज - बन्धु - तनया तसु सोदर
तसु पुर देति बसाई ॥
अचेतनि जुवति बन्धु नहि देहरि
(हरि)तह धरनि लोटाई।
हरि आरुढि सेहओ नहि परसए
दाहिन हरि न सोहाई ॥

हरि निधि अवनत आओर[19] कहति कत
चारि दुआर[20] रच राही[21]।
तीनि[22] दोस अपने तोहे कएलह
चारिम भेल उपाइ[23] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ८६, प० २४७, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५७६)—२ जुरणी। ३ नागरो। ४ वाणी। ५ सबि। ६ गोआनी। ७-८-९ भुजगि मथाइ। ११ सुखेतनु जुविणी लहि। १२-१३ देह वितह। १४ धरनि। १५ आरूढ़ि। १६ सहेओल। १७ हरिन। १९ आतुर। २० दुयार। २१ वाही। २२ तीलि।

झा (पद-सं० २२६)—१ तीन। ५ सबि। ७-८-९ भुजगि मखाई। १० बसाई। ११ अथे तनं जविनी वन्धु नहि। १४ धरणि लोटाई। १८ सोहाई। २३ उपाई।

शब्दार्थ—गगन = आकाश। गगन तिलक = चन्द्रमा। गगन तिलक तिलक = महादेव। गगन तिलक तिलक अरि = कामदेव। गगन···अरि जुवती = रति। सिन्धु = समुद्र। सिन्धु वन्धु = मैनाक। सिन्धु वन्धु अरि = इन्द्र। सिन्धु···वाहन = मेघ। सरि = (सृ गतौ) घूम रहा है। निरमति = चेतनाहीन। भुज = दो। गिम = ग्रीव = दशग्रीव (नामैकदेशे नामग्रहणम्—न्याय से) दस। भुज गिम = दो दस, अर्थात् बीस = विष। अब्ज = कमल। अब्ज वन्धु = सूर्य। अब्ज वन्धु तनया = यमुना। अब्ज वन्धु तनया सहोदर = यम। तसु पुर = यमपुर। धरणि = धरती। हरि = साँप। हरि = पवन। हरि = चन्द्रमा। निधि = समुद्र।

अर्थ—रति के समान (विरहिणी) नागरी की वाणी है। (अर्थात्, नागरी रति के समान विलाप कर रही है।)

(आकाश में) मेघों का समूह घूम रहा है, (जिसे देखकर) ग्वालिन 'हरि-हरि' (कहकर) स्मरण करती है।

हे माधव! (वह) बुद्धिहीना विष खाकर यमपुर बसा देगी (अर्थात्, मर जायगी)। वन्धु-हीन और चेतना-रहित युवती देहरी पर साँप की तरह लोट रही है।

हरि निधि अवनत—आओर कहबि कत
चारि दोष[1] रच राही।
तीनि दोष अपने तोहँ कएलह
चारिम भेल उपाई ॥

१. यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नामीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।
स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात् ॥
—साहित्यदर्पण, परि० ३, श्लो० १८७।

चन्द्रमा (आकाश में) आरूढ है, (किन्तु वह) उसका भी स्पर्श नहीं करती। (अर्थात्, चाँदनी भी उसे नहीं सुहाती)। दक्षिण पवन भी उसे नहीं सुहाता।

चन्द्रमा समुद्र में अवनत हो रहा है (अर्थात् , रात बीत चली)। अब और कितना कहूँ। राधा ने चारों दोषों की रचना की है।

उनमें तीन दोष तो तुमने स्वयं किये हैं। चौथे का उपाय उसने किया है। (अर्थात्—विप्रलम्भ के चार दोष होते हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणा। इनमें आरंभ के तीन तो तुमने स्वयं किये। चौथी—करुणा—का उपाय राधा कर रही है।) (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

बरलीरागे--

[२२७]

दखिन पवन बह मदन धनुषि[१] गह
तेजल सखीजन मेली[२]।
हरि रिपु रिपु तसु[३] तासु[४] तनय रिपु
कए रहु ताहेरि[५] सेरी ॥ ध्रु० ॥
माधव तुअ बिनु धनि बडि[६] खीनी।
वचन न[७] धर[८] मन बहुत खेद कर
अदबुद ताहेरि कहिनी ॥
मलयानिल हार तसु पीबए
मनमथ ताहि डराइ[९]।
आओर भइए[१०] जत भवहि[११] निबारब
तुअ बिनु विरह न जाइ[१२] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ९०(क), प० २४८, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६)—२ मेरी। ३-४ तासु। ५ ताहरि। ६ बड़ि। ७ पाठाभाव। ८ धरब। १० आतुर मए। ११ डरहि।

मि० म० (पद-सं० ५७३)—१ धनुसि। ३-४ तसु। ६ बड़ि। ७ पाठाभाव। ८ मए। ११ डरहि।

झा (पद-सं० २२७)—२ मेळी। ३-४ सुत-सुत। ६ बाहु खिनी। ९ डराई। १० आतुर भइए। ११ भरहि। १२ जाई।

सं० अ०—३-४ हरि रिपु तसु रिपु तासु तनअ रिपु। ७-८ वचन न मन धर बहुत खेद कर। ९ डराई। १० भए। । १२ जाई।

शब्दार्थ—मदन = कामदेव। मेली = मिलन। हरि = सूर्य। हरि रिपु = राहु। तसु रिपु = उसका रिपु = विष्णु। तासु तनय = उसका तनय = कामदेव—रिपु = शिव। ताहेरि = उसका। सेरी = आश्रय। खीनी = खिन्न। भइए = भय। भवहि = शिव।

अर्थ—दक्षिण पवन बह रहा है। कामदेव धनुष धारण किये हुए है। (उसने) सखीजनों से मिलना भी छोड़ दिया है।

(उसने कामदेव के डर से) शिवजी का आश्रय कर रखा है।

हे माधव ! तुम्हारे विना धन्या बहुत खिन्न है। वह (किसी का) वचन मन में नहीं गुनती—बहुत खेद करती है। उसकी कहानी बड़ी अद्भुत है।

(नायिका ने शिव का आश्रय ले रखा है; क्योंकि) उनका हार (सर्प) मलयानिल को पी लेता है (अतः, मलयानिल उसे विरहावस्था में कष्ट नहीं दे पाता, और) कामदेव उनसे डरता है (अतः, कामदेव भी नायिका को नहीं सता सकता)।

शिवजी और जितने भय का निवारण करें; (किन्तु) तुम्हारे विना विरह नहीं छूट सकता। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

बरलीरागे—

[२२८]

त्रिबलि तरङ्गिणि[1] पुर दुगगम जनि
मनमथे[2] पत्र पठाउ।
जौवन[3] दलपति समय[4] तोहर[5] (मति)
रतिपति दूत पठाऊ[6] ॥ ध्रु० ॥
माधव आबे साजिअ[7] दहु बाला।
तसु सैसवे तोहे[8] जे सन्तापलि
से सरिआउति बाला ॥
कुण्डल चक्क तिलक[10] अङ्कुस[11] कए
चन्दन कवच अभिरामा।
नयन[12] कटाख बान गुन[13] धनु[14] दए[15]
साजि रहलि अछ[16] रामा ॥
सुन्दरि[17] साजि खेत चलि आइलि
विद्यापति कवि भाने ॥

ने० पृ० ९०(क), प० २४९, पं० ४

सं० अ०—१ तरङ्गिनि। २ मनमथेँ। ३ जउवन। ४ समर। ५ तोहर मति। ६ ऋतुपति दूत पठाउ। ८ तोहेँ। १२ नजन।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २३३)—१ तरङ्गिनि। ४ समर। ६ वढ़ाउ। ७ साजिय। ९ सवि अउति। १०-११ अंकुस तिलक। १४ पाठाभाव। अन्त में निम्नलिखित भणिता है —

राजा शिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देवि रमाने।

मि० म० (पद-सं० ४७८)—१ तरङ्गिनी। ४ समर। ६ ऋतुपति दूत पठाउ। ७ साजिए। ८ तोहेँ। ९ सव आउति गुण। १५ पाठाभाव।

झा (पद-सं० २२८)—२ समए। १६ अछ। १७ सुन्दर।

शब्दार्थ— तरङ्गिणि = नदी। दुग्गम = दुर्गम। जनि = जैसे। मनमथे = कामदेव। दलपति = सेनापति। रितुपति = वसन्त। साजिअ दहु = सज आई है। सरिआउति = ठीक कर देगी। चक्क = चक्र। गुन = (गुण—सं०) डोरी। खेत = (क्षेत्र—सं०) रणक्षेत्र।

अर्थ— त्रिवली जैसे नगर की दुर्गम नदी (खाई) हो। (इसीलिए) कामदेव ने पत्र भेजा है। यौवन (ही) सेनापति है। (यदि) तुम्हारा मन लड़ने को हो, (तो कामदेव ने) वसन्त को दूत (बनाकर) भेजा है।

हे माधव! बाला ने (अपने को) सजा लिया है। तुमने वचपन में (उसे) जितना सन्ताप दिया—बाला उन सबको ठीक कर लेगी। (अर्थात्, सबका बदला ले लेगी।)

(उसने) कुण्डल से चक्र, तिलक से अङ्कुश (और) चन्दन से सुन्दर कवच वनाया है और धनुष के ऊपर डोरी देकर कटाक्ष-रूपी बाण सजा रही है।

कवि विद्यापति कहते हैं कि सुन्दरी सजकर खेत चढ़ आई। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते हैं।)

बरलीरागे—

[२२९]

सहजहि तनु खिनि माझ बेबि सनि
सिरिसि कुसुम सम काया।
तोहे मधुरिपु पति कैसे कए[1] धरति रति
अपुरुब[2] मनमथ माया॥ ध्रु०॥

सं० अ०—सहजहि तनु खिनि माँझ बेबि सनि
सिरिसि कुसुम-सम काया।
तोहेँ मधुरिपु। पति कइसे कए धरति रति
अपुरुब मनमथ - माया ॥ ध्रु०॥

माधव परिहर दृढ[३] परिरम्भा।
भागि[४] जाएत मन ······ जीव सन[५]
मदन विटपि आरम्भा॥
सैसव अछल से डरे पलाएल
जौवन नूतन वासी।
कामिनि कोमल पाँहोन[६] पचसर[७]
भए जनु जाह उदासी॥
तोहर चतुरपन जखने धरति मन
रस बूझति अबसेखी[८]।
एखने अलप बुधि न बुझ अधिक सुधि
केलि करब जिव राखी[९]॥
तोहे जे नागरमनि[१०] ओ[११] धनि जित्र[१२] सनि
कोमल काच[१३] सरीरा।
तेपरि करब केलि जे पुनु होअ मेलि
मूल राख बनिजारा॥

माधव! परिहर दृढ परिरम्भा।
भाँगि जाएत मन (धरिअ) जीव सन
मदन विटपि आरम्भा॥
सैसव अछल से डरेँ पळाएल
जउवन नूतन वासी।
कामिनि कोमल पाँहुन पँचसर
भए जनु जाह उदासी॥
तोहर चतुरपन जखने धरति मन
रस बूझति अवसेखी।
एखने अलप बुधि न बुझ अधिक सुधि
केलि करब जिव राखी॥
तोहेँ जे नागरमनि ओ धनि जीव सनि
कोमल काँच सरीरा।
ते परि करब केलि जे पुनु होअए मेलि
मूल राख बनिजारा॥

हमरि अइसनि मति मन दए सुन दुति
दुर कर सबे अनुतापे ।
जओ[14] अति कोमल तैंअओ न ढरि पल
कबहु भमरभरे कापे[15] ।।
भनइ विद्यापतीत्यादि ।।

ने० पृ० ९०, प० २५०, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १४५)—२ अपरुब । ३ द्ढ़ । ४ माँगि । ५ सबे । ६ पाहुन । ८ अवसेखि । ९ राखि । १०-११ नागर मानओ । १३ काँच ।

मि० म० (पद-सं० २९०)—३ द्ढ़ । ४ माँगि । ५ सबे । ६ पाहुन । ७ पँचसर । ८ अवसेखि । ९ राखि । १०-११ नागर मानओ । १३ काँच । १४ जयँ । १५ काँपे ।

झा (पद-सं० २२९)—१ पाठाभाव । १२ जीव ।

विशेष—'नेपाल-पदावली' में गीत के अन्त में 'भनइ विद्यापतीत्यादि' लिखा है; किन्तु दूती को उपदेश देनेवाला तीसरा कोई गीत में उल्लिखित नहीं है । अतः, कवि के लिए ही यह उचित प्रतीत होता है । इसलिए 'नेपाल-पदावली' का 'भनइ विद्यापतीत्यादि' अनुपयुक्त प्रतीत होता है ।

शब्दार्थ—तनु = शरीर । खिनि = क्षीण । माँझ = मध्य । वेवि = (द्वयेव—सं०) दो-टूक । सनि = समान । मनमथ = कामदेव । परिहर = त्याग दो । परिरम्भा = आलिङ्गन । विटपि = वृक्ष । पाँहोन = मेहमान । पचसर = कामदेव । अवसेखी = अन्त तक, सम्पूर्ण । सुधि = सूधी । जिव = प्राण । तेपरि = इस तरह । बनिजारा = सौदागर । अनुतापे = पश्चात्ताप । कापे = (कपीतन—सं०) शिरीष ।

अर्थ— (इसका) शरीर स्वभाव से ही खिन्न है । मध्य भाग दो-टूक के समान है । (जान पड़ता है, जैसे) शिरीष-पुष्प के समान (इसकी) काया है ।

हे मधुसूदन ! तुम (इसके) पति हो (अर्थात्, मधु के समान बलवान् को भी नाश करनेवाले तुम इसके पति हो ।) (यह) कैसे रति करेगी ? कामदेव की माया अपूर्व है ।

हे माधव ! दृढ आलिङ्गन का त्याग करो । (इसका) मन टूट जायगा । (इसे) प्राण के समान (जुगाकर) रखो । (अभी तो) कामदेव-रूपी वृक्ष का प्रारंभ ही हुआ है ।

शैशव था; (किन्तु) वह तो डरकर भाग गया । यौवन तो अभी-अभी आ बसा है । कामिनी (स्वयं) कोमल है । कामदेव तो मेहमान ही है । (अर्थात्, इनमें एक भी तुम्हारा स्वागत करनेवाला नहीं । फिर भी, तुम उदास मत हो ।)

भनइ विद्यापति मन दए सुन दुति ।
दुर कर सबे अनुतापे ।
जइओ अति कोमल तइअओ न ढरि पल
कबहुँ भमर-भरेँ कापे ।।

तुम्हारा चतुरपन जब (यह) मन में गुनेगी, (तभी) सम्पूर्ण रस समझेगी। अभी तो (इसकी) बुद्धि थोड़ी है—बड़ी सूधी है। समझती नहीं है। (इसलिए इसके) प्राण को रखते हुए केलि करना।

तुम नागरमणि हो—वह (तुम्हारे) प्राण के समान है। (उसका) शरीर कोमल है—कच्चा है। (इसलिए) इस तरह केलि करना (कि) फिर मिलन हो। सौदागर (भी) मूल (धन) की रक्षा करता है। (अर्थात्, मूल की रक्षा करके ही व्यापार करता है।)

विद्यापति कहते हैं—अरी दूती! मन देकर सुनो। सभी अनुताप दूर करो। (कारण,) यद्यपि शिरीष-पुष्प अत्यन्त कोमल होता है, तथापि भ्रमर के भार से कभी टूटता नहीं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

बरलीरागे—

[२३०]

हरि बिसरल बाहर गेह
वसु(त)ह[१] मिलल सुन्दर देह।
साने कोने आबे बुझए बोल
मदने पाओल अपन[२] तोल ॥ ध्रु० ॥
कि सखि कहब कहैते[३] धाष[४]
खखन्दे ज[५] ओरा[६] कतए राख।
अपथ पथ परिचय[७] भेल
जनम आँतर बेडा[८] देल ॥
गमने कैतवे[९] करसि ओज
परेओ परक करए षोज[१०]।
ओछेओ जाति जोलहा जेओ
ओल[११] धरि नहि बुनए[१२] सेओ ॥
देषल[१३] सुनल कहब[१४] तोहि
पुनु कि बोलि पठाउति मोहि।
सङ्गहि गमन सरस भान
इ[१५] रस रूपनराएण[१६] जान ॥

ने० पृ० ९२(क), प० २५१, पं० ४

सं० अ०—३ कहइते। ४ धाख। ५-६ खखन्दें ओरा। ७ परिचअ। ९ कइतवें। १० खोज। ११ ओळ। १३ देखल। १४ कहल। १५ ई। १६ रूपनराजेन।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० १२०)—१ वसुह । २ आपन । ३ कहेते । ४ धाख । ५-६ जओवा । ८ वेड़ा । १० खोज । ११ ओले । १२ वुलए । १६ रूपनराएन ।

झा (पद-सं० २३०)—१ वसुह । ५-६ जओरा ।

शब्दार्थ—विसरल = भूल गये । गेह = घर । वसु = पृथ्वी । साने कोने = (साने = सन्धि—सं०) कोने-कोने में । तोल = तौल । धाष = संकोच । खखन्दे = निहोरा करने से । ओरा = अन्त । अपथ पथ = बुरे रास्ते में । जनम आँतर = जन्मान्तर—सं० । कैतवे = छल से, वहाने से । ओज = कृपणता । जेओ = जो । सेओ = सो ।

अर्थ—कृष्ण घर (और) वाहर—(दोनों) भूल गये । (अर्थात्, न उन्हें घर का ज्ञान है और न वाहर का ।) (उनका) सुन्दर शरीर मिट्टी से जा मिला ।

अब कोने-कोने में (तुम्हारा) वोल समझते हैं । (अर्थात्, कोई कहीं कुछ वोलता है, तो वे तुम्हारा बोल ही समझते हैं ।) कामदेव ने अपनी तौल पा ली ।

हे सखी ! क्या कहूँ ? कहते सङ्कोच हो रहा है । (अरे,) निहोरा करने से कहीं अन्त निभता है ?

(उनके साथ तुम्हारा) वुरे रास्ते में परिचय हुआ । इसीलिए, तुमने उनका वेड़ा जन्मान्तर (मौत के समीप) पहुँचा दिया ।

वहाना वनाकर जाने में (तुम) कंजूसी करती हो । (अरी !) पराया भी पराये की खोज करता है ।

जुलाहा—जो कि ओछी जात है—वह भी अन्त तक नहीं वुनता । (अर्थात्, जुलाहा भी कपड़े का छोर विना वुने छोड़ देता है; किन्तु तुम अन्त तक वुनती जा रही है ।)

(मैंने जो कुछ) देखा-सुना—तुमसे कहा । फिर क्या (वे) मुझे संवाद लेकर भेजेंगे ? (अर्थात्, विना तुम्हारे गये उनके प्राण ही नहीं रहेंगे, तो मुझे पुनः संवाद लेकर नहीं आना पड़ेगा ।)

सरस (कवि विद्यापति) कहते हैं (कि दूती और नायिका का) साथ जाना (उचित है ।) इस रस को रूपनारायण समझते हैं । (अर्थ—संपादकीय अभिमत से ।)

बरलीरागे—

[२३१]

कुलकामिनि भए कुलटा भेलिहु[1]
किछु नहि गुनले आगु ।
सबे परिहरि तुअ अधीनि[2] भेलिहु[3]
आबे तुअ[4] आइति[5] लागु ॥ ध्रु० ॥

सं० अ०—१ भेलिहुँ । ३ भेलिहुँ ।

माधव जनु होअ पेम पुराने।
नव अनुराग ओल[6] धरि राखब
जे न बिघट मोर माने ॥
सुमुखि वचन सुनि माधवे मने[7] गुनि
अङ्गिरल कए अपराधे।
सुपुरुष[8] सओ[9] नेह विद्यापति[10] कह
ओल[11] धरि हो निरबाहे ॥

ने० पृ० ९१, प० २५२, पं० ३.

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५२६)—२ अधीन। ४-५ आइति। १० कवि विद्यापति।

मि० म० (पद-सं० ४७०)—२ आधीनि। ४-५ आइति। ८ सुपुरुस। ९ सयँ।

झा (पद-सं० २३१)—२ आधीनि।

शब्दार्थ—कुलटा = व्यभिचारिणी। भेलिहु = हुई। गुनले = सोचा। परिहरि = तजकर। आइति = (आयत्ति—सं०) अवलम्ब। ओल = अन्त।

अर्थ—(मैं) कुलवधू होकर भी कुलटा हो गई। कुछ भी आगे नहीं सोचा। सब-कुछ त्यागकर तुम्हारे अधीन हो गई। अब तुम्हारा ही अवलम्ब है।

हे माधव! (यह) प्रेम (कभी) पुराना मत हो। अन्त तक नया अनुराग रखिएगा, जिससे कि मेरा मान नष्ट नहीं हो।

सुमुखी का वचन सुन, माधव ने हृदय में विचारकर, अपराध करने पर भी (उसे) अंगीकार कर लिया।

विद्यापति कहते हैं—सुपुरुष के साथ (किये) स्नेह का अन्त तक निर्वाह होता है।

बरलीरागे—

[२३२]

की कान्हु[1] निरेषह[2] भौह[3] विभङ्ग
धनु मोहि सोपि गेल अपन अनङ्ग।
कञ्चने कामे गढल[4] कुचकुम्भ
भगइते मलब[5] देइते परिरम्भ ॥ ध्रु० ॥

---

६ ओळ। ७ मन। ११ ओळ।

सं० अ०—१ कान्ह। २ निरेखह। ३ भौँह। ५ भँगइते मलब।

चतुर सखीजन लावथि[6] नेह[7]
आसे[8] पसाहि[9] बाङ्क[10] शसिरेह[11]।
राहु तरास चान्द सञो आनि[12]
अधर सुधा मनमथे धरु जानि ॥
जिव जञो राखञो[13] रहञो अगोरि[14]
पिबि जनु हलह लागति मोरि चोरि।
कैतव[15] करथि कलामति नारि
गुनगाहक[16] पहु बुझथि विचारि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ९२ (क), प० २५३, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ३४०) -१ कान्ह। २ निरेखह। ३ मौँह। ४ गढ़ल। ५ मनव। ६ सारथि। ७ लेह। ८-९ आसेप मोहि। १० बाल्क। ११ ससिरेह। १३ राथञो। १४ मुगोधि। १६ गुणगाहक।

झा (पद-सं० २३२)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—निरेषह = देखते हो। विभङ्ग = वक्रता। अनङ्ग = कामदेव। कञ्चने= सोने से। कुचकुम्भ = कुच - कलश। भगइते = टूटकर। मलव = चूर-चूर हो जायगा। परिरम्भ = आलिङ्गन। नेह = स्नेह। पसाहि = प्रसाधन करके। वाङ्क = वक्र। शसिरेह = चन्द्रमा की रेखा। सुधा = अमृत। मनमथे = कामदेव। जिव = प्राण। कैतव = व्याज, बहाना।

अर्थ—हे कृष्ण! भौंह की वक्रता क्या देखते हो? कामदेव मुझे अपना धनुष सौंप गया है।

कामदेव ने कञ्चन से (मेरे) कुचकुम्भ वनाये हैं। आलिङ्गन देते ही (ये) टूटकर चूर-चूर हो जायँगे।

(किसी की आँख न लग जाय—इस) आशा से चतुर सखियाँ वक्र चन्द्रमा की रेखा का प्रसाधन करके प्रेम दरसाती हैं।

कामदेव ने राहु के भय से (मेरे) अधर में जान-बूझकर चन्द्रमा से अमृत ला रखा है। (अर्थात्, अबला के अधर में अमृत देखकर भी राहु दूर ही रहेगा। परस्त्री-संसर्गजन्य पाप के भय से समीप नहीं आयेगा।)

(उस अमृत को) प्राण की नाईं रखती हूँ—अगोरकर रहती हूँ। (उसे) मत पी लो। मुझे चोरी लग जायगी।

कलावती (चौंसठ कलाओं में प्रवीणा) नारी बहाना कर रही है। गुणग्राहक स्वामी विचारकर (सब) समझते हैं।

---

८ आसैं। ११ ससिरेह। १२ आनि। १५ कइतव।

बरवीरागे—

[२३३]

प्रथमहि गिरि सम गौरव[1] भेल
हृदयहु[2] हार आन्तर[3] नहि देल।
सुपुरुष[4] वचन कएल अवधान
भल मन्द दुअओ बुझब[5] अवसान॥ ध्रु० ॥
चल चल माधव भलि तुअ रीति
पिसुन वचने परिहरलि पिरीति।
परक वचने[6] पहु[7] आपल कान
तहि खने जानल समय[8] समान॥
आबे अपदहु[9] हरि तेज अनुरोध
काहु का[10] जनि हो बिहिक विरोध।
न[11] भेले रङ्ग रभस दुर गेल
इथि हम[12] खेद एकओो नहि भेल।
एके पए खेद जे मन्दा समाज
भलेहु तेजल आबे आषिक[13] लाज॥
भनइ विद्यापति हरि मने लाज
काहु का[14] जनु हो मन्दा समाज॥

ने० पृ० ६२(क), प० २५४, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३४६)—३ आँतर। ६-७ वचने। १३ आँखिक।

मि० म० (पद-सं० ३७८)—३ आँतर। ४ सुपुरुस। ५ बुझ। ६-७ वचने। १३ आँखिक।

झा (पद-सं० २३३)--१० काहुक।

शब्दार्थ—गिरि = पर्वत। आन्तर = (अन्तर—सं०) स्थान। अवधान = ध्यान। अवसान = अन्त। पिसुन = चुगलखोर। परिहरलि = त्याग दी। आपल = अर्पित किया, दिया। समान = सामान्य। अपदहु = बुरी जगह में। बिहिक = विधाता का। रङ्ग = क्रीडा। रभस = प्रेमोत्साह। इथि = इसके लिए। एकओ = तनिक भी। समाज = मिलन।

सं० अ०—१ गउरब। २ हृदअहु। ८ समअ। ९ अपदहुँ। १० काहुकाँ। ११ नहि। १२ हमे। १३ आखिक। १४ काहुकाँ जनु।

अर्थ—(तुम्हें पाकर) पहले पर्वत के समान (ऊँचा) गौरव हुआ। (विश्लेष के भय से) हृदय में हार को भी स्थान नहीं दिया।

सुपुरुष के वचन का ध्यान किया। (अर्थात्, सुपुरुष का वचन कभी विचलित नहीं होगा, इसलिए उसे स्वीकार किया। किन्तु) भला-बुरा—दोनों अन्त में समझे जाते हैं।

हे माधव ! जाओ, जाओ। तुम्हारी रीति बड़ी अच्छी है। चुगलखोरों के कहने से (तुमने) प्रीति त्याग दी।

स्वामी ने (जभी) दूसरों की बात पर कान दिया, तभी समझा कि समय सामान्य हो गया।

अब तो कृष्ण बिना अवसर के भी (मेरे) अनुरोध को त्याग देते हैं। (हाय !) किसी को भी विधाता का विरोध नहीं हो।

क्रीड़ा नहीं हुई; (किन्तु) प्रेमोत्साह दूर चला गया। इसके लिए हमें तनिक भी खेद नहीं हुआ।

एक ही खेद है कि नीच के साथ सम्मिलन हुआ। चूँकि, भला होकर भी (उन्होंने) आँख की लाज तज दी।

विद्यापति कहते हैं कि किसी को भी नीच की संगति नहीं हो। (इसलिए) कृष्ण के मन में लज्जा हो आई।

ललितरागे—

[२३५]*

रयनि[१] समापलि फुलल[२] सरोज
भमि भमि भमरी भमरा षोंज[३]।
दीप मन्दरुचि अम्बर रात
जुगुतिहि[४] जानल भए गेल परात॥ ध्रु०॥
अबहु[५] तेजह पहु मोहि न सोहाए
पुनु दरसन होत[६] मोहि[७] मदन दोहाए।
नागर राख नारि मन[८] रङ्ग
हठ कएले पहु हो रस-भङ्ग॥

सं० अ०—१ रजनि। ३ खोज। ४ जुगुतिहिँ। ५ अबहुँ। ७ पाठाभाव।

* पृष्ठ ३१३ से ३२८ तक भ्रमवश पद-संख्या में व्यत्यय हो गया है। कृपया सुधारकर २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, के स्थान पर क्रमशः २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३ और २३४ पढ़ें।—सं०

तत करिअए[९] जत फाबए चोरि
पर सन रस लए न रहिअ अगोरि[१०] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ९२, प० २५५, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २९१)—२ फूलल। ३ खोज। ८ मान।

मि० म० (पद-सं० ४८२)—२ खोज। ६ होठ। ८ मान। ९ करिअ। १० आगोरि।

झा (पद-सं० २३४)—४ जुगुतहि।

शब्दार्थ—रयनि = (रजनी—सं०) रात। सरोज = कमल। भमि-भमि = घूम-घूमकर। अम्बर = आकाश। रात = (रक्त—सं०) लाल। जुगुतिहि = (युक्ति—सं०) तर्क से। भए गेल = हो गया। मदन = कामदेव। दोहाए = शपथ। रङ्ग = अनुराग।

अर्थ—रात बीत गई। कमल फूल गये। भ्रमरी घूम-घूमकर भ्रमर को ढूँढ़ रही है। दीपक की लौ मन्द पड़ गई। आकाश लाल हो गया। (इसी) तर्क से समझा कि प्रभात हो गया।

हे नाथ! अब भी त्याग करो। (तुम्हारा यह रंग-रभस अब) मुझे नहीं सुहाता। कामदेव की शपथ है, फिर दर्शन होंगे।

नागर स्त्री के मन के अनुराग की रक्षा करता है। हे नाथ! हठ करने से रस-भङ्ग हो जाता है।

चोरी उतनी ही करनी चाहिए, जितनी फबे। दूसरे से रस-लेकर (उसे) अगोरकर नहीं रहना चाहिए।

ललितरागे—

[२३९]

अधर मगइते[१] अओध[२] कर माथ
सहए न पार पयोधर[३] हाथ।
बिघटलि[४] नीवी करें[५] धर जान्ति[६]
अङ्कुरल[७] मदन धरए कत भान्ति[८] ॥ ध्रु० ॥
कोमल कामिनि नागर नाह
कओने[९] परि होएत केलि निरबाह।
कुच कोरक तबे कर (ग)हि लेल
काच[१०] बदर[११] अरुणरुचि[१२] भेल ॥

सं० अ०—१ मँगइते। ३ पओधर। ४ करैँ। १० काँचा।

लाबए चाहिअ नखर विशेष[१३]
भौँह[१४] न[१५] आटए[१६] चान्दक रेख।
तुअ[१७] मुख सो[१८] लोभे[१९] रहु हेरि
चान्द झपाब[२०] वसन कति[२१] बेरि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ९३(क), प० २५६, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १५५)—४ विघटल। ६ जाँति। ७ अंकुरल। ८ भाँति। १० काँच। १३ विशेख। १४ मौंह। १६ आवए। १८ सों। २१ कल।

मि० म० (पद-सं० २७८)—१ मँगइते। २ अओँध। ९ कओने। ११ वदरि। १२ अरुनिम रुचि। १३ विसेख। १४-१५ मौँहनि। १७ तसु। १८ सोँ। २१ कत।

झा (पद-सं० २३५)—१४ मौह। २१ कत।

शब्दार्थ—अओध=(अधः—सं०) नीचे। पयोधर=स्तन। विघटलि=खुली। जान्ति=दबाकर। भान्ति=प्रकार, स्वरूप। कओने परि=किस तरह। कुच=स्तन। कोरक=कली। वदर=बैर। अरुणरुचि=रक्ताभ, लाल रंग का। नखर=नखक्षत। आँटए=बराबरी करती है। सो=वह। वसन=कपड़ा।

अर्थ—(चूमने के लिए) अधर माँगते ही (बाला नायिका) माथा नीचे कर लेती है। स्तन के ऊपर (प्रिय का) हाथ सहन नहीं कर सकती।

खुली नीवी को हाथ से दबाकर पकड़ रखती है। अङ्कुरित कामदेव कितना रूप धारण करता है।

कामिनी सुकुमारी है (और) स्वामी नागर (रसज्ञ) हैं। किस तरह केलि का निर्वाह होगा?

(स्वामी ने) तब कुच-रूपी कली को हाथ से पकड़ लिया। (परिणाम हुआ कि) कच्चा बेर रक्ताभ हो गया।

(स्वामी जब स्तन पर) विशेष नखक्षत करना चाहते हैं (तब) चन्द्रमा की रेखा भी भौंह की बराबरी नहीं कर सकती। (अर्थात्, नखक्षत का उपक्रम करते ही नायिका की भौंहें इस प्रकार वक्र हो जाती हैं कि चन्द्रमा की रेखा भी उनकी बराबरी नहीं कर सकती।)

(सखी नायिका से कहती है)—वे लोभ से तुम्हारे मुँह को देख रहे हैं। कबतक चन्द्रमा को कपड़े से ढाँक रखोगी?

---

१३ विसेख। १६ आँटए। १६ लोभेँ। २० झँपाब वसने।

ललितरागे—

[२३७]

माधव मास तीथि भउ[१] माधव
अवधि कइए पिआ[२] गेला ।
कुचयुग[३] संभु[४] परसि करे[५] बोललन्हि
ते[६] परतीति[७] मोहि भेला ॥ ध्रु० ॥
सखि हे कतहु न देषिअ[८] मधाइ[९] ।
काँप सरीर[१०] थीर[११] नहि मानस
अवधि निअर[१२] भेल आइ[१३] ॥
चान्दन[१४] अगर[१५] मृगमद[१६] कुङ्कुम[१७]
के बोल[१८] सीतल[१९] चन्दा ।
पिआ[२०] बिसलेखे अनल जओ बरिसए[२१]
बिपति चिन्हिअ[२२] भल मन्दा ॥
भनइ विद्यापति अरेरे कलामति
अवधि समापल आजी[२३] ।
लखि(मा)[२४] देवि पति पुरिह[२५] मनोरथ
आबिह सिवसिँह[२६] राजा ॥

ने० पृ० ९३, प० २५७, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७२९)—१ भऊ । २ पिया । ६ ते ँ । ७ परतिति । ८ देखिअ । १० शरीर । १४-१७ मृगमद चानन परिमल कुङ्कुम । २० पिया । २२ चिन्हिय । अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
चिते जनु झाँखह आजे ।
पिय बिसलेस कलेस मेटाएत
बालम बिलस समाजे ॥

मि० म० (पद-सं० १६४)—२ पिया । ४ शम्भु । ११ थिर । १२ निध । १३ आगी । १५ अगरु । १८ बोला । १९ शीतल । २० पिया । २१ बरिसये । २३ आजि । २४ लखि । २५ पूरिह । २६ सिवसिंह ।

झा (पद-सं० २३६)—७ परतिति । ९ मधाई । १३ आई । २४ लाख । २६ सिवसिंह ।

शब्दार्थ—माधव = वैशाख । भउ = हो गया । माधव = एकादशी । परतीति = (प्रतीति—सं०) विश्वास । मधाइ = माधव, कृष्ण । बिसलेखे = वियोग में ।

सं० अ०—३ जुग । ५ करेँ । ६ तञे । ८ देखिअ । ९ मधाई । १३ आई । १४-१५-१६-१७ मृगमद चानन परिमल कुङ्कुम । २०-२१ पिआ बिसलेखेँ जनल जओ बरिसए । २३ अवधि समापलि आजा । २६ सिवसिंह ।

अर्थ—वैशाख महीना और एकादशी तिथि हो गई। (इसी तिथि की) अवधि करके स्वामी गये थे। हँसते हुए (भी) कुचयुग-रूपी शंभु का स्पर्श करके कहा था। इसीलिए, मुझे विश्वास हुआ।

हे सखी! कहीं भी कृष्ण को नहीं देखती हूँ। (मेरा) शरीर काँप रहा है, मन स्थिर नहीं है। (कारण,) अवधि निकट आ गई।

कस्तूरी, चन्दन, परिमल, कुङ्कुम (और) चन्द्रमा को कौन शीतल कहता है? (जान पड़ता है,) जैसे प्रिय के वियोग से (ये) आग बरसाते हों। विपत्ति में ही भले-बुरे की पहचान होती है।

विद्यापति कहते हैं—अरी कलावती! आज अवधि समाप्त हो गई। लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह आयेंगे (और) मनोरथ पूर्ण करेंगे। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

ललितरागे—

[२३८]

आएल वसन्त सकल वनरञ्जक
कुसुमवान सानन्दा।
फूललि मालि भूषल भमरा
पिबि गेल मकरन्दा ॥ ध्रु० ॥
मानिनि आबे कि करिअ अवधाने।
नहि नहि कए परिजन[1] परिबोधह
जुगुति देषओ तोरि आँने ॥

सं० अ०—आएल वसन्त सकल वनमण्डल
कुसुमबान सानन्दा।
फूललि मल्ली भूखल भमरा
पीबि गेल मकरन्दा ॥ ध्रु० ॥
भामिनि! आबे कि करह समधाने।
नहि-नहि कए परिजन परिबोधह
लखन देखिअ आबे जाने ॥
नखपद-केषु पओधर पूजल
परतख भए गेल लोते।
उगल सुमेरु-सिखर चढ़ि ससधर
दह दिस भेल उजोते ॥

बिनु कारणे कुन्तल कैसे आकुल
करओ जुगुति किछु ओछी।
कुमढा केरि चोरि भलि फाउलि
कान्ध न अएलाह[२] पोछी ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ९४(क), प० २५८; पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६०८)—

आएल वसन्त सकल रसमण्डल
कुसुम भेल सानन्द।
फूललि[१] मल्ली भूखल भ्रमरा
पीबि गेल मकरन्द ॥
भाविनि आवे कि करह समधाने[२]।
नहि नहि कए परिजन परिबोधह[३]
लखन देखिय[४] आबे आने ॥
नखपद केसु पयोधर पूजल
परतख भए गेल लोते।
सुमेरु शिखर चढ़ि ऊगल ससधर
दह दिस भेल उजोते ॥
बिनु कारने कुण्डल कैसे आकुल
एहओ जुगति नहि ओछी।
कुमकुम केर चोरि भलि फाउलि
काँध न भेलिए पोछी ॥
भनइ विद्यापति अरे वर जौवति
एहु परतख पँचवाने।
राजा सिवसिंह[५] रूपनरायन
लखिमा देवि[६] रमाने ॥

बिनु कारने कुन्तल कइसे आकुल
करह जुगुति किछु ओछी।
कुमढ़ा केरि चोरि भलि फाउलि
कान्ध न भेलिअ पोछी ॥
भनइ विद्यापति—अरे वरजउवति।
एहु परतख पँचवाने।
राजा सिवसिंह रूपनराञेन
लखिमा देवि-रमाने ॥

मि० म० (पद-सं० १३६(ख), नं० गु० से)—१ फुलली । २ समाधाने । ३ परबोधह । ४ देखिअ । ५ सिवसिंघ । ६ देइ ।

झा (पद-सं० २३७)—१ परिजने । २ आएलाह ।

शब्दार्थ—कुसुमवान = कामदेव । मालि = (मल्ली—सं०) मल्लिका, वेली । नखपद = नखचिह्न । केसु = (किंशुक—सं०) पलाश । परतख = प्रत्यक्ष । लोते = (लौहित्य—सं०) लाली । ससधर = चन्द्रमा । कुन्तल = केश । कुमढा = भतुआ ।

अर्थ—समूचे जंगल में वसन्त आ गया । कामदेव प्रसन्न हो गया । वेली फूल गई । भूखा भ्रमर मकरन्द पी गया ।

अरी भामिनी ! अब क्या समाधान कर रही हो ? 'नहीं-नहीं' करके परिजनों को (क्या) समझा रही हो ? अब (तुम्हारे) कुछ और ही लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं ।

नखचिह्न-रूपी पलाश से (तुम्हारे) स्तन पूजे गये हैं । (उनमें) लाली प्रत्यक्ष हो गई है । (मालूम होता है, जैसे) चन्द्रमा सुमेरु के शिखर पर चढ़कर उगा हो और (उससे) दसों दिशाओं में प्रकाश फैला हो ।

विना कारण ही बाल कैसे बिखर गये ? (ये सब प्रमाण रहते हुए भी तुम) कुछ ओछी युक्ति कर रही हो । (अरे !) भतुए की चोरी तो अच्छी तरह फब गई; (पर तुम्हें) कन्धा नहीं पोंछ हुआ ? (अर्थात्, जिस प्रकार कन्धे पर भतुए को रखकर चोरी करने के बाद यदि कंधे को पोंछ नहीं लिया जाय, तो चोर अनायास ही पकड़ा जाता है—उसका बात बनाना काम नहीं देता, उसी प्रकार इतने प्रमाण के रहते तुम्हारा बात बनाना काम नहीं देगा ।)

विद्यापति कहते हैं—अरी वरयुवती ! लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण प्रत्यक्ष कामदेव हैं । (अर्थ—संपादकीय अभिमत से ।)

नाटरागे—

[२३६]

सपने[1] देषल[2] हरि उपजल रङ्गे
पुलके[3] पुरल तनु जागु अनङ्गे ।
वदन मेराए अधर रस लेला
निसि अवसान कान्ह कहा[4] गेला ॥ ध्रु० ॥
का लागि नीन्द भागलि[5] बिहि मोरा[6]
न भेले सुरत सुख लागल भोरा[7] ।
मालति पाओल रसिक भमरा
भेल वियोग करम दोस मोरा ॥

सं० अ०—१ देखल । ३ पुलकेँ । ४ कहाँ । ५ भाँगलि ।

निधने पाओल धन अनेके[८] जतने
आँचर सञो[९] खसि पलल[१०] रतने ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६४(क), प० २५६, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ७९६)—१ सपन। २ देखल। ३ पुलक। ४ कँहा। ५ माँगलि। ८ अनेक। ९ सओ।

मि० म० (पद-सं० ५६५)—२ देखल। ४ कँहा। ५ माँगलि। ६ मोर। ७ मोर। ८ अनेक। ९ सयँ।

झा (पद-सं० २३८)—३ पुलक।

शब्दार्थ—उपजल = पैदा हुआ। रङ्ग = आनन्द। पुलके = रोमांच से। अनङ्ग = कामदेव। मेराए = मिलाकर। निसि = रात्रि। अवसान = अन्त। भागलि = तोड़ दी। विहि = विधाता ने। भोरा = भ्रम, धोखा।

अर्थ—स्वप्न में कृष्ण को देखा (तो) आनन्द हो आया। रोमाञ्च से शरीर भर गया। कामदेव जग उठा।

(कृष्ण ने) मुँह मिलाकर अधरामृत पान किया। (किन्तु) पता नहीं, रात के अन्त होने पर कृष्ण कहाँ चले गये।

विधाता ने किसलिए मेरी नींद तोड़ दी? सुरत-सुख हुआ नहीं, (केवल) भ्रम हो गया।

मालती ने रसिक भौंरे को प्राप्त किया; (किन्तु पाकर भी) वियोग हो गया। (किसका दोष दूँ? यह) मेरा कर्मदोष है।

निर्धन ने अनेक यत्न करके धन पाया; (किन्तु हाय!) अंचल से रत्न गिर पड़ा।

नाटरागे—

[२४०]

रअनि[१] काजर बम भीम भुअङ्गम
कुलिस पलए[२] दुरबार।
गरज तरज मन रोसे[३] बरिस घन
संशय पलु[४] अभिसार ॥ ध्रु० ॥

---

८ अनेके। १० पळल।

सं० अ०— रअनि काजर बम भीम भुअङ्गम
कुलिस पळए दुरबार।
गरजेँ तरस मन रोषेँ बरिस घन
संसअ पळु अभिसार ॥ ध्रु० ॥

सजनी वचन बोलइते[5] मोहि लाज ।
से जानि जे होउ बरु सबे अगिरु[6]
साहस मन देल[7] आज ॥
ठामहि रहिअ घुमि परसे[8] चिन्हिअ भुमि
दिग मग[9] उपजु सन्देहा[10]
हरि हरि सिव[11] सिव[12] ताबे जाइह जीव[13]
जावे न उपजु सिनेहा[14] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६४, प० २६०, पं० ३

पाठभेद—

रा० त० (पृष्ठ ११४)—१ रयनि। २ कुलिश परए। ३ गरजें तरस मन रोसें। ४ संसञे परु। ५ छड़ैतें। ६ जे होअए से होंअओ वरु सबे हमें ञँगिकरु। ७ साहसँ मन दए। ८ परसें। ६ दिममगँ। १० सन्देह। १३ जिव। १४ सिनेह।

विशेष—'रागतरङ्गिणी' में 'जावे न उपजु सिनेहा' के बाद निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

चरन वेढ़ले फनि हित कए मानल धनि
नूपुर न करत रोर ।
सुमुखि पुछओ तोहि सरुप कहसि मोहि
पेमक कतएक ओर ॥
अपन सुहित मित देखिअ से परतख
न पाइअ पेमक ओर ।
चाँद हरिन बह राहु कवल सह
पेम परामव थोर ॥

अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनइ विद्यापति सुनह सुचेतनि
गमन न करह विलम्बे ।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
सकल कला अवलम्बे ॥

न० गु० (पद-सं० २६४)—१ रयनि। २ कुलिस परए। ४ संसअ पड़। ५ छड़इते। ६ जे होएत से होअओ वरु सवे हमे अङ्गिकरु। १० सन्देह। ११-१२ शिव शिन। १३ जिब। १४ सिनेह।

सजनी ! वचन छड़इतेँ मोहि लाज ।
जे होएत से होअओ बरु सबे हमे अङ्गिकरु
साहस मन देल आज ।
अपन अहित लेख कहइते पर तेख
हृदअक न पाइअ ओळ ।
चान्द हरिन बह राहु कवल सह
पेम पराभव थोळ ॥

विशेष—न० गु० की पदावली में भी 'साहस मन देल आज' और 'ठामहि रहिअ घुमि' के बीच में उपर्युक्त पंक्तियाँ निम्नलिखित रूप में हैं—

अपन अहित लेख कहइते पर तेख
हृदयक न पाइअ ओल।
चाँद हरिन बह राहु कवल सह
पेम पराभव थोल ॥
चरन वेधिल फनि हित कए मानिल धनि
नेपुर न करए रोल ।
सुमुखि पुछओ तोहि सरूप कहसि मोहि
सिनेह कत दुर ओल ॥

अन्त में उपर्युक्त भणिता है।

मि० म० (पद-सं० १०४)—

रयनि काजर बम भीम भुजङ्गम
कुलिस परए दुरबार ।
गरज तरज मन रोस बरिस घन
संसअ पड़ अभिसार ॥
सजनी, वचन छड़इत मोहि लाज ।
होएत से होओ वरु सब हम अङ्गिकरु
साहस मन देल आज ॥
अपन अहित लेख कहइत परतेख
हृदय न पारिअ ओर ।
चाँद हरिन बह राहु कवल सह
प्रेम पराभव थोर ॥

चरन बेढले फनि हित कए मानल धनि
नूपुर न करए रोर ।
सुमुखि ! पुछओ तोहि सरुप कहसि मोहि
पेमक कतएक ओर ॥
ठामहि रहिअ घुमि परसँ चिन्हिअ भुमि
दिग मग उपजु सन्देह ।
हरि-हरि ! सिव-सिव !! तावे जाइह जिव
जावे न उपजु सिनेह ॥
भनइ विद्यापति—सुनह सुचेतनि !
गमन न करह विलम्बे ।
राजा सिवसिंह रूपनराजेन
सकल कला - अवलम्बे ॥

चरन बेढ़िल फनि हित मानलि धनि
नेपुर न करए रोर ।
सुमुखि पुछओं तोहि सरुप कहसि मोहि
सिनेहक कत दुर ओर ॥
ठामहि रहिअ घुमि परस चिन्हिअ भुमि
दिग मग उपजु सन्देह ।
हरि हरि सिव सिव तावे जाइह जिव
जावे न उपजु सिनेह ॥
मनइ विद्यापति सुनह सचेतनि
गमन न करह विलम्ब ।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
सकल कला अवलम्ब ॥

झा (पद-सं० २३६)—(इन्होंने 'रागतरङ्गिणी' की उपर्युक्त पंक्तियाँ पद के अन्त में रखकर पाठोद्धार किया है।)—४ संसय पलु। ६ सबे बरु अगिरु।

शब्दार्थ—रअनि = रात्रि। बम = उगल रही है। भीम = भयावने। भुअङ्गम = (भुजङ्गम—सं०) साँप। कुलिस = वज्र। तरस = डर रहा है। घन = मेघ। पर = दूसरा। तेख = (तीक्ष्ण—सं०) बुरा। ओर = अन्त। कवल = ग्रास। फनि = साँप। रोल = शोर, शब्द। सरुप = सत्य। मग = मार्ग।

अर्थ—रात्रि काजल उगल रही है! (फिर) भयावने साँप! (इन सबसे भी अधिक) दुर्निवार वज्र गिर रहा है। (बादल की) गड़गड़ाहट से मन डर रहा है। मेघ रोष से बरस रहा है। (इन सब कारणों से मेरा) अभिसार संशय में पड़ गया।

हे सखी! (फिर भी) वचन छोड़ते मुझे लज्जा हो रही है। जो होना हो, भले सो हो जाय। मैं सब-कुछ अङ्गीकार करूँगी। आज (मैंने) मन में साहस दिया।

अपना अहित दिखाई पड़ रहा है। कहने पर दूसरे को (भी) बुरा लगेगा। (किन्तु अपने) हृदय का अन्त नहीं पा रही हूँ। चन्द्रमा हरिण को ढोता है। (इसलिए, वह भी) राहु का ग्रास होना सह्य करता है। प्रेम में पराभव थोड़ा (लघु) हो जाता है।

नायिका ने पैरों में लिपटे साँप को (अपना) हित मान लिया। (कारण, इससे) नूपुर शब्द नहीं करते। हे सखी! तुम्हें पूछती हूँ, मुझे सच कहना—प्रेम का कहीं अन्त होता है?

एक ही जगह घूम-फिरकर रह जाती हूँ। स्पर्श से ही स्थान को पहचान रही हूँ। दिशा (और) मार्ग—(दोनों में) सन्देह पैदा हो रहा है। (अर्थात्, अँधेरी रात्रि में मुझे न दिशा का ज्ञान है और न मार्ग का ही।) हरे-हरे! शिव शिव!! तभी तक प्राण चले जाते, जबतक प्रेम पैदा नहीं हुआ था।

विद्यापति कहते हैं—हे सयानी! सुनो। जाने में देर मत करो। राजा शिवसिंह रूपनारायण सभी कलाओं के अवलम्ब हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

विभासरागे—

[२४१]

सुरुज सिन्दुर विन्दु चान्दने[1] लिहए[2] इन्दु
तिथि कहि गेलि तिलके ।
विपरित अभिसार अमिञ गलए धार[3]
अङ्कुस कएल[4] अलके[5] ॥ ध्रु० ॥
माधव[6] भेटलि पसाहन[7] बेरी ।
आदर हरलक[8] पुछिओ न पुछलक
चतुर सखीजन मेली[9] ॥
केतकि दल लए[10] चम्पक दल[11] दए[12]
कबरी[13] थोएलक[14] आनी ।
चन्दने[15] कुङ्कुमे[16] अङ्गरुचि[17] कएलक[18]
समय[19] निवेद सयानी[20] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६५(क), प० २६१, पं० १

सं० अ०—सुरुज सिन्दुर-बिन्दु चान्दने लिहए इन्दु
तिथि कहि गेलि तिलके ।
विपरित अभिसार बरिस अमिञ-धार
अङ्कुस कएल अलके ॥ ध्रु० ॥
माधव ! भेटलि पसाहनि-बेरी ।
आदर हरलक पुछिओ न पुछलक
चतुर सखीजन - मेरी ॥
केतकि दल लए चम्पक फुल दए
कबरी थोएलक आनी ।
मृगमद-कुङ्कुमेँ अङ्गरुचि लओलक
समअ निवेद सआनी ॥
भनइ विद्यापति सुनह अभयमति
कुहू निकट परमाने ।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि - रमाने ॥

पाठभेद—

रा० त० (पृष्ठ ८५)—३ बरिस अमिञ धार। ४-५ कए लतिके। ६ हे माधव। ७ भेटलि पसाहनि। ९ मेरी। ११ फुल। १४ फोएलक। १५ मृगमद। १६ कुंकुमें। १७ चगरुचित। १८ लओलक। १९ समए। २० सयाँनी। अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

मनइ विद्यापति सुनु[1] वरजौवति[2]
कुहु[3] नीकट[4] परमाने।
राजा शिवसिंह[5] रूपनराएन[6]
लखिमा देवि[7] रमाने[8]॥

न० गु० (पद-सं० २४८)—१ चाँदने। २ लिखए। ३ अमिय बरिस धार। ७ भेटल पसाहनि। ८ हेरलक। ९ मेरी। १० दए। ११ फुल। १२ लए। १३ कवरिहि। १५ मृगमद। १६ कुङ्कुम। अन्त में उपर्युक्त भणिता निम्नलिखित पाठभेद के साथ है—

१ सुनह। २ अभयमति। ३ कुहू। ४ निकट। ५ सिवसिंह। ६ रूपनरायन। ७ देइ। ८ विरमाने।

सि० म० (पद-सं० ८८)—१ चाँदने। २ लिखए। ३ अमिय वरिस धार। ७ भेटल पसाहनि। ८ हेरलक। ९ मेरी। १० दए। ११ फुल। १२ लए। १३ कवरिहि। १५ मृगमद। १६ कुङ्कुम। अन्त में न० गु० की भणिता है, जिसमें 'परमाने' के स्थान में 'परिमाने' और 'सिवसिंह' के स्थान में 'सिवसिंघ' कर दिया गया है।

झा (पद-सं० २४०)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—लिहए = लिखा। इन्दु = चन्द्रमा। अलके = केश में। पसाहन = (प्रसाधन—सं०) शृङ्गार। मेली = मिलन। केतकि = केवड़ा। दल = पत्ता। कवरी = जूड़ा। थोएलक = स्थापित किया। आनी = लाकर। मृगमद = कस्तूरी। अङ्गरुचि = अङ्गराग। कुहू = अमावास्या। परमाने = प्रमाण, प्रत्यक्ष।

अर्थ—सिन्दूर-बिन्दु से सूर्य (और) चन्दन से चन्द्रमा लिखा। (इस तरह) तिलक से (उसने) आने की तिथि कह दी। (अर्थात्, ज्यौतिष के अनुसार अमावास्या में सूर्य और चन्द्रमा एक राशि में रहते हैं। इसीलिए, उसने सूर्य और चन्द्रमा लिखकर अमावास्या तिथि का सङ्केत किया।)

विपरीत अभिसार अमृत की धारा बरसाता है। (इसीलिए उसने) बाल में अङ्कुश (का चित्रण) किया। (अर्थात्, तन्त्र में अङ्कुश की मुद्रा से आवाहन किया जाता है, इसीलिए उसने अङ्कुश की मुद्रा बनाकर तुम्हारा आवाहन किया है।)

हे माधव! (वह) शृङ्गार के समय मिली। चतुर सखियों का संग था। (इसीलिए, उसने) आदर का हरण किया। पूछने के लिए भी (साधारण शिष्टाचार के लिए भी) नहीं पूछा।

केवड़े का पत्ता लेकर, (उसमें) चम्पे का फूल देकर; (फिर उसे) लाकर जूड़े में स्थापित किया। (अर्थात्, भ्रमर केवड़े के पत्ते से पंख कट जाने के कारण उसके पास नहीं जाता। चम्पा के पास वह भूलकर भी नहीं फटकता, यह तो प्रसिद्ध ही है। नायिका ने

इन दोनों को अपने जूड़े में खोंसकर यह बतलाया कि मेरे पास आना खतरे से खाली नहीं, इसलिए उसने आगे फिर आने का सङ्केत किया।)

(उसने) कस्तूरी और कुङ्कुम से अंगराग रचकर समय का निवेदन किया। (अर्थात्, कस्तूरी और कुंकुम के विलेपन से उसने पुनः अमावास्या का संकेत किया।)

विद्यापति कहते हैं—निर्भय होकर सुनो। प्रत्यक्ष ही अमावास्या निकट है। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे समझते हैं।)

विभासरागे—

[२४२]

कामिनि बदन[१] बेकत जनु करिहह[२]
चौदिस होएत उजोरे[३]।
चान्दक[४] भरमे अमिञ[५] लालच[६]
अैठ[७] कए जाएत चकोरे[८] ॥ ध्रु० ॥
सुन्दरि तुरित चलहि[९] अभिसारे[१०]।
अबहि[११] उगत ससि तिमिरे[१२] तेजब[१३] निसि
उसरत मदन पसारे[१४] ॥
मधुरे[१५] वचने[१६] भरमहु[१७] जनु बाजह
सौरभे जानत आने[१८]।
पङ्कज लोभे[१९] भमरे भमि[२०] आओब
करब[२१] अधर मधु पाने[२२] ॥
मञे[२३] रसभाविनि मधु के जामिनि
आएल चाहिअ निज गेहा ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६५(क), प० २६२, पं० १

पाठभेद—

रा० पु० (पद-सं० ६१)—१ वदन कामिनि रे। ३ चउदिस होएत उजोर। ५ अमिञ रस। ६ लालस। ७ अजिठ। ८ चकोर। ९ चलहिँ। १० अभिसार। ११ अबहिँ। १२ तिमिर। १३ तेजत। १४ पसार। १५ मधुर। १६ वचन। १७ भरमहुँ। १८ आन। १९ मरमे। २० भमरेँ भमि। २१ करत। २२ पान। २३ तञे। इसके वाद का अंश खण्डित है।

सं० अ०—३ चउदिस होएत उजोरे। ५-६ अमिञ रस लालसेँ। ७ अजिठ। ११-१३ अबहिँ उगत ससि तिमिर तेजत निसि। १५-१७ मधुर वचन भरमहुँ। १८ जाने। १९ भरमे। २३ अन्त की चार पंक्तियाँ न० गु० के समान।

न० गु० (पद-सं० २२१)—१ वदन कामिनि हे। २ न करवे। ३ चउदिस होएत उजोरे। ४ चाँदक। ५ अमिय रस। ६ लालचे। ७ ऐंठ। ६ तोरित चलिय। १५ अमिय। १६ वचन। १८ सौरम बुझत आने। २० भमरे चलि। २१ करत। अन्त की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तोंहे रसकामिनि मधु के जामिनि
गेल चाहिय पिय सेवे।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
कवि अभिनव जयदेवे॥

मि० म० (पद-सं० ६८)—१ वदन कामिनि हे। २ न करवे। ३ चउदिस होएत उजोरे। ४ चाँदक। ५ अमिय रज। ६ लालचे। ७ ऐंठ। ६ तोरित चलिअ। १५ अमिय। १६ वचन। १८ सौरम बूझत आने। २० भमरे चलि। २१ करत। अन्त में उपर्युक्त पंक्तियाँ हैं।

झा (पद-सं० २४१)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—बेकत = व्यक्त, प्रकट। जनु = मत। करिहह = करना। उजोरे = उजाला। जैठ = जूठा। तुरित = (त्वरित - सं०) शीघ्र। ससि = चन्द्रमा। तिमिरे = अन्धकार। निसि = रात्रि। उसरत = उठ जायगा। मदन पसारे = कामदेव का बाजार।

अर्थ—हे कामिनी! मुख को प्रकट मत करना—चारों ओर उजाला हो जायगा (और) चकोर चन्द्रमा के धोखे अमृत-रस की लालसा से (उसे) जूठा कर देगा।

हे सुन्दरी! शीघ्र अभिसार के लिए चलो। अभी चन्द्रमा उग आयेगा। अन्धकार रात्रि को छोड़ देगा। कामदेव का बाजार उठ जायगा।

भ्रम से भी मधुर वचन मत बोलो। सौरभ से दूसरे (भी) समझ जायँगे। (परिणाम होगा कि) कमल के धोखे भौंरे मँड़राकर आयेंगे (और) अधरामृत का पान कर लेंगे।

तुम रसवती हो (और यह) वसन्त ऋतु की रात है। (इसलिए तुम्हें) स्वामी की सेवा में जाना ही चाहिए। कवि अभिनव जयदेव (विद्यापति कहते हैं कि) राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते हैं)। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से)

विभासरागे—

[२४३]

प्रथमहि[1] कएलह[2] हृदयक हार
बोललह[3] तञे[4] मोरि जिवन अधार।
अइसनेँ ओ[5] हठे बिघटओलह पेम
जइसन चतरिआ[6] हाथक हेम॥ध्रु०॥

सं० अ०—१-२ प्रथमहि कएलह हृदअक हार। ४ तोञ। ५ अइसनेजो हठें।

जे धरहरि[७] सञो सिनेह बढाए[८]
जत अनुसए तत कहहि न जाए ।
दुरजनि दूती तह इ[९] भेल
गिरि सम गौरव सेओ दुर गेल[१०] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ९५, प० २६३, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४२९)—१ पहिलहि । २ कयलह । ३ बोलितह । ४ तोंहे । ५ अइसनेओ । ७ ए सखि हरि । ८ वढ़ाए । १० अपदहि गिरिसम गौरव गेल । अन्त में निम्नलिखित पंक्तियाँ है—

अबे कि कहब मति दूषण मोर ।
चिन्हल चटाइल बोलि परोर ॥

मि० म० (पद-सं० ५१२)—५ जइसने । ६ चतुरिआ । ७ धर हरि । ८ बढ़ाए ।

झा (पद-सं० २४२)—६ चाँतरिआ । ७ जे धर हरि । ८ बढ़ाए । ९ ई ।

शब्दार्थ—चतरिआ = (चमत्कारी—सं०) बाजीगर । हेम = सोना । अनुसए = (अनुशय—सं०) पश्चात्ताप । अपदहि = बिना अवसर के ही । चठाइल = चठैल । परोर = परबल ।

अर्थ—पहले तो (मुझे अपने) हृदय का हार बनाया (और) कहा (कि) तुम मेरे जीवन का आधार हो ।

ऐसा होते हुए भी हठात् प्रेम को विघटित कर डाला; जैसे कि जादूगर के हाथ का सोना विघटित हो जाता है ।

हे सखी ! कृष्ण से स्नेह वढ़ाकर जितना पश्चात्ताप हुआ, उतना कहा नहीं जा सकता ।

दुष्टा दूती के कारण यह हुआ कि विना अवसर के ही (मेरा) पर्वत-सदृश (अडिग) गौरव चला गया ।

अब (इससे अधिक) अपना मतिभ्रम क्या कहूँगी ? (मैंने) चठैल को परवल कहकर (समझकर) पहचाना था । (अर्थात् , चठैल रुखड़ा होता है और परवल चिकना । सो, मैंने रुखड़े को भी चिकना समझ लिया था ।) (अर्थ—संपादकीय अभिमत से ।)

---

७ ए सखि हरि । ९ ई । १० अपदहि गिरि सम गउरब गेल । अन्त में भणिता—

अबे कि कहब मति दूषन मोर ।
चिन्हल चठाइल बोलि परोर ॥

विभासरागे—

[२४४]

रिपु पचसर जनि[1] अवसर (मन गुनि
मोहि) सरासन[2] साजे ।
हेरि सून पथ घटी मनोरथ
के जान[3] कि होइति आजे ॥ ध्रु० ॥
निफल भेलि जुगुती[4] ।
हरि हरि हरि राति तेज हरि
पलटलि नहि दूती ॥
साजि अभिसारा पडि[5] अन्धकारा
उगि जनु जा बोरा[6] ।
आरति बेरा जञो हो मेरा
लाखहु[7] लो[8] सुअ[9] थोर ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ९६(क), प० २६४, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३०१)—१ जानि । २ सब सिन । ३ जाने । ४ जुवती । ५ पड़ि । ६ मोरा । ७-८ लाख गुन । ९ सुख ।

मि० म० (पद-सं० ३५६)—४ जुवती । ५ पड़ि । ७-८ लाख कुन ।

झा (पद-सं० २४३)—४ जुगती । ७-८ लाख कुनो ।

शब्दार्थ—जनि = जैसे । सरासन = धनुष । पथ = रास्ता । हरि = चन्द्रमा । बोरा = (भोरा = भुरुकवा) भोर का शुक्र तारा । मेरा = मिलन । सुअ = सुख ।

अर्थ—दुष्ट कामदेव जैसे मन में अवसर गुनकर मुझपर धनुष तान रहा है ।

मार्ग सूना देखकर मनोरथ घट चला । कौन जानता है कि आज क्या होगा ?

युक्ति निष्फल हो गई । हरे ! हरे !! हरे !!! रात्रि ने चन्द्रमा का त्याग कर दिया । (अर्थात्, चन्द्रमा डूब चला, किन्तु) दूती लौटकर नहीं आई ।

अन्धकार होते ही (मैंने) अभिसार सजाया । (किन्तु प्रतीक्षा में ही रात बीत गई । अब कहीं) भोर का शुक्र तारा न उग जाय !

पीड़ा के समय यदि मिलन हो जाय (तो उसके सामने) लाखों सुख थोड़े हैं । (अर्थ—संपादकीय अभिमत से ।)

सं० अ०—६ भोरा । ७ लाखहुँ । ९ सुख ।

विभासरागे—

[२४५]

झाखि[1] झाखि[2] न खिन कर तनू[3]
भमर न रह मालति बिनू[4] ।
ताहि तोहि रिति बाढति[5] पुनू[6]
टूटलि वचन बोलह जनू[7] ॥ ध्रु० ॥
एहे राधे धैरज धरू[8]
बालभु अश्रोताह उछाह करू[9] ।
पिसुन[10] वचने बाढत[11] रोस
बारए न पारिअ दिवस दोस ॥
सुजन वचन टुट न नेहा
हाथे[12] न मेट पखानक रेहा ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ९६(क), प० २६५, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४५९)—१-२ झाँखि झाँखि। ३ तनु। ४ विनु। ५ बाढ़ति। ६ पुनु। ७ जनु। ८ धरु। ९ करु। १० पिशुन। ११ बाढ़त।

सि० म० (पद-सं० ३६०)—१-२ झाँखि झाँखि। ३ तनु। ४ विनु। ५ बाढ़ति। ६ पुनु। ७ जनु। ८ धरु। ९ करु। ११ बाढ़त।

झा पद-सं० २४४)—४ विनु।

शब्दार्थ—तनु = शरीर। पुनू = पुनः। उछाह = उत्सव। पिसुन = चुगलखोर। दिवस दोस = दिन का फेर, बुरे दिन। रेहा = रेखा।

अर्थ—झाँख-झाँखकर शरीर को खिन्न मत करो। भौंरा मालती के विना नहीं रह सकता है। अर्थात्, तुम खिन्न मत हो। कृष्ण तुम्हारे विना नहीं रह सकते हैं।)

तुम दोनों में फिर (प्रीति की) रीति बढ़ेगी। (इसलिए) टूटी बात मत बोलो।

हे राधे! धैर्य धारण करो। (तुम्हारे) प्रियतम आवेंगे,—उत्सव करो।

चुगलखोरों की बात से रोष बढ़ेगा। (उससे) बुरे दिन का निवारण नहीं किया जाता है।

सं० अ०—१-२ झाँखि-झाँखि। ३ करह तनु। ६ पुनु। ७ जनु। ८ धइरज धरु। ९ करु। १२ हाथेँ।

सज्जन के वचन से स्नेह नहीं टूटता। (अर्थात्, मेरी बात का विश्वास करो। इससे तुम्हारा प्रेम भंग नहीं होगा।) हाथ से पत्थर की लीक नहीं मिटती।

विभासरागे—

[२४६]

जे छल से नहि रहले भाव
बोललि बोल पलटि नहि आव।
रोस छडाए[१] बढाओल[२] हास
रूसल बओसब बड[३] परेआस ॥ ध्रु० ॥
कओने[४] परि से हरि बहुरत[५],
माइ हे, कओने[६] परी ॥
नारि सभाव कएल हमे मान
पुरुष विचखन[७] के नहि जान ।
आदरे मोरा हानि पए[८] भेल
वचनक दोसे[९] पेम टुटि गेल ॥
नागरे[१०] नागरि हृदयक[११] मेलि
पाचबान[१२]बले[१३]बहुलत[१४]केलि ।
अनुनए[१५] मोरि बुझाउबि रोए
वचनक कौशले[१६] की नहि होए ॥
भने विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६६, प० २६६, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६१)—१ छड़ाए। २ वढ़ाओल। ३ वड़। ४ कओने। ५ वहुड़त। ६ कओने। ७ पुरुस विचखन। ८ गए। १२ पाँचवान। १४ वहुड़त। १५ अनुनय।

मि० म (पद-सं० ४२८)—१ छड़ाए। २ वढ़ाओल। ३ रूस वओसव वड़। ४ कओने। ५ वहुड़त। ६ कओने। ७ पुरुस विचखन। ८ गए। १२ पाँचवान। १४ वहुड़त। १५ अनुनय। १६ कौसले।

झा (पद-सं० २४५)—३ वडे। ८ गए।

सं० अ०—७ पुरुष विचक्खन। ८ आदरें मोरा हानि पए। ९ दोषें। १० नागरें। ११ हृदअक। १२ पाँचवान। १३ बलें। १४ बहुरत। १५ अनुनअ। १६ कउसलें।

शब्दार्थ—छडाए = छोड़कर। रूसल = रूठे हुए को। बओसब = मनाया जाता है। परेआस = प्रयास। कओनेपरि = किस प्रकार। बहुरत = लौटेंगे। विचखन = विचक्षण, पंडित।

अर्थ—जो भाव था, वह नहीं रहा। कही हुई बात लौटकर नहीं आती। (अर्थात्, मैंने जो कुछ कह दिया, उससे पहले का भाव नष्ट हो गया। अब लाख यत्न करने पर भी वह बात लौट नहीं सकती।)

रोष छोड़कर (मैंने) हास्य बढ़ाया। (कारण,) रूठे को मनाऊँगी,—(इसमें) बड़ा प्रयास है।

अरी मैया, किस प्रकार कृष्ण लौटेंगे?

स्त्री-स्वभाव के कारण मैंने मान किया। (भरोसा था कि कृष्ण मनायेंगे। कारण,) कौन नहीं जानता कि पुरुष विद्वान् होते हैं।

(किन्तु) आदर करने से मेरी हानि ही हुई। वचन के दोष से प्रेम टूट गया।

नागर से नागरी के हृदय का मेल होता है। (अर्थात्, कृष्ण नागर नहीं हैं। नागर रहते, तो मेरी उपेक्षा नहीं करते। फिर भी) कामदेव के प्रभाव से (हम दोनों की) केलि लौट आयेगी।

(विरहिणी दूती से कहती है—) रो-रोकर मेरी विनती समझाना। वचन-चातुरी से क्या नहीं होता?

विभासरागे—

[२४७]

नहि किछु[१] पुछलि रहलि धनि बैसि[२]
लग[३] सओ[४] आइलि बहारे[५]।
परम बिरुहि भए नहि नहि नहि कए
गेलि दुर कए मोर करे ॥ ध्रु० ॥
माधव कह कके रुसलि रमणी[६]।
कते जतने पेअसि[७] परबोधलि[८]
न भेलि निअरे[९] ओं[१०] आनी[११] ॥
गोर[१२] कलेवर तसु मुख ससधर
रोसे[१३] अ(रु)नरुचि[१४] भेला।
रूप दरसन छले जनि[१५] नव[१६] रतोपले
कामे कनक बलि देला ॥

सं० अ०—२ बइसि। ११ जानी। १३ रोषेँ। १४ अरुनरुचि।

नयन[17] नीर धारे जनि टूटल[18] हारे
कुच सिलि[19] हपहरि पलला[20] ।
कनक कलस करु मदने अमिञ[21] भरु[22]
अधिक कि उभरि पलला ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ६९(क), प० २६७, पं० ३

पाठभेद--

न० गु० (पद-सं० ४०२)—२ बइसि। ३ नइ। ४ सेओ। ६ रमनी। ९-१० निअरेओ। १८ टुटल। १९ गिरि। २० परला। २२ तरु।

मि० म० (पद-सं० ४११)—१ बइसि। २ नइ। ३ सेओ। ४ बाहरे। ५ मोर करे। ६ रमनी। ७ पेअसि। ८ परिबोधलि। ९-१० निअरेओ। १२ गोर। १५-१६ नव। १८ टुटल। १९ गिरि। २१ अमिअ।

झा (पद-सं० २४६)—१ किछ। ३ लगि। ८ परिबोधलि। ९-१० निअरेओ।

शब्दार्थ - बैसि = बैठी रही। वहारे = बाहर। विरुहि = विरुद्ध। मोर करे = मेरे हाथ को। कके = क्यों। निअरे = निकट। ओ = वह। ससधर = चन्द्रमा। अ(रु)नरुचि = लाल। रतोपले = (रक्तोत्पल—सं०) = लाल कमल। कनक = सोना। बलि = पूजा। सिलि = शिला। हपहरि = धपहरि = शीघ्रता से। अमिञ = अमृत।

अर्थ—(उसने) कुछ नहीं पूछा। (अर्थात्, कहाँ आई हो? क्यों आई हो?—इत्यादि कुछ भी नहीं पूछा।) वह बैठी रह गई। (मेरे पास जाने पर) वह पास से (उठकर) बाहर आ गई। (मेरे पूछने पर) वह अत्यन्त रुष्ट होकर 'नहीं-नहीं-नहीं' करके मेरे हाथ को दूर करके (हाथ छुड़ाकर) चली गई।

हे माधव! कहो, रमणी क्यों रूठी है? कितने यत्न से (तुम्हारी) प्रेयसी को समझाया; (फिर भी) वह (तुम्हारे) निकट नहीं लाई जा सकी।

उसका शरीर गोरा है (और) उसका मुख चन्द्रमा के समान है (जो) क्रोध से लाल हो गया है। (जान पड़ता है,) जैसे रूप-दर्शन के छल से कामदेव ने नवीन लाल कमल से (उसकी) पूजा की है।

आँसू की धारा टूटे हुए हार के समान कुच-रूपी शिला पर शीघ्रता से आ पड़ी। (जान पड़ता है, जैसे) कामदेव ने कनक-कलश (का निर्माण) करके (उसे) अमृत से भर दिया है। (सो,) क्या अधिक हो जाने पर (वह कलश से) ढलक पड़ा है?

---

१७ नञन। २० पळला। २२ पळला।

विभासरागे—

[२४८]

पहिलहि चोरि[1] आएल पास
आङ्गहि आङ्ग लुकाब[2] तरास ।
बाहरि भेले देषिअ[3] देह
जैसन सिनी[4] चान्दक[5] रेह ॥ ध्रु० ॥
साजनि की कहब पुरुष[6] काज
कौसल करइते[7] तन्हि नहि लाज ।
एहि तह पाप अधिक थिक नारि
जे न गनए पर पुरुषक[8] गारि ॥
खन एक रङ्ग[9] सङ्ग[10] सब भान्ति[11]
से से करत जकरि[12] जे जाति ।
भनइ विद्यापति न कर विराम
अवसर पाए पुरत[13] तुअ काम ॥

ने० पृ० ९७, प० २६८, पं० २

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४६०)—२ नुकाव । ३ देखिअ । ४ खिनी । ११ भाति । १२ जकर । १३ पुर ।

मि० म० (पद-सं० ५६८)—३ देखिअ । ५ चाँदक । ६ पुरुस । ७ करइत । ८ पुरुसक । १२ जकर ।

झा (पद-सं० २४७)—२ नुकाव । ३ देषिअ । ९-१० रङ्ग (रमस) ।

शब्दार्थ—रङ्ग=क्रीड़ा । सिनी=वह अमावास्या, जिसमें चन्द्रमा दिखलाई पड़े ('सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली'—अमरकोश) ।

अर्थ—पहले-पहल चुराकर प्रियतम के पास आई । भय से अङ्ग में ही अङ्ग छिप रहा था । (अर्थात्, भय से सिमटती-सिकुड़ती पहले-पहल वह प्रियतम के पास आई ।)

(प्रियतम के घर से) बाहर होने पर (उसका) शरीर (ऐसा) दिखाई पड़ा; जैसे अमावास्या के चन्द्रमा की रेखा हो ।

हे सखी ! पुरुष का काम क्या कहूँ ? (अर्थात्, पुरुष के कार्य के बारे में क्या कहूँ ?) चतुराई करते उन्हें लज्जा नहीं आती ।

सं० अ०—१ पहिलहिँ चोरि । ३ देखिअ । ४ जइसन सिनी । ६ पुरुषक । ७ कउसल करइते । ११ भाँति ।

इससे स्त्रियाँ अधिक पापिनी हैं कि वे पर-पुरुष की गालियों की परवाह नहीं करतीं।

एक क्षण की क्रीड़ा में ही (पुरुष) सब तरह से संग कर लेता है। जिसकी जो जाति है, वह उसके अनुसार करेगा ही।

विद्यापति कहते हैं—विराम मत लो। अवसर पाकर तुम्हारी कामना पूरी होगी।

विभासरागे—

[२४६]

साझक[1] बेरि उगल नव शशधर[2]
भरमे विदित सबतहू[3]।
कुण्डल चक्र तरासे[4] नुकाएल[5]
दुर भेल हेरथि राहू[6] ॥ ध्रु० ॥
जनु बैंससि[7] रे बदना[8] हाथ चळाई[9]।
तुअ मुख चङ्गिम अधिक चपल भेल
कति खन धरब लुकाइ[10] ॥
रातोपल[11] जनि कमल बैंसाओल[12]
नील नलिन[13] दल तहु[14]।
तिलक कुसुम तहु माझ देषि[15] कहु
भमर आबथि नहु[16] नहू[17] ॥
पाणि[18] पलव गत अधर बिम्बरत
दसन दालिम्ब[19] बिज तोरे।
कीर दूर भेल पास न आबए
भौह[20] धनुहि के भोरे ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० ९७, प० २७१, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २२६)—१ साँझक। २ ससधर। ३ सवतहु। ६ राहु। ८ वदन। ९ बलाइ। १० नुकाइ। ११ रतोपल। १५ देखि। १६-१७ लहु-लहु। १८ पानि। १९ दालिम। २० भौंह।

सं० अ०—१ साँझक। २ ससधर। ३ सबताहु। ४ तरासेँ। ५ लुकाएल। ७ बइसलि। ९ चढ़ाइ। १२ बइसाओल। १४ तहू। १५ देखि। १९ दाळिम्ब। २० भौँह।

मि० म० (पद-सं० २६६)—१ साँझक । २ ससधर । ३ सविताहु । ६ राहु । ८ वदन । ६ चलाइ । १० लुकाई । ११ रक्तोपल । १२ बइसाओल । १३ नलिनि । १५ देखि । १६-१७ लहु-लहु । १८ पानि । १६ दाड़िम । २० भौंह ।

झा (पद-सं० २४८)—१० लुकाई । १४ तहू ।

शब्दार्थ—शशधर = चन्द्रमा । सबतहू = सर्वत्र । बदना = मुख (गाल) । बदना हाथ चढ़ाई = गाल पर हाथ रखकर । चङ्गिम = सौन्दर्य । लुकाइ = छिपाकर । रातोपल = (रक्तोत्पल—सं०) कोकनद । तहु = उसके । देषि कहु = देखकर । नहु नहू = धीरे-धीरे । पाणि = हाथ । बिम्बरत = ब्रिम्बफल के समान । दालिम्ब-बिज = दाड़िम के बीज । कीर = सुग्गा । भोरे = भ्रम ।

अर्थ—(तुम्हें देखकर) भ्रमवश सर्वत्र विदित हो गया कि सन्ध्या समय नया चन्द्रमा उग आया है। कुण्डल रूपी चक्र के त्रास से (कहीं) दूर में छिपकर राहु देख रहा है।

(अरी सखी !) गाल पर हाथ रखकर मत बैठो । तुम्हारा मुख-सौन्दर्य (चारों ओर) छिटक गया । (उसे) कबतक छिपाकर रखोगी ?

(कवि गाल पर हाथ रखकर बैठी हुई नायिका का चित्र खींचता है—मालूम होता है,) जैसे कोकनद (हाथ) में कमल (मुख) बैठाया गया हो (और) उसपर नील कमल का पत्र (नेत्र)। उसके मध्य में तिल के फूल (नासिका) को देखकर (ऐसा जान पड़ता है, जैसे) भौंरा धीरे-धीरे आता है ।

तुम्हारा हाथ पल्लव के समान, ओष्ठ बिम्बफल के समान (और) दाँत दाड़िम के बीज के समान हैं। भौंह-रूपी धनुही के भ्रम से सुग्गा दूर ही रहता है, पास नहीं आता ।

विभासरागे—

[२५०]

जकर नयन[१] जतहि लागल
ततहि सिथिल गेला ।
तकर रूप सरूप निरूपए
काहु देखि नहि भेला ॥ ध्रु० ॥
कमलवदनि राही ।
जगत तकर पुन सराहिअ[३]
सुन्दरि मीलति[४] जाही रे[५] ॥
पीन पयोधर[६] चीबुक[७] चुम्बए
कीए पटतर देला ।

सं० अ०—१ नअन । ५ पाठाभाव । ६ पओधर । ७ चिबुक ।

वदन चान्द तरासे लुकाएल[७]
पलटि हेर चकोरा ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

नेο पृο ९९(क), पο २७२, पंο ३

पाठभेद—

नο गुο (पद-संο ११६)—२ एही। ३ सराहिय। ४ मीनत। ७ नुकाएल।
मिο मο (पद-संο ३०२)—३ सराहिय। ४ मीनति।
झा (पद-संο २४९)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—सरूप=सत्य, यथार्थ। राही=राधा। पुन=पुण्य। पटतर=उपमा।

अर्थ—जिसकी आँखें जहाँ लगीं (वे) वहीं शिथिल हो गईं। (अर्थात्, राधा के जिस अङ्ग पर आँखें पड़ती हैं, वहीं शिथिल हो जाती हैं। दूसरे अङ्ग का ध्यान ही नहीं रहता।) उसके रूप का यथार्थ निरूपण करने के लिए किसी को (नख से शिख तक) देख नहीं हुआ।

राधा कमलवदना है। संसार में उसके पुण्य की सराहना करनी चाहिए, जिसे (यह) सुन्दरी मिलेगी।

(राधा के) पीन पयोधर (उसके) चिबुक का स्पर्श कर रहे हैं। किससे (उनकी) उपमा दी जाय? (मालूम होता है,) चन्द्रमा डर के मारे (राधा के) मुख में आ छिपा है (और) चकोर (पीन पयोधर) पलटकर (मुखचन्द्र को) निरख रहा है।

विभासरागे—

[२५१]

प्रथम समागम के नहि जान
सम कए तौलल पेम परान।
मधथहु न बुझल तुअ परिपाटी
बाउल[१] बनिक घरहि घर साटी ॥ध्रुο॥
कि पुछह आगे सखि कि कहिबो आँन
बुझए न पारल हरिक गेआन।

---

७ वदन चान्द तरासें लुकाएल।

संο अο— प्रथम समागम के नहि जान।
सम कए तउलल पेम परान ॥
कसल कसउटी न भेल मलान।
बिनु हुतवह भेल बारह बान ॥ध्रुο॥
कि पुछह अगे सखि! कि कहिबो आन।
बुझए न पारल हरिक गेआन ॥

बिकनए आनल रतन अमूल
देषितहि[४] बनिके हराओल मूल ॥
सुलभ भेल पहु न लहए हार
काच तुला दए गहए गमार ।
गुरुतर रजनी वासर छोटि
पासङ्ग दूती विषए नहि षोटि[५] ॥
कसल कसौटी न भेल मलान
बिनु हुतासे भेल बारह बान ।
भनइ विद्यापति थिर रहु बानि[२]
लाभ न घटए मूलहु हो हानि ॥

ने० पृ० ६६, प० २७३, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १९६)—

प्रथम समागम के नहि जान ।
सम कए तौलल पेम परान ॥
कसल कसउटा न भेल मलान ।
विनु हुतवह[१] भेल बारह बान ॥
बिक लए गेलिहु रतन अमोल ।
चिन्हिकहु बनिके घटाओल मोल ॥
सुलभ भेल सखि न रहए भार ।
काच कनक लए गाँथ गमार ॥
मनइ विद्यापति असमय बानि ।
लाभ लाइ गेलाहु मुलहु भेल हानि ॥

मि० म० (पद-सं० ३०१, न० गु० से)—१ हुतवहे ।

झा (पद-सं० २५०)—१ राउल । २ रानि ।

बिकनए गेलिहुँ रतन अमोल ।
चिन्हिकहु बनिकेँ घटाओल मोल ॥
सुलभ भेल सखि! न रहए भार ।
काच कनक लए गाँथ गमार ॥
भनइ विद्यापति असमअ बानि ।
लाभ लए गेलाहुँ मुलहु भेल हानि ॥

शब्दार्थ—पेम = प्रेम। हुतासे = अग्नि। हुतवह = अग्नि। वान = (वर्ण—सं०) कान्ति। भार = गौरव। असमय = बुरे दिन। बानि = स्वभाव।

अर्थ—प्रथम समागम को कौन नहीं जानता ? (अर्थात्, प्रथम समागम के महत्त्व को सभी जानते हैं।) प्रेम (और) प्राण—(दोनों को मैंने) बराबर करके तौला। (अर्थात्, दोनों को मैंने बराबर समझा।)

(मैंने प्रेमरूपी सोने को) कसौटी पर कसा; (किन्तु वह) म्लान नहीं हुआ। विना आग के ही (विना आग में तपाये ही) बारहगुनी कान्ति हो गई।

(अरी) सखी ! क्या पूछती है ? (मैं) दूसरा क्या कहूँगी ? (बस, इतना ही कहती हूँ कि मैं) श्रीकृष्ण का ज्ञान समझ नहीं सकी।

(मैं) अनमोल रत्न बेचने के लिए गई; (लेकिन) पहचानकर भी वणिक् ने (उसका) मोल घटा दिया।

हे सखी ! सुलभ होने पर (किसी का भी) गौरव नहीं रहता। गँवार सुवर्ण के साथ काच को (एक सूत्र में) गूँथ देता है।

विद्यापति कहते हैं—(यह) बुरे दिन का स्वभाव है (कि) लाभ के लिए गई; (किन्तु) मूल में भी हानि हो गई। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

विभासरागे—

[२५२]

साझँहि निञ मकरन्द पिआए
कमलिनि भमरा धएल[1] लुकाए।
भमि भमि भमरी बालभु षोज
मधु पिबि भमरा सुतल सरोज ।। ध्रु० ।।
केओ न कहए मझु बालभु बात
रयनि[2] समापलि भए गेल परात।
लता विलासिनि खण्डित[3] भेलि
जामिनि सगरि उजागरि गेलि ।।

सं० अ०— साँझहि निञ मकरन्द पिआए ।
कमलिनि भमरा धएल लुकाए ।।
भमि-भमि भमरी बालभु खोज ।
मधु पिबि भमरा सुतल सरोज ।। ध्र० ।।
सेज भेल परिमल फुल भेल वास ।
कतए भमर मोर पड़ल उपास ।।
न फुल कुसेसअ न उग सूरे ।
सिनेहो न जाए जीव सञो दूरे ।।

न(फुल) कुशेशय[४] न[५] उग सूरे
सिनेह न जाए जीव सञो दूरे ।।
भनइ विद्यापतीत्यादि ।।

ने० पृ० १००(क), प० २७५, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६७२)—

साँझहि निय मुख प्रेम पियाइ ।
कमलिनि भमरी राखल छिपाइ ।।
सेज भेल परिमल फुल भेल वासे ।
कतय भमरा मोर परल उपासे ।।
भमि भमि भमरी बालमु निज खोजे ।
मधु पिबि मधुकर सुतल सरोजे ।।
नइ फुल कहेसनइ उगइ न सूरे ।
सिनेहो नहि जाय जीव सौं मोरे ।।
केओ नहि कहे सखि बालमु बाते ।
रइन समागम भइ गेल प्राते ।।
भनइ विधापति सुनिये भमरी ।
बालमु अछि तोर अनहि नगरी ।।

मि० म० (पद-सं० ३७०)—३ खण्डिता । ४-५ कुसे सयन ।

झा (पद-सं० २५१)—१ धएलि । २ रयणि ।

शब्दार्थ—मकरन्द = मधु। सरोज = कमल। खण्डित = खण्डिता (जिसका मान खण्डित हो गया है, ऐसी नायिका।) उजागरि = जागकर। सेज = कुशेशय = शतपत्र कमल। शय्या। सूरे = सूर्य।

अर्थ—शाम में ही अपना मधु पिलाकर कमलिनी ने भौंरे को छिपा रखा।

भ्रमरी घूम-घूमकर (अपने) वल्लभ को खोज रही है; (किन्तु) भौंरा तो मधु पीकर कमल में सोया है।

परिमल का बिछावन हुआ—फूल में निवास हुआ; (किन्तु भ्रमरी सोचती है—) मेरा भौंरा कहाँ भूखा पड़ा है?

केओ न कहए मझु बालमु बात ।
रजनि समापलि भए गेल परात ।।
लता-विलासिनि खण्डित भेलि ।
जामिनि सगरि उजागरि गेलि ।।
भनइ बिद्यापति—सुनिए भमरी ।
बालभु अछि तोर अपनहि नगरी ।।

न कमल फूलता है (और) न सूर्य उगता है। (अर्थात् , जबतक कमल नहीं फूलेगा—सूर्य नहीं उगेगा, तबतक भौंरा नहीं मिल सकता। मैं क्या करूँ ?) स्नेह भी तो आत्मा से दूर नहीं जाता।

(भ्रमरी कहती है—) रात बीत गई। भोर हो गया। (फिर भी) कोई मुझे स्वामी की बात (पता) नहीं कहता।

लता-विलासिनी (भ्रमरी) खण्डिता हो गई। समूची रात (उसे) जगते ही बीत गई।

विद्यापति कहते हैं—अरी भ्रमरी ! सुनो। तुम्हारे वल्लभ अपनी नगरी में ही हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

धनछीरागे—

[२५३]

पाहुन आएल भवानी
बाघछाल बइसए दिअ आँनी[1]।
बसह चढल[2] बुढ[3] आबे
धुथुर गजाए[4] भोजन हुनि भावे ॥ ध्रु० ॥
भसम विलेपित आङ्गे
जटा बसथि सिर सुरसरि गाङ्गे ॥
हाडमाल फणिमाल[5] शोभे[6]
डँवरु[7] बजाब हर जुवतिक लोभे ॥
विद्यापति कवि भाने
ओ नहि बुढबा[8] जगत किसाने ॥

ने० पृ० १००(क), प० २७६, पं ३

पाठभेद—

न० गु० (हर-पदावली, पद-सं० ६)—१ आनी। २ चढ़ल। ३ बुढ़। ५ फनिमाल। ६ सोभे। ७ डमरु। ८ बुढ़वा।

सि० म० (पद-सं० ६०७)—१ आनी। २ चढ़ल। ३ बुढ़। ५ फनिमाल। ७ डवरु। ८ बुढ़वा।

झा (पद-सं० २५२)—१ पसह। ३ बुढ़। ४ गजा ए।

शब्दार्थ—गजाए = गाँजा।

अर्थ—हे भवानी ! मेहमान आये हैं। बैठने के लिए व्याघ्रचर्म लाकर दो।

बसहा बैल पर चढ़कर वृद्ध आते हैं। उन्हें धतूरे (और) गाँजे का भोजन भाता है।

सं० अ०—१ आनी। ५ फनिमाल। ६ सोभे।

भस्म-विलेपित (उनके) अङ्ग हैं। (उनके) सिर पर—जटा में—सुरनदी गंगा वास करती हैं।

हाड़ की माला (और) साँप की माला सोहती है। (वे) युवती के लोभ से डमरू बजाते हैं।

कवि विद्यापति कहते हैं—वे बूढ़े नहीं हैं। (वे तो) संसार के उत्पन्न करने-वाले हैं।

[२५४]

आजे अकामिक आएल भेषधारी[१]
भीषि[२] भुगुति लए चललि कुमारी ॥ ध्रु० ॥
भिषिआ[३] न लेइ बढाबए[४] रिसी
वदन निहारए बिहुसीँ[५] हँसी[६] ।
ए[७] ठमा[८] सखि सङ्गे निकहि[९] अछली
ओहि जोगिआ देषि[१०] मुरुछि पलली[११] ॥
दुर कर गुनपन अरे भेषधारी[१२]
काँ[१३] डिठिअओलए[१४] राजकुमारी ।
केओ बोल देषए[१५] देहे जनु काहू
केओ बोल ओभा आनि[१६](न)चाहू ॥
केओ बोल जोगिआहि देहे दहु आनी[१७]
हुनिकिओ[१८]भए[१९] बरु जिबओ भवानी ।
भनइ विद्यापति अभिमत सेवा
चन्दलदेवि[१९] पति बैजल देवा ॥

ने० पृ० १००(क), प० २७७, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (हर-प०, पद-सं० ११)—१ भेखधारी। २ भीखि। ३ भिखिआ। ४ बढ़ावए। ५-६ बिहुसि हसी। ७-८ एहि ठाम। १० जोगिया देखि। ११ पड़ली। १४ डिठि अओलए। १५ देखए। १८-१९ हुनिकि अभए।

सं० अ०—१ भेखधारी। २ भीखि। ३ भिषिआ। १० देखि। ११ पळली। १२ भेखधारी। १५ देखए। १६ आनि। १७ आनी।

मि० म० (पद-सं० ६०२)—१ भेखधारी। २ मांखि। ३ भिखिश्रा। ४ वढ़ावए। ५-६ विहुसि हसी। १० देखि। ११ पड़ली। १३-१४ काँरिठि अग्रोलए। १५ देखए। १८-१९ हुनि कि अमए। २० चन्दनदेवि।

झा (पद-सं० २५३)—३ भीषिश्र। ७-८ ए उमा। ९ निकेहि। १८-१९ हुनिकि ओ भए। २० चन्दनदेवि।

शब्दार्थ—अकामिक = आकस्मिक, हठात्। भुगुति = (भुक्ति—सं०) भोग। रिसी = रिस, क्रोध। ए ठमा = इसी स्थान में। निकहि = भली। अछली = थी। पलली = हो गई। डिठिअओलए = नजर लगा दी। (न)चाहू = नचाओ। हुनिकिओ = उनका भी।

अर्थ—आज हठात् (योगी का) वेष धारण करनेवाला आया। कुमारी (गौरी) भीख का भोग लेकर (उसके पास) चली।

(वह) भीख नहीं लेता—क्रोध बढ़ाता है। हँस-हँसकर (गौरी का) मुँह निहारता है।

इसी स्थान में सखियों के साथ (गौरी) भली चंगी थी; (किन्तु) उस योगी को देखकर मूर्च्छित हो गई।

अरे वेषधारी! (अपनी) गुणज्ञता दूर करो। (तुमने) राजकुमारी को क्यों नजर लगा दी?

कोई कहता है—किसी को देखने मत दो। कोई कहता है—ओझा को लाकर (इसे) नचाओ। (मिथिला में तंत्र-मंत्र जाननेवाले को 'ओझा' कहते हैं।)

कोई कहता है—(गौरी को) लाकर योगी को ही दे दो। भला, उनकी होकर भी भवानी जी जाय।

विद्यापति कहते हैं (कि मेरा) अभिमत सेवा (ही) है। (अर्थात्, सेवा करके ही योगी को खुश किया जा सकता है।) चन्दल (चन्द्रावती) देवी के पति बैजलदेव इसे जानते हैं।)

[२५४]

प्रथमहि शङ्कर[1] सासुर गेला
बिनु परिचए[2] उपहास पलला[3]।
पुछिओ न पुछलके बैसलाह जहा[4]
निरधन आदर के कर कहा[5] ॥ ध्रु० ॥
हेमगिरि मडप[6] कौतुकरसी[7]
हेरि हसल सबे बुढ[8] तपसी।

सं० अ०—१ सङ्कर। ३ पळला। ४ पुछिओ न पुछलक बइसलाह जहाँ। ५ कहाँ। ६ मण्डप। ७ कउतुक रसी। ८ हेरि हँसल सबे बुढ़।

से सुनि गौरि रहलि सिर नाए[९]
के कहत मा के तोहर जमाए ॥
साप सरीर काख[१०] बोकाने
प्रकृति औषध[११] केदहु जाने ।
भनइ विद्यापति सहज कहू[१२]
आडम्बरे[१३] आदर हो सबतहू ॥

ने० पृ० १०१(क), प० २७८, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (हर-प०, पद-सं० २०)—३ पड़ला। ४ जहाँ। ५ कहाँ। ६ मड़प। ७ कौतुकबसी। ८ बुढ़। ९ से सुनि रहलि गोरि शिर लाए। १० काँख। १२ कहु। १३ आड़मुरे।

मि० म० (पद-सं० ५९७)—१ सङ्कर। ३ पड़ला। ४ जँहा। ५ कँहा। ७ कौतुक बसी। ८ बुढ़। ९ से सुनि रहलि गोरि सिर लाए। १० काँख। ११ औसध।

झा (पद-सं० २५४)—२ परिचय। ५ कहाँ। ७ कौतुक वासी। ९ बुढ़।

शब्दार्थ—सासुर = ससुराल। कौतुकरसी = विनोदप्रिय। नाए = झुकाकर। बोकाने = झोली। केदहु = कौन। सबतहू = सर्वत्र।

अर्थ—शिवजी पहले-पहल ससुराल गये। (किन्तु वहाँ) विना परिचय के उपहास में पड़ गये।

जहाँ बैठे, (वहाँ बैठे ही रह गये। किसी ने) पूछने के लिए भी नहीं पूछा। (अर्थात्, किसी ने पूछा तक नहीं। (सच है,) निर्धन का कौन कहाँ आदर करता है?

हिमालय के मण्डप पर (जितने) विनोदप्रिय थे, सभी बूढ़े तपस्वी को देखकर हँसने लगे।

उस (हास्य) को सुनकर गौरी माथा झुकाकर रह गईं। (वे सोचने लगीं कि) माता को कौन कहेगा कि (ये) तुम्हारे जामाता हैं।

(शिवजी के शरीर में) साँप है। काँख में झोली है। (शिवजी की) प्रकृति का ओषध कौन जानता है? (अर्थात्, शिवजी की प्रकृति की दवा नहीं है। वे साँप और झोली नहीं त्याग सकते।)

विद्यापति कहते हैं—(यह तो) स्वाभाविक कथन है (कि) आडम्बर से ही सर्वत्र आदर होता है।

---

१० काँख। ११ अउपध। १२ आडम्बरें।

बसन्तरागे—

[२५६]

मोर बउरा[1] देखल केहु[2] कतहु जात
बसह[3] चढल[4] बिस[5] पान[6] खात ।
आखि[7] निरर[8] मुह चुआइ लार[9]
पथ के चलत बौरा बिसम्भार[10] ॥ ध्रु० ॥
बाट जाइते[11] केहु[12] हलब ठेलि
अब ओहि[13] बौरे[14] बिनु मञे[15] अकेलि ॥
हाथ[16] डबरु[17] कर लौआ[18] संख[19]
जोग[20] जुगुति[21] गिम[22] भरल माथ ।
अरगज[23] चढाए[24] आठहु[25] आङ्ग
सिर[26] सुरसरि जटा बोलइ[27] गाङ्ग ॥
विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १०२ (क), प० २८०, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३२)—१ बौरा । २ केओ । ३ बसहा । ४ चढ़ल । ५ विष । ६ भाङ्ग । ७ आँखि । ८ निड़ड़ । ९ बुयइ लार । १० विशम्भार । ११ जाइत । १२ केओ । १३ हुनि । १४ बौरा । १५ मय । १६ हात । १७ डमरू । १८ लोइया । १९ साथ । २० योग । २१ जुगुलि । २२ कृमि । २३ अरगजा । २४ चटाइय । २५ आठो । २६ शिर । २७ बोल । अन्त में निम्नलिखित भणिता है—

भनहि विद्यापति शम्भुदेव ।
अवसर अवश हमर सुधि लेब ॥

मि० म० (पद-सं० ५९८)—१ बौरा । ४ चढ़ल । ७ आँखि । ८ निड़ड़ । ९ नार । ११ जाइत । १५ मय । १६ हात । १७ डमरु । २३ अजगर । २४ टोए । २५ अठहु ।

झा (पद-सं० २५६)—२५ अठहु ।

शब्दार्थ—बउरा = पागल । केहु = किसी ने । आखि = आँख । निरर = फटी हुई । बिसम्भार = बे-सँभार, जिसे तन-बदन की सुध नहीं है । डबरु = डमरू । लौआ = लौका = कद्दू का बना कमंडल । जुगुति = युक्ति । अरगज = केसर, कस्तूरी आदि मिलाकर बनाया गया लेप ।

सं० अ०—६ भाङ्ग । ९ चुअइ लार । १० बउरा बिसम्भार । १४ बउरे । १५ मोञे । १७ डँबरु । १९ साथ । २३ अरगजा । २५ आठहुँ ।

अर्थ—किसी ने कहीं मेरे पागल को जाते हुए देखा है? बसहा बैल पर चढ़े हुए (और) विष (तथा) भाँग खाते हुए को (देखा है?

(उनकी) आँखें फटी-फटी हैं। (उनके) मुँह से लार चूती है। पागल की नाईं बे-सँभार (वे) मार्ग में चलते हैं।

(हाय!) राह चलते कोई उन्हें ठेल देगा! उन पागल के विना अब मैं अकेली हो गई हूँ।

(उनके) हाथ में लौका के साथ डमरू है। योग-युक्ति से (उनका) माथा भरा है।

(उन्होंने) आठों अंग में अरगजा चढ़ा लिया है। (उनके) सिर पर, जटा में सुरसरि गंगा बोल रही है। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

वसन्तरागे—

[२५७]

कुवलय कुमुदिनि चौदिस[1] फूल
कै रव[2] कोकिल दह दिस[3] बूल[4]।
खने कर साद खनहि कर खेद
बैसल[5] विषधर पढे[6] जनि[7] वेद[8] ॥ ध्रु० ॥
आएल रे वसन्त ऋतुराज[9]
भमर[10] विरहे[11] चलु भमरि समाज ॥
डरि डरि परे वासरे[12] गोपि मेलि
कान्ह[13] पैसल वन[14] जनि[15] कर केलि।
गोपी[16] हसलि अपन मुख हेरि
चान्द पलाएल[17] हरिणक सेरि ॥
भनइ विद्यापतीत्यादिं ॥

ने० पृ० १०२, प० २८२, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० प्र०-५०८)—

कुवलअ कुमुदिनि चउदिस फूल।
कोकिल कलरवे दह दिस भूल ॥
आएल वसन्त समय ऋतुराज।
विरहे भमरि चलु भमर सा ज ॥

सं० अ०—१ चउदिस। २ कए रव। ३ दहोदिस। ५ बइसल। ६ पढ़। ११ विरहेँ। १३ कान्ह पइसल। १७ पळाएल।

उरि उरि परेवा बहु गोपि मेलि ।
कान्ह पइसल वन कर जल केलि ॥
राधा हसलि अपन मुख हेरि ।
चाँद पड़ाएल हरिनक सेरि ॥
खने कर सासा खने कर खेद ।
वइसल विषधर पढ़ जनि वेद ॥
भोगी अछल महेसर भेल ।
पान तमोर हाथ कए देल ॥
मधुए पिविए पिवि सुतल हे सेज ।
धएल सुधाकरे अरुनक तेज ॥
भनइ विद्यापति समयक अन्त ।
न थिकए वरसा न थिक वसन्त ॥

मि० म० (पद-सं० ५७२ ख)—१ चउदिस । २ केरव । ४ भूल । ५ बेसन । ६-७-८ पढ़ज निवेद । ९ रितुराज । १० भमरे । १२ सबे । १३ कान्हा । १४-१५ जनि । १६ गोपि । १७ पलाअल ।

झा (पद-सं० २५७)—२ कैरव । १२ उरि उरि परेवा सबे ।

शब्दार्थ—कै रव = शब्द करके । साद = प्रसाद, प्रसन्नता । जनि = (जन—स्त्री०) सखी । परे वासरे = पराह्ल । वन = जल (जीवनं भुवनं वनम्—अमरकोश) । सेरि = आश्रय ।

अर्थ—चारों ओर कुवलय और कुमुदिनी खिले हुए हैं । शब्द करके कोकिल दसो दिशाओं में घूम रहे हैं ।

(वे) क्षण-भर में (कभी) प्रसन्नता (प्रदान) करते हैं (और) क्षण-भर में (कभी) खेद करते हैं । (मालूम होता है, जैसे बैठा हुआ विषधर वेद पढ़ रहा है । (अर्थात्, जिस प्रकार विषधर बैठकर यदि वेद पढ़ता हो तो, वेदपाठ से क्षण-भर के लिए प्रसन्नता तो होगी; किन्तु, दूसरे ही क्षण विषधर को देखकर खेद भी होगा । इसी प्रकार कोकिल के कलरव से क्षण-भर के लिए प्रसन्नता तो होती है; किन्तु दूसरे ही क्षण में विरही को खेद भी होता है ।)

ऋतुराज वसन्त आ गया । भ्रमर विरह से (व्याकुल होकर) भ्रमरी के समाज को चला ।

(लोक-लाज से) डर-डरकर पराह्ल में गोपियाँ आ मिलीं । कृष्ण ने (उनके साथ) जल में प्रवेश किया । गोपियाँ केलि करने लगीं ।

गोपियाँ (जल में) अपना मुख देखकर हँसने लगीं । कारण, चन्द्रमा भागकर हरिण के आश्रय में आ गया था । (अर्थात्, नेत्र-रूपी हरिण के आश्रय में मुख-रूपी चन्द्रमा को देखकर गोपियाँ हँसने लगीं ।)

बसन्तरागे—

[२५८]

ओतएक[१] तन्त[२] उदन्त न जानिअ
एतए अनल बम चन्दा ।
सौरभ सार भार अरुझाएल[३]
दुइ पङ्कज मिलु[४] मन्दा[५] ॥ ध्रु० ॥
कोकिल काञि सन्तावह काहू[६] ।
ताओ धरि जनु पञ्चम गाबह
जाबे दिगन्तर[७] नाहू[८] ॥
मदनक तन्त अन्त[९] धरि[१०] पलटए
बुझितहु होसि अञानी[११] ।
आजुक[१२] कालि कालि नहि बूझसि
जौवन बन्ध[१३] छुट पानी ॥
पिआ अनुरागी तञे अनुरागि(नि)
दुहु दिस बाढु[१४] दुरन्ता ।
मञे[१५] बरु दसमि दसा गए अङ्गिरल[१६]
कुसले[१७] आबथु[१८] मोर कन्ता ॥
पाडरि परिमल आसा पूरथु
मधुकर गाबथु गीते ।
चान्द रयनि[१९] दुहु अधिक सोहाञुनि[२०]
मोहि पति सबे विपरीते ॥

ने० पृ० १०३(क), प० २८३, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ४१०)—१-२ ओतए कतन्त। ३ अरुझाए न। ४-५ मन्दा। ६ कान्ह। ७-८ दिगन्त बनाह। ९-१० अनुधरि। ११ सञानी। १२ आजक। १३ बन्धु। १४ बाढ़ु। १८ अविथु २० सोहाञुलि।

झा (पद-सं० २५८)—पाठभेद नहीं है।

सं० अ०—३ सउरभ-सार-भार अरुझाएल। ११ बुझितहुँ होसि अञानी। १५ मोञ। १६ अङ्गिरब। १७ कुसलेँ। १९ रजनि।

शब्दार्थ—तन्त = (तन्त्र—सं०) व्यवहार। उदन्त = समाचार। अनल = आग। सौरभ = सुगंध। काञि = क्यों। ताओ धरि = तवतक। दिगन्तर = दूर देश। नाहू = स्वामी। अजानी = अज्ञानी। दुरन्ता = दुराव। दसमि दसा = मृत्यु। पाडरि = (पाटली—सं०) गुलाब। परिमल = सुवास। आसा = (आशा—सं०) दिशा। मधुकर = भ्रमर। रयनि = (रजनी—सं०) रात्रि। मोहि पति = मेरे लिए।

अर्थ—वहाँ का व्यवहार और समाचार (मैं) नहीं जानती। किन्तु यहाँ तो चन्द्रमा आग उगल रहा है।

(वहाँ तो वे) सौरभ-सार के समूह में (अर्थात्, प्रेम-प्रीति में) उलझे हैं (और यहाँ) दो कमल (नेत्र) म्लान हो रहे हैं।

अरे कोकिल! किसी को क्यों सन्ताप देते हो। तबतक पञ्चम स्वर में मत गाओ, जबतक (मेरे) स्वामी दूर देश में हैं।

कामदेव का व्यवहार अन्त तक लौटता है—इसे समझकर भी वे) अज्ञानी बनते हैं?

आज का 'कल' कल नहीं समझते। अर्थात्, स्वामी ('कल आऊँगा'- यह कह भेजते हैं; पर कल होते ही भूल जाते हैं। और यहाँ) यौवन-रूपी बाँध से पानी छूट रहा है। (अर्थात्, धीरे-धीरे यौवन छीज रहा है।)

(राधा दूती से कहती हैं—)

(मेरे) प्रिय अनुरागी हैं। तू भी अनुरागिणी है। (फिर भी न जाने, क्यों) दोनों ओर दुराव बढ़ रहा है?

भले ही मैं मृत्यु अंगीकार करूँगी; (किन्तु) मेरे स्वामी सकुशल लौट आवें।

गुलाब सुवास से दिशाओं को भर दे, भौंरे गीत गायें।

चन्द्रमा (और) रात्रि—(ये) दोनों भी बड़े सुहावने हैं; पर मेरे लिए सभी विपरीत (दुःखदायी) हैं।

वसन्तरागे—

[२५६]

कतन[१] झोरी[२] सिन्दुरे[३] भरलि
भसमे भरु बोकान।
बसह[४] केसरि मजूर[५] मुसा
चारुहु[६] पलु पलान॥ ध्रु० ॥
डिमिकि[७] डिमिकि[८] डबरु[९] बाजए[१०]
इसर खेलए[११] फागु।

सं० अ०—३ सिन्दुरेँ। ५ मजूर मूसा। ६ चारिहु पळु। ९ डँबरु। ११ ईसर खेलए।

भसमे सिन्दुरे दुअओ[12] खेडा[13]
एकहि दिवसे[14] लागु ॥
सझाँञे[15] सिन्दुरे[16] भरु सरुसिति[17]
लाछीहि[18] भरलि गोरी[19] ।
इसरे[20] भसमे भरु नराएन[21]
पीत वसन बोरी[22] ॥
एके[23] तञो[24] नागट[25] अओके उमत[26]
इसर[27] धुथुर[28] खाए[29] ।
अओके उमति खेडि[30] खेलाबए[31]
किछु न बोलए[32] जाए[33] ॥
गरुड[34] वाहन देव नराएन[35]
बसह[36] चढु[37] महेस[38] ।
भने[39] विद्यापति कौतुके[40] गाओल[41]
सङ्गहि फीरथि[42] देस[43] ॥

ने० पृ० १०३, प० २८४, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४१)—१ कञ्चने । २ झोरि । ३ सिन्दुर । ४ बसहा । ५ मयुर । ६ चारिहु । ७-८ डिमिक डिमिक । ९ डामरु । १० बाजइ । ११ खेलइ । १२ दुयओ । १३ खेड़ा । १४ दिवस । १५ सञ्झाय । १६ सिन्दुर । १७ सरस्सति । १८ लछिहि । १९ गौरि । २० इसर । २१ नरायण । २२ बोरि । २३ एक । २४ तौ । २५ नाँगट । २६ तौ उमत । २७ ईशर । २८ धथुर । २९ खाय । ३० खेड़ि । ३१ खेड़ावय । ३२ बोलइ । ३३ जाय । ३४ गरुड़ । ३५ नरायण । ३६ बसहा । ३७ चढ़ु । ३८ महेश । ३९ मनइ । ४० कौतुक । ४२ फिरथु । ४३ देश ।

मि० म० (पद-सं० ५९९)—१कतने । २ झोड़ि । १० बजए । ११ खेलइ । १२ दुयओ । १३ खेड़ा । १५ सञ्झाय । १७ सरस्सति । १८ लछिहि । १९ गौरि । २० इसर । २१ नरायन । २२ बोरि । २३ एक । २५ नाँगट । २७ किछु नर इशर । २८ धथुर । ३० खेड़ि । ३२ बोलइ । ३४ गरुड़ ।

झा (पद-सं० २५९)—४१ गोओल ।

विशेष—'किछु न बो'—ये चार अक्षर 'इसर धुथुर खाए' से पहले हैं ।

शब्दार्थ—बोकान = झोला । पलान = जीन, चारजामा । इसर = (ईश्वर— सं०) महादेव । खेड़ा = खेल । दिवसे = दिन में । सझाँञे = संध्या ने । सरुसिति = सरस्वती ।

---

१२ सिन्दुरेँ दुअओ । १५ सञ्झाञे । १६ सिन्दुरेँ । १८ लाछिहिँ । २१ ईसर भसमे भरु नराञेन । २६ एक तञो नाङ्गट अओके उमत । २७ ईसर । ३५ नराञेन । ४० कउतुक ।

लाछीहि = लक्ष्मी को। गोरी = गौरी। नागट = नग्न। उमत = उन्मत्त। खेडि = खेल। कौतुक = आश्चर्य।

अर्थ—कितनी झोलियाँ सिन्दूर से भरी हैं (और कितने) झोले भस्म से भरे हैं। बसहा, सिंह, मयूर (और) चूहा—चारों पर चारजामे पड़ गये।

डमरू 'डिमिक-डिमिक' बोल रहा है। महादेव फाग खेल रहे हैं। भस्म (और) सिन्दूर—दोनों से एक ही दिन खेल होने लगा।

सन्ध्या ने सिन्दूर से सरस्वती को भर दिया (और) गौरी ने लक्ष्मी को भर दिया। महादेव ने भस्म से पीले वस्त्र को सराबोर करके नारायण को भर दिया।

महादेव एक तो नग्न हैं, दूसरे उन्मत्त हैं। (फिर) धतूरा खाते हैं। (इसलिए) और उन्मत्त होकर खेल खेलते हैं। कुछ कहा नहीं जाता।

नारायण गरुडवाहन हैं (और) महादेव बसहा पर चढ़ते हैं। सुकवि विद्यापति आश्चर्य का गान करते हैं (कि फिर भी वे दोनों) साथ-साथ संसार में घूम रहे हैं।

वसन्तरागे—

[२६०]

तरुअर बलि धर डारे जाँति
सखि गाढ[1] अलिङ्गन[2] तेहि भाँति[3]।
मञे नीन्दे निन्दारुधि करञो काह[4]
सगरि रयनि[5] कान्हु[6] केलि चाह ॥ ध्रु० ॥
मालति रस बिलसए भमर जान
तेहि भाति (कान्ह) कर[7] अधर पान ॥
कानन फुलि गेल कुन्द फूल
मालति मधु मधुकर पए जूल[8]।
परिठवइ सरस कवि कण्ठहार
मधुसूदन राधा वन-विहार ॥

ने०पृ० १०४(क), प० २८५, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २६१)—१ गाढ़ । २ आलिङ्गन । ८ भूल ।
मि० म० (पद-सं० ४७७)—१ गाढ़ । २ आलिङ्गन । ८ भूल ।
झा (पद-सं० २६०)—३ माति । ८ गून ।

सं० अ०—२ आलिङ्गन । ४ मोञ निन्दे‌ँ निन्दारुधि करञो काह । ५ रजनि । ६ कान्ह । ७ तेहि भाँति कान्ह कर । ८ जूळ ।

शब्दार्थ—तरुअर = तरुवर। वलि = (वल्ली—सं०) लता। डारे = डाल से। निन्दारुधि = (निद्रावरुद्ध—सं०) नींद से अवरुद्ध। काह = क्या। जूळ = जुड़ाता है। परिठबइ = (परिस्थापयति—सं०) प्रस्तुत करते हैं।

अर्थ—(जिस तरह) तरुवर लता को अपनी डाल से दबाकर रखता है, हे सखी! उसी तरह (श्रीकृष्ण) गाढ आलिङ्गन देते हैं।

मैं निद्रावरुद्ध हूँ। क्या करूँ? कृष्ण सारी रात केलि चाहते हैं।

(जिस प्रकार) भ्रमर मालती के रस का विलास करना जानता है, उसी प्रकार (कृष्ण) अधर पान करते हैं।

जंगल में कुन्द का पुष्प विकसित हो गया। मालती के मधु से भौंरा भी जुड़ा गया।

सरस कवि कण्ठहार (विद्यापति) राधा-कृष्ण का वन-विहार प्रस्तुत करते हैं।

वसन्तरागे—

[२६१]

चल देखने[1] जाउ[2] ऋतु[3] वसन्त
जहा[4] कुन्द कुसुम कैतव[5] हसन्त॥
जहा[6] चन्दा निरमल भमर कार
रयनि[7] उजागरि[8] दिन अन्धार॥
मुगुधलि मानिनि[9] करए मान
परिपन्तिहि पेखए पञ्चवान॥
परिठवइ[10] सरस कवि कण्ठहार
मधुसूदन राधा वन विहार॥

ने० पृ० १०४(क), प० २८६, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६०८)—३ रितु। ४ जहाँ। ५ केतकि। ६ जहाँ। ९ भामिनि। १० मनइ।

मि० म० (पद-सं० ४७३)—१ देखए। ३ रितु। ४ जहाँ। ५ केतकि। ६ जहाँ। ८ उजागर। ९ भामिनि। १० मनइ।

झा (पद-सं० २६१)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—कार = काले। रयनि = रात। उजागरि = उजली। परिपन्तिहि = (परिपन्थी—सं०) शत्रु को = प्रतिपक्षी को। पेखए = घूर रहा है।

सं० अ०—२ जाऊ। ३ रितु। ४ जहाँ। ५ केतकि। ६ जहाँ। ७ जहाँ रजनि। ९ जहाँ मुगुधलि मानिनि।

अर्थ—चलो, जहाँ कुन्द, कुसुम और केतकी खिलती हैं, (उस) वसन्त ऋतु को देखने चलें।

जहाँ निर्मल चन्द्रमा है, (जहाँ) काले भ्रमर हैं। (निर्मल चन्द्रमा के कारण जहाँ) रातें उजली हैं (और काले भ्रमरों के कारण जहाँ) दिन अन्धकारमय हैं।

(जहाँ) मुग्धा मानिनी मान करती है (अर्थात्, ज्ञाताज्ञातयौवना ही मान करती है। और) कामदेव (अपने) प्रतिपक्षी को घूर रहा है।

सरस कवि-कण्ठहार (विद्यापति) राधा-कृष्ण का वन-विहार प्रस्तुत कर रहे हैं। (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

[२६२]

जाहि देस पिक मधुकर नहि गूजर[१]
कुसुमित नहि कानने।
छव[२] ऋतु[३] मास भेद नहि जानए
सहजहि अबल मदने ॥ ध्रु० ॥
सखि हे से देस पिअ[४] गेल मोरा।
रसमति बानी[५] जतए न जानिअ[६]
सुनिअ[७] पेम बड[८] थोला[९] ॥
कहलिओ कहिनी जतए न बूझए[१०]
की करति अङ्गित काजे।
कओन परि ततए[११] रतल अछ बालभु
नि(र)भय निगुण[१२] समाजे ॥
हमे अपना के[१३] धिक कए[१४] मानल
कि कहब तन्हिकि बडाइ[१५]।
कि हमे गरुबि गमारि(नि)[१६] सबतह
की रति विरत कन्हाइ[१७] ॥
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

ने० पृ० १०४, प० २८७, पं० १

सं० अ०—२ छओ। ३ रितु। ९ थोळा। १२ निरभय निगुन। १३ काँ। १५ बड़ाई। १६ गमारिन। १७ कन्हाई।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६८३)--१ गुजर। २ छत्रो। ३ रितु। ४ पिआ। ५ वाणी। ६ जानिअ। ७ सुनिअ। ८ बड़। ९ थोरा। १० बुझए। १२ निगुन। १४ कय।

मि० म०—(पद-सं० ५२७)—१ गुजर। २ छत्रो। ३ रितु। ४ पिआ। ६ जानिअ। ७ सुनिअ। ८ बड़। १० बुझए। १२ निगुन। १४ कय।

झा (पद-सं० २६२)--७ सुनिअ। १० बुझए। ११ ततहि। १५ बडाई। १७ कन्हाई।

शब्दार्थ—पिक = कोकिल। मधुकर = भ्रमर। नहि गूजर = शब्द नहीं करते। कानने = जंगल। वानी = (वाणी—सं०) बात। कहिनी = कथा, वार्त्ता। अङ्गित = (इङ्गित--सं०) इशारा। गरुबि = (गुर्वी--सं०) बड़ी।

अर्थ—जिस देश में कोकिल नहीं गाता, भौंरा नहीं गूँजता (और) जंगल कुसुमित नहीं होता।

(जहाँ) छहों ऋतुओं में महीने का भेद नहीं जाना जाता (अर्थात्, बारहों महीने समान ही मालूम होते हैं। और (जहाँ) कामदेव स्वभाव से ही निर्बल है।

हे सखी! मेरे प्रिय उस देश को गये, जहाँ (कोई) रसवती (सरसा) वाणी नहीं जानता। सुनती हूँ, (जहाँ) प्रेम बहुत थोड़ा है।

जहाँ कही हुई बात भी (कोई) नहीं समझता, (वहाँ) संकेत क्या काम करेगा?

(मैं समझ नहीं पाती कि) वहाँ—(कामदेव से) निर्भय होकर निर्गुण समाज में किस प्रकार (मेरे) वल्लभ अनुरक्त हैं?

(अब इससे अधिक मैं) उनकी बड़ाई (!) क्या कहूँगी? मैंने अपने को (ही) निन्दनीय मान लिया।

(मुझे संदेह हो रहा है कि) क्या मैं सबसे बड़ी गँवारिन हूँ (अथवा) कृष्ण (ही) रति-विमुख हो गये हैं?

●●

परिशिष्ट (क)

नेपाल-पदावली में उपलब्ध अन्य कवियों के पद

मालवरागे—

[१]

प्रथम तोहर पेम गौरव[१]
गरबे राङलि[२] गेलि[३] ।
अधिक आदरे[४] लोभे[५] लुबुधलि[६]
चूकलि[७] ते[८] रति खेडि[९] ॥ ध्रु० ॥
खेमह एक अपराध माधव
पलटि हेरह ताहि ।
तोह बिनु जओ[१०] अमृत[११] पिबए[१२]
तेअओ[१३] न जीवए[१४] राहि ॥
कालि परसू[१५] इ[१६] मधुर जे छलि
आजे[१७] से भेलि तीति ।
आनहु बोलब पुरुष निर्द्दय[१८]
(हठहिँ)[१९] तेज पिरीति[२०] ॥[२१]
वैरिहु[२२] के[२३] एक दोस[२४] मरसिअ[२५]
राजपडीत ज्ञान[२६] ।
वारि कमला कमल रसिआ[२७]
धन्य मालिक जान[२८] ॥

ने० पृ० १२(क), पद-३०, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५०६)—१ गउरवे। २ वाउरि । ३ भेलि । ४ आदर । ५ लोभ । ६ लुबुधलि । ७ चुकलि । ८ ते। ९ रति केलि । १० तोह बिना जदि । ११ अमिय । १२ पीउति । १३ तइअओ । १४ जीउति । १५ परसु । १६ पाठाभाव । १७ आज । १८ निरदय । १९ हठहि । २० पिरिती । २१ तुहुँ जौं अब ताहि तेजव इ अति कओन वड़ाइ । तोंह बिनु जब जीवन तेजब से बध लागव कांइ । २२ बइरिहु । २३ पाठाभाव । २४ अपराध । २५ खेमिय । २६ राजपण्डित मान। २७ रमनि राधा रसिक यदुपति । २८ सिंह भूपति जान ॥

मि० म० (परिशिष्ट-ग, पद-सं० १)—२ बाउलि। १२ पीबए । १३ तैश्रश्रो। १८ निद्दय। १६ पाठाभाव। २२-२८ बैरिकूके एक। दोस मबसिश्र राजपण्डित ज्ञान। कवि कमलाकमल रसिया धन्य मानिक जान।

झा (एपेंडिक्स-ए, सं० १)—२ गौरव बाउलि। १३ तैश्रो। १७ आज। १६ (हठहि)।

मालवरागे—

[२]

परिजन कर लए देहरी सुह दए
रोअए पथ निहारि ।
केओ न[१] कहए पुर परिहरि माधुर
कओन[२] दिन आओत मुरारि ॥ ध्रु० ॥
कहि दए समदब के सुमझाओत[३]
कठि(न)[४] हृदय पिअ तोर[५] ॥
पिआए[६] बिसरल नेह अवसन भेल देह
कत कत सहब सँताप ।
कालि कालि भए मदन आगु कए
आओत पाउस पाप[७] ॥
कंस नृपति भन धैरज वर[८] कर मन
पूरत सबे तुअ आस ॥

ने० पृ० १५(क), प० ४१, पं० २

पाटभेद—

न० गु० (पद-सं० ७०६)—२ कओन। ३ सुमझाएत। ४ कठिन। ५ तोरा। ६ पिअ। ७ ताप। अन्त की दो पंक्तियाँ नहीं हैं।

मि० म० (परि०, पद-सं० २)—१ केओन। ४ कठिन। ५ तोरा। ८ धर।

झा (एपें० ए, पद-सं० २)—४ कठि(न)। ५ पिय तोर।

मालवरागे—

[३]

माधव रजनी पु(नु)[१] कतए आउति सजनी
शीतल[२] ओरे चन्दा
बडे पुने मिलत[३] गोविन्दा ना रे की ॥

मुख ससि हेरी अधर अमिअ[४] कत बेरी
अनन्दे[५] ओरे पिबइ
मुइलेओ[६] मदन जिअ(ा)बै[७] ना रे की ॥
हरि देल हरवा अलषित[८] रतन पबरवा
जीव लाए रे धरवा
निधन नाओ[९] निधाने ना रे की ॥
आतम[१०] गबइ[११] बडे पुने पुनमत पबइ[१२]
मानस[१३] ओ[१४] पुरला
सकल कलुष[१५] बिहि हरला ना रे की ॥

ने० पृ० १८, प० ४८, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ८२८)—१ पुनु। २ सितल। ३ मीलत। ४ अमिअ। ५ अनन्द। ६ मुह लए। ७ जिअवइ। ८ अलखित। ९ नाई। १० कवि विद्यापति। १४ पाठाभाव। १५ कलुख।

मि० म० (परिशिष्ट-ग, ३)—१ पुनु कत ए। ३ मीलत। ५ आनन्दे। ६ मुहा लए। ७ जिअवइ। ८ अलखित। १३ मानसे। १५ कलुख।

झा (एपेंडिक्स, बी-२)—१ पुनु। ३ बड़ पूने मीलत। ६ मुइलओ। ११ गरइ। १२ परइ।

विशेष—डॉ० सुभद्र झा ने इस पद को अपूर्ण पद मान लिया है।

[४]

पएर पलि[१] बिनबओ साजना रे
जति अनुचित पलु[२] मोर।
जनु बिघटाबह नेहरा[३] रे
जीवन जौवन थोल[४] ॥ ध्रु० ॥
पलटह गुणनिधि[५] तोहे गुण रसिआ[६]
जीवे करह बरु साति ॥
पुछलेहु उतर न आपहो रे[७]
अइसन[८] लागए मोहि भान।
की तुअ मन लागला रे
किए कुशल पचबान[९] ॥

काठ कठिन हिअ[१०] तोहरा रे
दिनहु दया[११] नहि तोहि ।
कंसनराएन गाबिहा रे
निरमम का नहि मोह[१२] ॥

ने० पृ० २१(क), प० ५६, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४४६)—१ पड़ि । २ पड़ु । ४ थोर । ५ गुननिधि । ६ गुनरसिया । ७ पुछलेहु इ तरुन आपहि रे । ८ अइसना । ६ पंचबान । १२ निरमम कान्हहि मोहि ।

मि० म० (परिशिष्ट, ग-४)—३ नेह रा । ६ पँचबान । १० हिय । १२ निरमम नहि मोह ।

झा (एपेंडिक्स-ए-३)—३ नेहवा । ४ थोळ । ११ हृदय ।

[५]

प्रथम बएस जत उपजल नेह
एक परान[१] एक जनि देह ।
तइसन पेम जदि बिसरह मोर
काठहु चाहि कठि(न) हिअ तोर[२] ॥ ध्रु० ॥
ए प्रभु ठाकुर न[३] तेजह नारि
तोह बिनु लागब[४] कओन ओहारि[५] ॥
सुपुरुस चिन्हिअ एहे परिनाम
जैसन[६] प्रथम तेसन[७] अवसान ।
टुटल पेम नहि लाग एक ठाम
विष्णुपुरी कह बुझसि विराम ॥

ने० पृ० २२, प० ६०, पं ४

पाठभेद—

मि० म० (परि०-ग-५)—१ परान दौ । २ काठक चाहिक विहि तअ तोर । ३ ए प्रभु इ कुबन ४ लागर । ५ तुहारि । ६ जेसन ।

झा (एपेंडिक्स-ए-४)—४ नागर । ७ तैसन ।

[६]

माधव ओ[१] बेरि दुरहि[२] दुर सेवा ।
दिन दस धैरज कर यदुनन्दन
हमेउ परबि[३] बरु देवा ॥ ध्रु० ॥

करइ[४] कुसुम बेकत मधु[५] न रहते
हठ जनु करिअ मुरारि ।
तुअ अह दाप[६] सहए के पारत
हमे[७] कोमल तनु नारि ॥
आइति हठ जओ करबह माधव
तओ आइति नहि मोरी[८] ।
काञ्चि[९] बदरि उपभोगे न आओत
उहे की फल पओबह[१०] तोळी[११] ॥
एति खनि[१२] अमिञ[१३] वचन उपभोगह
आरति अनुदिने[१४] देवा ।
लखिमिनाथ[१५] भन सुन यदुनन्दन
कलियुग[१६] निते मोरि सेवा ॥

ने० पृ० ४८, प० १३०, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १६३)—१ ए। २ दुरहु। ३ हमे तप बरि। ४ कोरि। ५ मधु वेकत। ६ इह दाप। ७ हम। ९ काँचि। १० पाठाभाव। ११ तोरी। १३ अमिअ। १४ अन दिने। १६ कलि युगे।

मि० म० (एपें०-ग-६)—३ हमे तप बरि। ९ काञ्चि। १२ एति खने।

झा (एपें० ए-५)—३ हमे तप बरि। ८ तओ (न) आइति मोरी। ११ तोली। १२ एति खने। १५ लखिमीनाथ।

धनछीरागे—

[७]

जए जए शङ्कर जए त्रिपुरारि
जए अध पुरुष[१] जए अधनारि ॥ ध्रु० ॥
आधा धवल आधा तनु गोरा
आध सहज कुच आध कठोरा[२] ॥
आध[३] हडमाला[४] आधा मोती[५]
आध[६] चान्दन सोभे आध विभूती।
आध चेतन मति आधा भोरा
आध पटोरे आध मुज डोरा ॥

आध जोग आध भोग विलासा
आध पिनाक[७] आध नगफासा[८] ।
आध चान्द आध सिन्दुर सोभा
आध विरूप[९] आध जग लोभा ॥

ने० पृ० ४७ (क), प० १३२, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं०, हर ७)—१ पुरुस । २ कटोरा । ३ आध । ४ हड़माला । ५ गज मोती । ६ आधा । ७ पिधान । ८ नगवासा । ९ विरुप । अन्त में भणिता है—

भने कविरतन विधाता जाने ।
दुइ कए वाटल एक पराने ॥

झा (एपे०, ए-६)—१ जय जय शङ्कर जय त्रिपुरारि । जय अध पुरुष जय अधनारि । ९ विरुप । अन्त में न० गु० की भणिता ।

आसावरीरागे—

[८]

का लागि सिनेह बढाओल[१]
सखि अहनिसि जागि ।
भल कए कपट अओ[२] लओलन्हि[३]
हम अबला बध लागि ॥ ध्रु० ॥
मोरे बोले बोलब सुमुखि हरि
परिहरि मने लाज ॥
सहजहि अथिर जौवन[४] धन
तहु[५] जदि[६] बिसरए नाह ।
भेलिहु वनक[७] कुसुम सम
जीवन गेलेहि उछाह ॥
पिआ बिसरन[८] तह सबे लहु[९]
कवि सिरिधर हेन भान ।
कंस नराएण[१०] नृप वर
सोर(म)[११] देवि रमान ॥

ने० पृ० ५२ (क), प० १४६, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (परि०, ग-७)—१ बढ़ाग्रोल । २-३ अतुलग्रोलन्हि । ७ धनक । ६ लहइ । १० कंसनाराएन ।

झा (एपें०, ए-७)—४ यौवन । ५ तुइ । ६ यदि । ७ घनक । ८ विसरन । १० कंसनाराएन । ११ सोर (म) ।

केदाररागे—

[९]

कुसुमित कानन माँजरि पासे
मधु लोभें मधुकर धाग्रोल ग्रासे ।
सजनी हिग्र मोर झूरे
पिग्रा मोर बहु गुने रह[1] नरि दूरे ॥
माघ मास कोकिल बयरि[2]वन नादे[3]
मन बसि मनभव[4] कर अवसादे ॥
तन्हि हम पिरिति एके पराने
से ग्राब दोसर राषत के ग्राने ।
हृदय हार राखल भोरे
ग्रइसन पिग्रार मोर गेल छाडि रे ॥
नृप मलदेव कह सुन......

ने० पृ० ६०, प० १७०, पं० ४

पाठभेद—

मि० म० (परि०, ग-८)—१ रहल । २-३ वय विरल नादे । ४ मन भव ।

झा (एपें०, ए-८)—१ रहल । २-३ रय विरल नादे । ४ मन भर ।

कानलरागे—

[१०]

पहिलहि महघि भइए देबि डीठि[1]
दूती पठाउबि ग्राडी[2] डीठि[3] ।
ग्रति[4] ग्ररथिते[5] किछु छाडबि[6] लाज
कौतुके कामे साहि देब काज ॥ ध्रु० ॥
सुन सुन सुन्दरि रस[7] धर गोए
ग्ररथिते[8] ग्रभिमत कतहु न होए ।

सखि जन अनइते रहब अङ्ग मोलि
पर पतिआओब[९] विरह बोल बोलि ॥
सिनेह लुका न[१०] करब अवधाने
पहु का[११] होएबह[१२] दोसरि पराने ।
भनइ अमृतकर भलि एहु बानी
के सुनि एहु धर सुमुखि सयानी ॥

ने० पृ० ६२, प० १७६, पं० २

पाठभेद—

मि० म० (परि०-ग-६)—१ डीठे। २ आड़ी। ३ डीठे। ४-५ सुतिअ रखिते। ६ छाड़बि। ७ रम। ८ अकथिते। ९ परपति आओब। १० लुकान। ११-१२ पहुकाहो एवह।

झा (एपें०, ए-६)—१० लुका(ए) न। ११ पहुका।

कानलरागे—

[११]

दह दिस भमि भमि लोचन आब
तेसरि दोसरि कतहु[१] न पाब ।
लगहि अछलि धनि बिहि हरि लेल
तलितलता सागरिका भेलि ॥ ध्रु० ॥
हरि हरि विरहे छुइल बछराज
बदन मलान कओन[२] करु आज ।
चान्दन सीतलता[३] ताहेरि[४] काए
तखने न भेलिए हृदय मोहि लाए[५] ॥
ते अधिकाइलि[६] मानस आधि
धक धक कर मदनानल धाधि[७] ।
भनइ अमिअकर नागरि नाम
आँक बिकएलिहि सिरिजल काम[८] ॥

ने० पृ० ६४(क), प० १७९, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (परि०-ग-१०)—१ अतहु। २ कओने। ३ सीतल। ४ तातहेरि। ५ नाए। ६ अधिकाइनि। ७ धाँधि। ८ आकरि कएलिहि सिरिजन काम।

झा (एपें०-ए-१०)—३ सीतल। ८ आकवि कएलिहि सिरिजल काम।

[१२]

एकसर अथिकहु राजकुमार
अमोल जरा तहि[१] अछए अपार।
मति भरमलि थिक ओल इआर[२]
जागि पहर के करत बिआर ॥ ध्रु० ॥
कइए सनान सुमुखि घर आब
पथिक बैसल पथ कर परथाब ॥
विधि हरि लेलि मोरि पेअसि नारि
सहइ न पालिअ मदनक[३] धालि[४]।
कओन सङ्गे बैसि खेपब[५] कओने भाति
लगहिक दोसर नहि देषिअ[६] राति[७] ॥
पहिआ नागर अथिक सही
उकुति मनोरथ गेल[८] कही।
पृथिविचन्द भने[९] मेदिनि सार
इ रस बुझए मलिक दुलार ॥

ने० पृ० ७४, प० २०८, पं० ५

पाठभेद—

मि० म० (परि० ग-११)—१ सुमोनज बातहि। २ मति भरम निथि कओलइ आर। ३ मदन। ४ कधालि। ५ खेपुवि। ६-७ देखि अराति। ८ गेलु। ९ भन।

झा (एपें०-ए-१२)—१ अमोल जुवतिहि।

गुञ्जरीरागे—

[१३]

कुमुद बन्धु मलीन भासा
चारु चम्पक वण[१] विकाशा
शुद्ध पञ्चम गाब कलरव कलयकण्ठी[२] कुञ्ज रे ॥ ध्रु० ॥
रे रे नागर जान दे[३] घर छोड अञ्चल
जाब पथ नहि पथिक सञ्चर
लाज डर नहि तो परानी दे मेरानी रे ॥

सुनिअ[४] दन्दा जनक रोरा
चक्क चक्की विरह थोळा[५]
निसि विरामा सघन हक्कइ[६] तम्बँचूळा[७] रे ॥
धोए हलु जनि नयन कज्जल
अमिअ[८] लए जनि कएल उज्जल[९]
अबहु न बल्लभ तुअ मनोरथ काम पूरश्रो रे ॥
हृदय उखलु[१०] मोतिम हारा
निफुल फुल मालति माला
चन्द्रसिंह नरेस जीबश्रो भानु जम्पए रे[११] ॥

ने० पृ० ८०(क), प० २२४, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३२२)—१ अरुन । ३ जए देहे । ४ सुनिय । ५ थोरा । ६ हक्कइत मुक्रूनारे ८ अमिअ । १० उखडु ।

मि० म० (परि०-ग-)—१ वन । ३ जा न देखब । ४ सुनिअ । ५ थोरा । ६-७ हक्कइत मुछना रे । ९ 'धोए हलु' से 'कएल उज्जल' तक की दोनों पंक्तियों के स्थान में केवल एक पंक्ति—'धोए हलु जनि कएल उज्जल' है ।

झा (एपें०-ए-१३)—२ कलय कराडी । ११ हे ।

विभासरागे—

[१४]

मुख दरसने सुख पाओला
रस विलसि न भेला ।
सारद[१] चान्द सोहाओना[२]
उगितहि अथ[३] गेला ॥ ध्रु० ॥
हरि हरि बिहि बिघटाउलि[४]
गजगामिनि बाला ॥
गुण अनुभवे मन मोहला
अवसादल देहा ।
दुलभ लोभे फल पाओला
अबे प्राण सन्देहा ॥

मेनका देवि पति भूपति
रस परिणति[5] जाने ।
नरनारायण नागरा
कवि धीरेसर[6] भाने ॥

ने० पृ० ६८, प० २६६, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ४३)—१ सरद । ३ अथ । ४ बिघटाओलि । ५ परिनति । ६ धीरे सरस ।
मि० म० (परि० ग-१३)—२ सोहाओना ।
झा (एपें० ए-१५)—पाठभेद नहीं है ।

विभासरागे—

[१५]

बोलितहु साम साम पए बोलितह
नहि से[1] सेउ[2] बिसवासे ।
अइसन पेम मोर बिहि बिघटाओल
दूना रहलि दुरासे ॥ ध्रु० ॥
सखि हे कि कहब कहइ न जाइ[3] ।
मन्द दिवस फल गनहि न पारिअ
अपदहि[4] कुपुत कन्हाइ[5] ॥
जलहुक थल[6] जओ भरमहु बोलितहुँ
जल थल थपितहु वेदे ।
अनुपम पिरिति पराइति पलले[7]
रहत जनम धरि खेदे ॥
अइसना जे करिअ[8] से नहि करबे
कवि रुद्रधर एहु भाने ।

ने० पृ० ६८(क), प० २७०, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ५०१)—१-२ सेसे तँ । ६ जे लहु कथन । ७ परले । अन्त में निम्नलिखित पंक्ति है—

राजा सिवसिंह रूपनरायन लखिमा देवि रमाने ॥

मि० म० (परि० ग-१४)—१-२ से से त । ३ जाए । ६ जलहु कथन ।
झा (एपें०-ए-१४)—१-२ से से । ३ जाई । ४ अपनहि । ५ कन्हाई । ८ जरिअ ।

●●

परिशिष्ट (ख)

नेपाल-पदावली में उपलब्ध भणिता-हीन पद

धनछीरागे—

[१]

कोमल कमल काञि बिहि सिरिजल
मो चिन्ता पिअ़ा लागी।
चिन्ता भरे निन्दे नहि सोअञो[१]
रअनि[२] गमावञो[३] जागी ॥ ध्रु० ॥
वर कामिनि हो[४] काम पिअ़ारी
निसि अन्धियारि डरासी ।
गुरु नितम्ब भरे लळहि[५] न[६] पारसि
कामक पीडलि[७] जासी ॥
साओन[८] मेह रिमझिम[९] बरिसए
बहल भमए जल पूरे ।
बिजुरिलता चक(मक) चकमक कर
डीठि न पसरए दूरे ॥

ने० पृ० ४६, प० १३१, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० २९८)—५ चलहि। ६ न। ७ पीड़लि।

मि० म० (पद-सं० ८०२)—१ सोअओं। २ रयनि। ३ गमावओं। ४ हे। ५-६ ल-नहि न। ७ पीड़लि। ८ साओँन। ९ रिमि झिमि।

झा (एपें०-बी-४)—५ ललहि। ६ नहि। ७ पीड़सि।

धनछीरागे—

[२]

मञे[१] तो[२] आज देषलि[३] कुरङ्गिनयनिआ
सरदक चान्द बदनिञा (लो)।

कनकलता जनि कुन्दि बैसाओल[४]
कुचयुग[५] रतन कटोरवा लो ॥ ध्रु० ॥
दसन जोति[६] जनि[७] मोति बैसाओल
अधर तँ सुरङ्ग पबरवा[८] लो ॥

ने० पृ० ४७(ख), प० १३३, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १८)—३ देखलि। ४ बैसाओल। ५ जुग। ८ अधर तसु पवारवा लो।

मि० म० (पद-सं० ७६८)—१ मोयँ। ३ देखलि। ४ बैसाओल। ५ कुच जुग। ६ ज्योति। ७ जनि जनि। ८ अधर तसु रङ्ग पररवा।

झा (एपें०-बी—५)—२ तओ। ७ जनि जनि। ८ अधर तसु रङ्ग पवरवा।

धनछीरागे—

[३]

मुख तोर पुनिमक चन्दा
अधर मधुरि फुल गल मकरन्दा।
अगे धनि सुन्दरि रामा
रभसक अवसर कँ[१] भेलि हे वामा ॥ ध्रु० ॥
कोपे न देहे मधुपाने
जीवन जौवन सपन समाने ॥

ने० पृ० ४७, प० १३४, पं० ३

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ३६८)—१ पाठाभाव।

मि० म० (पद-सं० ८०३)—१ अवसरकँ।

झा (एपें० बी-३)—१ पाठाभाव।

मालवीरागे—

[४]

तोहि पटतरे करि काहि लाबए
एहि जुग नही अउरु कोइ दृष्टि आबए।
सतयुग के दानि अरु करन बलि होए
गए हरिचन्द[१] हेति मरि[२] बरु न पाबए ॥
दुज जुह अच्यु(त)[३] ....

ने० पृ० ५६(क), प० १६०, पं० ४

पाठभेद—

झा (एपें०-बी-७)—१ हरिश्चन्द। २ हे तिमरि। ३ अच्यु।

कोलाररागे—

[५]

कतन जातकि कतन केतकि
कुसुम वन विकास ।
तइग्रो[१] भमर तोहि सुमर
न लेग्र कतहु वास ॥ ध्रु० ॥
मालति वध ग्रो जाएत लागि ।
भमर बापुल[२] विरहे ग्राकुल[३]
तुग्र दरसन लागि ॥
जखने जतए[४] वन उपवन
ततहि तोहि निहार ।
लिहि[५] महीतल तोहि परेषए
तोहर जीवन सार ॥
समय गेले नेह बढग्रोबह
कुसुम होएत झाल[६] ।
भमर जनु ग्रचेतन[७] बुझह
छुइते[८] कर निमाल[९] ॥

ने० पृ० ६१(क), प० १७२, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ९६)—१ तइग्रग्रो । २ वापुर । ६ साल ।
मि० म० (पद-सं० ७९९)—२ वापुर । ५ ते लिहि । ६ साल । ७ ग्रचेतत । ८ छुइत ।
झा (एपें०-बो-८)—३ बेग्राकुल । ४ जतहि । ९ नि(र) माल ।

कोलाररागे—

[६]

ग्रथिक[१] नवोढा[२] सहजहि भीति
ग्राइलि मोरे[३] वचने परतीति ।
चरण न चलए निकट पहु पास
रहलि धरनि धरि मान तरास ॥ ध्रु० ॥

अवनत आनन लोचन वारि
निज तनु मिलि रहलि वर नारि॥

ने० पृ० ६८(क), प० १८६, पं० १

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० १४६)—१ अधिक। २ नवोढ़ा। ३ मोर।
मि० म० (पद-सं० ८००)—पाठभेद नहीं है।
झा (एपें० बी०-१)—पाठभेद नहीं है।

कोलाररागे—

[७]

हाथिक दसन पुरुष वचन
कठिने बाहर होए।
ओ नहि लुकए वच न[1] चुकए
कतो करओ[2] कोए॥ ध्रु०॥
साजनि अपद[3] गौर(व)[4] गेल।
पुरब करमे दिवस दुखणे[5]
सबे विपरित भेल॥
जानल सुनल ओ नहि कुजन
ते हमे[6] लाओल[7] रीति।
हसु[8] ... ...

ने० पृ० ७२(क), प० २०१ (पूर्वार्द्ध), पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ५५६)—१ वचन। २ कवओ। ४ गौरव। ६-७ तेह मेलाओल। ८ हसु तारापति।
झा (एपें०-बी-६)—१ वचन (न)। २ करेओ। ३ अपदहि। ४ गौ(र)व। ५ दुख ले। ८ पाठाभाव।

कोलाररागे—

[८]

सरसिज बन्धु रिपु वैरि तनय तह
अहनिसि किछु न सोहाबे।
कमला जनक तनय अति सितल
मोहि मारि की पाबे॥ ध्रु०॥

बिहि अबे अधिक विरोधी ।
केओ नहि तइसन गुरुजन परिजन
जे पिआ दे परबोधी ॥
गिरिजा सुत गति[1] भोअन भोयन
से दाहिन अति मन्दा ।
हरि सुअ पहु पिअ चोर बाहु गनि
खाएब छाडत दन्दा ॥
भजहि तुरित धनि नृपति सिरोमणि
जे परवेदन जाने ॥

ने० पृ० ७३, प० २०४, पं० १

पाठभेद—

झा (एपें०-ए-११)—१ पति । २ शिरोमणि ।

विभासरागे—

[६]

आज परसन मुख न देषए[1] तोरा
चिन्ताञे सहज विकल मन मोरा ।
आएल नयन हटिए का[2] लेसी
पछिलाहु जके हसि उतरो न देसी ॥ ध्रु० ॥
ए वर कामिनि जामिनि गेली
अरथिते आरति चौगुण भेली ।
चन्दा पछिम गेल परगासा
अरुए अलंकृत पुरन्दर आसा[3] ॥
मानिनि मान कओन[4] एहु बेरी
तिला एक आडेहु[5] डीठि हल हेरी ।
सअनक सीम तेजि दुर[6] जासी
एकहि[7] सेज भेलाहु परवासी ॥
ताहि मनोरथ[8] जे कर बाधा[9] ।

ने० पृ० १००(क), प० २७४, पं० १

पाठभेद--

न० गु० (पद-सं० ३६७)—१ देखए। २ काँ। ५ आड़ेहु। ६ दूर। ७ एकहु। ६ यह पंक्ति नहीं है।

मि० म० (पद-सं० ८०२)—१ देखए। २ काँ। ३ मासा। ४ कओन। ५ आड़ेहु। ६ दूर। ७ एकहु। ८ मनरथ।

झा (एपें०-बी १०)—८ मनोरथ।

[१०]

केहु देखल नगना
भिषिआ मगइते बुल आङ्गने[1] आङ्गना[2]।
उगन उमत केहु देषल[3] विधाता
गौरिक[4] नाह अभय वर दाता ॥ ध्रु० ॥
विभुति भुषण[5] कर बीस अहारे
कण्ठ वासुकि सिर सुरसरि धारे।
केलि भूत सङ्गे रहए मसाने
तैलोक इसर हर के नहि जाने ॥

ने० पृ० १०१, प० २७६, पं० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद सं० हर-२४)—१-२ आङ्ने आङ्ना। ३ देखल। ४ गोरिक। ५ भुषन।

मि० म० (पद-सं० ७६७)—३ देखल। ५ भुसन।

झा (पद-सं० २५५)—पाठभेद नहीं है।

वसन्त रागे—

[११]

नाचहु रे तरुणिहु[1] तेजहु लाज
आइलि वसन्त ऋतु[2] बनिक राज ॥ ध्रु० ॥
हस्तिनि चित्रिनि पदुमिनि नारि
गोरि सामरि एक बूढि[3] बारि।
विविध भान्ति[4] कएलन्हि सिङ्गार
परिहन पटोर गिम भूल[5] हार ॥
केउ[6] अगर चन्दन घसि भर कचोर[7]
ककरहु खोऔछा[8] कपुर[9] तबोँर[10]।

केउ[११] कुङ्कुम मरदाब आङ्ग[१२]
ककरिहु मोतिआ भल छाज माग ॥

ने० पृ० १०२(क), पद० २८१, पं० ५

पाठभेद—

न० गु० (पद-सं० ६०२)—१ तरुनि। २ रितु। ३ बुढ़ि। ४ भाँति। ५ झुल। ७ कटोर। ९ कपुरु। १० तबोंर। ११ केओ। १२ आँग।

मि० म० (पद-सं० ८०४)—१ तरुनीहु। २ रितु। ३ बूढ़ि। ४ भाँति। ५ झुल। ६ केओ। ७ कटोर। ८ खोईंछा। ९ करपुर। १० तमोर। ११ केओ। १२ आँग।

झा (एपें०-बी ११)—५ झुल। ६ केओ। ७ कटोर। ९-१० कपुतबोँर। ११ केओ।

••

पदानुक्रमणी

••

शुद्धि-पत्र

भूमिका

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
सहरसा	दरभंगा	३७	१४
प्रपितामह	वृद्धप्रपितामह	५८	१६
१४८	१२४८	५८	२१
कामेश्वर	कुसुमेश्वर	६०	१४
२८४	२८७	६४	१२
पृ० १८६३ (पृ० ८६ में)	पृ० १८६ (टिप्पणी)	२३	(टिप्पणी) ७
शिव पुनि पुनि	शिव केर पुनि पुनि	३५	२५
'आब जीव परसन भेल' के बाद छूट— एतए अउतीहि सुरधुनि अपन किङ्कर गुनि सब पातक दुर गेल ॥		३५	३०

पदावली

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
सारी	सारो	५३	१
गोलि	गेलि	५५	१५
बर	र(ह)ब	८६	१२
करसु	कुरसु	९६	१०
नीत	नीतँ	१४७	३२
तो ··· हल	तोळिहल	१५५	७
ई ँथी	इँथी	२६५	२६
लागि	लागिह	२८२	११
सिनह	सिनेह	३५६	२
२५४	२५५	३५९	२३
मातिआ	मोतिआ	३८८	२

पदानुक्रमणी

कामिनि करए सनाने (छूट है।)

परिषद् के गौरव-ग्रन्थ

१.	हिन्दी-साहित्य का आदिकाल—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	३·२५
२.	यूरोपीय दर्शन—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा	३·२५
३.	हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	६·५०
४.	विश्वधर्म-दर्शन—श्रीसाँवलियाविहारीलाल वर्मा	१३·५०
५.	सार्थवाह—डॉ० मोतीचन्द्र	११·००
६.	वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा—डॉ० सत्यप्रकाश	८·००
७.	सन्त कवि दरिया : एक अनुशीलन—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री	१४·००
८.	काव्य-मीमांसा (राजशेखर-कृत)—अनु० स्व० पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत	६·५०
९.	श्रीरामावतार शर्मा-निबन्धावली—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा	८·७५
१०.	प्राङ्मौर्य बिहार—डॉ० देवसहाय त्रिवेद	७·२५
११.	गुप्तकालीन मुद्राएँ—स्व० डॉ० अनन्त सदाशिव अलतेकर	९·५०
१२.	भोजपुरी भाषा और साहित्य—डॉ० उदयनारायण तिवारी	१३·५०
१३.	राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त—श्रीगोरखनाथ सिंह	१·५०
१४.	रबर—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा, एम्० एस्० सी०	७·५०
१५.	ग्रह-नक्षत्र—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह, आइ० सी० एस्०	४·२५
१६.	नीहारिकाएँ—डॉ० गोरख प्रसाद	४·२५
१७.	हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह	३·००
१८.	ईख और चीनी—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा	१३·५०
१९.	शैवमत—मूल लेखक और अनुवादक डॉ० यदुवंशी	८·००
२०.	मध्यदेश : ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सिंहावलोकन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	७·००
२१-२४.	प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण—(खण्ड १ से ४ तक)-(संपादित)	७·२५
२५-२८.	शिवपूजन-रचनावली—(चार भागों में)-आचार्य शिवपूजन सहाय	३६·२५
२९.	राजनीति और दर्शन—डॉ० विश्वनाथप्रसाद वर्मा	१४·००
३०.	बौद्धधर्म-दर्शन—स्व० आचार्य नरेन्द्रदेव	१७·००
३१-३२.	मध्य एसिया का इतिहास—(दो खण्डों में)—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	२०·७५
३३.	दोहाकोश—ले० सरहपाद; छायानुवादक : म० प० राहुल सांकृत्यायन	१३·२५
३४.	हिन्दी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा	११·२५
३५.	रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना—डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	१०·२५
३६.	अध्यात्मयोग और चित्त-विकलन—स्व० वेंकटेश्वर शर्मा	७·५०
३७.	प्राचीन भारत की सांग्रामिकता—पं० रामदीन पाण्डेय	६·५०
३८.	बाँसरी बज रही—श्रीजगदीश त्रिगुणायत	८·००

३९.	चतुर्दशभाषा-निबन्धावली—(संकलित)	४·२५
४०.	भारतीय कला को बिहार की देन—डॉ० विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह	७·५०
४२.	भोजपुरी के कवि और काव्य—श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह	५·७५
४२.	पेट्रोलियम—श्रीफूलदेवसहाय वर्मा	५·५०
४३.	नील-पंछी—(मूल लेखक : मॉरिस मेटरलिंक) अनु० डॉ० कामिल बुल्के	२·५०
४४.	लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् मानभूम ऐण्ड सिंहभूम—(सम्पादित)	४·५०
४५.	षड्दर्शन-रहस्य—पं० रंगनाथ पाठक	५·००
४६.	जातककालीन भारतीय संस्कृति—श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी'	६·५०
४७.	प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—ले० श्री पिशल; अनु० डॉ० हेमचन्द्र जोशी	२०·००
४८.	दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	६·००
४९.	भारतीय प्रतीक-विद्या—डॉ० जनार्दन मिश्र	११·००
५०.	संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री	५·५०
५१.	कृषिकोश (प्रथम खण्ड)—संपादक : डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	३·००
५२.	कुँवरसिंह-अमरसिंह—ले० का० किं० दत्त; अनु० पं० छविनाथ पाण्डेय	५·००
५३.	मुद्रण-कला—पं० छविनाथ पाण्डेय	७·२५
५४.	लोक-साहित्य : आकर-साहित्य-सूची—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	०·५०
५५.	लोकगाथा-परिचय—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	०·२५
५६.	लोककथा-कोश—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	०·३२
५७.	बौद्धधर्म और बिहार—पं० हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'	८·००
५८.	साहित्य का इतिहास-दर्शन—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	५·००
५९.	मुहावरा-मीमांसा—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त	६·५०
६०.	वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति—पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	५·००
६१.	पंचदशलोकभाषा-निबन्धावली—(संकलित)	४·५०
६२.	हिन्दी-साहित्य और बिहार (७वीं से १८वीं शती तक)—सं० आचार्य शिवपूजन सहाय	५·५०
६३.	कथासरित्सागर (प्रथम खण्ड)—ले० सोमदेव; अनु० के० ना० शर्मा सारस्वत	१०·००
६४.	भारतीय अब्दकोश (शकाब्द १८८२)—सं० श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ	६·००
६५.	अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रन्थ—(सम्पादित)	५·००
६६.	सदलमिश्र-ग्रन्थावली—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	५·००
६७.	रंगनाथ रामायण (तेलुगु से अनूदित)—अनु० श्री ए० सी० कामाक्षि राव	६·५०
६८.	गोस्वामी तुलसीदास—स्व० श्रीशिवनन्दन सहाय	५·५०
६९.	पुस्तकालय-विज्ञान-कोश—श्रीप्रभुनारायण गौड़	४·५०
७०.	प्राचीन संस्कृत हस्तलिखित पोथियों का विवरण (खण्ड ५)—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	१·००
७१.	भारतीय अब्दकोश (शकाब्द १८८३)—सं० श्रीजगन्नाथप्रसाद मिश्र तथा श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ	८·००

★